श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराजाभिनन्दन ग्रन्थः

ऋषिदर्शनम्

श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराजाभिनन्दन ग्रन्थः
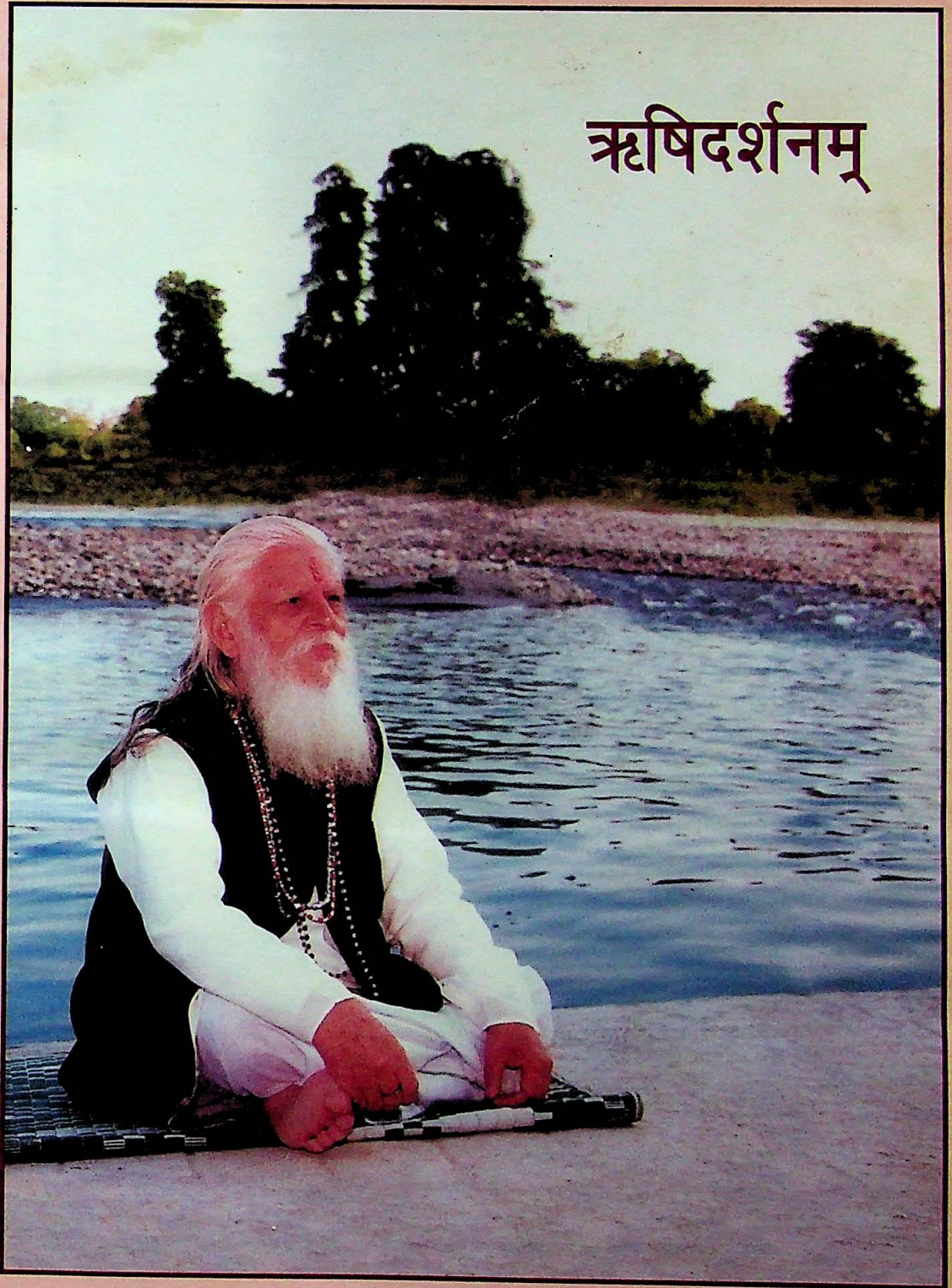
ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः

तपस्विभ्योऽधिको योगी
ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी
तस्माद्योगी भवार्जुन।

(गीता अध्याय ६)

श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराजाभिनन्दन ग्रन्थः

ऋषिदर्शनम्

माननीय डा० धर्मपाल जी कुलपति महानुभावानां कृते
सादरमुपह्रियते ।
15.7.2000

सम्पादिका : डा० सतीश कुमारी

प्रकाशकः : श्री 108 बाल ब्रह्मचारी मिशनः,
निर्धन-निकेतनम्,
खड़खड़ी, हरिद्वारम् (उ. प्र.)

श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराजाभिनन्दन ग्रन्थः
ऋषिदर्शनम्

प्रकाशन वर्ष : सहस्राब्दि 2000, "गुरुपूर्णिमा"

सर्वाधिकार : श्री 108 बाल ब्रह्मचारी मिशन,
निर्धन-निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार (उ. प्र.)

मूल्य :

मुद्रक : न्यू मॉडल इम्पैक्स प्रा० लि०
६-ई, झण्डेवालान एक्सटेंशन,
नई दिल्ली-११००५५

श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराजाभिनन्दन ग्रन्थः

ऋषिदर्शनम्

परामर्शक मण्डल :-

डा. रामकृष्ण शर्मा, पूर्व-शिक्षा सलाहकार (संस्कृत) मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार, दिल्ली

डा. वेदप्रकाश शास्त्री, उपकुलपति एवं आचार्य, गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार (उ. प्र.)

श्री दिगम्बरदत्त थपलियाल, सेवानिवृत्त ए. डी. एम. सिविल सर्विस (उ.प्र.)

आचार्य मनसाराम शर्मा, पूर्व-प्राचार्य श्री भगवानदास केन्द्रीय संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार (उ.प्र.)

सुश्री सत्या सचदेवा, प्रबन्धिका, शिक्षण-संस्थान, निर्धन-निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार

सुश्री सावित्री माटा, प्राचार्या, माई भागो कालेज फार वूमन, रामगढ़, (लुधियाना)

सुश्री देवां जी, सदस्या, श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन, हरिद्वार

श्रीमती कमलेश श्याम कुमार, फ्रन्ट लाइन फैशन अपैरल, दिल्ली

सम्पादक मण्डल :-

डा. सतीश कुमारी, प्राचार्या, ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

श्री सोमप्रकाश शाण्डिल्य, समाज-सेवी, गान्धी मार्ग, कनखल, हरिद्वार

डा. भारतनन्दन चौबे, प्राध्यापक (व्याकरण) ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

सुश्री सरिता माटा, प्रवक्ता (अंग्रेजी) डी.डी. जैन मेमोरियल कालेज फार वूमन, लुधियाना (पंजाब)

परमश्रद्धेय श्री 108 बाल ब्रह्मचारी श्री वंशीधर महाराज के अमृत-वचन

* "यदि तूँ उसका है तो तुझे डर किसका है, अगर तूँ उसका नहीं तो तुझे आस किस की है ?"

* "पुत्र ! इन्सान का दिया हुआ धन कभी किसी के पास नहीं रहता, वही रहता है जो भगवान स्वयं किसी को देते हैं।"

* "नेक कमाई करके जो अन्न खाओगे, वही आत्म-आनन्द देने वाला होगा।"

* "संसार का प्रेम और प्रभु-प्रेम साथ साथ नहीं चल सकते जैसे एक म्यान में दो तलवार नहीं समा सकती।"

* "उस सच्चे आनन्द को पाने के लिए अपने मन रूपी सागर का मन्थन करो। सभी रत्न इसी में हैं। बाहर भटकने से कुछ भी हाथ न लगेगा।"

श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज जी के परमगुरु, ब्रह्मलीन, पूज्यपाद श्री १०८ बालब्रह्मचारी, तपोमूर्ति श्री वंशीधर जी महाराज (विरकां वाले)
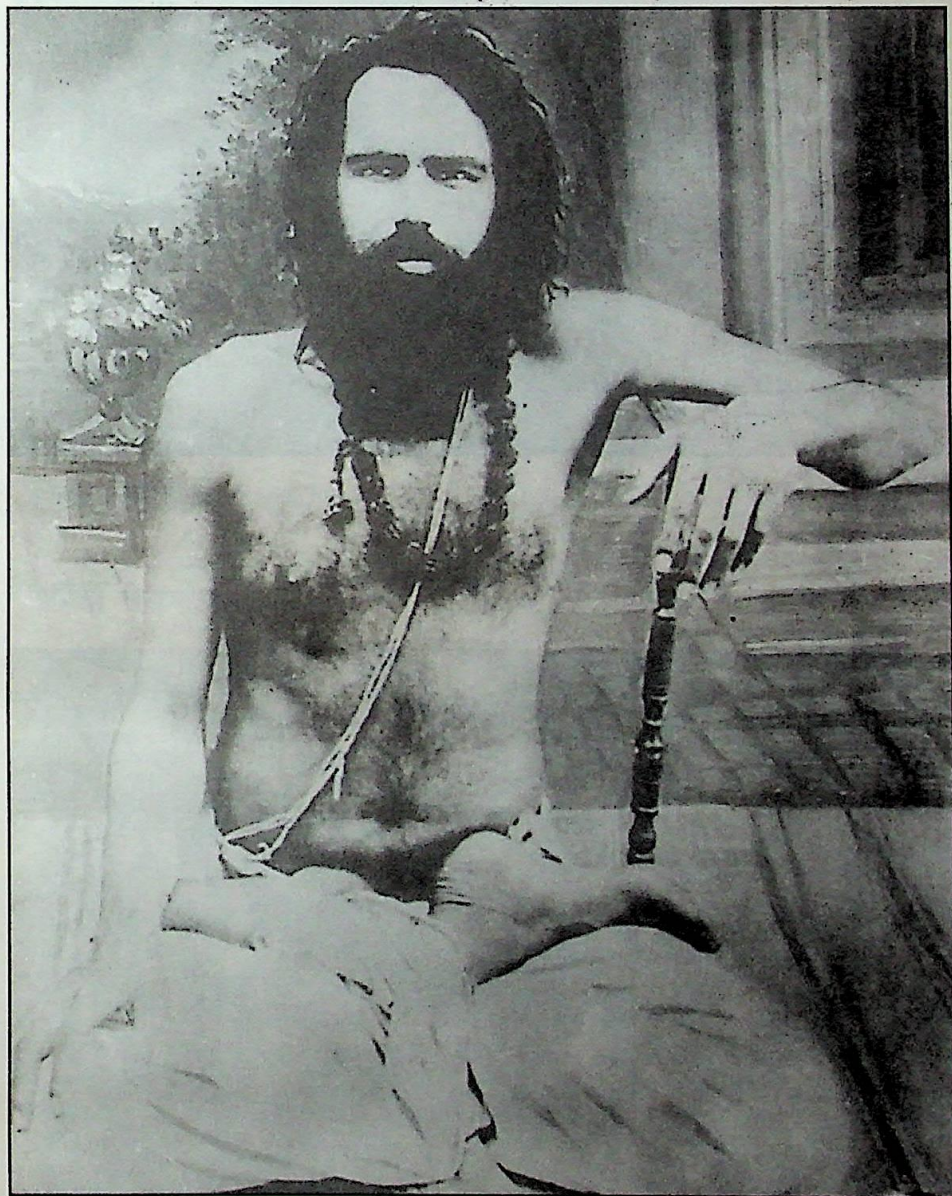
ब्रह्मभूतः सदामुक्तो, ब्रह्मविद्याविशारदः
सर्वतन्त्रःस्वतन्त्रश्च वंशीधरो विराजते।

श्रीमद् गुरुचरणकमलेभ्यो नमः

श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी,
तपोनिधि श्री वंशीधर जी महाराज (विरकां वाले)

श्री १०८ महामण्डलेश्वर स्वामी शम्भुदेव जी महाराज
(श्री जगदीश आश्रम, हरिद्वार)

अभिनन्दनग्रन्थ - विषयानुक्रमणिका

		पृ. सं.
1.	सम्पादकीय	8
2.	समर्पण	13
3.	शुभ-कामनाएँ	15
4.	श्रद्धेय ऋषि श्री केशवानन्द महाराज जी का संक्षिप्त जीवन परिचय	63
5.	संस्कृत लेखमाला	103
6.	हिन्दी लेखमाला	179
7.	अंग्रेजी लेखमाला	361
8.	चित्रावली	414
9.	कार्यकारिणी के सदस्यों की नामावली	439

सम्पादकीय

"शास्त्र चिन्तन" श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज जी की सहज प्रवृत्ति रही हैं। यदा-कदा माननीय डॉ०आर० के० शर्मा, प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री, आ०विश्वनाथ मिश्र, पं०मनसाराम शर्मा, आ०बुद्धिबल्लभ शास्त्री, डॉ० कृष्ण कुमार, श्री ज्ञानचन्द्र शास्त्री, श्री ब्रह्मनन्द बिंडालिया, श्री भारत नन्दन चौबे, पं.शैलेन्द्राचार्य आदि विद्वानों से ऋषि जी की भेंट होती तो ऋषि जी उनसे शास्त्रचर्चा करते ही दीखते। पूज्य ऋषि जी की इस मनोवृत्ति का आनन्द विद्वान लोग भी लेते रहे। एक दिन विद्वानों के पारस्परिक निर्णय से "ऋषि-परिषद्" का गठन किया गया जिस के माध्यम से द्विमासिक विद्वद्गोष्ठी होने लगी और 'प्राण' तत्त्व एवं 'ऋषि' तत्त्व जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर विस्तृत चर्चाएँ आरम्भ हुई। शास्त्रीय चर्चा के अन्तराल में ऋषि जी ने सभी विद्वानों से कहा कि इन चर्चित विषयों पर देशकालानुसार कुछ नवीन लेखन कार्य होना चाहिए, और साथ ही उन्होंने डा० आर०के० शर्मा पूर्व शिक्षा सलाहाकार (सं०) भारत सरकार से लेखन कार्य का अनुरोध भी किया। मनोविनोदप्रिय-स्वभाव के डा०आर०के० शर्मा ने पूछा, "ऋषि जी ! क्या मैं अपनी रचना का नायक आप को ही बना डालूँ।" ऋषि जी बोले "न कथमपि, आप ऋषित्व को नायक बनाओ"। इसी सारस्वत-विलास में एक शब्द प्रस्फुटित हो आया "ऋषिदर्शनम्"।

अगली विद्वद्गोष्ठी में मैंने विद्वानों से बात की कि ऋषि जी ७५ वें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। ऋषि जी की आयु के ७५ वर्ष की पूर्णता पर आयोजित होने वाले अमृत-महोत्सव (हीरक जयन्ती) पर इन्हें "अभिनन्दन ग्रन्थ" भेंट किया जाये, जिस में इनके जीवन-परिचय, इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व पर प्रकाश डाला जा सके और विद्वानों के प्रौढ़ लेखों का संकलन हो सके। ऐसी प्रबल-इच्छा ऋषि जी के देश-विदेश के भक्तजनों, प्रबन्ध-समिति के सदस्यों की तो है ही, समाज में प्रतिष्ठित अन्य लोगों की भी है। मैंने ऋषि जी से इस विषय में जब भी बात की है, उन्होंने अपने लिये लिखे जाने वाले "अभिनन्दन ग्रन्थ" की स्वीकृति नहीं दी शायद आप महानुभावों के अनुग्रह पर स्वीकृति मिल सके। इस पर सम्माननीय प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री उपकुलपति, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार आदि विद्वानों ने कहा, "ऋषि जी का जीवन एक महापुरुष का जीवन है, एक ऋषि का जीवन है, इनका व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व अनुकरणीय है जो लेखबद्ध होना चाहिए ताकि आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणा-स्रोत बन सके। इस शिव संकल्प की अनुमति तो ऋषि जी को देनी होगी"। बाध्य होकर पूज्य ऋषि जी ने कहा "मेरे अभिनन्दन का कोई अर्थ नहीं, मैं तो कुछ हूँ ही नहीं, यदि समाज को प्रेरणा देने के लिए कुछ लिखना ही है तो ऋषित्व पर लिखें, सनातन ऋषि परम्परा पर लिखें और भटके हुए समाज के सम्मुख रखें।" कथञ्चित "ऋषिदर्शनम्" नाम तो पूर्वोक्तप्रकार से रचनार्थ

प्रस्फुटित हो ही चुका था। विद्वानों ने सोचा क्यों न इसी नाम का प्रयोग करते हुए ऋषि जी का अभिनन्दन ग्रन्थ निर्मित किया जाये।

वस्तुतः ऋषि श्री केशवानन्द जी महाराज के सन्दर्भ में "ऋषिदर्शनम्" शब्द बड़ा ही सटीक जान पड़ता है। इसकी उभयार्थता, बाह्यभ्यन्तर सार्थकता, प्रासंगिकता एवं देशकालानुकूल आवश्यकता इनमें आरोपित भी है, एवं दृष्टिगत भी। क्रान्तिदर्शिता एवं "ऋषि" नाम की सार्थकता-दोनों से ही ऋषि जी तो ऋषि हैं ही। इन का दर्शन सामान्यजन को चर्म-चक्षुओं से एवं असामान्य जन को ज्ञान चक्षुओं से हो ही रहा है। अतः सर्वसम्मति से अभिनन्दनग्रन्थ का नाम "ऋषिदर्शनम्" निर्णीत हो गया। भक्तों के अनुराग एवं विद्वानों के प्रोत्साहन ने ऋषि जी के जीवन के विविध पहलुओं को प्रकाश में लाने हेतु एक ग्रन्थ रचना का प्रस्ताव पारित कर दिया जिसके सम्पादन का कार्यभार डा.आर के शर्मा आदि विद्वानों ने मेरे निर्बल कन्धों पर रख दिया।

ऋषि केशवानन्द महाराज के पंचसप्तति सम्वत्सरपूर्ति के अवसर पर उनके अभिनन्दनार्थ "ऋषिदर्शनम्" नामक ग्रन्थ प्रकाशन की सूचना जैसे ही लोगों में प्रसृत हुई वैसे ही सन्तों, महापुरुषों, विद्वत्समुदाय, महामण्डलेश्वरों जैसे शुभैषियों की मंगलकामनाएं मेरे पास आने लगी। विशिष्ट विद्वान, भक्त एवं अनुरक्त लोगों के महत्त्व पूर्ण लेख मुझे प्राप्त होने लगे। एक शिवसंकल्प जागृत हुआ, नभोमण्डल में फैला और अनायास ही उसकी पूर्ति हेतु अनुकूल प्रतिक्रियाएं आरम्भ हो गयी। यह देख कर मुझे आनन्द की अपेक्षा आश्चर्य अधिक हुआ। कितना रहस्यमय है उस परमशक्ति का कृपा कटाक्ष! क्षमता विहीन होने के कारण जिस कार्य को मैं अपने लिए अति कठिन समझती रही वह कार्य तो स्वतः सामने आने लगा और मैं केवल निमित्त मात्र बन कर रह गयी। उस करुणामयी शक्ति ने "ऋषिदर्शनम्" नामक इस अभिनन्दन ग्रन्थ की रुपरेखा बनाने हेतु और मुद्रण-प्रूफरीडिंग आदि कार्य हेतु सहृदय-परामर्शक मण्डल, निष्ठावान सहयोगी एवं स्निग्ध-परिकर भी उपलब्ध करा डाला। इन सब साधु साधनों की प्राप्ति ने कार्यसाफल्य के प्रति मेरा विश्वास दृढ़ कर दिया। इस दैवी-इच्छा, शिवसंकल्प एवं शुभ संयोग की परिणिति है यह अभिनन्दन ग्रन्थ "ऋषि दर्शनम्"।

यह अभिनन्दन ग्रन्थ मात्र प्रशस्ति ग्रन्थ ही नहीं प्रत्युत स्थायीमूल का एक उपयोगी एवं सग्रंहणीय ग्रन्थ है। इस में भारतीय ऋषि परम्परा का विशद् स्वरूप, ऋषि जीवन पद्धति, ऋषियों के सिद्धान्तों और आदर्शो की पठनीय एवं अनुकरणीय सामग्री है। मनीषी विद्वानों के द्वारा ऋषि शब्द की सटीक व्युत्पत्तियाँ एवं सारगर्भित व्याख्याएँ की गई हैं। ऋषित्व मानव की एक ऐसी दैवी उपलब्धि है जो तप-त्याग से अर्जित की जाती है। जो मानव जितनी साधना करता है वह उतने ही अंश तक ऋषित्व प्राप्त करता है। विश्वामित्र, वशिष्ट, कश्यपादि ऋषियों के कथानक इन्हीं तथ्यों का

उन्मीलन करते हैं। "ऋषित्व मेथेमेटिकल कल्क्यूलेशन से नहीं मापा जाता है, यह तो दृष्टिकोण एवं श्रद्धा साधनों से आलोकित होता है। ऋषि केशवानन्द जी महाराज में विकसित ऋषित्व की अनुभूति सन्तों, विद्वानों और भक्तों ने अपने अपने दृष्टिकोण से की है जिसकी मंजुल अभिव्यक्ति "ऋषित्वं प्रतिपद्यते" "ऋषिकेशवानन्दस्यऋषित्वम्," "ऋषिकेशवानन्दमहाराजानामार्षदर्शनस्य वैचिन्यचम्" इत्यादि बहुत सी रचनाओं में हुई है।

"ऋषित्वं केशवानन्दे यज्जनैः प्रतिपाद्यते,
तत्तथा स्यादिदं लेख्यं ऋष्यभिनन्दनं भवेत्"

विद्वज्जन, साधुजन, भक्तजन ने अपने विचारमन्थन से ऋषि केशवानन्द महाराज में जैसा ऋषित्व प्रतिपादन किया है यदि वह वैसा ही है तो यह ग्रन्थ निबन्धन स्वतः ही ऋषि अभिनन्दन ग्रन्थ बन जाता है।

इस अभिनन्दन ग्रन्थ के माध्यम से विविध दृष्टिकोणों के परीक्षण द्वारा समाज को ऋषित्व का महत्व ज्ञात हो, ऋषित्व के प्रति समाज की जिज्ञासा जागृत हो, ऋषियों से समाज को लाभान्विति हो और इसी क्रम से समाज का कल्याण हो। यही इस ग्रन्थ प्रकाशन का प्रयोजन है।

इस ग्रन्थ प्रकाशन कार्य की पूर्ति में जिन महानुभावों का नामोल्लेख अपरिहार्य है उनमें सर्वप्रथम मैं जालन्धर (पंजाब) निवासी ला. श्री मूलचन्द भण्डारी के सपुत्र श्री ज्ञानचन्द भण्डारी का उल्लेख करना चाहूँगी जिनकी शुभलक्ष्मी जो ग्रन्थ प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण अंग है, सरस्वती की सेवा में समर्पित हुई है। अध्यक्ष होने के कारण, पूज्य ऋषि जी महाराज को बाल ब्रह्मचारी मिशन के व्यय भार पर अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन ग्राह्य न था अत एव श्रद्धालु भक्त श्री ज्ञानचन्द भण्डारी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती नीलम भण्डारी-अकेले दम्पति ने यह आर्थिक सहयोग हार्दिक प्रसन्नता से दिया है वस्तुतः इस ग्रन्थ प्रकाशन का सर्वोपरि श्रेय भण्डारी-दम्पति को ही है।

निर्धन-निकेतन उत्सवप्रिय संस्था है यहां के प्रादेशिक एवं सार्वदेशिक उत्सवों पर लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, सन्त-महन्त, अधिकारी वर्ग और बुद्धिजीवी लोग आते रहे हैं जो ऋषि जी के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व से पूर्णरूपेण परिचित हैं। उन्हों ने लेख, संदेश और प्रशस्तियां भेजने में बड़ी रूचि दिखाई है। श्री ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी माधवाश्रम जी महाराज, पद्मविभूषित वीतराग स्वामी कल्याणदेव जी महाराज, सम्मानीय श्री शंकर भारती जी, श्री गोविन्द दास जी आदि अखाडा-महन्तों, श्रद्धेय स्वामी रामस्वरूप जी महाराज, स्वामी शामसुन्दर दास जी महाराज, स्वामी गणेशानन्द जी महाराज, स्वामी विद्यानन्द गिरी जी महाराज आदि

महामण्डलेश्वरों और परम सम्माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी प्रधान मन्त्री भारत सरकार आदि विभिन्न पदों के अधिकारियों ने शुभ-कामनाएं भेज कर हमारे कार्य की पुष्टि और मेरा मनोबल बढ़ाया है। एतदर्थ में उन सभी महानविभूतियों को विनम्र धन्यवाद देती हूँ।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के विचक्षण विद्वान सम्माननीय डा०राम करण शर्मा, पूर्व कुलपति, दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालय बिहार, प्रो.वि.वेंकटाचलम् पूर्व कुलपति सं०सं०वि०वि० वाराणसी, डा.सत्यव्रत शास्त्री, पूर्व कुलपति श्री जगन्नाथ संस्कृत वि०वि०पुरी, डा० मण्डन मिश्र कुलपति सं०सं०वि०वि० वाराणसी, डा०धर्म पाल जी, कुलपति गु०कु०काँ०वि०वि० हरिद्वार आदि के सन्देशों सारगर्भित लेखों से ग्रन्थ का कलेवर कमनीय बन पड़ा है। ऐसे मनीषियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता किन शब्दों में व्यक्त करूँ ? उन्हें महान कहूँ सच महान शब्द भी उनके सामने 'बौना' पड़ जाता है बस उन सब महानुभावों का मैं बहुशः धन्यवाद करती हूँ। जो लेख समय व स्थान के अभाव में इस ग्रन्थ में गुँथे नहीं जा सके उन लेखकों से मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

प्रतिष्ठित एवं सुविदित विद्वानों की परामर्शदातृमण्डली से ग्रन्थ प्रकाशन में जो सौन्दर्य एवं गाम्भीर्य आता है वह सब सौभाग्य से मुझे सुलभ रहा है। एतदर्थ मैं परामर्श समिति के समस्त सम्माननीय सदस्यों डा० आर. के. शर्मा, प्रो वेद प्रकाश शास्त्री, आ. मनसाराम शर्मा, श्री दिगम्बर दत्त थपलियाल, डॉ० कृष्ण कुमार, सुश्री सत्या सचदेवा, सुश्री सावित्री माटा, सुश्री देवांजी एवं श्रीमती कमलेश जी आदि की अत्यन्त आभारी हूँ।

सम्पादन कार्यों में परम सहयोगी श्री सोमप्रकाश शाण्डिल्य, डा० भारत नन्दन चौबे का बड़ा श्रम रहा है। मुद्रण प्रूरुफ रीडिंग में श्रीमति सुनीता गुलाटी एवं श्री शिव कुमार शास्त्री का तथा टंकन कार्य में कु० तृप्ता बजाज का सराहनीय अभिदान रहा है। प्रबन्ध व्यवस्था में बाल ब्रह्मचारी मिशन के सदस्यों माननीय श्री शिवचरण दास मित्तल, श्री रामप्रकाश नरुला, श्री देवराज गर्ग, श्री ज्ञानचन्द बजाज, श्री रिपूदमन विज, श्री प्रेमचन्द और श्री सतस्वरुप बजाज आदि के अमूल्य सहयोग प्राप्त हैं। मैं इन सब का हृदय से बहुत आभार मानती हूँ।

अन्त में सम्पूर्ण सम्पादक मण्डल न्यू मॉडल इम्पैक्स प्रा० लि०, नई दिल्ली के संचालकों, निर्देशकों एवं कर्मचारियों का हृदय से आभार मानता है जिन के निरन्तर प्रयास एवं सौहार्दपूर्ण व्यवहार से यह ग्रन्थ मूर्तरुप प्राप्त कर सका है।

सम्पादन कार्य में यथाशक्ति पूर्ण सावधानी वर्तते हुए भी यदि स्वाभाविक रूप से सम्भावित होने वाले कुछ दोष रह गए हों तो सुविज्ञ पाठक गण उन पर ध्यान न देते हुए कुछ ग्रहण कर सकें तो सम्पादक मण्डल का यह प्रयास नितान्त सफल सिद्ध होगा।

डा० सतीश कुमारी

श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज

अध्यक्ष, श्री 108 बाल ब्रह्मचारी मिशन, हरिद्वार

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये

समर्पण

निर्धन निकेतन आश्रम के अध्यक्ष, संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी त्रिभाषा साहित्य के मर्मज्ञ, अनेक संस्थाओं के संस्थापक श्रद्धेय ऋषि श्री केशवानन्द महाराज ने कर्मपथ की पगडण्डियों पर चल कर धर्मपथ को प्रशस्त किया है। आपने अपने परम तपस्वी एवं परम त्यागी गुरुदेव बाल ब्रह्मचारी श्री बंशीधर महाराज की पुण्य स्मृति में बाल ब्रह्मचारी मिशन का गठन किया और निर्धन निकेतन आश्रम की वर्ष १९५६ में स्थापना की। तदन्तर्गत आपने धर्मार्थ चिकित्सालय, विभिन्न स्तर के विद्यालय, पुस्तकालय आदि अनेक कीर्तिमान स्थापित किये हैं, गोशाला, यज्ञशाला, चिकित्साशाला जैसी महत्त्वपूर्ण संस्थाओं का निर्माण कर समाजोपकारी कार्य किये हैं। आश्रम की इन शाखा-प्रशाखाओं को आपने पल्लवित-पुष्पित किया है तथा सजग प्रहरी के रूप में इनकी रक्षा की है। वर्षों से आप का व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व समाजसेवा के लिए समर्पित है। आप बाल ब्रह्मचारी मिशन के उज्ज्वल नक्षत्र हैं, जिसकी आभा से यह मिशन दीप्तिमान है। तथ्य तो यह है कि आप श्रद्धेय गुरुदेव श्री बंशीधर महाराज विरकांवालों के सुयोग्य उत्तराधिकारी सिद्ध हुए हैं। एतदर्थ आपकी विविध और विशिष्ट सेवाओं के सम्मानार्थ 'ऋषिदर्शनम्' नामक अभिनन्दन ग्रन्थ आपकी हीरक जयन्ती के अवसर पर आपको भेंट किया जा रहा है। इस ग्रन्थ के माध्यम से वर्तमान शिष्यमण्डली और आने वाली पीढ़ी आपके द्वारा स्थापित समाज सेवा के आदर्शों, कार्यो और परम्पराओं से प्रकाश ग्रहण कर सकेगी।

परमपिता परमात्मा आपको स्वास्थ्यपूर्ण चिरायु प्रदान करे जिससे आप बाल ब्रह्मचारी मिशन के माध्यम से समूचे समाज की अधिकाधिक मूल्यवान सेवा करने में समर्थ रहें। इसी शुभ-कामना के साथ हम सब यह अभिनन्दन-ग्रन्थ आपके श्रीचरणों में सादर समर्पित करते हैं।

हम हैं आपके --

सदस्यगण

श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन

निर्धन निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार।

श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन, निर्धन निकेतन हरिद्वार

के

प्रकाशन

१. साधनापथ
२. गीतासार
३. निर्धन-सन्देश
४. ऋषि-भारती
५. निर्धन-निकेतनम्
६. श्रद्धा-शतक
७. दुर्गा-पूजार्चन विधि
८. श्रीयन्त्र-पूजन
९. 'स्मारिका' - लक्षचण्डी महायज्ञ
१०. 'रजत जयन्ती स्मारिका'- ऋषि भारती
११. रूप्याञ्जलि
१२. सद्गुरु-महिमा
१३. गुरुप्रसादः
१४. दैनिक-पूजा-प्रार्थना
१५. भगवती-शतक
१६. ऋषि-दर्शन
१७. ऋषि-वचनामृत
१८. **ऋषिदर्शनम्**

- ❀ सन्त-सन्देश एवं शुभैषणाएँ
- ❀ प्राशासनिक अधिकारियों की शुभ-कामनाएँ
- ❀ विद्वानों की मंगलकामनाएँ एवं मित्रों की स्नेहाञ्जलियाँ

अटल बिहारी वाजपेयी
प्रधान मंत्री
भारत सरकार, नई दिल्ली

प्रधान मंत्री
PRIME MINISTER
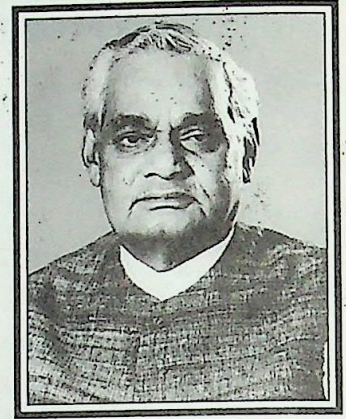
शुभकामनाएँ

प्रिय डॉ० सतीश,

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि श्री बालब्रह्मचारी मिशन, खड़खडी हरिद्वार हीरक जयन्ती वर्ष में पूज्य ऋषि केशवानन्द के अभिनन्दन में 'ऋषि दर्शनम्' का प्रकाशन करने जा रहा है।

आज के भौतिक युग में कुछ यशस्वी ऋषि प्राचीन ऋषि परम्पराओं का सबल संरक्षण कर गुरु-शिष्य की पावन पद्धति से वेद-पुराणों की गौरवमयी धरोहर को न केवल जीवित रखे हुए हैं, बल्कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने का पावन कार्य भी कर रहे हैं। ऋषि-संस्कृत-विद्यालय भी अपने संस्थापक परम पूज्य ऋषि केशवानन्द के संरक्षण में ऐसे ही एक प्रयास में वर्षों से अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहा है।

मैं. 'ऋषि दर्शनम्' नामक अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन पर पूज्य ऋषि को और महाविद्यालय के आचार्यों को अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करता हूं और इसके सफल प्रकाशन की कामना करता हूं।

शुभकामनाओं सहित,

- अटल बिहारी वाजपेयी

डॉ० सतीश कुमारी
प्राचार्य
ऋषि संस्कृत महाविद्यालय
खड़खड़ी, हरिद्वार (उत्तर प्रदेश)

लाल कृष्ण आडवाणी
गृह मंत्री
भारत सरकार, नई दिल्ली
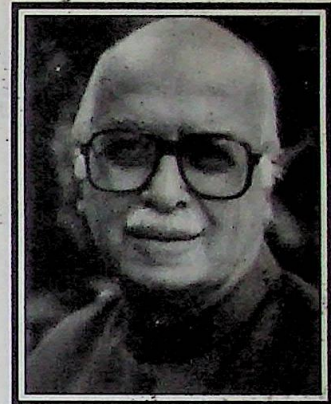
शुभकामनाएँ

प्रिय डॉ० सतीश कुमारी जी,

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, खड़खड़ी, हरिद्वार के तत्वाबधान में श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज, अध्यक्ष १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन, निर्धन निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार का हीरक जयन्ती वर्ष मनाया जा रहा है। इस हीरक जयन्ती वर्ष में उनके अभिनन्दन स्वरूप ''ऋषिदर्शनम्'' नाम अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

मुझे विश्वास है कि प्रस्तावित ग्रन्थ में ऋषि परम्परा से सम्बन्धित ऋषियों की समाज को देन सम्बन्धी सामग्री प्रकाशित कर आपकी संस्था इसे एक संग्रहणीय ग्रन्थ बना देगी। अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं। ऋषिवर केशवानन्द महाराज को मेरा शत्-शत् प्रणाम।

- लाल कृष्ण आडवाणी

डॉ० सतीश कुमारी
प्राचार्या
ऋषि संस्कृत महाविद्यालय
खड़खड़ी, हरिद्वार

❁ श्री स्वामिकार्तिकेभ्यो नमः ❁

तपोनिधि श्री निरंजनी अखाड़ा पंचायती

मायापुर, हरिद्वार

शुभ-कामना

निर्धन निकेतन के महाराज ऋषि केशवानन्द जी को मैं बहुत समय से जानता हूँ, इनके सम्मेलनों में मुझे अनेक बार आने का मौका मिला है। ऋषि जी एक शिक्षाविद् समाज सुधारक हैं। इनकी अनेक शिक्षण संस्थाएँ हैं जिन में छात्रों को संस्कारित शिक्षा दी जाती है। आवास दिया जाता है। अन्न सत्र चलता है जिसमें छात्रों, निर्धनों, ब्राह्मणों की सेवा होती है। ऋषि धर्मार्थ चिकित्सालय से रोगियों की सहायता होती है। इस तरह ऋषि जी ने अपना सारा जीवन परोपकार के समाजोपयोगी कार्यो में लगाया हुआ है। ऋषि केशवानन्द जी जैसे सच्चे कर्मयोगी का अभिनन्दन अति प्रशंसनीय कार्य है।

सम्पादकों और प्रकाशकों को मेरी हार्दिक शुभकामना है और भगवान से प्रार्थना है कि ऋषि जी को स्वास्थ्य एवं दीर्घायु प्रदान करें जिससे समाज का पथ-प्रशस्त होता रहे।

- महन्त शंकर भारती

सेक्रेटरी

श्री कपिलो विजयतेतराम्

श्री पंचायती अखाड़ा महानिर्वाणी

कनखल, हरिद्वार

वैदिक सनातन भारतीय सांस्कृतिक संस्थान

शुभकामनाएँ

श्रीमान् १०८ श्री स्वामी ऋषि केशवानन्द जी महाराज की आयु के ७५ वर्ष पूरे हो रहे हैं। उनकी जयन्ती बड़े धूमधाम से मनायी जा रही है। आप बड़े विद्वान् सन्त हैं और समाजसेवी हैं, इन्होंने बड़े कठोर मेहनत से निर्धन निकेतन आश्रम बनाया है और संस्कृत पाठशाला गोशाला आदि चल रही हैं। मेरी शुभ कामना है ऐसे सन्त समाजोपयोगी कार्य करते हुए राष्ट्र का उत्थान करते रहें।

शेष इति सिद्धम्।

–महन्त वासुदेवगिरि लालबाबा

।। श्री हरिः ।।

। श्रीज्योतिरीश्वरोविजयते।

अनन्त श्री विभूषित

जगद्गुरू शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर

स्वामी श्रीमाधवाश्रम जी महाराज

बदरिकाश्रम, हिमालय

७, शंकराचार्य मार्ग, सिविल लाईन, दिल्ली-५४

दूरभाष : २६१४५७६

मंगलकामना

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।

इस परिवर्तनशील संसार में उसी मनुष्य का जन्म सार्थक है, जिसके जन्म लेने से देश जाति और समाज का अभ्युदय होता है, कुल पवित्र होता है। जननी कृतार्थ होती है, वसुन्धरा पुण्यवती कहलाती है। धन्य हैं वे महापुरूष जो अपने समुज्ज्वल व्यक्तित्व एवं अलौकिक कृतित्त्व के दिव्यालोक से दिग्भ्रान्त संसार को आलोकित करते हैं।

ऐसे महापुरुष हैं हमारे ऋषिराज श्री केशवानन्द जी, जिन्होंने ऋषि संस्कृत महाविद्यालय के क्रियाकलापों द्वारा भारतीय संस्कृति का गौरव बढ़ाया है, लक्षचण्डी जैसे महायज्ञों के अनुष्ठानों द्वारा जनता में भारतीय धार्मिक भावनाओं को प्रोत्साहित किया है, धर्म का प्रचार-प्रसार सर्वत्र किया है, उनका व्यक्तित्त्व भारतीय संस्कृति से प्रभावित है, वे निर्भीक कार्यकर्ता एवं मानवता के पुजारी हैं, उनका अभिनन्दन बड़ा स्तुत्य कार्य है, इसके लिये मेरी शुभकामनायें हैं।

- स्वामी माधवाश्रम

अध्यक्ष/सचिव ।।सर्वभूतहितेरताः।।

श्री शुकदेव आश्रम सेवा समिति

संस्थापक/संरक्षक : अनन्त श्री विभूषित, वीतराग परम पूज्य
श्री स्वामी कल्याण देव जी महाराज
शुक्रताल, मुजफ्फरनगर, उ०प्र०
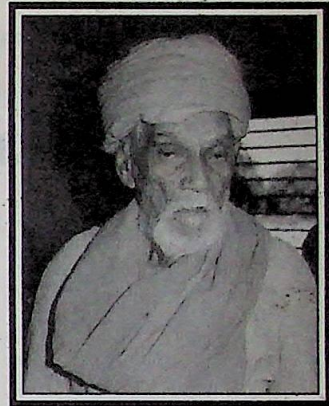
शुभ-कामना

यह जानकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई कि ऋषि केशवानन्द जी के अमृत-महोत्सव के उपलक्ष्य में 'ऋषिदर्शनम्' नामक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है।

निर्धन निकेतन आश्रम प्राचीन ऋषि मुनियों की सात्विक-कार्य पद्धति का स्मरण दिलाता है जब हम निर्धन निकेतन में आयोजित लक्षचण्डी जैसे महायज्ञों में उच्चारित "स्वाहा-स्वाहा" की मधुर ध्वनि से संवलित, होमधूम की लहराती लटों को देखते हैं। चोटी-धोती धारण किए हुए बटुकों को सस्वर वेदपाठ करते सुनते हैं। पंखे-कूलरों से युक्त स्वच्छगोष्ठ में प्रसन्नचित बैठी गोमाताओं को निहारते हैं। भिक्षान्न प्राप्त कर रही सन्तमण्डलियों को आते जाते देखते हैं। निर्धन निकेतन के द्वार पर गरीबों, फकीरों में बटते हुए अन्न-धन को देखते हैं। धन्य हैं यह सर्वभूतहितेरता महापुरुष ऋषि केशवानन्द ! निश्चय ही यह आज के युग के महर्षि हैं। इनका अभिनन्दन ऋषि-परम्परा का अभिनन्दन है।

\- कल्याणदेव

"वसुधैव कुटुम्बकम्"

INTERNATIONAL ASSOCIATION OF SANSKRIT STUDIES

Prof. Ramkaran Sharma
President
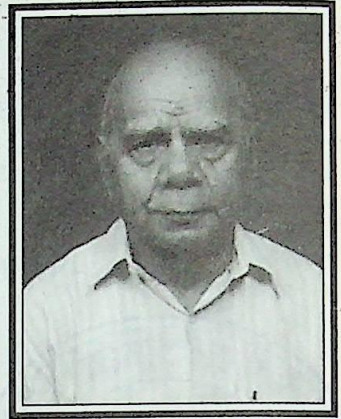
अभिवादन

यह बड़े हर्ष का विषय है कि निर्धन निकेतन के तत्त्वावधान में परमपूज्य श्री १००८ केशवानन्द जी महाराज (ऋषि जी) की हीरक जयन्ती मनाई जा रही है।

स्वयं ऋग्वेद प्राचीन एवं नवीन दोनों प्रकार के ऋषियों का सादर स्मरण करता है "अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैहत"। श्री केशवानन्द जी महाराज जैसे तपःपूत कर्मयोगी ऋषि की अर्चना वस्तुतः भारतीय ऋषिपरम्परा की अर्चना है।

इस हीरक जयन्ती के माध्यम से हम उसी दिव्य ऋषिपरम्परा की वन्दना कर रहे हैं जिसके प्रताप से हम आज भी "उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान् निबोधत" की अमर प्रेरणा से समग्र विश्व में नई आध्यात्मिक स्फूर्ति का सन्देश प्रसारित कर रहे हैं।

इस अवसर पर श्री १००८ केशवानन्द जी महाराज (ऋषि जी) के चरणों में अपना विनम्र अभिवादन सादर अर्पित करता हूँ।

- रामकरण शर्मा

प्रो० वि० वेङ्कटाचलम्
पूर्व कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी,

शुभकामनाएँ

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति पद के दायित्व को निभाते हुए मुझे विश्वविद्यालय से सम्बन्धित सहस्राधिक विद्यालयों/महाविद्यालयों का सामान्य परिचय प्राप्त हुआ। एक ओर विविध-विचित्र-समस्याओं से ग्रसित कतिपय विद्यालयों में व्याप्त दुर्व्यवस्था की कहानियाँ सुनने को मिली, दूसरी ओर सुव्यवस्थित, सुसंचालित संस्थाओं की गणना भी मेरे समक्ष हुई। ऋषि संस्कृत महाविद्यालय सुव्यवस्थित संस्थाओं की गणना में एक है जो आदरणीय श्री केशवानन्द जी महाराज के मार्गदर्शन एवं उन्हीं के द्वारा सम्पादित वित्तीय संसाधनों से संचालित है। इस संस्था में अखिल भारतीय स्तर तक के समायोजित विविध कार्यक्रमों में उपस्थित होने का मुझे अनेक बार अवसर प्राप्त हुआ और इस महाविद्यालय की व्यवस्था और कार्यशैली को देख मुझे संतोष का अनुभव हुआ। आश्वलायन गृह्यसूत्र की घोषणा है कि -

अक्षारालवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ अनलंकुर्वाणौ अधःशायिनौ स्याताम्।
अत ऊर्ध्वं त्रिरातं द्वादशरात्रम्। संवत्सरं वा एके ऋषिर्जायत इति।।
-आश्वलायन गृह्यसूत्र (१:८;१०-१२)

इस प्रकार सूत्रकार ने समाज में ऋषियों के निष्पादन का स्पष्ट उपाय बताया है। ऋषि संस्कृत महाविद्यालय के छात्रों की सदाचारी जीवन-शैली, ब्रह्ममुहूर्त से रात्रिपर्यन्त सुसंगठित दिनचर्या एवं अनुशासित व्यवहार को देखने से जान पड़ता है कि इस संस्था के प्रवर्तक अधिष्ठाता ऋषि केशवानन्द जी का भी कुछ ऐसा ही उद्‌देश्य रहा होगा कि यहाँ के छात्र अपने मर्यादित संयत जीवन से ऋषि-तुल्य बन जायें। ऐसी शिवदृष्टि को लेकर लोकहित करने वाले ऋषि केशवानन्द जी महाराज निश्चित ही अभिनन्दनीय हैं।

आपकी 'हीरक जयन्ती' के उपलक्ष्य में आपको समर्पित होने वाले अभिनन्दन-ग्रन्थ "ऋषिदर्शनम्" के लिए मेरी हार्दिक शुभ-कामनाएं हैं।

- वि. वेंकटाचलम्

स्वामी चिन्मयानन्द
पूर्व संसद सदस्य
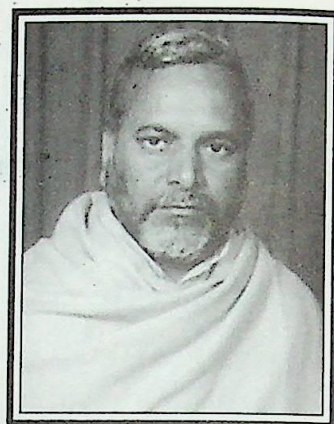
शुभकामनाएँ

आदरणीया सतीश जी,

आपका पत्र मिला। आप ऋषि जी के ७५ वर्ष पूरे होने पर एक ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रही हैं। यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। निर्धन निकेतन जैसी संस्था के संस्थापक के नाते तो वे सर्वविदित हैं ही, अपने प्रभावपूर्ण त्याग, तपस्या, संयम और सादगी के लिये भी अपने में एक अद्वितीय व्यक्ति हैं। समाज और देश के लिये इतना कुछ करते हुए भी उनके अपने जीवन की आध्यात्मिक साधना यथावत रही। प्रपंच में रहकर उससे विरक्त रहना उनकी अपनी विलक्षणता है। मैं उनके अनासक्त जीवन का साक्षी हूँ, मैं जानता हूँ कि उनके मन में अधिकार, अहंकार और अभिमान का कहीं कोई लेश नहीं है। समाज में शिक्षा की आवश्यकता और महत्व को उन्होंने महसूस किया और अपने जीवन में उसकी समृद्धि के लिये प्रयत्नशील रहे। मैं उनके शतायु होने के साथ-साथ उनके स्वास्थ्य और यश की ईश्वर से कामना करता हूँ।

\- चिन्मयानंद

डॉ० सतीश कुमारी
प्राचार्या
ऋषि संस्कृत महाविद्यालय
खड़खड़ी, हरिद्वार

डा. रामकृष्ण शर्मा
पूर्व-शिक्षा सलाहकार (संस्कृत)
मानव संसाधन विकास मन्त्रालय
भारत सरकार
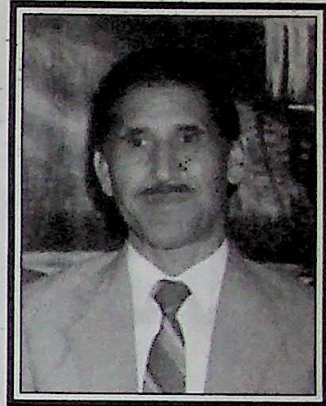
शुभकामनाएँ

आदरणीया प्राचार्या !

पूज्य ऋषिकेशवानन्द जी महाराज की पञ्चसप्तति सम्वत्सरपूर्ति के अवसर पर आपके सम्पादकत्व में ऋषि-अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ऋषि जी के साथ अपने चिर सम्पर्क के अन्तराल में, मैं भी चिंतन करता रहा कि इनके आचरण में ऋषित्व का कितना अंश है? मैंने पाया कि सत्संग, सत्यान्वेषण, क्रान्तिदर्शिता एवं करुणा के क्षेत्र में ये बहुत आगे बढ़ चुके हैं। वस्तुतः ऋषि परम्परा की रक्षा से ही भारत, यथार्थ भारत बना रह सकता है। साथ ही प्रवर्तमान परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में भी ऋषित्व की व्याख्या होनी चाहिए। हरिद्वार (गंगाद्वार) से ही यदि यह ज्ञानयज्ञ आरम्भ हो, तो यह देश प्रकाशपूर्ण हो जाए। आशा है कि ऐसा ही होगा।

इस बात पर भी मुझे विस्मयान्वित आनन्द हो रहा है कि मेरी संङ्कल्पित विषय वस्तु ''ऋषिदर्शनम्'' को ही आपने ग्रन्थ नाम चुना। मैं तो इस पर बहुत लिख चुका हूं। कुछ अंश सन्दर्भानुकूल बना कर इस पत्र के साथ संलग्न कर रहा हूं।

आपका यह कार्य कल्याणकर एवं यशस्कर सिद्ध हो तथा ऋषिचरण चिरकाल तक लोकहित साधना करते रहें - यही मेरी मङ्गलाकांक्षा है।

- रामकृष्ण शर्मा

डॉ० सतीश कुमारी
सम्पादिका ''ऋषिदर्शनम्''
निर्धन निकेतन
हरिद्वार।

卐 श्री श्रीचन्द्रो विजयतेतराम् 卐

श्री पंचायती अखाड़ा बड़ा उदासीन निर्वाण

महन्त गोविन्ददास

महामंत्री : अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद्

राजघाट, कनखल, हरिद्वार (उ०प्र०)

शुभकामना
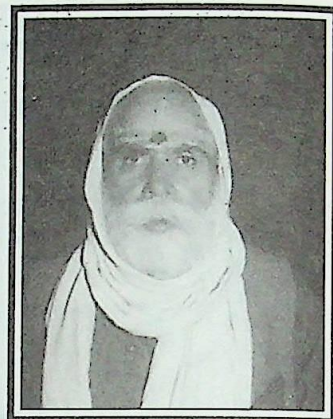
"त्र्यायुषं जमदग्नेः"

निर्धन निकेतन हरिद्वार के संस्थापक श्री ऋषि केशवानन्द जी महाराज को अभिनन्दित किये जाने का समाचार हमारे लिये परम हर्ष देने वाला है। संस्कृत भाषा और भारतीय धर्म संस्कृति की सेवा करने वाले ऋषि केशवानन्द अभिनन्दन के सर्वथा सुयोग्य पात्र हैं। साधु समाज के प्रत्येक कार्यक्रम तथा आश्रम के प्रत्येक आयोजन में वह सहज और निरभिमानी भाव से उपस्थित रहते हैं। बड़ी निष्ठा के साथ उन्होंने अपने आश्रम में होमात्मक सहस्र-चण्डी तथा लक्षचण्डी के अनुष्ठान सम्पन्न कर अपनी देव आराधना का प्रकाशन लोकहित में किया है। श्री सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति श्री पंडित करुणापति त्रिपाठी के सम्मान में ऋषि जी ने आश्रम में भव्य कार्यक्रम आयोजित किया था। तब मैं श्री महन्त गोपालदास जी के साथ उसमें सम्मिलित हुआ था। यह पहला अवसर उनसे भेंट करने का था। फिर तो प्रायः हर वर्ष उनके आयोजन में सम्मिलित होने का अवसर मिलता रहा। मैं उनकी साधुसेवाओं से प्रभावित हूं तथा उनके समाजहित में किये जाने वाले कार्यों का प्रशंसक हूं।

ऋषि जी कोरे ज्ञानवादी, कर्मवादी या उपासनावादी नहीं है। उनके जीवन में इन तीनों का समन्वय देखा जा सकता है। निरभिमानता, विनम्रता, आस्था, कर्मनिष्ठा, लोकोपकारिता तथा त्याग की भावना साधु को ऊँचा उठाती है। आज ग्रंथ-पण्डितों की तो धूम हैं, पर ऐसे व्यक्ति मिलने दुर्लभ हो गये हैं जिन्होंने इन गुणों को पाण्डित्य के साथ अपने जीवन में भी ढालने की चेष्टा की हो।

ऋषि केशवानन्द जी के शिष्य अपने गुरुदेव में इन विशेषताओं को मूर्तरूप में देखते हैं और उनकी पूजा करते हैं। जो अपने चक्षुओं से कल्याणकारी दृश्य देखता है, देव विग्रहों तथा साधु सन्तों का मंगलमय दर्शन करता है, और जो स्वाध्याय, सेवा तथा सत्कर्म द्वारा अपना तथा लोक का उपकार करता है, वह जमदग्नि की त्रिगुणित आयु प्राप्त करता है। यजुर्वेद में कहा गया है 'त्र्यायुषं जमदग्नेः'। ऋषि जी को जमदग्नि ऋषि की मंगलकारिणी आयु, सशक्त ऊर्जा तथा ब्रह्म तेज प्राप्त हो।

यह मेरी शुभकामना है।

– महन्त गोविन्द दास

श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा

कनखल, हरिद्वार, फोन : ७८२२

SHRI NIRMAL PANCHAITI AKHARA

P.O. :- KANKHAL DISTT. HARDWAR (U.P.)

शुभकामनाएँ

यह हार्दिक प्रसन्नता का विषय है कि उत्तराखण्ड की उपत्यका के सर्वोत्तम तीर्थ हरिद्वार में सुरसरि पतितपावनी भगवती भागीरथी के मनोहर तट पर अवस्थित श्री निर्धन निकेतन आश्रम अपने संस्थापक श्रद्धेय श्री १०८ ऋषि केशवानन्द महाराज जी की हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहा है।

तपस्वी सन्तसमाज में ऋषि जी महाराज का अपना एक विशिष्ट एवं अद्वितीय स्थान है। आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में इनकी सर्वोत्कृष्ट प्रतिष्ठा है। आपके द्वारा संस्थापित यह संस्था तपस्या का केन्द्र है। ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, जूनियर हायर सेकेण्ड्री स्कूल एवं बालशिक्षा केन्द्र के माध्यम से आप संस्कृत संस्कृति का प्रचार प्रसार कर रहे हैं। गोसेवा द्वारा प्राचीन आश्रमपद्धति का निर्वहन हो रहा है। भव्य दुर्गामंदिर आपकी शक्ति उपासना का द्योतक है, जिसमें लक्षचण्डी का आयोजन किया जाता है। कर्मकाण्ड के क्षेत्र में आप की असीम आस्था है। प्रतिवर्ष आप गुरूपूर्णिमा के अवसर पर **एक विद्वान और एक सन्त का सम्मान करते हैं, यह विद्वत्समाज और सन्त समाज में** आपकी मनीषी भावना लक्षित होती है। आपकी संस्कृतशिक्षण संस्था हरिद्वार की आदर्श संस्था है, जिसमें विशाल भवन, निःशुल्क छात्रावास की सुव्यवस्था है नारी शिक्षा का भी यह अद्वितीय उदाहरण है। आपकी सुयोग्य शिष्या सुश्री सतीश गुलाटी जी ऋषि सं०म०वि० की प्राचार्या पद को अलंकृत कर संस्कृतजगत की बेमिसाल सेवा कर रही हैं। अभिनन्दन ग्रन्थ के सम्पादनार्थ इनको कोटिशः साधुवाद।

'कामये दुःखतप्तानाम्' का अनुपालन करते हुए आपने आयुर्वेदिक एवं होम्योपैथिक चिकित्सालय खोले। आपकी वैष्णव देवी पदयात्राा अनुकरणीय है। मनोहर वाटिका प्रकृति प्रेम तथा स्वनिर्मित गंगाघाट आपके भागीरथीप्रेम का प्रतीक है। परोपकार, बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में आपका जीवन प्रेरणाप्रद है।

मैं आपकी दीर्घायु की कामना करता हूँ।

- महन्त स्वामी ज्ञानदेवसिंह

डॉ० मण्डन मिश्र
पूर्व-कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी - २२१००२
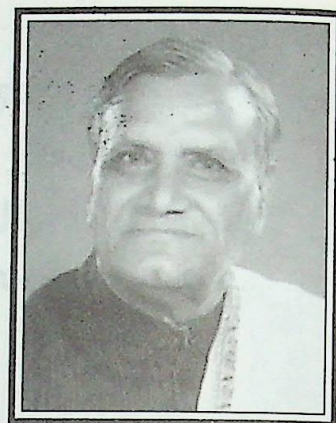
शुभकामनाएँ

परम श्रद्धेय स्वामी केशवानन्द जी महाराज विश्व में ब्रह्मऋषि के रूप में सुविख्यात हैं। उनका जीवन त्याग, तपस्या और साधना की अद्‌भुत त्रिवेणी है जिनके दर्शन मात्र से मानव कृतकृत्य हो जाता है। हरिद्वार इस देश का महान् तीर्थस्थल है व आश्रम तथा महात्माओं की प्रसिद्ध नगरी है जहां प्रतिदिन असंख्य व्यक्ति आकर भक्ति और साधना की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। यहां का एक-एक महात्मा परम् पिता परमात्मा के मूर्तिमान प्रतिनिधि के रूप में दर्शनीय है और उसी आकांक्षा से भक्तजन आकर उनके चरणों में श्रद्धा और भक्ति निवेदित करते हैं।

इस प्रकार के महनीय आचार्यों में ऋषि जी के रूप में विख्यात पूज्यपाद स्वामी केशवानन्द महाराज एक शिखर पुरुष के रूप में विराजमान हैं। उनका निर्धन निकेतन आश्रम सारे देश के निराश्रित लोगों का सहारा है जो सबके लिए खुला है और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्थान, भोजन और उनकी कृपा का प्रसाद प्राप्त कर सकता है। आश्रम में प्रारम्भ से लेकर आचार्य तक के अध्यापन की दोनों विधियों की निःशुल्क व्यवस्था है। एक ओर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के रूप में छोटे-छोटे लड़कों को आधुनिक शिक्षा देने का प्रबन्ध है तो दूसरी ओर उन्हीं के द्वारा स्थापित ऋषि संस्कृत महाविद्यालय में गम्भीर शास्त्रों के अध्यापन का उत्तम प्रबन्ध है। छात्रों को अध्ययन के साथ-साथ निवास, भोजन, पुस्तकें आश्रम की ओर से दी जाती है। इन सब उपक्रमों के पीछे पूज्यपाद स्वामी केशवानन्द के तपोबल का सम्बल है। सारे संसार में उनके शिष्य बिखरे हैं। इस देश के साथ-साथ विदेश यात्राओं के माध्यम से भी महाराज श्री ने सनातन धर्म के केन्द्रों को सुस्थापित किया है। भगवती जगदम्बा, परमपावन भागीरथी और शारदा माता के वरद पुत्र हैं। वे दुर्गा सप्तशती के महान् साधक हैं एवं भगवती दुर्गा उनको सिद्ध है लेकिन वे इस सिद्धि का प्रयोग किसी व्यक्तिगत तृष्णा के लिए नहीं अपितु परोपकार के लिए करते हैं। उन्होंने अनेकों बार चारों धामों की यात्राएं की हैं। अपने स्वास्थ्य और आयु की चिन्ता किए बिना वे भक्ति के सहारे चाहे जब मानसरोवर, बदरीनाथ, केदारनाथ की यात्राओं पर निकल पड़ते हैं। इनके पीछे सैकड़ों भक्तगण चलते हैं। उनके दिव्य व्यक्तित्व में हम इस राष्ट्र के मुनियों और आचार्यों की दीप्तिमान् प्रतिकृति देखते हैं और स्वभाव में विद्यमान सरलता, सज्जनता और सौम्यता के कारण सर्वजन सुलभ ऐसे महान् आचार्य के चरणों में मैं शत-शत वन्दन अर्पित करता हूँ।

- डॉ० मण्डन मिश्र

डॉ० धर्मपाल
कुलपति
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

शुभसन्देशः

अनन्तश्रीविभूषितानां, विद्वज्जनाह्लादाभिवर्धकानां, मानवमूल्यमणिमालामण्डितकण्ठानां, वेदानुकूल- धर्मप्रचारावरोधक -सन्देह - तिमिर - वारणमिहिराणां, भारतीय सांस्कृतिक विचाराभाव प्रोद्भूता- नैककष्टापन्नप्रपन्नार्तिच्छिदां, बालिकाशिक्षामभ्युन्नेतुं संस्थापित विद्यालयानां, स्नातकोत्तर ऋषि संस्कृत महाविद्यालय संस्थापकानां, शास्त्राविध्यनुसारमसकृद्-विवर्धितयज्ञानुष्ठानानां, संस्कृतजगत् सालोकं कर्तुमहर्निशं प्रयतमानानां, सततं शरणागतसदाचारासज्जसज्जनाशापूरकाणां, संस्कृतसम्मेलनादिशुभकर्म- निष्पादनप्रदत्तानेकसाधनानां, दिवस्पुत्राणां, सकलभूसुराधिपानां, यशोधनानांधुरिकीर्तनीयानाम्, ऋषिपदवाच्यानां स्वनामधन्यानां, सभाजनीयानाम् ऋषिकेशवानन्दमहाभागानां सद्भिः सुमेधोभिः पुण्यवद्भिः सर्वजनामोदकरो विशिष्टोऽभिनन्दनग्रन्थः प्रकाश्यते श्रद्धयेतिविदित्वा परमं शंकरमशमनीयं प्रचेतसा निर्मलचेतसानुभवनीयममन्दमानन्दमनुभवन्नहं दिव्यविभूतीनां सुमतीनामृषि केशवानन्दानां त्रिलोकव्यापिनीं यशस्वितां मनस्वितां तेजस्वितां वाग्मितां च भूयो भूयः कामये।

- डॉ० धर्मपालः

डॉ० नेपाल सिंह
मंत्री
माध्यमिक शिक्षा एवं भाषा उ०प्र०
विधान भवन, लखनऊ

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि ऋषि संस्कृत महाविद्यालय के संस्थापक एवं अध्यक्ष श्री ऋषि जी के जन्मदिवस के शुभ अवसर पर "ऋषि दर्शनम्" ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। मुझे विश्वास है, कि इस ग्रन्थ के अध्ययन से सामान्य जनता लाभान्वित होगी।

इस ग्रन्थ के सफल प्रकाशन के लिये मेरी शुभ कामनायें।

– डॉ० नेपाल सिंह

डॉ० रमेश पोखरियाल 'निशंक'
मंत्री
उत्तरांचल विकास विभाग
विधान भवन, लखनऊ
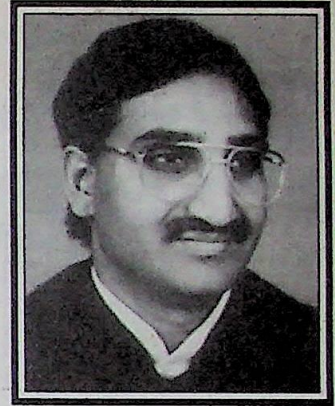
संदेश

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है कि श्री ऋषि जी महाराज के "हीरक जयन्ती महोत्सव" के अवसर पर "ऋषि दर्शनम्" नामक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है, जिसमें पूज्य ऋषि जी के जीवन मूल्यों का भी उल्लेख होगा।

भारतीय ऋषिपरम्परा में पूज्य ऋषि जी का भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्द्धन तथा संस्कृत उन्नयन में जो महत्वपूर्ण योगदान रहा है उसे विपरीत परिस्थितियों में भी भुलाया नहीं जा सकता है।

मुझे पूज्य ऋषि जी को निकटता से देखने एवं उनके सानिध्य का सुअवसर प्राप्त हुआ है और मैं यह कह सकता हूँ कि ऋषि जी ने समाज को एक नयी प्रेरणा दी है। मैं ऋषिदर्शनम् ग्रन्थ की सफलता की कामना करता हूँ।

- डॉ० रमेश पोखरियाल 'निशंक'

सुश्री सतीश जी,
प्रधानाचार्या
ऋषि संस्कृत महाविद्यालय
खड़खड़ी, हरिद्वार (उत्तर प्रदेश)

।।श्री गुरु संगत साहब जी सदा सहाय।।

श्री पंचायती अखाड़ा नया उदासीन

Shri Panchayati Akhara Naya Udaseen (KANKHAL, HARDWAR)

कनखल, हरिद्वार
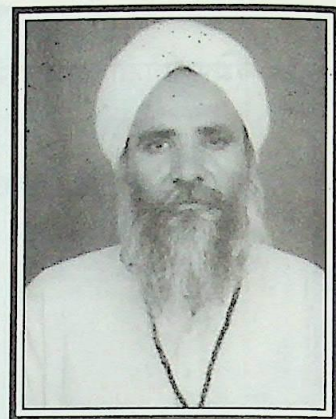
मंगलकामना

श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द जी महाराज, अध्यक्ष श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन, निर्धन निकेतन, खड़खड़ी-हरिद्वार की हीरक जयन्ती के शुभ अवसर पर जो अभिनन्दन रूप में 'ऋषिदर्शनम्' नामक ग्रन्थ प्रकाशित कर प्रस्तुत किया जा रहा है, वह वास्तव में एक अमूल्य निधि के रूप में सिद्ध होगा। इस ग्रन्थ में प्राचीन भारतीय ऋषिपरम्परा का जो विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है, वह भावी पीढ़ी का पथ-प्रदर्शन करेगा।

इन्हीं भावनाओं एवं अपनी समस्त मंगल कामनाओं के साथ।

-महन्त मनोहर दास
अध्यक्ष

श्री स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि जी महाराज
निवृत्त जगद्गुरू शंकराचार्य

समन्वय कुटीर

सप्तसरोवर, हरिद्वार
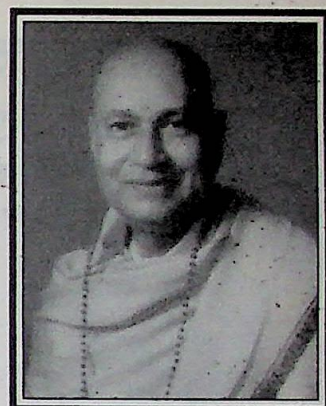
शुभ-कामना

आप श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज के कृतित्त्व एवं व्यक्तित्त्व पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

उनका हीरक जयंती वर्ष शतशः लोगों को आध्यात्मिक जीवन, पूजन पाठ और अनुष्ठान की प्रेरणा देगा। संस्कृत भाषा की सेवायें और विद्यादान के क्षेत्र में उनका अनुदान एवं सहयोग प्रशंसनीय है।

स्मारिका के सफल बोधदायी प्रकाशन के लिये मेरी शुभकामनायें प्रेषित हैं।

- स्वामी सत्यमित्रानन्द

श्री गुरुमण्डलाश्रम ट्रस्ट समिति

देवपुरा - हरिद्वार

परमाध्यक्ष : श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ

परमपूज्य महामण्डलेश्वर स्वामी श्री रामस्वरूप जी महाराज
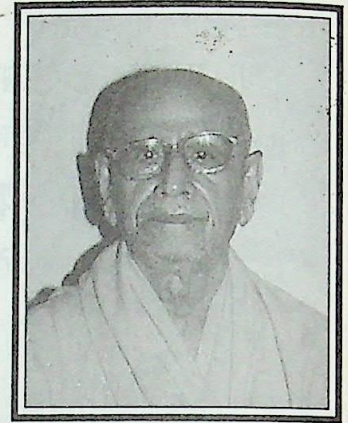
शुभकामना

"नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा रिक्तोऽसि यज्जलद सैव सर्वोत्तमा श्रीः"
पंचपुरी विद्यालय परम्परान्तर्गतमध्यमणिरिवभासमान-ऋषिसंस्कृतमहाविद्यालय संस्थापकानाम् अनेकलक्षचण्डीमहायज्ञानुष्ठानलब्धयायजूकपदानाम् ऋषिवर केशवानन्द महाभागानां हीरकोत्सवमभिलक्ष्य सवन्दनं कृतमभिनन्दनम्।

अयि विपश्चिदग्रेसराः अग्रजन्मकुलालंकारभूताः स्वजनुषाऽलंकृतपंचनदप्रान्ताः वाग्देवताकृपा कूपारा श्री केशवानन्द महाभागाः बाल्ये वयसि लब्धदीक्षा निखिलोपस्थितविघ्न परम्पराभिः सहसंघर्षे मातनन्वाना भवन्तो-वीर पुरुषाभिनन्दानार्हा इति कृत्वा पंचपुरीस्थ विद्वत् समाजमान्य साधुसमाजश्च अभिनन्दनं कुर्वन् परं प्रमोदमालभते।

शाणोल्लीढ़ हीरकं चाकचिक्य चमत्कृतं महदर्घतामेति तथा भवन्तोऽपि परमकारुणिक गुरुवर सात्विककोपानलदग्धाशेषकल्मषा विद्वच्चन्द्र चूड़ामणि कल्पतां भजन्ते।

गीर्भिर्गुरूणां परूषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्वम्।
अलब्ध शाणोत्कर्षणा नराणाम् न जातु मौलो मणयो वसन्ति।।

चारू चामीकर परीक्षणे विधीनां चातुर्विध्यम् तथैव सत् पुरूष परीक्षणेऽपि चातुर्विध्यम् श्रुत, शील, गुण, कर्म रूपेण तदेवं चातुर्विध्य क्रमनुतिष्ठद्भि र्भवद्भिरपि स एव क्रम अनुशीलितः इति न चित्रम्।

गुरुपरम्परा परिशीलन बद्धपरिकरैर्भवद्भिः साम्प्रतं साम्प्रतिकादर्श कर्त्तव्यानुष्ठानतत्परैः समाजस्य सर्वतोमुखी या सेवा सानुष्ठीयते तां दर्शं दर्शं मोमोत्ति विद्वज्जन मानस कल्हारः। संस्कृतेः संस्कृतस्य समुद्धरणोत्सुका भवन्तः भारते चिरंप्रकाशिताशा भवेयुरिति समेषां मनीषा।

विदुषामाश्रवः
स्वामी रामस्वरूपः

ओ३म्
'तमसो मा ज्योतिर्गमय'
म.मं. डॉ० स्वामी श्यामसुन्दर दास शास्त्री
एम.ए. सांख्ययोगवेदान्ताचार्य, साहित्यायुर्वेदाचार्य, बी.आई.एम.एस
श्री साधु गरीबदासीय सेवाश्रम, ट्रस्ट
मायापुर, हरिद्वार, फोन : ४२६३११

शुभकामनाएँ

उत्तराखण्ड के पावन प्रसिद्ध हरिद्वार तीर्थ में परमोदारात्मा श्री १०८ ऋषि केशवानन्द जी महाराज ने भीमगोड़ा तीर्थ के सान्निध्य में निर्धन निकेतन नाम से प्रख्यात समाजसेवी संस्था की शुभ स्थापना लगभग ३५ वर्ष पूर्व की थी। संस्था भारतीय धर्म, संस्कृति, अध्यात्मवाद, सदाचार का प्रचार-प्रसार देश विदेश में करती आ रही है। ऋषि जी के गुरूदेव योगीराज श्री वंशीधर जी महाराज विरकांवाले एक बड़े प्रसिद्ध, त्यागी, तपस्वी सिद्ध महापुरूष थे। जिनके दर्शन करने का सौभाग्य मुझे हमारी श्री गरीबदासी साधु समाज की प्रसिद्ध संस्था श्री जगदीश आश्रम खड़खड़ी हरद्वार में प्राप्त हुआ था। उस समय उक्त संस्था के संचालक महामण्डलेश्वर पं० शंभुदेव जी महाराज एवं स्वामी भूमानंद जी महाराज थे उनकी परस्पर की बड़ी आत्मीयता का परिचय मिला था, तथा कई चमत्कार भी महाराज श्री के देखने को मिले।

उक्त गुरुदेव के कृपाप्रसाद से ही ऋषि जी के जीवन में सफलतायें ही सफलतायें मिलती रही हैं। ऋषि जी की स्वयं की साधनाएं मातृशक्ति दुर्गा देवी जी की सतत् उपासना एवं अटल विश्वास तथा लोककल्याण की सद्भावना एवं नर-नारी के जीवनोत्थान में सक्रिय समर्पणभाव आदि अनेक गुण-गरिमायें माई-भाई, भक्त-जनों एवं अखाड़ों आश्रमों के संत महन्त, मण्डलेश्वरों तथा विद्वानों को भी प्रभावित करती आ रही हैं।

ऋषि जी ने जनता जनार्दन के सेवा के लिए जहां ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, आयुर्वेदिक चिकित्सालय, माध्यमिक विद्यालय, सरस्वती शिशु मन्दिर, गौशाला, यज्ञशाला आदि अनेक संस्थाओं की शुभ स्थापना की है, साथ ही ऋषि जी प्रतिवर्ष संस्कृत-सम्मेलन, वेद-सम्मेलन, नाटकमंचन, गुरूपूर्णिमा पर्व महोत्सव, सद्क्षिणा-भोजन-भण्डारा, यज्ञ आदि अनेक शुभकार्य बड़ी धूमधाम एवं विधिविधान से सम्पन्न करते रहते हैं।

आपने अनेक बार लक्षचण्डी महायज्ञ करायें। विदेशी यात्रायें की, तीर्थ यात्रायें, पद यात्रायें भी की। हरिद्वार प्रयाग आदि तीर्थों में कुम्भमेले के पावन अवसर पर सत्संग पंडाल अन्नक्षेत्र शिविर लगाकर तीर्थयात्रियों को धार्मिक आध्यात्मिक संस्कार दिए। मैं स्वयं भी आपके उक्त सभी कार्यक्रमों का साक्षी हूं। यथाशक्ति समय पर योगदान भी करता रहता हूं। महाराज श्री प्रतिवर्ष दो विद्वानों का विशेष सम्मान भी करते हैं जिस में मेरा भी विशेष सम्मान किया है और समय समय पर करते रहे हैं। प्रत्येक कार्यक्रम में हरिद्वार-पंजाब जहां कहीं भी हो मुझे व अन्य संतों को आमंत्रित कर सबका आदर सत्कार करते हैं। आप मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव इस परम्परा में पूर्ण निष्ठावान् है।

ऋषि जी की कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड तीनों में अगाध आस्था है। आप की सक्रिय जीवनचर्या से दूसरों को भी विशेष प्रेरणा मिलती है। महिलाजगत् के उत्थान विकास में भी, आपका बड़ा महत्वपूर्ण योगदान है। अन्त में मैं ऋषि जी के शिष्यमण्डल के लिए शुभ-कामना करता हूं कि वे तन-मन-धन से ऋषि जी के कार्यकलापों को आगे बढ़ायें और उनके आदेशों का श्रद्धा से पालन करें। इति शम्।

- स्वामी श्यामसुन्दर दास शास्त्री

ॐ

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ पदवाक्यप्रमाणपारावारीण
यतीन्द्रकुलतिलक श्रीकैलासपीठाधीश्वर, आचार्य, महामण्डलेश्वर
अनन्त श्री स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज
वेदान्ताचार्य, सर्वदर्शनाचार्य

श्री कैलास आश्रम

ऋषिकेश-२४९२०१ फोन : ०१३५-४३०५९८
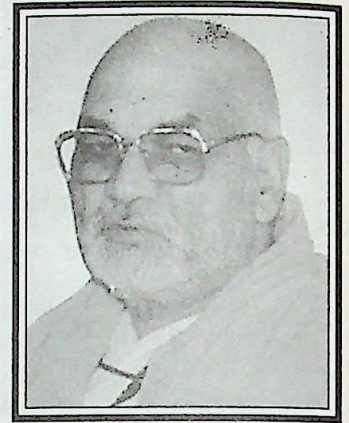
शुभकामनाएँ

डा० सतीश कुमारी जी,

"उभयत्रशन्तनोतु श्रीशंकरः।"

आपके पत्र से यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि ऋषि श्री केशवानन्द जी महाराज बालब्रह्मचारी मिशन, निर्धन निकेतन खड़खड़ी, हरिद्वार के अध्यक्ष का हीरक जयन्ती वर्ष इन दिनों चल रहा है। इस पावन प्रसंग पर अनेक कार्यक्रम सम्पादित किये जा रहे हैं, जिनमें उनका अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन अन्यतम कार्य है।

पंचपुरी हरिद्वार के सभी आबाल-बृद्ध सद्गृहस्थ, विद्यार्थी, संन्यासी एवं राजनीति के नेतागण, ऋषि श्री केशवानन्द जी से सुपरिचित हैं। इन्होंने आजीवन राष्ट्र, समाज, भारतीय संस्कृति के उत्थान हेतु अनेकों कार्य किये हैं। जिनमें प्रतिवर्ष किसी विद्वान का अभिनन्दन भी शामिल है। एक बार हमें भी इन्होंने ऋषि संस्कृत महाविद्यालय के विशिष्ट महोत्सव पर सम्मानित किया था। इनके पवित्र-अनुकरणीय-चरित्र, संस्कृत विद्या व्यसन तथा संस्कृतानुरागी के प्रति अत्यधिक स्नेह आदि सद्गुणों से भी विद्वान संत तथा पण्डित समुदाय परिचित हैं। ऐसे ऋषि तुल्य श्री केशवानन्द जी महाराज के हीरक-जयन्ती प्रसंग पर ब्रह्मविद्यापीठ कैलास आश्रम की ओर से भूरिशः मंगलकामना है। विश्वात्मा इन्हें दीर्घकाल तक स्वस्थ जीवन प्रदान कर समाज की सेवा कराते रहें। ऐसी हमारी मंगलकामना है।

- स्वामी विद्यानन्दगिरी

हरद्वार फोन : ०१३३-४२६१८६/४२२६०४

संस्थापक - म.मं. त्यागमूर्ति स्वामी गणेशानंन्दपुरी जी महाराज

सत् प्रेम साधना ट्रस्ट

प्रधान संस्थान :
साधना सदन
शंकराचार्य चौक,
कनखल, हरद्वार-२४६४०८
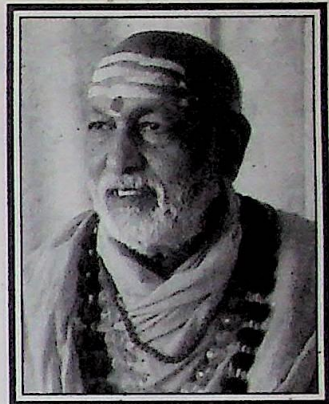
शुभाशंसा

एतद्विज्ञाय मे मनः अत्यन्तं मोदते यदृषिवर्याणां केशवानन्दमहाशयानां पञ्चसप्ततितमवर्षोपलक्ष्ये अर्थात् अमृतमहोत्सवशुभावसरे 'ऋषिदर्शनम्' नामकः अभिनन्दनग्रन्थः प्रकाश्यते।

ऋषिदर्शनम् अर्थात् ऋषिदृष्टिः, सा अन्तर्दृष्टिरस्ति, यया मानवजीवनस्य सर्वापि समस्याः, समेऽपि द्वन्दाः समाप्यन्ते मनुष्येण च पूर्णाभयशान्तिरवाप्यते।

जगन्नियन्तृप्रभुणा अनेन "ऋषिदर्शनम्" इत्यभिनन्दनग्रन्थमाध्यमेन अधिकारिमानवानाम्-अन्तर्दृष्टिप्राप्त्यर्थं योग्यता प्रदीयेतेति मे मनःकामना।

- स्वामी गणेशानन्दपुरी

प्राचीन अवधूत मण्डलाश्रम

अध्यक्ष - महामण्डलेश्वर स्वामी हंसप्रकाश जी महाराज
हरिद्वार
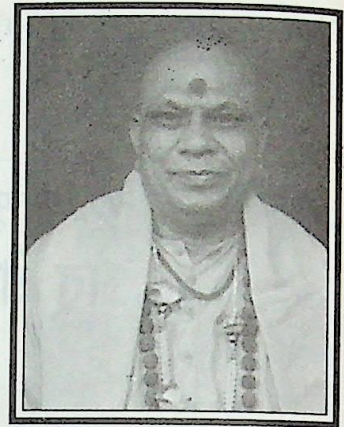
शुभ-कामना

भारतवर्ष की पावन एवं शौर्य शक्ति सम्पन्न धरा, पञ्चनद प्रदेश में आदिकाल से ही ऋषि मुनियों की परम्परा चली आ रही है। जहां की धरती सोना उगलती है, वहां ऋषि पाणिनी तथा दश गुरुओं का अवतरण हुआ जिन्होंने मानवता को समता का पाठ पढ़ाया। प्रथम गुरु नानकदेव जी के सुपुत्र श्रीचन्द्र जी महाराज ने देश भर में बिखरे उदासीन साधुओं को संगठित करके एक सांस्कृतिक आन्दोलन चलाया। इसी परम्परा में हमारे ऋषि केशवानन्द जी महाराज हैं जिन्होंने भीमगोड़ा के निकट निर्धन निकेतन नामक संस्था की स्थापना की।

निर्धनों की सहायता भगवान् स्वयं या सन्तों के माध्यम से करवाते हैं। तदनुसार ही ऋषि जी उपेक्षित वर्ग को सम्मान प्रदान कर रहे हैं। ऋषि जी पराम्बा जगज्जननी दुर्गा के उपासक हैं। उन्होंने संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की तो उसमें सुश्री सतीश जी को प्राचार्य पद पर प्रतिष्ठित कराकर नारी का सम्मान बढ़ाया है। यह उदाहरण के योग्य बात है। संस्कृत भाषा के प्रचार प्रसार में संलग्न विद्वानों का यथोचित सम्मान करना, मन्दिर निर्माण करना एवं सहस्त्र-चण्डी यज्ञ करना इनका स्वभाव सिद्ध गुण है। ऐसी विभूतियां सैकड़ों वर्षों के बाद इस धराधाम पर अवतरित होती हैं।

ऋषि जी के ''हीरक जयन्ती महोत्सव'' अवसर पर निर्धन निकेतन द्वारा ऋषि अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। मैं भगवान आशुतोष शंकर से प्रार्थना करता हूं कि हमारे ऋषि महाराज शतायु हों और देश-धर्म एवं संस्कृति की रक्षा करते हुए स्वस्थ तथा प्रसन्न रहें।

-स्वामी हंसप्रकाश

ॐ

श्री विद्यां मातरं वन्दे।। ।।मामनुस्मर युध्य च।। ।।विद्ययाऽमृतमश्नुते।।

परमपूज्य धर्मसम्राट श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य
श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ-जगद्गुरु पीठाधीश्वर अनन्त
श्रीविभूषित वरिष्ठ आचार्य महामण्डलेश्वर

स्वामी प्रकाशानन्द जी महाराज

श्री जगद्गुरु पारमार्थिक न्यास
श्री जगद्गुरू आश्रम, कनखल, हरिद्वार

शुभकामनाएँ

हिन्दू संस्कृति के आधार ऋषि केशवानन्द।

वेद अपौरुषेय है और बुद्धि-परिकल्पित कल्पना से रहित है। वेद प्रतिपादित धर्म-संस्कृति परम्परा ही मानव संस्कृति परम्परा है। इसी के आधार पर मानवता सुरक्षित बनी रही है और बनी रहेगी। इस से पृथक होना ही दानवता है। मानव संस्कृति परम्परा ही हिन्दू संस्कृति परम्परा है। हिन्दुत्व ही मानवता का पर्याय है। इसकी जो रक्षा करता है वही मानव शिरोमणि माना जाता है। हिन्दुत्व की रक्षा हिन्दू-संस्कृति के ग्रन्थों के पठन-पाठन करने-कराने से हो सकती है। हिन्दू संस्कृति के तत्वों के पोषण से हो सकती है।

हमारे परम स्नेही, परममित्र, निर्धन-निकेतन के संस्थापक ऋषिकेशवानन्द ने ऋषि संस्कृत महाविद्यालय के माध्यम से हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन को अक्षुण्ण कर रखा है। गीता, गायत्री के अनुष्ठानों से, शतचण्डी-सहस्त्रचण्डी-लक्षचण्डी जैसे महायज्ञों के आयोजनों से विविध देव मन्दिरों के निर्माणों से, गोष्ठों में गोसेवा के व्रतों से, तीर्थ यात्रियों से विशेष कर पैदल यात्राओं से, सन्तों, निर्धनों, ब्राह्मणों, अतिथियों के लिए प्रतिदिन चालू अन्न-सत्रों से हिन्दू-संस्कृति की रक्षा का बीड़ा उठा रखा है। सचमुच ये महामानव हैं।

ऋषि केशवानन्द जी उदार हृदय, निष्कपट महात्मा हैं। संस्कृत केन्द्रों का विकास, संस्कृत छात्रों का विकास, पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से वैदिक परम्परा का विकास-हिन्दू संस्कृति के प्रचार-प्रसार के विविध उपायों में जुड़े हुए ऋषि जी 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' सिद्धान्त के सशक्त प्रचारक हैं। अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन की शुभकामनाओं के साथ हिन्दू-संस्कृति के स्तम्भ ऋषि केशवानन्द जी के पूर्णस्वस्थ दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

-स्वामी प्रकाशानन्द

प्रो० वेदप्रकाशः शास्त्री
आचार्य उपकुलपतिश्च
गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालयः
हरिद्वारम्
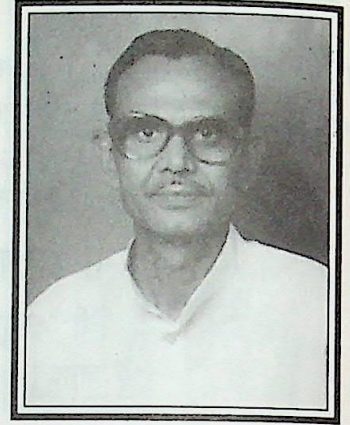
ऋष्यभिनन्दनस्रग्योज्यानि पुष्पाणि

येन नरोत्तमेन ऋषिपुङ्गवेन वेदमन्त्राणां निगूढ़ार्थोन्मेषकरणे ऋषिगणायितम्, येन सकलविद्वज्जनराजहंसमण्डलामोदप्रमोदाभिवर्धनाय मानससरोवरायितम्, येन शरणागतसमस्तभक्तजन त्रिविधतापवह्निज्वालाशमनाय पीयूषवर्षक-सघनघनजलधारायितम्, येन धर्मप्रचारार्पितजीवनेन धर्मप्रवृत्तानां सतां प्राकृतनाज्ञातादृष्टकर्मपाकवशात् प्रोद्भूतनैराश्यतिमिरं निराकर्त्तुं ज्ञानप्रदीपायितम्, येन विद्यावता विविधविद्याधिगमनायागतनिर्धनविप्रवटुगणस्येक्षया शिक्षया दीक्षया च निखिलविद्यावबोधने सारस्वतायितम्, येन निर्धनतपोवनसरोवर शोभमानतापसजनकमलविकासे दिवाकरायितम्, येन धर्मशून्यानां कुपथगामिनामपि जनानां मानससमुद्रं सद्विचाररश्मिभिर्धर्मं प्रत्युत्तरलयितुं पूर्णचन्द्रायितम्, येन शतचण्डी- सहस्रचण्डी-लक्षचण्ड्यादि-बृहद्यज्ञानुष्ठानं जगदीश्वरसृष्टियज्ञमिवाखण्डं निरुपद्रवं च विधातुं वसन्तेनेव आज्यायितम्, ग्रीष्मेणेव इध्मायितम्, शरदेव च हव्यायितम्, तस्यैवंविधस्य वन्दनीयपादारविन्दयुगलस्य अनन्तश्रीविभूषितस्य ऋषिकेशवानन्दस्याभिनन्दनक्रममभिवर्धयितुं सफलयितुं च प्रत्यहं कामये, यज्जनाः सर्वस्मिन् जगति ऋषिप्रवरस्य यशोगीतानि गायन्तु, तद् वागमृतरसं पिबन्तु, तत्सन्निधिमवाप्य सुखमनुभवन्तु, तत्तपोवारिणात्मदोषकलंकं प्रक्षालयन्तु, तद्हृदयसरलतां स्वीकुर्वन्तु, विष्वक्प्रसारिणीं तद्भद्रभावनां च भावयन्तु।

– प्रो० वेदप्रकाशः शास्त्री

ॐ

।। श्री जगद्गुरु श्रीचन्द्राचार्य-श्री सद्गुरुचरणकमलेभ्यो नमः।।

श्री स्वामी कृष्णानन्द गोविन्दानन्द भगवद्धाम आश्रम ट्रस्ट, हरिद्वार (रजि०)

संस्थापक : नित्यलीलालीन म०मं० श्रीमान् १०८ स्वामी कृष्णानन्द गोविन्दानन्द जी महाराज, न्यायवेदान्ताचार्य

अध्यक्ष : म०मं० डा० स्वामी विवेकानन्द जी महाराज, वेदान्ताचार्य, एम०ए०

तार : भगवद्धाम — दूरभाष : ०१३३-४२७७१७
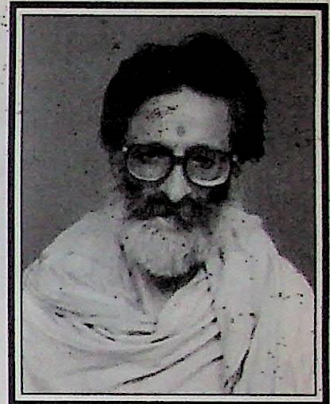
शुभकामनाएँ

सन्तो दिशन्ति चक्षूँषि, बहिरर्कः समुत्थितः।
देवताः बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च।।

श्रीमद्भागवत ११/२६/३४

जैसे सूर्य आकाश में उदित होकर संसार तथा स्वयं को देखने के लिये नेत्र प्रदान करता है वैसे ही सन्त पुरूष अपने स्वरूप तथा भगवान को पहचानने के लिये आन्तरिक दृष्टि प्रदान करते हैं। सन्त अनुग्रहशील देवता तथा सबके हितैषी तथा भगवान् की प्रियतम आत्मा हैं।

सन्तों का अवतार ही जनहित के लिये होता है। "सन्त न होते जगत में, जल मरता संसार" इत्यादि, इत्यादि। आधुनिक युग के ऐसे ही सन्तों में बालब्रह्मचारी मिशन के संस्थापक परमादरणीय ऋषि श्री केशवानन्द जी महाराज अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। करीब ३० वर्षों से पर्याप्त निकटता से सम्बन्ध चला आ रहा है। वे भगवती दुर्गा के परमभक्त, ओजस्वी, तपोमय, उदार, विद्वान, सरल, गम्भीर, धैर्यवान, मिलनसार इत्यादि अनेक गुणों से सम्पन्न, परोपकारी, प्रतिभाशाली सन्त हैं। शिक्षा, चिकित्सा व अध्यात्मजगत में आपके मार्गदर्शन में थोड़े ही समय में, संस्था समाजकल्याणकारी कार्य करते हुए पर्याप्त विकसित हुई है। अनेक गुमराह लोग आपसे मार्गदर्शन प्राप्त कर मानव जन्म के लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं।

आपके ७५वें जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में चल रहे हीरक जयन्ती वर्ष में संस्था के कार्यकर्ताओं तथा श्रद्धालु भक्तों द्वारा अभिनन्दन स्वरूप "ऋषिदर्शनम्" नामक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। यह जानकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इस शुभ अवसर पर आपके स्वस्थ, दीर्घायुष्य के लिये जगज्जननी भगवती भागीरथी से प्रार्थना करते हैं जिससे आपके द्वारा और अधिक समाजोत्थान के कार्य हो सकें।

- डा. स्वामी विवेकानन्द

आचार्य विश्वनाथ मिश्र
एम.ए., साहित्याचार्य
पूर्व-निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएं, उ०प्र०
चन्द्रलोक
लखनऊ-२२६०२०
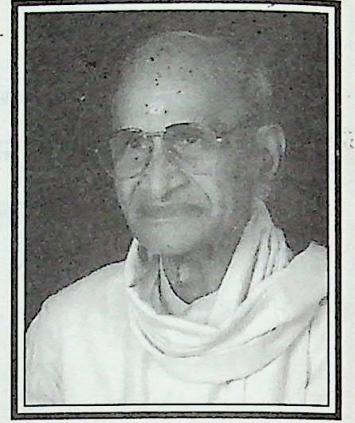
हीरकजयन्ती समवसरे

शुभाशंसनम्

ज्ञानी, ध्यानी वधानी मुनिजनमहितो
दिव्यदेहो विदेहो
धीरो वीरो गभीरो विविध यजनकृत
मातृभक्तो मनीषी।
त्यागी रागी विरागी श्रुतिपथ निरतो
सन्निधिः सद्गुणानां
शान्तो दान्तोऽथ कान्तो जयतु कुलपतिः
केशवानन्द देवः।।

- विश्वनाथ मिश्रः

पं० मनसाराम शर्मा
पूर्व-प्राचार्यः,
हरिद्वारस्थ श्री भगवानदास केन्द्रीयसंस्कृतमहाविद्यालयः
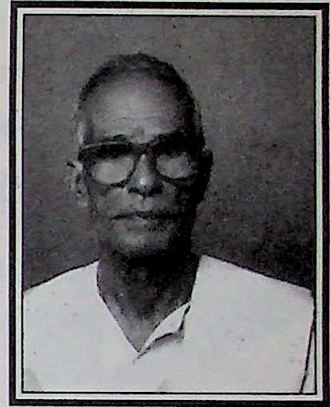
"कम्रं नम्रं शुभाभिशंसनम्"

इदन्तावत्कामं कामपि कमनीयां प्रमोदसन्ततिततिमावेदयते, यत् श्रीनिर्धननिकेतनाश्रमस्य प्रबन्धसमितिः, परमपूज्यानन्तश्रीविभूषितऋषिकेशवानन्द जी महाभागानामायुषोऽस्मिन्पादोनशततमे वत्सरे, यदीय कीर्तिलता कुसुमविस्तरणपरं परं कमपि 'किलाभिनन्दनग्रन्थं प्रथयितुं प्रयतमाना वर्धते।' महतां खलु मंगलमयनामस्मरणं, तदीयकृतिकीर्तिकीर्तनमनर्घगुणगणगणनञ्चानल्पाय श्रेयसे कल्पते। इदन्तावन्नाविदितचरं श्रुत्यन्तपारदृश्वानां विदुषां महानुभावानामिति।

धार्मिके, सांस्कृतिके, शैक्षिके सामाजिके च जगति बहुलविद्यालय, महाविद्यालय, यज्ञशालारोग्यशालागोशालादिनिर्मितविद्या तावदृषि जी महाराजानामवदातं किमपि यशोऽपरोक्षतया विराजते। यदुपजीव्य श्री महाराजानां यशोवर्णनेऽखिलैरपिजिज्ञासुभिर्निजा लेखनी प्रचारयितुं सुशक्या भवति। शक्यते च यदीय गुणगणवर्णनपुण्येन निजां वाणीं पवित्रयितुमिति। स्वभावोऽमीषामस्माभि र्निकटतोऽदृष्टोऽमी खलु परदुःखेन दूयन्ते, परोत्कर्षेण हृष्यन्ति च, महतां महीयसां महात्मनां विदुषाञ्च यथायोग्यं सत्कारे चैते मुक्तहस्ता भवन्ति। प्रत्यहं भिक्षादानेन साधूनामन्नवस्त्रावासशिक्षादानेन च पटूनां वटूनामनेकविधं साहाय्यं विदधति विद्वन्मानसहंसानामन्यत्रातिदुर्लभवृत्तानां वृत्तं साकल्येन को वा वर्णयितुं पारयति। उक्तञ्च-"वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणाञ्चेतांसि, कोऽनु विज्ञातुमर्हसि", यथा भाग्यं यथायोग्यमिमे सर्वोपकारकरणाय भवन्तो, भवन्ति कल्पतरुस्वभावाः।

किं बहुना वर्णितेनानन्वयेन एतावत्तु शक्यत एव वक्तुं यत् **"त्वमिव हि भवान् त्वं विजयसे"** इति पर्वसु व्रतेषु तीर्थेषु यज्ञाद्यनुष्ठानेष्वेतेऽनिद्रितमतयो दृश्यन्ते। यज्ञ दान तपांसि मनुष्याणं पावनानि निश्छिद्रमनुष्ठीयते चाश्रमपरिसरे प्रार्थये भगवती जगदम्बा दुर्गा, भवतां चिरायुष्यानेक विधश्वर्ययशोवर्धनाय कल्पतां यथा चेतोऽप्यधिकानि लक्षचण्ड्याद्यनुष्ठानान्यनुष्ठापितानि स्यु र्येनायमाश्रमचन्द्रः सर्वतस्तमोनिरासाय प्रभवेदिति, अनेन गुणवैभवं समाप्तमिति नापितु मम बुद्धिवैभवं समाप्तमिति विरम्यते।

– **मनसाराम शर्मा**

श्री दत्तात्रयो विजयते

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ जूनापीठाधीश्वर

अनन्तश्रीविभूषित श्री आचार्य

म.मं. स्वामी अवधेशानन्द गिरि

संस्थापकाध्यक्ष : **प्रभु प्रेमी संघ चैरिटेबल ट्रस्ट**

श्री हरिहर आश्रम, कनखल, हरिद्वार
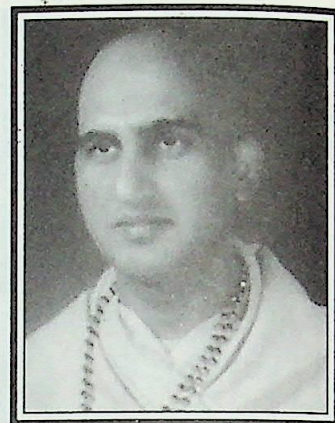
शुभ-संदेश

मानव जीवन उसी का धन्य है, जिसकी अपनी कोई मांग नहीं, बल्कि वह सबकी मांग बन गया हो, और सदा दूसरों के सुख के लिये उत्सुक रहता हो।

ऐसे प्रेरक एवं आदर्श व्यक्तित्व के धनी श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द जी महाराज के हीरक जयन्ती वर्ष में उनका अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, यह जानकर मन अति प्रसन्न है। इस सत्कार्य में लगे प्रबन्धतन्त्र को हमारी अनेक शुभकामनाएँ।

- स्वामी अवधेशानन्द गिरि

निर्मल सन्तपुरा

कनखल, हरिद्वार

महामण्डलेश्वर श्री रघुवीर सिंह शास्त्री

वेदान्त शास्त्री
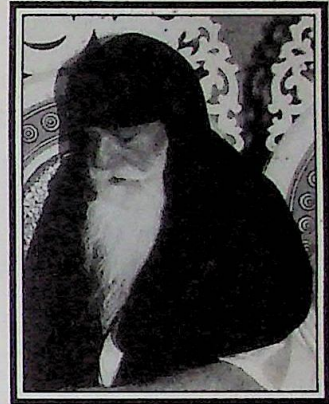
शुभ-कामना

आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति।।
परोपकारः कर्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि।
परोपकारजं पुण्यं न स्यात्क्रतुशतैरपि।।

अपने लिये कोई जीआ तो क्या जीआ, दूसरों के लिये जीने को जीना कहते हैं। ऋषि केशवानन्द महाराज धन्य हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन परोपकार में लगा दिया। ऋषि जी ने अपने आश्रम निर्धन-निकेतन में कितने ही विद्या-केन्द्र चलाकर, धर्मार्थ चिकित्सालय खोलकर, गरीबों-सन्तों अतिथियों के लिए लंगर लगाकर लक्षचण्डी जैसे महायज्ञ रचाकर और विद्वानों की सभाओं के आयोजन कर शिक्षित-अशिक्षित समाज का कल्याण कर दिया। इन की करनी को शब्दों में बाँधा नहीं जा सकता है। आप तो केशवरूप भगवान् है। भगवान् की उपमा कौन कर सकता है। कहा है-

"तेरी उपमा तोहि बन आये।"

ऐसी परोपकारी परम-सत्ता को मेरा कोटिशः नमस्कार।

ऐसे महात्मा का अभिनन्दन करना, उन्हीं के गुणों का गान करना अपना जीवन सफल बनाना है। ऐसे शुभ-कार्य की सफलता हेतु शुभ-कामना करता हूँ।

- संत रघुवीर सिंह शास्त्री

आराधना शुक्ला
आई.ए.एस.
जिलाधिकारी
हरिद्वार (उ०प्र०)
☎ (का.) ४४०४४०

सन्देश

अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि महर्षि श्री केशवानन्द जी महाराज की हीरक जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में ऋषि दर्शनम् ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है।

मैं संस्था द्वारा आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों की सफलता की कामना करती हूँ।

– आराधना शुक्ला

डॉ० सतीश कुमारी
प्राचार्य
ऋषि संस्कृत महाविद्यालय
खड़खड़ी, हरिद्वार (उत्तर प्रदेश)

जे०पी०मिश्र
जिला विद्यालय निरीक्षक
हरिद्वार।

शुभकामना

अत्यन्त ही हर्ष का विषय है कि श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज, अध्यक्ष श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन निर्धन निकेतन खड़खड़ी, हरिद्वार के हीरक जयन्ती वर्ष के पुनीत अवसर पर "ऋषि दर्शनम्" नामक अभिनन्दन ग्रंथ का प्रकाशन हो रहा है।

निश्चय ही आपका यह प्रकाशन हमारी वर्तमान तथा भावी, पीढ़ी को भारतीय संस्कृति की उन महान परम्पराओं, संस्कारों तथा विशेषताओं से अवगत करायेगा जो आज के इस दिग्भ्रमित करने वाले परिवेश में उनके लिए अमृत-तुल्य है। श्रद्धेय महाराज जी ने अपने अथक प्रयासों द्वारा ज्ञान-मंदिरों की श्रृंखला स्थापित कर इस समाज की जो सच्ची सेवा की है वह प्रशंसा से परे है तथा इससे बढ़कर समाज की कोई दूसरी सेवा ही हो नहीं सकती।

इस पावन बेला पर मैं अपनी मंगलमय शुभकामनायें सम्प्रेषित करता हूँ।

- जे०पी० मिश्र

श्री ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मचारी

श्री जयराम आश्रम

भीमगोडा-हरिद्वार (उ०प्र०)
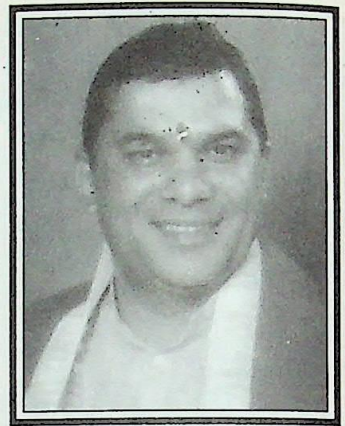
शुभकामनाएँ

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी ऋषि केशवानन्द जी महाराज का **"अभिनन्दन ग्रन्थ"** प्रकाशित होने जा रहा है।

श्री महाराज जी ने अपना समस्त जीवन समाज की उत्कृष्ट सेवा में व्यतीत किया है। समाज-सेवा, धर्म-सेवा, यात्री-सेवा, गौ-सेवा, अन्नक्षेत्र संचालन, चिकित्सालय से समाज की अनन्त सेवा की है।

श्री महाराज जी ने शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। श्री महाराज जी संस्कृत के प्रचार-प्रसार में सतत् प्रयत्नशील रहे हैं। उनकें कुशल नेतृत्व में संस्कृत महाविद्यालय एवं अन्य विद्यालय सुचारु रूप से संचालित हो रहे हैं। जिसमें अनेक छात्र-छात्रायें शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

"अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रकाशन के पावन प्रसंग पर मैं अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ और श्री महाराज जी के दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ।

मंगल-कामनाओं सहित।

-ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मचारी

सतपाल ब्रह्मचारी

श्री थानाराम आश्रम

भोपतवाला-हरिद्वार (उ०प्र०)
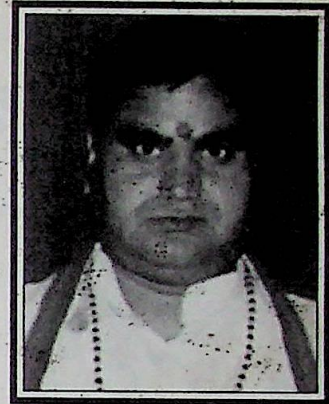
मंगल-कामना

बच्चे देश की समृद्धि हैं, इन के जीवन का निर्माण देश का निर्माण है। राष्ट्र निर्माण की ऐसी मशाल जलाने वाले युग महापुरूष श्री केशवानन्द जी महाराज अध्यक्ष निर्धन निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार ने विविध शिक्षण संस्थाओं की स्थापना कर भारतीय जीवन मूल्यों और आदर्शों पर आधारित भारतीय शिक्षा-प्रणाली का प्रवर्तन किया है, जिस शिक्षा को ग्रहण कर आज अनेकों छात्र अपने समाज के राष्ट्र के निर्माण में जुटे हुए अपने माता पिता का और अपनी संस्था का नाम रोशन कर रहे हैं। पूज्य ऋषि जी की ये शिक्षण संस्थाएं विश्वख्याति अर्जित करें।

ऐसे अभिनन्दनीय महापुरुष ऋषि जी की ''हीरक जयन्ती'' के अवसर पर मैं उनके स्वास्थ्य पूर्वक चिरायु होने की मंगल कामना करता हूँ।

-सतपाल ब्रह्मचारी

☎ 427649

ॐ सत् साहेब ॐ

श्री स्वामी शम्भुदेव संस्कृत महाविद्यालय

श्री जगदीश आश्रम, खड़खड़ी, हरिद्वार

स्थापित १६८४ ई०

संस्थापक : स्वामी शान्तानन्द शास्त्री
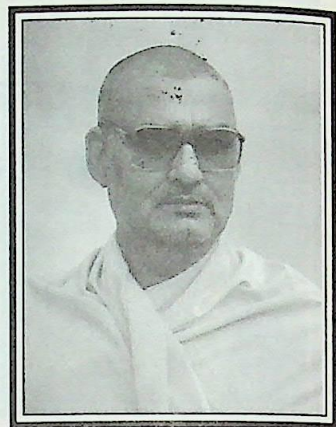
शुभकामनाएँ

श्री सरस्वत्यै नमः

विश्वविख्यात सात पुरियों में एक मायापुरी के परम पावन तीर्थ हरिद्वार के मुख्य मार्ग पर श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द जी महाराज द्वारा स्थापित निर्धन निकेतन आश्रम स्थित है। ऋषि जी के परम पूजनीय गुरु ब्रह्मचारी श्री वंशीधर जी बिरकां वालों का जगदीश आश्रम के ब्रह्मलीन स्वामी शम्भूदेव जी महाराज से परम् स्नेह था। उन्होंने जगदीश आश्रम में रहकर बहुत समय तक संतसेवा की तथा सद्गृहस्थों को सदुपदेश दिया। उन्हीं की परम्परा का निर्वाह करते हुए श्री ऋषि जी महाराज ने परम पूजनीय गुरू जी की स्मृति में निर्धन निकेतन संस्था की स्थापना की तथा समाज उत्थान के अनेक कार्य किये, यथा-संस्कृत विद्यालय एवं बाल विद्यालय की स्थापना। संस्कृत विद्या के प्रचार प्रसार हेतु विद्यालय के माध्यम से गणतंत्र दिवस, महापुरुषों की जयंती, बसंत पंचमी आदि पर्वों पर विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना, संस्कृत नाटकों का प्रदर्शन करना, विद्वज्जनों-सन्तों का सम्मान करना-इस प्रकार के अनेक सराहनीय कार्य किये हैं, तथा कर रहे हैं। अतः प्रेम सम्बन्ध निरन्तर बना रहे, इसलिये हीरक जयन्ती वर्ष में ऋषि जी के अभिनन्दन स्वरूप "ऋषिदर्शनम्" नामक अभिनन्दन ग्रन्थ को प्रकाशित करने की शुभकामना करते हैं।

-शान्तानन्द शास्त्री

आचार्य स्वामी जगदीश मुनि
जिलाध्यक्ष

भारतीय जनता पार्टी
जनपद-हरिद्वार

शुभ-संदेश

निर्धन-निकेतन आश्रम के संस्थापक-संचालक स्वामी ऋषि केशवानन्द जी हरिद्वार के प्रमुख सम्भ्रान्त समाजसेवी महापुरुष हैं। इनकी जीवनी व कार्यों को लेखबद्ध कर, जनता के हाथों में देना, समाज को सही दिशा देने के लिए अति उत्तम कदम है, क्योंकि ऋषि केशवानन्द जी ने अपने जीवन में ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हिन्दी विद्यालय व शिशु विद्यालय, धर्मार्थ औषद्यालय जैसी संस्थाएं चलाकर समाजोपयोगी अनेक कार्य किये हैं।

ऋषि जी ने अपना जीवन साधनामय और लक्ष्य अध्यात्म बनाया है। अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु देशभर में अनेक पद-यात्राएं की हैं। इन पद-यात्राओं के माध्यम से धर्म परायण मानवों को धर्म पर चलने की सत्प्रेरणाएं दी हैं जो सन्तों, महात्माओं व ऋषियों को देनी चाहिएँ। वे ऋषि-परम्परा के अनुरूप कार्य कर रहे हैं।

मैं चाहूंगा, कि सम्पादक-मण्डल इस 'अभिनन्दन ग्रन्थ' के माध्यम से ऋषि जी के चमत्कारपूर्ण जीवन की विशेष घटनाओं से जन-समुदाय का मार्ग प्रशस्त करें। अन्त में हम ऋषि श्री केशवानन्द जी के स्वास्थ्य पूर्ण दीर्घायुष्य की कामना करते हैं।

- आचार्य जगदीश मुनि
पूर्व विधायक, हरिद्वार

HARBANS SINGH
Of Lincoln's Inn Barrister-at-Law
CHIFE JUSTICE (Rtd.)

MESSAGE

27th July, 1999 was an auspicious day, when on the persuations of my friend Dr. Dev Raj Garg. I had the good luck of going to Nirdhan Niketan Kharkhari Ashram, Haridwar to pay my respects and have Darshan, not only of respected Balbrahamchari Shri Keshwanand Ji Maharaj and the great Ashram created by him but also of a galaxy of Sadhus and Mahapursh gathered, at the colourful annual Bhandara function. I was recipient of the blessings of Shri Keshwanand Ji and also partook of the bhandara in his noble presence.

The momento graciously bestowed by him on the occasion would ever be cherished as a token of his blessings for many a years by this humble servant.

(HARBANS SINGH)

दुर्गा शंकर भाटी
कार्यालय संवाददाता
दैनिक हिन्दुस्तान
नई दिल्ली

शुभकामनाएँ

डॉ० सतीश कुमारी जी,

अत्यन्त प्रसन्नता एवं सौभाग्य का विषय है कि परम पूज्य बाल ब्रह्मचारी ऋषि केशवानन्द जी महाराज का अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है। निःसंदेह पूज्य ऋषि जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से समाज को नई दिशा एवं प्रेरणा प्राप्त होगी।

पूज्य ऋषि जी अपने आप में मात्र तपस्वी संत ही नहीं अपितु एक सम्पूर्ण संस्था भी हैं। धार्मिक जगत हो अथवा सामाजिक, सम्पूर्ण दायित्व का निर्वहन आपके द्वारा सफलता पूर्वक किया जा रहा है। आध्यात्मिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक गतिविधियों के संचालन करने में आपके द्वारा भरपूर सहयोग एवं मार्ग निर्देशन निसंकोच एवं निस्वार्थ रूप से हरिद्वार वासियों को प्राप्त हो रहा है। आप देश, धर्म, संस्कृति एवं समाज के उत्थान में अग्रणी एवं अग्रसर होते हुए दीर्घायु हों।

- दुर्गा शंकर भाटी
पत्रकार

अम्बरीष कुमार
विधायक, हरिद्वार

१७६, रामचन्द्रकान्
ज्वालापुर (हरिद्वार)
३०३, बहुखण्डीय मंत्री निवास,
लखनऊ
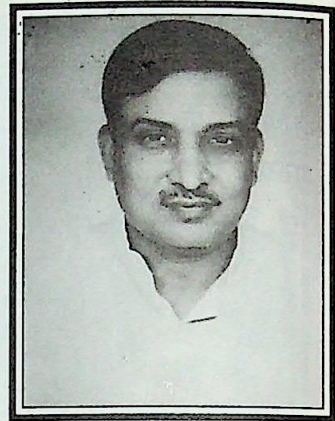
शुभकामनाएँ

डा० सतीश गुलाटी जी
संपादक "श्री ऋषिकेशवानन्द अभिनन्दन ग्रंथ"
निर्धन निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार

यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि आपने 'श्री ऋषि केशवानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ' के प्रकाशन का दायित्व अपने कंधों पर लिया।

आदरणीय ऋषि जी शिक्षानुरागी हैं तथा अब से लगभग ४३ वर्ष पूर्व हरिद्वार की पावन भूमि पर संस्कृत पठन-पाठन और शिक्षण के माध्यम से उन्होंने न केवल प्राचीन भारतीय संस्कृति, परम्पराओं और मूल्यों के संरक्षण का कार्य किया, अपितु इनके संवर्द्धन और प्रसार के लिए भी स्तुत्य प्रयास किया।

पुरातन और आधुनिकतम के बीच समन्वय को स्वीकार करते हुए उन्होंने ऋषि बाल विद्यालय, ऋषि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की स्थापना कर अपनी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय दिया।

श्रद्धेय ऋषि जी के प्रयासों से हरिद्वार में ही नहीं, संपूर्ण आध्यात्मिक और शिक्षा के जगत् में निर्धन निकेतन को एक प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है।

मेरी शुभकामना है कि श्रद्धेय ऋषि जी चिरंजीवी होकर शिक्षा के माध्यम से "ज्ञानाग्निः समेधताम्" के वेद वचन को जीवन्त करते रहें।

सादर !

– अम्बरीष कुमार

श्री राजकुमार शर्मा 'तरुण'
पूर्व विधायक
ज्वालापुर, हरिद्वार
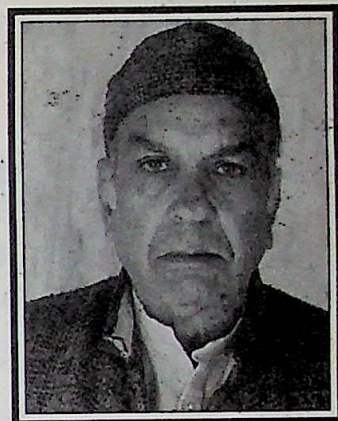
मंगल-कामना

"संस्कृतिपुरुष ऋषि केशवानन्द जी"

हरिद्वार जैसी पौराणिक धर्मनगरी में ऋषि जी का वास तथा अभिनन्दन एक दैवीय संयोग है। इस नगरी में नारद सनतसनन्दनादि गौतम, देवल, असित, भारद्वाज आदि अनेक ऋषि मुनियों एवं सन्तों का आगमन, निवास और अभिनन्दन अतीत में हुआ है। यह हर्ष का विषय है कि उसी परम्परा को पुनःस्थापित किया जा रहा है।

ऋषि जी पंचनद की पावन धरती से आए और हरिद्वार को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। उत्तर प्रदेश, पंजाब, दिल्ली, हरियाणा, जम्मू-काश्मीर आदि प्रदेशों में ऋषि जी के शिष्य-भक्तजन रहते हैं। गंगातट पर निर्धन निकेतन को केन्द्र बनाकर ऋषि जी ने मानव, धर्म तथा संस्कृति की सेवा का कार्य आरम्भ किया। इन्होंने एक साथ अनेक विद्यालयों-ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, ऋषि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, ऋषि बाल विद्यालय, ऋषि लोटस अकादमी आदि की स्थापना कर समाजोपयागी कार्य किये हैं।

प्राचीन भारत में जिस प्रकार ऋषियों के आश्रमों में यज्ञ, अनुष्ठान, कथा, प्रवचन, पूजा आदि हुआ करते थे, उसी प्रकार निर्धन निकेतन में भी यह सब कार्य सम्पन्न होते रहते हैं। गौरवर्ण, श्वेत केश, चमकते नेत्र एवं मुख-मण्डल की आभा देखकर प्राचीन ऋषियों का स्मरण हो उठता है। सौम्यता, उदारता, करुणा, प्रतिभा, साधुत्व, विशाल, हृदयता सेवा तथा भावना के गुणाष्टक का दर्शन ऋषि जी के जीवन में होता है। जैसे ग्रीष्म ताप से झुलसे हुए व्यक्ति को पीपल की छांव, विश्राम तथा शान्ति प्रदान करती है, उसी प्रकार भौतिकवाद तथा जागतिक माया से पीड़ित मानव जब ऋषि जी के सान्निध्य में आता है तो उसी विश्राम शान्ति का अनुभव करता है। हरकी पैड़ी एवं सप्तसरोवर के मध्य निर्मित यह आश्रम युगों तक मानव समाज को प्रेरणा प्रदान करता रहेगा। यह कीर्तिस्तम्भ हरिद्वार का गौरव है। ऋषि जी स्वस्थ एवं दीर्घजीवी हों।

- श्री राजकुमार शर्मा 'तरुण'

श्रीकृष्ण सेमवाल
सचिव

दिल्ली संस्कृत अकादमी

(राष्ट्रिय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार)
नई दिल्ली

शुभकामनाएँ

प्रिय महोदया,

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि निर्धन निकेतन श्रद्धेय स्वामी श्री केशवानन्द जी महाराज (ऋषि) के पचहत्तरवें वर्ष पूर्ति के उपलक्ष में महोत्सव आयोजित कर रहा है तथा इस अवसर पर ऋषि-अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है।

मैं ऋषि जी को अनेक दशाब्दियों से जानता हूँ। उनका कर्मठ, लोकोपकारी, तपस्वी एवं शिक्षाप्रिय चरित्र तो सुविदित है ही किन्तु इस आयु तक भी संस्कृत एवं अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन, संस्कृत विद्वानों का आतिथ्य, संस्कृत छात्रों का वात्सल्य एवं किसी भी पीड़ित व्यक्ति के प्रति करुणाभाव प्रत्येक बुद्धिजीवी के हृदय में उनका स्थान बना देते हैं। वस्तुतः वे स्वरूप एवं स्वभाव दोनों से ही ऋषि हैं। ऋषि जी जितने ही पुष्ट एंव चिरायु होंगे - इस विकट काल में भी ऋषि परम्परा उतनी ही पुष्ट एवं लोक-कल्याणी होगी।

इस शुभावसर पर पूज्य स्वामी को अपनी भावभीनी प्रणति अर्पित करता हुआ ग्रन्थ प्रकाशनार्थ शुभकामना प्रेषित कर रहा हूँ।

- श्रीकृष्ण सेमवाल

सुश्री सतीश,
प्राचार्या, ऋषि सं० महाविद्यालय
निर्धन निकेतन, खड़खड़ी,
हरिद्वार, उत्तर प्रदेश

प्रो० धर्मसिंह ढिल्लो
पूर्व शिक्षा निदेशक
हरियाणा

मंगल-कामना

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि पूज्य ऋषि श्री केशवानन्द जी महाराज की पचहत्तरवीं वर्षगांठ के अवसर पर निर्धन निकेतन उनके अभिनन्दन के रूप में 'ऋषिदर्शनम्' नाम से एक ग्रन्थ का प्रकाशन करवा रहा है।

विद्यार्थी जीवन में ऋषि जी जब ओरियन्टल कालेज (पंजाब विश्वविद्यालय) लाहौर में पड़ते थे तब इनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता था। शिक्षा काल में ये अत्यन्त मेधावी, प्रतिभाशाली, कठोर परिश्रमी, हंसमुख एवं अत्यंत मिलनसार व्यक्ति थे। उनकी उस समय की दैनिक तपश्चर्या को देख मैं बेहद प्रभावित था। इनके तमतमाते चेहरे पर संन्यास की रेखाएं तभी स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी। पूत के पांव पालने में ही दीख जाते हैं। वही आभास, विगत वर्ष आश्रम में पहुँचकर मैंने पाया कि ऋषि जी तो **''मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः''** एक दिव्यात्मा है। इनका अभिनन्दन बड़ा स्तुत्य कार्य है।

इस शुभ-संकल्प के लिये मैं अपनी मंगल-कामनाएँ प्रेषित कर रहा हूँ।

- धर्मसिंह ढिल्लो

卐 ॐ 卐

श्री आनन्द आश्रम

(दक्षिण भाग) भूपतवाला, हरिद्वार

महन्त श्री श्री १००८ महामण्डलेश्वर गद्दीनशीन श्री स्वामी शंकरानन्द जी शास्त्री

एम.ए., वेदान्ताचार्य, साहित्याचार्य
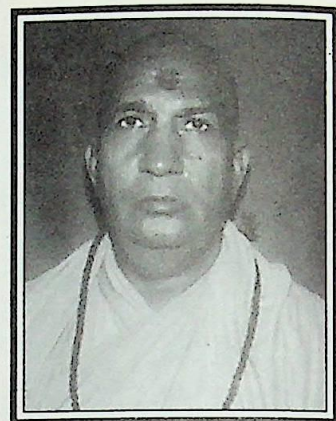
शुभकामनाएँ

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि बाल ब्रह्मचारी मिशन निर्धन निकेतन हरिद्वार के तपोनिष्ठ ब्रह्मनिष्ठ कर्मयोगी ऋषि केशवानन्द जी का हीरक जयन्ती वर्ष चल रहा है। इसमें "ऋषिदर्शनम्" नामक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। भारतभूमि ऋषियों की, तपस्वियों की पावन भूमि रही है उन्हीं के तप-तेज से, सत्कर्म से, आदर्श से, सदाचार से, सम्पूर्ण विश्व को दिशा-निर्देश मिलता है।
कहा है -

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

सतत् कर्मयोगी ऋषि केशवानन्द जी के कृतित्त्व संसार को आदर्श कर्म करने की प्रेरणा देते रहेंगे। उन्होंने विभिन्न स्तर-प्राईमरी, माध्यमिक तथा स्नातकोत्तर स्तर के विद्यालय-महाविद्यालय चला कर शिक्षा के क्षेत्र में अविस्मरणीय कार्य किये हैं। ऋषि संस्कृत महाविद्यालय में निःशुल्क शिक्षा, भोजन और आवास की व्यवस्था है। यहां भारतीय संस्कृति का पूर्ण रूप से संरक्षण हो रहा है। ऋषि धर्मार्थ चिकित्सालय स्थानीय जनता की निःशुल्क चिकित्सा करता है।

देश में, विदेश में धर्म प्रचारार्थ प्रायः जाते रहते हैं। यज्ञनिष्ठा, गो निष्ठा, तीर्थ-निष्ठा आदि अनेक निष्ठाओं से सम्पन्न ऋषि केशवानन्द जी भारतीय संस्कृति का प्रचार कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति जीवित है तो राष्ट्र जीवित है। भारत राष्ट्र को गौरवान्वित करने वाले ऋषि केशवानन्द जी को भारतरत्न की उपाधि से सम्मानित किया जाना चाहिए, ऐसी हमारी शुभ-कामना है।

- स्वामी शंकरानन्द शास्त्री

"सर्वभूतहितेरताः"

श्री चेतन ज्योति संस्था

भूपतवाला, हरिद्वार

अध्यक्ष :
म० मं० श्री १०८ स्वामी वागीश्वरानन्द जी
आयुर्वेदाचार्य, वेदान्ताचार्य
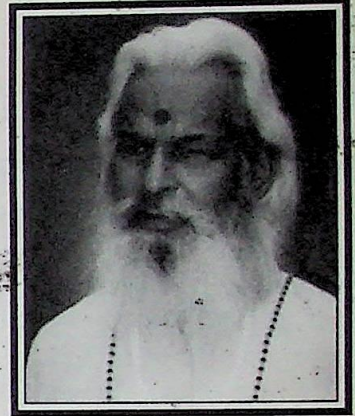
अभिवादन

पतित पावनी भगवती भागीरथी के पवित्र तट पर स्थित तपस्थली हरिद्वार में सन्त-महन्तों के मध्य ब्रह्मऋषि केशवानन्द जी को मैं लगभग ३१ वर्षों से भली तरह जानता हूँ। आपने अपने जीवन में जगदम्बिका की साधना व ब्रह्मचर्य के प्रभाव से भारतीय संस्कृति और संस्कृत का प्रचार-प्रसार न देश में अपितु अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड आदि देशों में भी किया है।

मैंने व्यक्तिगत सम्पर्क से अनुभव किया कि आप गौ, ब्राह्मण, कला, राष्ट्र तथा विद्याओं के अनन्य प्रेमी हैं। जिसके फलस्वरूप ऋषि गौशाला, ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, ऋषि औषधालय, ऋषि नाट्यम् जैसी सक्षम संस्थायें स्थापित की हैं।

बाल ब्रह्मचारी मिशन ऐसे समाज सेवी, तपोमूर्ति, विद्यानुरागी, राष्ट्रप्रेमी ऋषि जी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने जा रहा है, अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य है।

ऋषि जी की हीरक जयन्ती पर मैं परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वे ऋषि जी को चिरायु करें और स्वस्थ रखें जिससे भारतीय संस्कृति और संस्कृत का प्रचार-प्रसार होता रहे।

सधन्यवाद मंगलेच्छु भवदीय -

- स्वामी वागीश्वरानन्द

☬ ☬

गुरूद्वारा भजनगढ़ आश्रम

खड़खड़ी, हरिद्वार-२४६४०१

संस्थापक :-
श्रीमान् १००८ सन्त कर्मसिंह जी

संचालक :-
श्रीमान् १०८ महन्त जोगिन्द्रसिंह जी
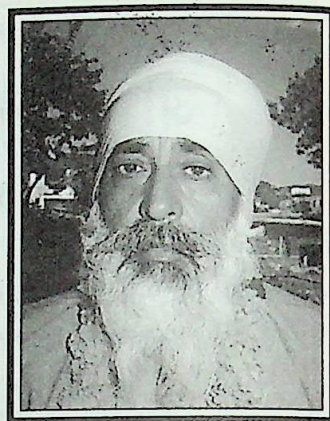
संदेश

प्रसन्नता का विषय है कि पूज्यपाद ऋषि केशवानन्द जी महाराज अध्यक्ष १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन निर्धन-निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार उत्तर प्रदेश के हीरक जयन्ती के शुभ अवसर पर 'ऋषि दर्शनम्' नामक ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है। शिक्षा और संस्कृति मनुष्य को एक धार्मिक व्यक्तित्त्व प्रदान करती है, जिसका लक्ष्य मानवसेवा होता है। आज हम जिस भौतिक युग में जी रहे हैं उसमें जरूरी है, कि लोगों को शिक्षा और संस्कृति से ओतप्रोत ऐसी धार्मिकता प्रदान करें, ताकि वह समाज में जोड़ने का काम करे।

ऋषिकेशवानन्द जी ने अपने व्यक्तित्त्व व कृतित्त्व से पूरे समाज में धार्मिक सद्भाव का एक नया वातावरण बनाया है। उन्होंने समाज में लोगों को जीने की एक नई दृष्टि प्रदान की है। मुझे आशा है, कि ऋषि जी के प्रवचनों से उनके द्वारा स्थापित आश्रम से बदलाव का वातावरण बनेगा, जिसमें सभी लोग मिल जुल कर सद्भाव से रह सकेंगे। ऐसी मैं आशा करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित।

- महन्त जोगिन्दर सिंह
अध्यक्ष

स्वामी अखण्डानन्द जी

पंजाब सिन्ध क्षेत्र, भीमगोड़ा हरिद्वार

शुभकामनाएँ

यह जानकर सर्वाधिक प्रसन्नता हुई कि श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन, निर्धन निकेतन, हरिद्वार अपने अध्यक्ष महोदय श्री ऋषि केशवानन्द महाराज जी को उनकी ''हीरक जयन्ती'' के अवसर पर अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने जा रहा है।

श्रद्धेय ऋषि जी महाराज वास्तव में अभिनन्दनीय व्यक्ति हैं। वे सफेद वेष में पूर्ण-सन्त हैं क्योंकि वे परोपकार के अनेकों कार्यों में लगे हुए हैं। वे कहीं निःशुल्क चिकित्सालय, अनेकों विद्यालय और अन्न क्षेत्र चला रहे हैं। प्रवृत्ति मार्ग दुखद मार्ग है परन्तु परहित के लिए कष्ट सहन कर आह्लाद पूर्वक निरलेप होकर चल रहे हैं। कहा है -

''संत सहहिं दुख परहित लागी''

अतः मेरी दृष्टि में वे सही सन्त हैं। मैं अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशकों तथा सम्पादकों को शुभ-कामना के साथ हार्दिक बधाई देता हूँ।

- स्वामी अखण्डानन्द

दण्डी स्वामी रामानन्द सरस्वती
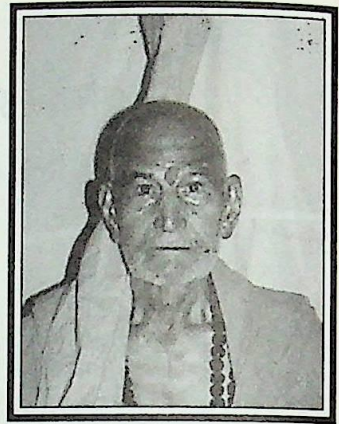
शुभकामनाएँ

मुझे अनेक बार हरिद्वार के निर्धन निकेतन में जाने का अवसर प्राप्त हुआ। ऋषि केशवानन्द जी संस्कृत भाषा एवं भारतीय संस्कृति के प्रचारार्थ अनेक प्रकार के आयोजन करते ही रहते हैं। इनके संस्कृत विद्यालय के छात्रों को सुन्दर संस्कृत भाषा एंव श्लोक गान करते हुए देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ।

शिशुओं की शिक्षा से लेकर आचार्य कक्षा तक शिक्षा पाने के लिये इन की संस्था में हजारों छात्र छात्राएं हैं। आसन, प्राणायाम एवं भक्ति भाव की शिक्षा भी वहां दी जाती है। ऋषि जी स्वयं भी संस्कृत हिन्दी एवं अंग्रेजी के विद्वान् हैं इसलिये हरिद्वार में इनका अपना विशिष्ट स्थान है।

मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि ऋषि केशवानन्द जी महाराज बहुत बड़ी उम्र पायें और लोकोपकार करते रहें। उनके हीरक जयन्ती अभिनन्दन के लिए मेरी यही कल्याण कामना है।

- रामानन्द सरस्वती

श्रद्धेय ऋषि
श्री केशवानन्द महाराज जी
का
संक्षिप्त जीवन परिचय

"तमसो मा ज्योतिर्गमय"

अभिनन्दनीय महापुरुष ऋषि श्री केशवानन्द महाराज
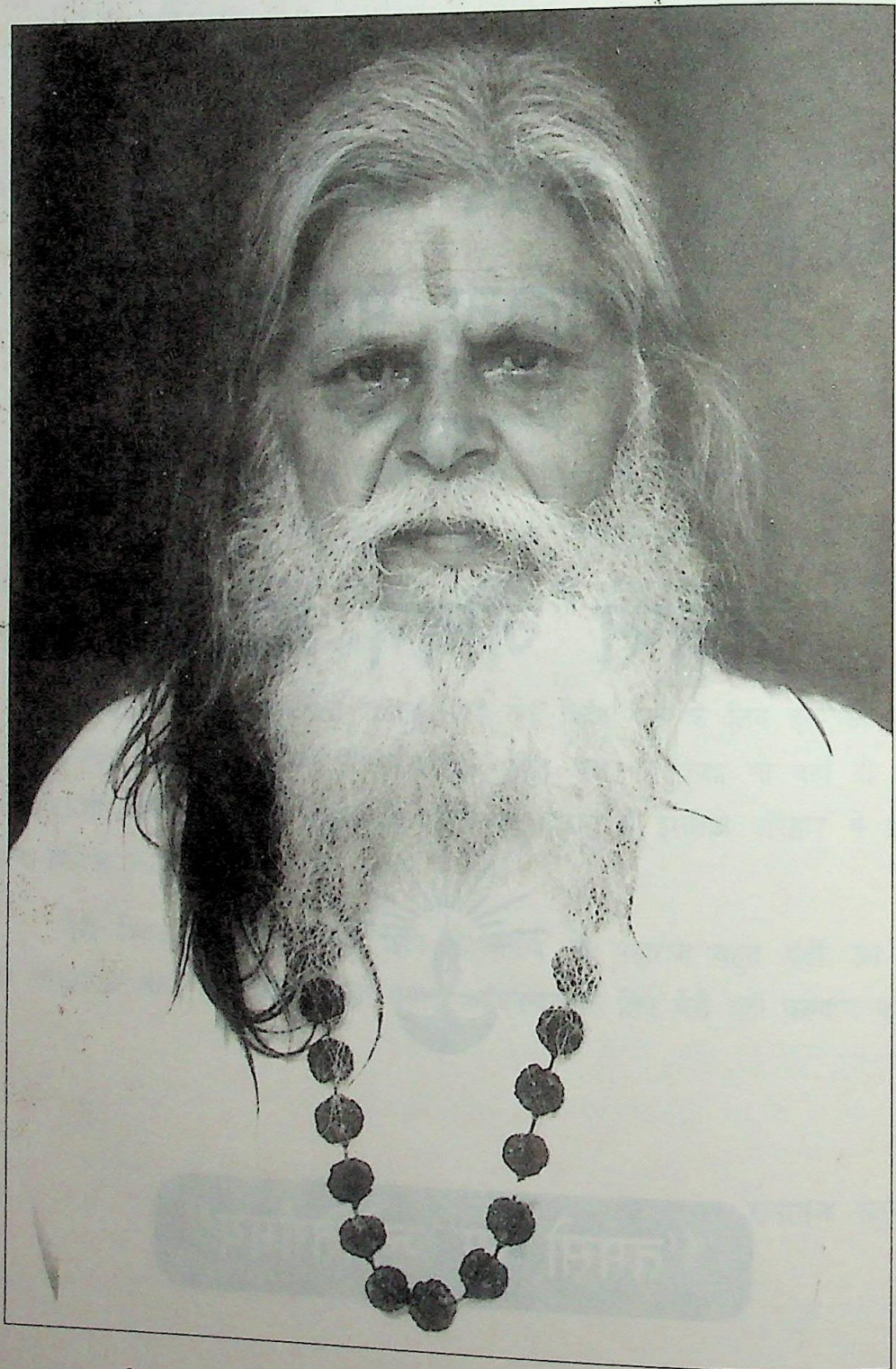
अध्यक्ष, श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन, निर्धन-निकेतन, खड़खडी, हरिद्वार (उ. प्र.)

अभिनन्दनीय महापुरुष ऋषि केशवानन्द महाराज
का
जीवनचरित, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संसार में धर्म और मर्यादा की रक्षा व दीक्षा के लिए ऋषि-मुनि आविर्भूत हुआ करते हैं और अपने तप-ज्ञान-शक्ति के प्रभाव से जगत् का लौकिक एवं पारलौकिक हित-साधन किया करते हैं। ऐसे ही एक ऋषि पंजाब के मानसा जिला, चहलाँवालां गाँव के पं० मुन्शीराम कौण्डिन्य ऋषि के घर सम्वत्सर १६८१, श्रावण शुक्ला तृतीया (हरियाली तीज) के दिन अवतरित हुए थे, जो आज विश्वभर में ऋषि केशवानन्द महाराज के नाम से जाने जाते हैं और विश्वख्याति अर्जित संस्था *"निर्धन निकेतन आश्रम, हरिद्वार"* के अध्यक्ष हैं। यह निर्धन निकेतन आश्रम श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन के तत्त्वावधान में आप द्वारा दिसम्बर १६५६ ई° में संस्थापित एवं तब से ही आप द्वारा निरन्तर संचालित है। इस मिशन के अध्यक्ष रहते हुए आपने लम्बे समय से समाज के धार्मिक, शैक्षिक एवं सामाजिक क्षेत्र में अमूल्य सेवाएँ प्रदान की हैं। भक्तगण, विद्वज्जन और साधु-समुदाय के आग्रह पर श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन, निर्धन निकेतन हरिद्वार आपकी लम्बी एवं विशद निःस्वार्थ सेवाओं के सम्मानार्थ **'ऋषिदर्शनम्'** नामक अभिनन्दन ग्रन्थ आपकी ***"हीरक जयन्ती"*** के उपलक्ष्य में आपको भेंट करने जा रहा है। अभिनन्दन-ग्रन्थ में अभिनन्दनीय महापुरुष का जीवन चरित उनके कृतित्व और व्यक्तित्व का उल्लेख जनता-जनार्दन के लिए प्रेरणाप्रद रहेगा और भक्तों के लिए पुण्यश्लोक होगा। अतः उसका उल्लेख परमावश्यक है।

१- जन्म एवं लालन-पालन

अवतारी-पुरुषों के जन्म और लालन-पालन की घटनाएँ भी बड़ी कौतूहलपूर्ण होती हैं। भगवान श्री कृष्ण वसुदेव-देवकी के घर पैदा हुए और उनकी मनमोहक किलकारियाँ और बाल लीलाओं का आनन्द गोकुल के गोप नन्दबाबा और यशोदा ने लिया। ऐसे ही पूज्य ऋषि जी पं. मुन्शीराम - श्यामप्यारी के पैदा हुए और उनकी बाल-सुलभ क्रीड़ाओं का आनन्द उनकी नानी श्रीमती ठाकुरीदेवी, मामी श्रीमती सन्तोष देवी तथा मामा श्री वंशीधर जी ने लिया। भगवान श्री कृष्ण के मामा

कंस के हृदय में 'पकड़ो कृष्ण, मारो कृष्ण' का ध्यान सदा बना रहा क्योंकि श्री कृष्ण उनके काल थे। परन्तु पूज्य ऋषि जी के मामा श्री वंशीधर के हृदय में 'बनाओ केशव, बनो केशव' की ललक सदा लगी रही अर्थात् दोनों की जीवनगाथा मामा के इर्द-गिर्द घूमती रही है।

पूजनीय ऋषि जी की माता श्रीमती श्यामप्यारी एक योगी कुल की सन्तान थी। पंजाब प्रान्त के भटिण्डा जिला में बल्लूआना रेलवे स्टेशन से लगभग चार किलोमीटर की दूरी पर 'विरककलां' नाम का गांव है जो सिद्धों, सन्तों और विद्वानों का गांव है। सिद्धबाबा मस्तराम इसी गांव के थे, उनका मन्दिर भी इसी गांव में बना हुआ है। वैरागी-गृहस्थी-सन्तों की परम्परा के आज भी कई परिवार हैं। उनमें एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार के दो भाई पण्डित अमरनाथ शर्मा और रामनाथ शर्मा थे। पं. अमरनाथ की धर्मपत्नी श्रीमती ठाकुरी देवी जिसके तीन पुत्र - बंशीराम, मुन्शीराम, रूपचन्द और एक लड़की श्यामप्यारी थी। पं. रामनाथ शर्मा के चार पुत्र - हंसराज, सिद्धलाल, तुलसीदास, कर्मचन्द थे।
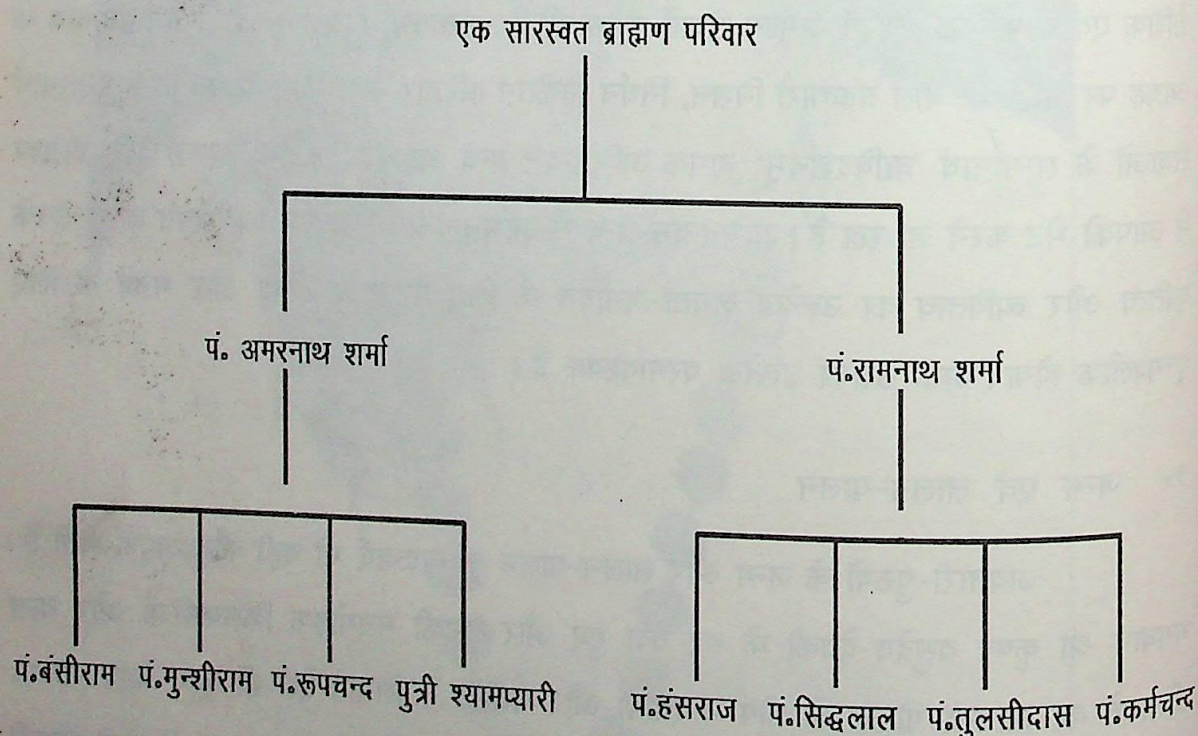
पं.कर्मचन्द भजनानन्दी सद्गृहस्थी, पं० तुलसीदास नेति-धोती आदि यौगिक क्रियाओं में सिद्ध ब्रह्मचारी, पं० सिद्धलाल कथावाचक एवं कर्मकाण्डी पंडित, पं०हंसराज हरिद्वारस्थ हंसगिरि आश्रम के प्रसिद्ध ध्यानी-वदानी योगी, पं० रूपचन्द कवित्वशक्ति सम्पन्न भक्ति-गीत-गायक, पं०मुन्शीराम अनासक्त- गृहस्थी परन्तु ठाकुर-पूजा में आसक्त भक्त थे और पं०अमरनाथ के बड़े पुत्र पं०बंशीलाल तो त्यागी, तपस्वी, बाल-योगी, बाल ब्रह्मचारी थे। इनके दीक्षा गुरु ने इनका नाम बंसीलाल से बंशीधर रख दिया था और तब से बंसीलाल बंशीधर से जाने जाते रहे हैं। **ऐसा दिव्य योगी कुल था पूज्य ऋषि जी का ननिहाल, जहां उनका लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा हुई। पंजाब की कहावत है - 'मां पर पूत पिता पर घोड़ा, बहुत नहीं तो थोड़ा-थोड़ा।' परम पूज्य ऋषि जी पर तो अपने त्यागी, तपस्वी, योगी ननिहाल का पूरा-पूरा रंग चढ़ा हुआ है कि वे सफेद धोती-कुर्ता में पूर्ण सन्त हैं।**

इसी दिव्य योगी कुल की पुत्री श्रीमती श्यामप्यारी, पूज्य ऋषि जी की माता थी, जो दया-दान-शील-सन्तोष की साक्षात्मूर्ति थी। पूज्य ऋषि जी के पिता 'चहलाँवाला' गांव के प्रतिष्ठित पण्डित मुन्शीराम शर्मा कौण्डिन्य ऋषि परम्परा की सन्तान थे और खेती-बाड़ी करते थे। इस दम्पती के जब प्रथम बच्चा पैदा हुआ तब श्रीमती श्यामप्यारी अपने मायके विरककलां में थी। घर एवं गांव में बड़ी प्रसन्नता थी। भाई बाल-ब्रह्मचारी श्री बंशीधर ने अपनी यौगिक दृष्टि से बालक को देखा और बहिन श्यामप्यारी से कहा- ''बहिन यह बालक तो मुझे दे दो'' - बहिन ने कहा, 'अच्छा भाई, तुम ले लेना।' बात हुई और खत्म हुई। इस बात पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। बहुत दिनों के बाद श्रीमती श्यामप्यारी को बच्चा लेकर सुबह ससुराल जाना था कि रात्रि को १० बजे बच्चा सोया-सोया अचानक चीख पड़ा, परिवार के सब सदस्य इकट्ठा हो गये, देखा कि बच्चा अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुका था। माता विह्वल होकर विलाप करने लगी और अपनी भूल पर पश्चाताप करने लगी कि योगी ब्रह्मचारी ने यह बालक मांगा था मैंने इसे ले जाने की यूं ही तैयारी कर ली। यह बालक तो जिद्द ठान कर यहीं बैठ गया। यह देख, बहिन को धीरज बंधाते हुए योगीराज श्री बंशीधर जी बोले अब दुःखी मत हो, तेरा बच्चा खेलने गया है फिर आयेगा परन्तु तेरे पास नहीं, वह मेरे पास ही रहेगा। परम सन्त श्री बंशीधर जी का वाक् सत्य हुआ कि सम्वत्सर १६८१ की श्रावण शुक्ला तृतीया तदनुसार ३ अगस्त १६२४ ई. (जन्म तीन अगस्त का ही है दिल्ली में सतरह अगस्त जन्म दिवस

मनाने की परिपाटी चल रही है) रविवार गोधूली के समय पं. मुंशीराम शर्मा के घर 'चहलाँवाला गांव में बालक पुनः अवतरित हुआ। घर क्या, गांवभर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। विशाल मस्तक, विशाल नेत्र, गौर वर्ण, हृष्ट-पुष्ट एवं सौन्दर्य सम्पन्न इस बालक को देखने के लिए सगे-सम्बन्धी सब आने लगे। ननिहाल से मामा श्री बंशीधर जी बालक को देखने आये, बहिन श्रीमती श्यामप्यारी ने कहा- "ले भाई सम्भाल इस बालक को मैंने तुम्हें दिया।" योगीराज श्री बंशीधर जी ने कहा, "दो वर्ष इसका लालन- पालन कर फिर इसे मुझे दे देना। बच्चे की किलकारियों के आनन्द में समय बीतता, पता नहीं चला। एक दिन बच्चा पूरा दिन रोता रहा, अचानक माँ को ध्यान हुआ कि अहो! आज यह दो वर्ष का हो गया है, इसे ननिहाल मामा योगीराज श्री बंशीधर के पास छोड़ना है। पण्डित जी से बात हुई, रथ मंगवाया गया तथा दोनों दम्पती तथा परिवार के कुछ अन्य लोग बालक को लेकर विरका गांव पहुंचे। योगीराज श्री बंशीधर जी पहले से इन्तजार में थे, बांहे फैलाकर कहते "आओ नारायण," फिर बोले, "मैं तेरा नारायण तू मेरा नारायण" कह कर गोद में लेकर आलिंगन किया। तब से ब्रह्मचारी श्री बंशीधर जी की देखरेख में बच्चे का लालन-पालन बड़ी अच्छी प्रकार से नानी श्रीमती ठाकुरी देवी तथा मामी श्रीमती सन्तोषदेवी करने लगी। पूज्य ऋषि जी ने अपने बचपन पर कुछ लिखा था उसी का अंश प्रस्तुत करती हूँ -

"मुझे जब भी अपने बचपन की याद आती है गीता का श्लोक ध्यान में उभर आता है- *'शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।'* आह ! कितना प्यारा !! कितना पवित्र, सादा और भोला भाला था विरक गांव का वातावरण जहाँ मैंने ढ़ाई वर्ष की अवस्था में अपने आपको पाया। पूज्य नाना-नानी, प्यारे मामा-मामी की भगवान में स्वाभाविक एवं हृदयग्राही आस्था थी। प्रातः चार बजे उठ कर सबने स्नान करना। मामा जी ने ठाकुर जी का स्नान कराकर पूजा-अर्जना करना, फिर ऊँचे स्वर में आरती-प्रार्थना करना तदुपरान्त घण्टाभर के लिए समाधिस्थ हो जाना। नानी जी, मामी जी, मासी जी आदि माताओं ने मिलकर काम करते-करते भजन-गीत गाना और काम से निवृत्त होकर भगवन्नाम का जाप करना। पश्चात् भगवान को माखन-रोटी तथा लस्सी का भोग लगा कर सबको यही प्रातराश देना। कितना आडम्बरशून्य, कितना निश्छल था बाल ब्रह्मचारी श्री बंशीधर जी के घर का वह रहन-सहन।

मैं सारे परिवार में एक ही बच्चा था इसलिए सब के प्यार का केन्द्रबिन्दु मैं ही था। मंझली मामी मुझे अपना पुत्र मानकर वात्सल्य पूर्ण हृदय से लाड़-चाव से मेरा लालन-पालन करती थी, सच विरली ही कोई जन्मदातृ माता ऐसा करती होगी। कुएँ से जल भरने जाती, जल भरी बड़ी-बड़ी गागरें सिर पर उठाती और एक हाथ से मुझे अपनी गोद में उठा कर ले आती। गोद में उठाये-उठाये ही घर का सारा काम-काज कर लेती। मैं भी लाड से उसकी गोद छोड़ता नहीं था। कुछ होश आने पर मैंने सोचा और कहा कि मैंने मामी को बहुत तंग किया है, मामी यह सुनकर मुझे इतने बड़े को भी, पुनः गोदी उठा लेती और कहती "मेरे लिये तो तूँ अब भी छोटा ही है, तुम्हें उठाने में मुझे बेहद सुख मिलता है।" सच, अपनी जान से भी ज्यादा उसे 'केशव' से प्यार था। एक बार घर के कमरे में आग लग गई और वह भी दरवाजे के बीच, मैं कमरे के अन्दर, निकलूँ कैसे? अन्दर से चिल्लाया, इतने में मामी आगयी। उन्होंने सिर से घड़ा पटका और अग्नि में कूद पड़ी और मुझे अग्नि से निकाल लायी, ऐसा था मामी का वात्सल्यपूर्ण हृदय!

नानी जी संस्कारित शिक्षा देने में बड़ी निपुण थी। रात में मुझे साथ लेकर सोती। अच्छी-अच्छी नैतिक शिक्षा की कहानियाँ सुनाती और बाद में पूछती, ''श्रवणकुमार ने माता पिता को पानी क्यों नहीं पिलाया? उसने माता-पिता को क्यों मारा?'' ऐसी उलट हेर-फेर की बातें बीच-बीच में पूछ कर हमारा ज्ञान परखती थी और देखती थी कि मैं ध्यान से उनकी कहानी सुन भी रहा हूँ या नहीं। माक्खन-मिश्री बहुत खिलाती थी। एक दिन प्रातः नाश्ते के समय गली के और बच्चे भी आ गये, उन्होंने मुझे केवल मिस्सी रोटी दे दी और दूसरे बच्चों को मिस्सी रोटी (नमकीन पराठां) के साथ माखन दे दिया। सब से कहा, 'खाओ', सब खाने लगे। मैं उनकी ओर देखने लगा। नानी जी बोली 'रोटी खाता क्यों नहीं'? मैंने कहा, 'उन सब बच्चों को आपने माक्खन दिया है और मुझे क्यों नहीं दिया?" नानी जी बोली, 'गलत बात है, तुम्हें माक्खन चाहिए, तुम माक्खन ले सकते हो परन्तु दूसरे को माक्खन दिया है, मुझे नहीं दिया; यह ईर्ष्या की बात तुम में पनपनी नहीं चाहिए।' नानी जी बोली, "देख केशव ! भविष्य में ऐसी बात नहीं करोगे।" ***'आज मैं पूर्णरूप से अनुभव करता हूँ और कहता भी हूँ कि मेरे अन्दर यदि कोई अच्छाई किसी को दिखाई देती है तो वह उस पवित्र वातावरण की ही देन है और जो मेरे में बुराईयाँ हैं वे सब बाद के जीवन की स्वयं उपार्जित संसारी संग का रंग है।'***

पूज्य गुरु श्री बंशीधर जी ने मुझे पिता का पूरा प्यार दिया, अपने पास बिठाकर खिलाया और आपने साथ सुलाया वे मुझे अपने साथ घूमने ले जाते और रास्ते में अच्छी-अच्छी बातें बताते थे। मीठा मुझे बहुत पसन्द था। उस समय गांव में लड्डू के अतिरिक्त मिठाई तो कोई बनती नहीं थी तो गुरुजी ने मुझे कभी लड्डू लाकर देना, कभी गुड़ लाकर खिलाना। एक बार गुरुजी बाजार से ८-१० पौधे लाये और मंझले मामा से कहा कि "ये पौधे लाया हूँ, दो आम के हैं, दो अमरूद के हैं, ऐसे-ऐसे सब हैं इन सब पौधों को लगा दो।" मैं सुन कर रूठ गया। मुझे रूठा हुआ देख कर गुरु जी पूछने लगे, "तुम्हें क्या हो गया है?" मैंने कहा, "आप सब पौधे लाये परन्तु मेरे लिए लड्डू का पौधा क्यों नहीं लाये?" गुरुजी खूब हँसे और बोले, "बेटा लड्डूओं का पौधा नहीं होता, वे उगते नहीं हैं। उन्हें तो बनाया जाता है। अरे बेटा! तेरे घर लड्डूओं के बहुत पेड़ लगेंगे'। वे तो भविष्यवक्ता थे, आज उनकी वाणी सत्य हो रही है जो मैं वर्षों से प्रतिदिन प्रसाद रूप में जनता को लड्डू बाँट रहा हूँ। गुरुजी को मेरे से इतना प्यार था, मेरे कपड़े स्वयं खरीद कर लाते थे। एक बार गिदड़वाहा मण्डी गये, मेरा कुर्ता-पाजामा सिला हुआ लाये। उन्हें मुझे नया सूट पहनाने का इतना शौक था कि पाजामा के लिए कुटिया में नाड़ा (इजारबन्द) न मिला; सिर से पगड़ी उतार कर उससे सीधा कपड़ा फाड़कर नाड़ा बनाया और पाजामे में डाल कर सूट पहनाया। बड़ा वात्सल्य था उनको मुझ से। हरिद्वार में एक बार मैं बहुत बीमार हो गया। चिकित्सकों ने पथ्य में केवल सन्तरों का रस दिन में दो-तीन बार देना नियत किया। किन्तु संयोगवश हरिद्वार में संतरे उपलब्ध न हुए। ज्येष्ठ मास की कड़कती धूप में सिर-पैर से नंगे पूज्य ब्रह्मचारी जी ज्वालापुर गये, सन्तरे केवल चार ही मिले; उनका रस पिलाया और अपने सेवक को उसी समय दिल्ली भेज कर तीन-चार टोकरे सन्तरों के मँगवाकर दिये। **गुरुजी के वात्सल्य का स्मरण ही जब अतीव सुखद है तो वात्सल्य के दिन कितने आनन्दमय रहे होंगे?" - ऐसे सात्त्विक वात्सल्यमय, ऐसे नैतिक शिष्टाचारपूर्ण एवं धार्मिक-यौगिक साधनामय वातावरण में जन्मा-पला बालक क्यों न धर्मात्मा-महात्मा होगा?**

२- शिक्षा-दीक्षा

ऋषि जी प्राच्यावाच्य विद्या के विद्वान हैं। यह विद्वत्ता मात्र उपाधियों से ही नहीं, अनेक शास्त्रों के अवलोड़न से, विद्वानों की गोष्ठियों से, विशेषकर पूर्वजन्म की संस्कार-जनित प्रतिभा से प्राप्त

है। आप संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी भाषा-भाषी हैं। इन भाषाओं के साहित्य से आपका अच्छा परिचय खूब परिचित हैं। आप अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी से एम.ए. हैं। व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष से शास्त्री हैं। इनके ***शिक्षा गुरु*** पंडित पूर्णचन्द्र शास्त्री, पडित लाहौरी राम शास्त्री, पंडित शिवकुमार शास्त्री, पंडित महानन्द जोशी, प्रो० अग्रसैन, डा०रामचन्द्र कुशल थे और ***दीक्षा गुरु*** आपके मामा श्री बंशीधर जी स्वयं थे, जो बड़े त्यागी-तपस्वी एवं योगी थे और जिन्होंने बचपन में ही पगड़ी-जूता त्याग दिया था। कड़कती धूप हो या कड़कती सर्दी, नंगे सिर रहते और नंगे पैर चलते थे। उत्तराखण्ड की सम्पूर्ण यात्राएँ नंगे पांव पैदल की हैं। आपके दिक्षा गुरु बड़े शिव भक्त थे। वे मात्र एक चोला ही पहनते थे, दीपावली और वैसाखी पर्व पर नया चोला पहन, पुराना चोला त्याग देते थे। इस तरह सदा ही एक वस्त्र में रहते थे। दाल-रोटी सादा भोजन ग्रहण करते थे। रात्रि जल में खड़े होकर कठिन तपस्या करते, जंगल में बनी कुटिया में अधिक समय रहते थे। पूर्ण-अपरिग्रही थे, किसी से कुछ भी धन अथवा वस्तु ग्रहण नहीं करते थे। दर्शन के लिए कुटिया में पधारे दर्शनार्थियों को स्वयं दाल-रोटी का लंगर चखाते थे। बड़े सिद्ध योगी थे, लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण करते थे, उन के पास सदा ही दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती थी। ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ उनकी चेरी थी। प्रकृति उनके वाक् का अनुसरण करती थी।

ऋषि जी ने अपनी आत्मकथा में अपनी शिक्षा के विषय में लिखा है -"मैं लगभग पाँच वर्ष का हूँगा कि गुरुजी श्री बंशीधर जी ने अपनी साधना के लिए विरक गांव से काफी दूर नहर के किनारे एक छोटी-सी कुटिया तथा उसके नीचे एक गुफा बनवायी, वहां रहने लगे। मुझे भी साथ रखने लगे। जब प्रातः सायं साधना के लिए बैठते, आसन लगाकर प्राणायाम करते मैं उनकी इन क्रियाओं को ध्यानपूर्वक देखता और वैसा करने की बाल-सुलभ चेष्टा किया करता, जिसे देख गुरु महाराज जी प्रसन्न होते थे। अतः उन्होंने शीघ्र ही उसी वर्ष मेरा यज्ञोपवीत संस्कार पूरे विधिविधान से करवा दिया और दीक्षा भी दे दी। मैंने नाम-जाप करना प्रारम्भ कर दिया और उन्होंने मुझे अक्षर-बोध भी स्वयं करवाना प्रारम्भ कर दिया। अक्षर बोध के बाद जब मुझे किसी आचार्य के पास पढ़ने भेजने की बात आई तो गुरु जी बोले "तुम्हारा आचार्य घर में ही पढ़ाने आ जायेगा, चिन्ता मत करो।" दूसरे ही दिन गुरु जी के मासड़ पण्डित पूर्णचन्द्र शास्त्री घर पर पढ़ाने आ गये। पं० पूर्णचन्द्र जी, जो ज्योनसिंह वाले गांव में आमोद-प्रमोद पूर्ण अपना जीवन बिता रहे थे कि ऐसा कोई देवी-प्रकोप हुआ कि उनके

तीन लड़के और पांच लड़कियाँ दो वर्ष के अन्तराल में जब काल-कवलित हो गयीं इसके बाद वे दोनों पति-पत्नी विरक्कलां गांव में आ गये। एक महीना बाद उसकी पत्नी बीमार हुई और पंचतत्व को प्राप्त हो गयी, तब रह गये केवल पण्डित जी। गुरुजी के कहने पर पण्डित जी कुटिया में आ गये और मुझे पढ़ाने लगे। मुझे संस्कृत का जो थोड़ा-बहुत ज्ञान है वह सब उन पण्डित जी की ही कृपा है। पण्डित जी ने पन्द्रह वर्ष काशी में रह कर महामना पण्डित दीक्षित जी से तथा पण्डित शिवकुमार शास्त्री से व्याकरण का प्रौढ़ ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने मुझे १९३७ ई. तक लघुकौमुदी और सिद्धान्तकौमुदी पढ़ायी थी, जो बहुत कुछ मुझे आज भी स्मरण है।

वर्ष १९३८ में मुझे पढ़ने के लिए श्री सनातन धर्म हाईस्कूल फिरोज़पुर शहर (पंजाब) भेजा गया। वहां एक संस्कृत पाठशाला भी थी, जहां पं० लाहौरीराम शास्त्री पढ़ाते थे। उनसे अध्ययन करते हुए मैंने पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ की प्रथम परीक्षा 'प्राज्ञ' जो दसवीं कक्षा के समकक्ष थी, प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। पंजाब विश्वविद्यालय की दूसरी परीक्षा 'विशारद' थी जो मैंने पण्डित ठंडीराम शास्त्री से अध्ययन करते हुए वर्ष १९४२ में उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् संस्कृत शास्त्री करने के लिए मैंने ओरियन्टल कालेज लाहैर में प्रवेश ले लिया। और वहां 'वुलनर छात्रावास' में रहने लगा। छात्रावास में मैं अकेला ही शास्त्री का छात्र था, शेष सब छात्र संस्कृत एम०ए० के थे जिनमे डा० अकिंचन, डा० श्रुतिकान्त, डा० धर्मेन्द्रनाथ, डा० वसु, प्रो० नरेन्द्रनाथ शर्मा, प्रो० धर्मसिंह डिल्लो और डा० मोहन राकेश आदि प्रसिद्ध विद्वान् हुए हैं। जब मैं शास्त्री करते समय बहुत बीमार हो गया तो आबो-हवा परिवर्तन हेतु मुझे लायलपुर भेजा गया। वहां पूज्य गुरुदेव के रल्हन-भक्त परिवार में माता श्रीमती शारदा देवी ने मेरी बहुत सेवा की। उनका एक लड़का रामनारायण रल्हन था जो सैन्य विभाग में अनेक पदों पर कार्य करता हुआ ब्रिगेडियर, दिल्ली पद से सेवा निवृत्त हुआ है। एक लड़की श्रीमती कृष्णा रहेजा है, जो शिकागो, अमेरिका में डाक्टर है। हम परस्पर मिलकर रहते, हँसते, खेलते और पढ़ते थे। उनके पास रहकर मैंने अंग्रेजी से इन्टर, बी०ए० की परिक्षा उत्तीर्ण की और बाद में व्याकरण साहित्य ज्योतिष में शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। माता शारदा देवी रल्हन का मुझे बहुत वात्सल्य प्राप्त हुआ। सन् १९४८ ई. में राजकीय महाविद्यालय लुधियाना में अंग्रेजी एम०ए० में प्रविष्ट हुआ ओर १९४९ ई० में अंग्रेजी एम०ए० उत्तीर्ण की।" तत्पश्चात् मैंने वर्ष १९५५ तक हिन्दी और संस्कृत विषय की एम०ए० उत्तीर्ण की। इस तरह आप तीन विषयों में एम०ए० और तीन विषयों में शास्त्री हैं। अतः

स्पष्ट है कि आप प्राच्य एवं पाश्चात्य अनेक विषयों के प्रौढ़ विद्वान् हैं।

आद्याशक्ति के अनन्य उपासक-

पूजनीय ऋषि जी मां भगवती के सच्चे उपासक हैं। श्री दुर्गा सप्तशती का पाठ दोनों समय नैत्यिक रूप में आप ६ वर्ष की अवस्था से अब तक करते चले आ रहे हैं। आज कल पाँच पाठ प्रातः कालीन और पाँच पाठ सायंकालीन सन्ध्या में करते हैं। कितनी विपत्तियाँ आयीं परन्तु आप कभी डगमगाये नहीं। कैसी भी दुःख-सुख की स्थिति रही, देर-सबेर हुई, आपने अपने पाठ का नियम सदा जारी रक्खा। एकदा जब आप ओरियन्टल कालेज लाहौर में पढ़ते थे तथा वूलनर छात्रावास में रहते थे तो पढ़ने के साथ-साथ अपनी पूजा-पाठ भी सम्पादित करते रहते थे, तब कुछ शैतान लड़के उसमें विघ्न डालने का प्रयास करते और आपके कमरे की खिड़की के सामने ताली बजाकर जय जगदीश हरे, जय जगदीश हरे - ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगते। कितने ही दिन उनके ऐसा करते रहने पर भी आपने उनसे कोई शिकवा न किया बल्कि आप अपनी पूजापाठ में तल्लीन रहते रहे। इस तरह जब आपकी परिपक्व श्रद्धा भक्ति को देखा तो कुछ दिन बाद वे शैतान बालक स्वयं लज्जित हुए और आपके श्रद्धालु मित्र बन गए। आज भी उनमें से अनेक लोग जब भी आपसे मिलते हैं तो उन दिनों की याद करते हुए आपके प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

ऋषि कालेज लुधियाना के प्राचार्य-

अध्ययन काल में आपका विचार था कि "मैं नौकरी नहीं करूंगा बल्कि एक ऐसी स्वतन्त्र शिक्षा-संस्था संस्थापित करूंगा जिससे अच्छे-अच्छे छात्र निकल कर जनता का उचित मार्गदर्शन कर सकंगे।" आपका संकल्प सार्थक हुआ कि सन् १९५१ ई० में आपने ऋषि-मण्डल नामक समिति की स्थापना कर इस समिति के तत्त्वावधान में **'ऋषि कालेज लुधियाना'** का उद्घाटन पूज्य गुरुवर बाल ब्रह्मचारी श्री बंशीधर जी के कर-कमलों द्वारा करवाया। आप इस कालेज के प्राचार्य हुए। आपको अध्यापन कार्य में बहुत रुचि थी। आपने अट्ठारह-अट्ठारह घण्टा निरन्तर अध्यापन करवाया है। आपके पढ़ाये हुए छात्र आज ऊँचे-ऊँचे पदों पर अवस्थित होकर जनकल्याण के कार्य में कार्यरत हैं। सरदार गृरुदीप सिंह माता गुजरी कालेज सरहिन्द में हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे हैं। डा० शकुन्तला अरोड़ा आर्य महिला डिग्री कालेज वाराणसी के प्रधानाचार्य पद से विगत वर्ष ही सेवानिवृत्त हुयीं हैं। सुश्री सत्या

सचदेवा विशेष केन्द्रीय विद्यालय, गाजियाबाद (उ.प्र.) के प्रधानाचार्य पद से अवकाश प्राप्त, वर्तमान में निर्धन निकेतन शिक्षा-संस्थान के प्रबन्धक पद को सुशोभित कर रही हैं। ऋषि कालेज लुधियाना अपने समय में पढ़ाई के लिए काफी प्रसिद्ध था। आज ऋषि कालेज का बहुत-सा उपकरण- मेज-कुर्सियाँ और पुस्तकालय की पुस्तकें और आलमारियां ऋषि संस्कृत महाविद्यालय के उपयोग में आ रही हैं; तथा ऋषि कालेज लुधियाना की स्मृति समय-समय पर ताज़ा कर रही है।

योग्य उत्तराधिकारी-

कालेज अपनी प्रगति की चरम सीमा पर था। किन्तु विधिना का ऐसा चक्र चला कि सन् १९५६ ई. की ३ जून को पूज्य बाल ब्रह्मचारी श्री बंशीधर जी महाराज ने अपना पार्थिव शरीर हरिद्वार पहुंच कर त्याग दिया। अचानक इस वज्रपात से आप किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। हजारों की संख्या में सत्संगी इकट्ठे हुए। गुरुजी का दाहसंस्कार किया गया तथा सब ने मिलकर इच्छा प्रकट की कि एक मात्र उत्तराधिकारी ऋषि जी को ही बनाया जाये; उन्हें अब यह कार्यभार सम्भालना चाहिए और हरिद्वारमें ही गुरु जी के स्मारक स्वरूप आश्रम की स्थापना होनी चाहिए। क्योंकि गुरुजी का हरिद्वार से अगाधं प्रेम था। प्रायः वर्ष में ६ महीने वे हरिद्वार रहा करते थे। तीस वर्षों से गुरु-पूजा निरन्तर हरिद्वार में ही मनाई जा रही है। गुरुभक्त भी गुरुपूजा पर प्रतिवर्ष हरिद्वार आ रहे हैं। गुरुजी अपनी अन्तिम समाधि के लिए भी हरिद्वार आये हैं। ऋषि जी को इस कार्य की स्वीकृति देनी ही पड़ी। फलतः भारत के प्रमुख नगरों से सदस्य चुनकर बाल ब्रह्मचारी मिशन का संगठन किया गया। पूज्य ऋषि जी को इस मिशन का अध्यक्ष बनाया गया। पूज्य ऋषि जी ने सर्वप्रथम गुरुदेव जी की चिरस्थायी स्मृति हेतु **'निर्धन निकेतन आश्रम'** का निर्माण प्रारम्भ किया। सत्संग हाल में बाल ब्रह्मचारी श्री बंशीधर जी महाराज का मन्दिर बनाकर उनकी मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की गयी। आप की गुरु जी में अगाध निष्ठा थी उनकी महिमा जगत में बढ़ाने के लिए उनके उपदेशों के संग्रह की पुस्तक **'साधनापथ'** तथा उनके संदेशों का प्रचार-प्रसार करने वाली **'निर्धन-संदेश' पत्रिका** का प्रकाशन किया। गुरु भक्ति प्रचार में आपने देश के कोने-कोने में कितने ही वार्षिक-सम्मेलन किये, नगर-नगर में सत्संग-मंडल स्थापित किये, कितने ही साधना-शिविर लगाये, और निर्धन निकेतन फिरोज़पुर जैसी अन्य शाखा स्थापित की, धन्य हैं ऐसे उत्तरदायित्व को निष्ठापूर्वक निभाने वाले शिष्य ऋषि केशवानन्द जी महाराज!

निर्धन निकेतन-एक देवालयस्थली-- पूज्य ऋषि जी महाराज की देवनिष्ठा उपास्य है। उन्होंने निर्धन निकेतन आश्रम में अनेक देवी- देवताओं के मन्दिर बनवा कर उन मन्दिरों में देवी-देवताओं के भव्य विग्रहों की प्राण-प्रतिष्ठा की है। सभी मन्दिर व देवी-देवताओं की प्रतिमाएं दर्शनीय हैं। आश्रम के सत्संग-भवन के मध्य 'निर्धन' उपनाम धारी श्रद्धेय गुरुदेव बाल ब्रह्मचारी श्री बंशीधर जी का मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर के दांयीं ओर श्री राधाकृष्ण मन्दिर और बांयी ओर श्री सीता-राम-लक्ष्मण जी का मन्दिर है। इसी सत्संग भवन में प्रतिदिन प्रार्थना-सभा प्रातः ५.०० बजे होती है जिसमें महापुरुषों विद्वानों के तथा पूज्य ऋषि जी महाराज के धार्मिक ग्रन्थों, गीता, रामायण, भागवत आदि पुराणों, दर्शनशास्त्रों पर प्रवचन, योगासन, प्रार्थना, भजन कीर्तन व आरती होती है।

आश्रम की नित्य-यज्ञशाला में श्री सत्यनारायण जी का, माता गायत्री देवी तथा माता सन्तोषी देवी जी का मन्दिर है। गंगाघाट पर श्री गंगामाता मन्दिर है। श्री नवदुर्गा मन्दिर के बाहर दायीं ओर श्रीगणेश जी बायीं ओर श्री भैरव जी का मन्दिर है और श्री दुर्गामन्दिर के अन्दर दांयी ओर श्री हनुमान जी और बाई और श्री शिव परिवार का मन्दिर है। निर्धन निकेतन में सभी देवी देवताओं का नित्य-प्रति पूजन-आरती एवं भोजन नियम से होता है। इन देवी-देवताओं के विशेष दिनों और त्यौहारों- शिवरात्रि, रामनवमी, जन्माष्टमी आदि को विधि-विधान से मनाया जाता है। देवी-देवताओं की ऐसी समुचित व्यवस्था पूज्य ऋषि जी महाराज की देवनिष्ठा का प्रमाण है।

समस्त देवी-देवताओं का वर्चस्व निर्धन निकेतन में है जो स्पष्ट करता है कि पूज्य ऋषि जी की आस्था सभी देवी देवताओं में है परन्तु मां भगवती के प्रति उनकी अलौकिक निष्ठा है। उन्होंने अद्वितीय प्रकार का नवदुर्गा मन्दिर बनवाया है जिसमें सिंहवाहिनी मां दुर्गा अपने अन्य आठ रूपों- वैष्णवी, नारसिंही, वाराही, ऐन्द्री, महाकाली, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी आदि के साथ विराजमान है। यही आप की साधना का केन्द्र है, शक्ति पीठ व सिद्धपीठ है। इसी कामदा-मन्दिर में उपासकों की कामनाएं पूर्ण होती हैं। यहां प्रतिदिन शास्त्रीय विधि-विधान से मां का शयनोत्थान, पूजन-अर्चन एवं भोजन होता है। प्रत्येक मंगलवार को ऋषि जी नौ कन्याओं और दो बालकों का पूजन-भोजन सदक्षिणा करवाते हैं। इस सिद्धपीठ पर गुरुपूर्णिमा के अवसर पर विशाल भगवती जागरण होता हैं। आश्विन और चैत्र नवरात्रों में श्रीदुर्गा सहस्रचण्डी यज्ञ होता है। परमादरणीय ऋषि जी ने लक्षचण्डी जैसे महायज्ञ एक बार नहीं, तीन बार किये हैं। देशभर में जगदम्बा के अनेकों ही स्थानों - चिन्तपूर्णी, ज्वालाजी,

कांगड़ा जी, वैष्णवी देवी, नैना देवी, चामुण्डा देवी, मनसा देवी, विंध्यावासिनी, बगलामुखी, भुवनेश्वरी देवी, कुंजा देवी, नन्दा देवी, ज्वाल्पा देवी, अन्नपूर्णा देवी आदि देवियों के दर्शनों को अनेक बार गये हैं। जम्मू-काश्मीर में प्रसिद्ध वैष्णव-देवी की पैदल यात्रा दो मास में की है। नीलकण्ठ महादेव, ऋषिकेश से डेढ़ किलोमीटर ऊपर भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर का जीर्णोद्धार और नवनिर्माण भी करवाया है तथा उसमें भुवनेश्वरी देवी की मूर्ति की स्थापना भी की है। इससे स्पष्ट है कि भगवती देवी में इन्हें अगाध श्रद्धा है। हरिद्वार के बिल्वकेश्वर में शिव-मन्दिर का निर्माण करवा रहे हैं जिसमें शिव-पार्वती की भव्य मूर्ति की स्थापना उत्तरायण मार्च २००० में करवायी जायेगी। **शास्त्र का कहना है कि देवालय बनवाना बड़ा पुण्य का कार्य है। आपने तो सभी देवी-देवताओं के देवालयों को निर्धन निकेतन में बनवाकर निर्धन निकेतन को स्वर्गपुरी बना दिया। इन देवी-देवताओं की असीम कृपा के सुपात्र हैं आप!**

निर्धन निकेतन-एक यज्ञस्थली--पूजनीय ऋषि जी महाराज की यज्ञनिष्ठा अद्वितीय है। उनका सन्देश है कि यज्ञानुष्ठान मानव के परम कल्याण का साधन है। यज्ञानुष्ठानों से देवी-देवता प्रसन्न होते हैं और सृष्टि में खुशहाली भर देते हैं। यजमानों को ऐहिक और पारलौकिक सुख तो देते ही हैं विशेष अनुकम्पा से मोक्ष भी प्रदान करते हैं। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है-

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमावाप्स्यथ।। (गीता.३/१२)

यज्ञों से शारीरिक, मानसिक प्रदूषण नष्ट होता है अतः बाह्य शुद्ध-सात्विक पर्यावरण बनता है जिस पर्यावरण से, वातावरण से मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। सारा संसार शान्ति की खोज में लगा है अतः उन्हें यज्ञानुष्ठान करना चाहिए। यूँ भी समूचा सृष्टिचक्र यज्ञ पर आधारित है क्योंकि सम्पूर्ण प्राणी अन्न से, अन्न वृष्टि से, वृष्टि यज्ञ से, यज्ञ वेदविहित कर्म से, वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न होता है। गीता का सन्देश है कि -

अन्नाद्भवति भूतानि, पर्जन्यादन्नसम्भवः,
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो, यज्ञः कर्मसमुद्भवः।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्,
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्य यज्ञे प्रतिष्ठितम्।। (गीता ३/१४,१५)

अतः सृष्टि की मंगल व्यवस्था के लिए यज्ञानुष्ठान परमोपयोगी है। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु श्रद्धेय ऋषि जी महाराज निरन्तर यज्ञानुष्ठान में स्वयं लगे रहते हैं और सामाजिक जनों को इस कार्य में प्रेरित किये रहते हैं। ऋषि जी ने अपने आश्रम में दो यज्ञशालाएँ बनवाई हैं - **नित्य यज्ञशाला** और **लक्षचण्डी यज्ञशाला।**

ऋषि नित्य-यज्ञशाला--इस यज्ञशाला में सायंकालीन सन्ध्या में श्री दुर्गासप्तशती के एक पाठ का नित्य-हवन होता है जिसमें आश्रमवासी साधक एवं प्रतिदिन आने-जाने वाले अतिथि-जन भाग लेते हैं। ऋषि जी आश्विन एवं चैत्र नवरात्रों में और वर्ष के मध्य में भी कई बार नित्य-नैमित्तिक ढंग से सहस्रचण्डी यज्ञ इसी नित्य - यज्ञशाला में करवाते हैं। इस सहस्रचण्डी यज्ञ में २५ पाठी और ११ हवनकर्ता पण्डित भाग लेते हैं और श्री दुर्गासप्तशती का एक हजार पाठ तथा एक हजार पाठ का दशांश (सौ पाठ) का हवन नौमी तिथि तक होता है। अन्त में ऋषि जी कुमारी पूजन करते हैं। कुमारियों की भीड़ एवं कुमारी पूजन का दृश्य दर्शनीय होता है।

ऋषि लक्षचण्डी यज्ञशाला--यह विशाल यज्ञशाला है जिसमे बहुत बड़ा यज्ञ कुण्ड है जो बारह फुट लम्बा, बारह फुट चौडा और दस फुट गहरा है। जिसमें पुज्य ऋषि जी द्वारा लोक कल्याणार्थ तीन लक्षचण्डी महायज्ञ किये जा चुके हैं, यथा-

- प्रथम लक्षचण्डी - दिनांक ०६-७-८१ से १३-१०-८१ तक
- द्वितीय लक्षचण्डी - दिनांक ०१-३-८६ से ०८-०६-८६ तक
- तृतीय लक्षचण्डी - दिनांक २०-४-६६ से २८-०७-६६ तक

प्रत्येक लक्षचण्डी यज्ञ में २०० ब्राह्मणों (पाठी तथा हवन कर्त्ता कुल मिलाकर) ने १०० दिन तक श्री दुर्गासप्तशती का एक लक्ष पाठ किया और एक लक्ष पाठ के दशांश (१०,०००) दस हजार पाठ का हवन लक्षचण्डी यज्ञशाला में किया है। अन्त में ऋषि जी द्वारा अवभृथ स्नान, कुमारी पूजन, तदनन्तर सदक्षिणा समष्टि भण्डारा किया गया। यह एक लक्षचण्डी यज्ञ है। ऐसे तीन लक्षचण्डी यज्ञ पूज्य ऋषि जी ने किये हैं जो ऋषि जी के जीवन की बहुत बड़ी ऐतिहासिक उपलब्धि है। इन यज्ञों में अखाडों के महन्तों, आश्रमों के सन्तों, महामण्डलेश्वरों, अधिकारियों, बुद्धिजीवियों ने, देश-विदेश के विद्वानों तथा भक्त लोगों ने अपनी सराहनीय उपस्थिति दी एवं आर्थिक योगदान दिया। यह सब पूज्य ऋषि जी के अपने व्यक्तित्व का प्रभाव है।

आपके आश्रम 'निर्धन निकेतन' में यज्ञानुष्ठान होते रहते हैं। यह आश्रम यज्ञ-धूम से सुवासित, स्वाहा-स्वाहा की सुखद ध्वनियों से सदैव गुंजायमान रहता है। अतः यह प्रसिद्धि हो चुकी है कि निर्धन निकेतन - एक यज्ञस्थली है।

निर्धन निकेतन - एक विद्यालय स्थली-- कहा जाता है कि 'जहां लक्ष्मी होती है वहां सरस्वती निवास नहीं करती और जहां सरस्वती निवास करती है वहां लक्ष्मी कभी निवास नहीं करती।' जैसा कि कालिदास की उक्ति है- **'निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती च।'** कैसा अनूठा योग है आप में! दोनों शक्तियों का। दोनों शक्तियां अभिन्न रूप होकर आपका वरण कर रही हैं, परस्पर होड़ लगाये हुए एक-दूसरे से बढ़कर अपना-अपना चमत्कार दिखा रही हैं। देखते हैं मां सरस्वती भी विभिन्न स्तरों वाली शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से आपके इर्द-गिर्द निवास कर रही हैं। पूज्य ऋषि जी द्वारा संचालित विभिन्न शिक्षण संस्थाएं निम्नवत् हैं-

१- ऋषि संस्कृत महाविद्यालय

२- ऋषि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय

३- ऋषि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय (बहादराबाद)

४- ऋषि बाल विद्यालय

५- ऋषि लोटस अकादमी (अग्रेजी माध्यम)

६- ऋषि पुस्तकालय

७- ऋषि नाट्यम्

८- ऋषि वैदिक अनुसंधान।

इन शिक्षण संस्थाओं का विवरण 'निर्धन निकेतन की संस्थाएं' नामक लेख में दिया गया है। मां सरस्वती की कृपा-कोर से निर्धन निकेतन एक शिक्षण स्थली बन गया है जिसमें संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, त्रिभाषा माध्यम की प्राइमरी, माध्यमिक, स्नातक-स्नातकोत्तर विभिन्न स्तर की उपयुक्त शिक्षण संस्थाओं के द्वारा क, ख, ग - अक्षर ज्ञान से लेकर शोध प्रबन्ध लेखन तक की शिक्षा प्रदान की जाती है। इन्हीं शिक्षण संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय पर्वों, धार्मिक पर्वों, विद्यालयों के वार्षिकोत्सवों, विद्वद्गोष्ठियों, जनपदीय-प्रान्तीय-अखिल भारतीय विभिन्न सम्मेलनों के अवसर पर आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों,

क्रीडा-प्रतियोगिताओं, गीतों व नृत्यों एवं नाटक मंचनों द्वारा नागरिक का चहुँमुखी विकास किया जाता है। स्वयं तो ऋषि जी सरस्वती के उपासक हैं ही परन्तु उपर्युक्त शिक्षण संस्थाओं से हजारों सरस्वती मां के आराधक पैदा हो रहे हैं। अतः निर्धन निकेतन एक विशाल शिक्षण संस्थान है जिसकी प्रबन्धिका सुश्री सत्या सचदेवा, अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्या, विशेष केन्द्रीय विद्यालय, गाजियाबाद हैं, बड़ी सूझबूझ वाली प्रतिष्ठित महिला हैं। इन शिक्षण संस्थाओं के संस्थापक, संचालक एवं अध्यक्ष स्वयं पूज्य महाराज ऋषि केशवानन्द जी हैं, जिन्हें शिक्षा से बड़ा लगाव है। बड़ी रुचि से संस्थाओं की प्रबन्ध व्यवस्था करवाते हैं, संस्थाओं की गतिविधियों पर स्वयं नजर रखते हैं, उनके इस सक्रिय योगदान से ही ये शिक्षण संस्थाएं समाज में नाम पा रही हैं और शिक्षा विभाग में अपना स्तर बनाये हुए हैं। प्रत्यक्ष है कि पूज्य ऋषि जी माँ सरस्वती के वरद पुत्र हैं।

ऋषि जी की तीर्थ निष्ठा-- पूज्य ऋषि जी की तीर्थ निष्ठा अनुकरणीय है। आपने भारत का कोई ही तीर्थ ऐसा होगा जिसका आपने दर्शन न किया होगा। चारोंधाम, सातों पुरियों, शक्तिपीठों, अमरनाथ, गंगासागर आदि तीर्थों की यात्राएं एकबार नहीं अनेक बार की हैं। भक्तगणों को साथ लेकर गंगासागर प्रतिवर्ष जाते हैं -यह मैं ३५ वर्ष दे रख रही हूँ। गंगासागर के बारे में कहावत है- 'और तीर्थ बार-बार, गंगासागर एक बार'; परन्तु इस कहावत से आप परे हैं जो प्रतिवर्ष गंगा सागर जाते हैं। इन कठिन यात्राओं की यातनाएँ सहने में आप का शरीर ही फौलादी नहीं हुआ, आप का मन भी फौलादी हो गया है जो एक यात्रा के बाद दूसरी यात्रा के लिए ऋषिजी को प्रेरित किया करता है - बड़ा अदम्य उत्साह है ऋषिजी का!

भारतीय धार्मिक-संस्कृति में तीर्थ-यात्रा का बहुत महत्त्व है। कहा है कि तीर्थ यात्रा तप का, संयम का, मोहममता-त्याग का एक प्रकार है। इससे भी प्राणी का अन्तःकरण शुद्ध होता है। शुद्ध अन्तःकरण में आत्मस्वरूप परिलक्षित होता है। ऐसी शास्त्रीय धारणा है और यह तथ्य ही है। प्राचीन समय में सुव्यवस्थित मार्गों तथा समुचित वाहनों का नितान्त अभाव था। वानप्रस्थी लोग तीर्थ करने जाते थे, यह सोच कर कि पुनः घर पर शायद ही लौट आना हो। जो तीर्थ से लौटते थे, उनके दर्शनों को लोग उमड़ पड़ते थे। उनकी चरणधूल के स्पर्श करने को लोग दौड़ पड़ते थे कि वह तीर्थ-तप से तपस्वी, महात्मा बन गया है। इसी निष्ठा से तीर्थ करने वाले अत्यधिक भाग्यशाली और अपने साथ असहायों, वृद्धों को तीर्थ करवाने वाले परम भाग्यशाली, परोपकारी व्यक्ति माने जाते है। कहा भी है-

तीर्थां नू जान जेडे अति बड़भागी, तीर्थ करान जेडे परम बड़भागी,
ऋषि जी दोनों ही पुन्न कमाये, कमाये सेहरा ऋषि महाराज नू
बद्री-केदार दर्शन पाये, पाये जी सेहरा ऋषि महाराज नूं,
पैदल गये, पैदल आये, आये जी सेहरा ऋषि महाराज नू

पूज्य ऋषि जी महाराज परोपकारी पुण्यात्मा है जिन्होंने उत्तराखण्ड के चारोंधाम - बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री की जोखिमभरी दुर्गम पैदल यात्राएं की ही नहीं हैं अपितु अपने साथ बच्चों-बूढ़ों, असहायों-व्यक्तियों को करवायी भी हैं। मैं स्वयं इन सभी पैदल यात्राओं में शामिल थी। रास्ते में जिस गांव, शहर में पड़ाव डालते, वहां की जनता में धर्म का प्रचार प्रसार करते जाते थे। रास्ते में कहीं पेड़ लगवाएं, स्कूलों में कहीं नलके लगवाये, और कहीं पंखे लगवाये। तीर्थयात्रा धर्मप्रचार का उत्तम माध्यम है।

श्रीबद्रीनाथ की तीर्थयात्रा-- वर्ष १९८१ में मई-जून के ३३ दिन में पूर्ण की है, जिसमें छात्र-अध्यापक भक्तगण बच्चे-बूढ़े कुल मिलाकर ४० व्यक्ति थे।

श्रीगंगोत्री-यमुनोत्री धाम की पैदल यात्रा-- वर्ष १९८५ मई जून में ३८ दिन में पूर्ण की थी, जिसमें बच्चे-बूढ़े कुल मिलाकर ३४ व्यक्ति थे।

श्री केदाननाथ धाम की पैदल तीर्थ यात्रा--वर्ष १९८८ मई जून में २६ दिन में की थी जिसमें कुल मिलाकर ३८ यात्री थे।

श्री वैष्णवदेवी की पैदल तीर्थ यात्रा-- वर्ष १९८० सितम्बर-अक्टूबर में ५८ दिन में की थी। हरिद्वार से बैष्णव देवी तक और वैष्णव देवी से हरिद्वार तक १८०० कि०मी० की पैदल यात्रा थी और उस समय अखण्डज्योति स्वरुपा वैष्णवी देवी को गुफा से अपने साथ हरिद्वार तक लाये थे। आज भी वह ज्योति नवदुर्गा मन्दिर में प्रदीप्त है। उसी का तप-प्रताप निर्धन-निकेतन का संबल है।

नारी के प्रति दृष्टिकोण-- नारी-उत्थान आप का विशेष कर्म रहा है। आप ने नारियों के शैक्षिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक स्तर को उन्नत किया है। अपनी प्रेरणा से उन से अच्छे-अच्छे कार्य करवाये हैं तथा उनको उच्च्व भूमिकाओं में स्थित किया है। इनकी दृष्टि में नारी शक्ति है। यदि उसे अपनी शक्ति का आभास करा दिया जाये, उसे सही दिशा-निर्देश दिया जाये तो

वह गार्गी-लीलावती जैसी विदुषी और मीराबाई जैसी संत तथा कवयित्री, जोधपुरी बेगम और लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगना तथा सती-सावित्री जैसी धर्मपरायण-पतिव्रता बन सकती हैं। अतः नारी को उसकी प्रतिभा अनुरूप चेता कर उसे उचित स्थान तक पहुँचा देने की चेष्टा की जानी चाहिए। इसी उदात्त दृष्टिकोण के कारण वे सदैव नारी को सजग करते रहे हैं और सन्देश देते रहे हैं-

नन्हीं बेटियो! दुर्गा दा रूप बनो,
हथ साधना दी तेज तलवार ले लो।
काम-क्रोध राक्षस दे मारने जूँ,
मन-शेर ते तुस्सी असवार हो लो।।
तुस्सी ताँ हो अम्बा, अपना आप जानो,
ते सतयुग लयावन दा, आप ही भार ले लो।
'केशव' विषयाँ विच न भुल फसयो,
ते मेरी शिक्षा दा इतना सार ले लो।।

"नारी तुम शक्ति स्वरूपा हो। तुम्हें कुछ बनना है। तुम्हें अपने जीवन में कुछ कर गुजरना है अतः अपनी शक्ति पहचानों और अपने आपको सँवारो और लोक-कल्याण के कार्य करो।" आपकी इस प्रेरणा से बहुत-सी नारियों ने अपने आपको साधना के क्षेत्र में ढ़ाला। अपनी शक्ति भर अपना सुधार किया तथा समाज की सेवा में अपना जीवन लगा दिया। *'अहर्निशं सेवामहे'* के जीते-जागते निद्रर्शन हैं सुश्री देवांजी, श्रीमती चाँदरानी, श्रीमती कमलादेवी और भी बहुत सी माताएँ - स्व. श्रीमती शान्ता देवी, श्रीमती सुदर्शना देवी (भोली माई), श्रीमती शान्तिदेवी, श्रीमती मायावन्ती जिन्होंने अपने गुरुदेव की आज्ञानुसार साध-संगत की सेवा में अपना जीवन लगा दिया और सफल बना लिया शिक्षा जगत् की सेवा में लगी हुई मेरी बहुत-सी बहिनें - सुश्री शकुन्तला अरोड़ा, सुश्री सत्या सचदेवा, सुश्री सावित्रि माटा, डा. सुमन अग्रवाल, डा. वीना बजाज, सुश्री तृप्ता बजाज, सुश्री निशा अरोड़ा, अपने जीवन को सार्थक करने के प्रयास में हैं। ये सब बहिनें आज समाज में, अध्यात्मक्षेत्र में जो कुछ भी हैं, वह सब पूजनीय ऋषिजी महाराज की प्रेरणा का परिणाम है।

मैं स्वयं भी एक सामान्य परिवार की और सामान्य स्तर की सामान्य पत्थर-सी सामान्य बालिका थी, जिसे श्रद्धेय गुरुदेव ने खूब तराशा और वह आकार दिया जो आज मेरा है। मेरे गुरुदेव तो हैं सच- ***'वह पारस जो छू दे तो सोना कर दें लोहे को'।***

जीवमात्र में नैसर्गिक प्रेम-नैसर्गिक प्रेम समदर्शी महापुरुष में ही हो सकता है। समदर्शिता सब प्राणियों में एक ही शक्ति का आभास कराती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है-

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

जो विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल में एकदृष्टि रखता है वह पण्डित है, विवेकशील है और समदर्शी है। निर्धन निकेतन में मनुष्य मात्र की सेवा तो होती ही है, यहां जीवमात्र की सेवा का भी निर्देश मिलता है; क्योंकि पूज्य ऋषि जी को जीवमात्र के प्रति नैसर्गिक प्रेम है। देखते हैं कि पूज्य ऋषि जी गौशाला में प्रतिदिन जाते हैं और अपने हाथों से गोमाताओं को कभी आटे का पेड़ा, तो कभी गुड़ की ढेली खिलाते हैं तथा उनका सिर पलोसते हैं। गोओं के सुख-दुःख को अपने सुख-दुःख का-सा समझते हुए गोशाला में सर्दी में हीटर और गर्मी में कूलर-पंखों का इन्तजाम करते हैं। आपके दर्शन से गोमाताएं बड़ी प्रसन्नचित्त रहती हैं और परिणामतः अधिक दूध देती हैं; क्योंकि कभी-कभी ग्वाला आदरणीया देवा जी से कहता है, "माता जी ! लगता है महाराज जी यहाँ नहीं हैं क्योंकि गाओं ने पूरा चारा नहीं खाया और दूध भी कम दिया है। जिस दिन उन गोमाताओं को ऋषि जी महाराज के दर्शन नहीं होते हैं वे गायें ऐसे ही तंग करती हैं। इसलिए गुरुजी को कहीं जाना हो तो मेरी गोशाला में होकर जाया करें। ऐसी प्रार्थना महाराज जी से कर दीजिए।" ऋषि जी जब गौशाला में जाते हैं तो सभी गायें बच्चे-बछड़े उठ कर खड़े हो जाते हैं, लगता है शिष्टाचारपूर्वक ऋषिजी का स्वागत करते हैं।

गाएं भी कितनी संवेदनशील हैं। एक दिन की बात है कि गोशाला में एक नयी गाय आयीं। नये स्थान के कारण दिनभर रम्भाती रही। ऋषि जी उसे देखने चले गये और नयी गाय को पुचकारने लगे। जिन गाओं को रोज़ पलोसते थे उनमें से एक गाय उचक-उचक कर उनकी ओर सिर उठाती रही परन्तु महाराज जी का ध्यान नयी गाय में ही लगा था। मैं यह देख रही थी। बाद में नयी गाय से निवृत्त होकर जब ऋषि जी दूसरी गाओं को गुड़ खिलाने लगे तो उनमें से जो उचक-उचक कर ऋषि जी की ओर हो रही थी उसे जब ऋषिजी ने प्यार देने को हाथ बढ़ाया तो उस गाय ने उनकी ओर मुँह फेर लिया। ऋषिजी बोले, अरी! तुम तो बहुत मचल-मचल कर प्यार लेती हो और गुड़ खाती

हो, आज तुम्हें क्या होगया? – देखा तो उसकी आँखों से आँसुओं की धार बह रही थी। ऋषिजी ने आगे होकर उस गाय का सिर पलोसा, पुचकारा तब कहीं जा कर उसने गुड़ खाया। समदर्शी व्यक्ति के प्रति गायें जैसे जीवों को भी बहुत प्रेम होता है।

पूज्य ऋषि जी में समदर्शिता बेमिसाल है कि उनके द्वार पर श्वानसदृश्य प्राणियों को भी प्रश्रय मिलता है और उनके भरण-पोषण की, बिमार होने पर उचित चिकित्सा की पूर्ण व्यवस्था होती है। *डण्डे मार कर इन्हें भगाने वालों से ऋषि जी का उपदेश होता है "मत मारो, यह भी जीव है।* इनमें भी आप जैसी आत्मा है। इनमें भी ईश्वरांश है। आने वाले जन्मों में ऐसा न हो कि यह भी हम लोगों के साथ ऐसा ही व्यवहार करें? *प्रभु की लीला बड़ी विचित्र है।* संवेदनशील बनो।"

पूज्य गुरुवर सर्प जैसे विषैले हिंसक जीव को भी मारने नहीं देते। यदा-कदा आश्रम में, बगीचे में या गंगाघाट पर सर्प निकल आये तो वे कहते हैं- 'मारो नहीं, भगा दो। सर्प जैसे जीव के प्रति भी यदि आप द्वेषबुद्धि न रक्खें तो वह आपको कुछ नहीं कहेगा। समस्त जीवों में ईश्वरीय रूप निहारो"। यही उनका सन्देश है कि समदर्शी बनो।

ऋषि जी उच्चकोटि के समदर्शी हैं; क्योंकि फल-फूल रहे लता-गुल्म-वृक्षों में भी विचर रहे चेतन-तत्त्व से उन्हें लगाव है। ऋषिजी वृक्षों को कटवाने के पक्ष में नहीं हैं। यही कारण है कि गंगाघाट पर निर्मित उनके कक्ष में 'बिल्व' का पेड़ और आश्रम के बीचों-बीच बने उनके पूजा कक्ष में 'आम' का पेड़ आज भी लहरा रहा है। ये सब सम्पूर्ण जीव मात्र में ऋषि जी के नैसर्गिक प्रेम के प्रमाण हैं।

सनातन धर्म के संरक्षक ऋषि जी– सनातनधर्म के मूल तत्त्व गौ, गुरु, गंगा, गीता और गायत्री हैं। इन पंच 'गकारो' की निष्ठा जहां है वहीं सनातन धर्म अवस्थित है। निष्ठा का व्युत्पत्यर्थ है 'नितरां स्थिति निष्ठा' अर्थात् चित्त की असीम प्रेम की स्थिति का नाम निष्ठा है जिसका भावार्थ है प्रीति, भक्ति, श्रद्धा, पूज्यभाव इत्यादि। गो में पूज्यभाव गोनिष्ठा, गुरु में अनन्यभक्ति गुरुनिष्ठा, गंगा में पूज्य भाव गंगानिष्ठा, गीता में अनन्य प्रीति गीता-निष्ठा, और गायत्री में पूर्ण श्रद्धा गायत्रीनिष्ठा है। सनातन धर्म की घोषणा है कि ये निष्ठाएं ही मानव कल्याण का, भगवत्प्राप्ति का एकमात्र साधन् है। साधन के बिना साध्य की सिद्धि नहीं होती। अतः साधन साध्य से प्रथम है इसलिए **निष्ठा का दर्जा**

भगवान से भी ऊपर है। इन निष्ठाओं से ओतप्रोत व्यक्ति ही सनातन धर्मावलम्बी महापुरुष होता है। ऐसे हैं महापुरुष ऋषि केशवानन्द जी महाराज! जिन्होंने सनातन धर्म के इन तत्त्वों का संरक्षण अपने निर्धन निकेतन में कर रक्खा है।

गोनिष्ठा– ऋषिजी की गोनिष्ठा के प्रमाण हैं – 'ऋषि गोशाला' हरिद्वार एवं 'ऋषि गोशाला' बहादराबाद। यहां पर गाय की 'गो-माता' के रूप में सेवा-पूजा होती है। सुव्यवस्थित ढंग से उनका भरण-पोषण होता है। ऋषिजी ने इन गायों के इलाज के लिए अलग से चिकित्सक का और इनकी सेवा में एक गोप-परिवार का प्रबन्ध कर रक्खा है। यहां पर 'गोरक्षण' के साथ-साथ गोसंवर्धन भी होता है। दूध देने वाली गायों की सेवा तो होती ही है विशेष बात है कि निर्धन निकेतन में दूध न देने वाली गायों की भी सेवा होती है। एक बार की बात है कि आश्रमस्थ किसी माता ने कहा - 'ऋषिजी जो गाएं दूध नहीं देती उन्हें गोशाला से निकाल दो क्योंकि उन्हें रखने से मनो-टनों चारा व्यर्थ जाता हैं जो आश्रम पर बोझ है।' ऋषिजी आराम से बोले, 'देवी तुम बूढ़ी हो गई हो, आश्रम का कुछ संवार भी नहीं रही हो, तुम्हें आश्रम से बाहर कर दें तो कैसा रहेगा?' इस पर वह माता खामोश हो गई। यह बात स्पष्ट करती है कि गाय दूध दे अथवा न दे, आश्रम को कोई लाभ पहुँचाये अथवा न पहुँचाये परन्तु गोरक्षा एवं गो-सेवा होनी चाहिए ऋषि जी का सेवकों को यही संदेश है। ऋषि - गोशाला में गाएं आजीवन आश्रय पाती हैं चाहे कितनी ही वृद्ध क्यों न हो जाए। यह ऋषि जी की गोनिष्ठा है जिसके आचरण के लिए वह सबको प्रेरित करते हैं।

गुरुनिष्ठा– गुरुनिष्ठा के बिना मानव कल्याण असम्भव है। मानव संसार के दुःखत्रयाभिघात से पीड़ित है। इन दुःखों से छुटकारा तत्त्वज्ञान से सम्भव है। तत्त्वज्ञान गुरु से ही प्राप्त होता है। यदि शिष्य तत्त्वज्ञानी गुरु के प्रति श्रद्धावान्-निष्ठावान् है तब यह ज्ञान सहज प्राप्त होजाता है। गीता में कहा भी है- *'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'* । गुरुनिष्ठा के बल पर पूज्य ऋषि जी तत्त्ववेत्ता हुए हैं। वे स्वयं कहते हैं "मैं जो कुछ हूँ अपने गुरु महाराज की अनेकानेक कृपाओं का प्रसाद हूँ।" पूज्य ऋषि जी अपने गुरु जी के जीवनकाल में तो निष्ठावान थे ही, तभी उनके सुयोग्य उत्तराधिकरी बने। परन्तु हम तो अब देख रहे हैं कि कितने गुरुनिष्ठ हैं ऋषिजी! जिन्होंने अपने गुरुदेव की पुण्यस्मृति में बनाये आश्रम का नाम उनके उपनाम 'निर्धन' से निर्धन-निकेतन रक्खा। अपने गुरुदेव श्री बंशीधर जी की शिक्षाओं

और संदेशों की प्रचार-साधिका पत्रिका का नाम 'निर्धन संदेश' रक्खा। उनके गुरुदेव बाल ब्रह्मचारी थे, अतः निर्धन-निकेतन के ट्रस्ट का नाम 'श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन' भी उनके नाम से बनाया गया। पूज्य ऋषि जी की गुरुनिष्ठा तब चरम-सीमा पार कर गई जब उन्होंने कहा- "निर्धन निकेतन की देश-विदेश में कितनी ही शाखाएँ क्यों न बन जायें, उनके संस्थापक, संचालक, एवं अध्यक्ष कितने ही उच्चकोटि के महापुरुष क्यों न हो जायें, वे सब तप-त्याग की मूर्ति श्रद्धेय गुरुवर श्री बंशीधर महाराज जी की मूर्ति-प्रतिष्ठा कर उनके आदर्शों और सन्देशों पर चलेंगे, जैसे सिक्खों के अन्य सब गुरु श्रीगुरुनानक देव जी को, उदासीन सम्प्रदाय के अन्य सभी महापुरुष श्रीचन्द जी को आदर्श मान कर चल रहे हैं"। गुरुसत्ता में अपनी सत्ता विलीन करने वाले पूज्य ऋषिजी का उपर्युक्त आचरण गुरुनिष्ठा का मूक उपदेश है जिस पर चलकर स्वयं मानव को अपना कल्याण करना चाहिए।

गुरुनिष्ठा से गुरुदेव सदा के लिए शिष्य से बन्ध जाते हैं। शिष्य कहीं, किसी भी स्थिति में, कैसे भी संसार में विचरण कर रहा हो गुरुदेव को सब खबर रहती है। इसलिए वे शिष्य को आने वाली विपत्ति से, स्थिति से सावधान करते रहते हैं। ऋषिजी ने स्वयं लिखा है - 'गुरुदेव सूक्ष्म रूप से मेरे अंग-संग रहते हैं। एक बार मैं चिन्तपुरणी माता के दर्शन को गया, मस्ती में पैदल चल रहा था, मुझे लगा किसी ने मुझे उठाकर आगे बढ़ा दिया है। पीछे मुड़कर जैसे ही मैंने देखा तो, १०-१२ फुट का गहरा खड्डा था साथ ही अट्टहास सुनायी पड़ा तब आवाज आयी - 'केशव' सड़क देखकर चलो। वह अदृष्ट-शक्ति गुरुदेव ही थे क्योंकि उन्होंने 'केशव' पुकारा और 'केशव' मुझे वे ही कहते थे। मेरा शरीर रोमांचित हो गया। मैंने सोचा यदि आज गुरु जी न बचाते तो मैं पंचतत्त्व को प्राप्त हो जाता।' ऐसे ही एक बार मैं अज्ञातवास में चलते-चलते बहुत थक गया और लक्ष्य स्थान दूर था। पत्थरों पर लेट गया। थकान के कारण शारीरिक वेदना इतनी थी, सोचा कि कोई होता तो थोड़ा टाँगों को दबा देता। विचारा ही था कि लगा मेरी टाँगों को कोई रस्सी सें निपीड़ रहा है। थकान इतनी थी कि गर्दन उठाकर देखा नहीं कि कौन उपकार कर रहा है। दबाने के १०-१५ मिनट बाद कुछ होश आया तो मुड़कर देखा कि मेरी टाँगों से एक मोटा-लम्बा साँप सरकने लगा। मैं चीख उठा। इतने में सर्प गायब। यह सब गुरु-कृपा की निराली अदा है। गुरुनिष्ठा अलौकिक रंग लाती है कि प्रकृति (सर्परूप) भी गुरुनिष्ठ शिष्य की सहायता करती है।

गंगानिष्ठा- गंगानिष्ठा के बारे में किंवदन्ति है-

"काहू ने न तारे जेते गंगा तूने तारे हैं।
जेते तूने तारे तेते नभ में न तारे हैं।।"

ब्रह्म के तीन स्वरूप - निराकार, नीराकार और नराकार हैं। गंगा उसका नीराकार स्वरूप है। इसलिए गंगा के ब्रह्मद्रव के नामोच्चारण, मार्जन और स्नानादिक से पापियों का उद्धार होता है। अतः वह पतित पावनी है। इसने असंख्य पापियों को भव पार उतार दिया है। भगवती गंगा भारतीयों की जीवन-धारा में इस प्रकार घुलीं मिली है कि वह उससे अलग नहीं की जा सकती। भारतीय व्यक्ति प्रतिज्ञा में गंगा का साक्ष्य, दूसरों को विश्वास दिलाने में गंगा की सौगन्ध, प्राणोत्सर्ग में गंगा का सानिध्य, भव-तरण में गंगा का स्मरण आदि को प्रामाणिक मानता है और भी गंगा पवित्रता का प्रतीक है। अतः अनेक पवित्र पदार्थो की, ओर अधिक पवित्रता बतलाने में गंगा शब्द का ही प्रयोग किया जाता है, यथा ज्ञान-गंगा, प्रेम-गंगा इत्यादि। गंगा सूर्य के समान प्रत्यक्ष देवता है। इस देवता में जो जन श्रद्धा रखता है, पूज्यभाव रखता है, उसके ब्रह्मद्रव (जल) में स्नान करता है, ब्रह्मद्रव की अर्चना-पूजा करता है वह निष्ठावान व्यक्ति इस संसार पारावार से तर जाता है ऐसी वेदादि शास्त्रों की घोषणा है।

पूज्य ऋषि जी की गंगानिष्ठा अनुकरणीय है। वे गंगा को गंगामाता के रूप में पूजा-अर्चना करते हैं। दूध-पेड़ा का भोग लगाते हैं। निर्धन निकेतन घाट पर जूता-चप्पल ले जाना मना है, साबुन से स्नान करना मना है, कपड़ा धोना मना है, गंगा घाट पर फलादि खाकर छिलके फैंकना मना है; जनता को गंगाघाट को स्वच्छ रखने का निर्देश आदि इंगित करते है कि ऋषि जी की गंगा में अनन्य निष्ठा है। गंगा भगवती के प्रति ऋषिजी की अगाध निष्ठा का एक और उदाहरण है कि उन्होंने निर्धन निकेतन घाट पर गंगा माता का सुन्दर मन्दिर बनवाया है और उसके भीतर मकर वाहिनी गंगा की भव्य प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा की है। प्रतिदिन दोनों समय आरती व भोग लगता है। 'गंगा दशहरा' अथवा गंगा जयन्ती के अवसर पर गंगा की विशेष पूजा होती है। गंगा दशहरा को कभी-कभी विद्वद्गोष्ठी का भी आयोजन होता है। यह सब कार्य पूज्य ऋषिजी की गंगा-निष्ठा के प्रमाण हैं। उनके इस आचरण से भक्तजन भी गंगा लाभ लेते हैं। प्रतिवर्ष गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर हरकी पैड़ी पर पूज्य ऋषि जी सायंकालीन गंगापूजन व आरती करते हैं और इस कार्य के लिए अपने हजारों भक्तों के साथ वे आश्रम से हरकी पैड़ी तक पैदल शोभायात्रा से भगवती गंगादेवी का गुणगान करते चलते

हैं। पूज्य गुरुवर गंगानिष्ठा के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उन्होंने गंगोतरी से लेकर गंगासागर तक की यात्रा अनेक बार की है। कभी स्थलीय वाहनों से तो कभी वायुयानों से; कभी समुद्री जहाजों से तो कभी पैदल ही भगवती गंगा के दर्शनीय स्थानों की यात्रा की है तथा प्रयागराज तीर्थ आदि में पुण्य स्नान किये हैं। उनकी धारणा है –"सर्वतीर्थमयी गंगा।" इसलिए गंगाद्वार हरिद्वार में निवास करते हैं

गीतानिष्ठा– गीतानिष्ठा जीव के कल्याण का निश्चित उपाय है क्योंकि महाभारत के युद्धपर्व में किंकर्तव्य विमूढ़ अर्जुन ने जब श्रीकृष्ण से पूछा कि स्वजनों से युद्ध करना उचित है अथवा अनुचित, मेरे कल्याण का कौन-सा मार्ग है? – *''तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्''* अर्जुन के इस व्यामोह की निवृत्ति के व्याज से समस्त जीवों के अज्ञान-तिमिर को नष्ट करने वाला श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिया, उसे सुनकर अर्जुन बोला, *''स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्यते वचनं तव''* – यह कह कर अर्जुन अपने कल्याण के मार्ग -क्षत्रियकर्म- में जुट गया। **अतः भगवद्गीता यह सन्देश देती है कि कर्मयागी बनो। पूज्य ऋषिजी इस धारणा के पक्षधर हैं। वह स्वयं कर्मयोगी हैं और जनता जनार्दन को कर्मयोगी बनने की प्रेरणा देते हैं।** गीता का स्वाध्याय प्रतिदिन करते हैं और करवाते हैं। सत्संगभवन में प्रतिदिन गीता का पाठ व प्रवचन होता है। छात्रों को, आश्रमस्थ जनों को, आगतातिथियों को अर्थ सहित गीता कण्ठ करवायी जाती है। कण्ठस्थ कर गीता सुनाने वाले छात्रों को पूज्य ऋषिजी पुरुस्कृत करते हैं। प्रतिदिन के गीताभ्यास से छात्र गीता-जयन्ती पर आयोजित विविध-गीता प्रतियोगिताओं से चल-अचल वैजयन्ती जीत कर लाते हैं। ऋषिजी में गीतानिष्ठा इतनी अपार है कि वह कहते हैं कि सत्संग-भवन में प्रतिदिन गीतापाठ होगा, भले ही एक भी श्रोता न हों। अतः नियमित रूप से गीता पाठ होता है। आश्रम में अट्ठारह अध्यायी गीता के अनेकों अनुष्ठान हो चुके हैं। **"सर्ववेदमयी गीता"** वेदादि सर्वशास्त्रों की सारभूता गीता का पठन-पाठन ही मनुष्य का कर्तव्य है। अन्य शास्त्रों के विस्तार में पड़ने की कोई जरूरत नहीं, कहा भी है–

गीता सुगीता कर्तव्या, किमन्यैशास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिसृताः।।

ऋषिजी की धारणा हैं कि यदि मनुष्य गीता, श्रीदुर्गासप्तशती और लघुसिद्धान्त कौमुदी का गम्भीरता से अध्ययन कर ले तो उसे लोक और परलोक का अभ्युदय प्राप्त हो सकता है। मैंने स्वयं भी अनुभव किया है कि इस **'ऋषि-त्रयी'** का अनुशीलन परम कल्याणप्रद है। डंके की चोट पर

विद्वानों ने कहा भी है - *'एकं शास्त्रं देवकी पुत्रगीतम्'* और भी *'गीतागंगोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते'*। भगवान् स्वयं कहते हैं-

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि, गीता मे परमं गृहम्।
गीता मे परमा विद्या, ब्रह्मरूपा न संशयः।।

ब्रह्मस्वरूपा, पराविद्या गीता में मैं हूँ जो जन श्रद्धाभक्ति से गीता का श्रवण-श्रावण, पठन-पाठन एवं मनन-चिन्तन करता है मैं उसे प्राप्त होता हूँ। अतः ऋषि जी का सब को सन्देश है कि गीतानुरूप आचरण करो, सच्चे कर्मयोगी बनो।

गायत्री निष्ठा-- गायन्तं त्रायते इति गायत्री। गायत्री अपने गान करने वाले की, जप करने वाले की रक्षा करती है। गायत्री महाविद्या है, महामन्त्र है। शास्त्रों में निष्ठापूर्वक इसके जप का बड़ा माहात्म्य बताया गया है। योगीराज याज्ञवल्क्य जी कहते हैं-

सप्तभिः पावयेद्देहं दशाभिः प्रापयेद् दिवम्,
विंशत्यावर्तिता देवी नयते चेश्वरालयम्।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तारयेज्जन्मसागरात्,
तीर्णो न पश्यति प्रायो जन्ममृत्युं हि दारूणम्।।

प्रतिदिन सात बार जप करने से गायत्री देवी शरीर को पवित्र करती है। दस बार के जप से स्वर्गलोक की प्राप्ति कराती है। बीस बार जप करने से शिवलोक में पहुँचाती है और एक सौ आठ बार के जप से जन्म-समुद्र से पार कर देती है। जो इससे पार हो जाता है वह पुनः जन्म-मृत्यु के दुःख को नहीं देखता। और भी अनायास होने वाले हिंसा दोष से मुक्त कराने वाले 'पंचयज्ञ' के विधान की तरह 'गायत्री जप' भी उक्त हिंसा दोष से मनुष्य को मुक्ति दिलाता है। अतः गायत्री जप में ही जीवन की सार्थकता है।

वेदमाता गायत्री देवी में श्रद्धेय ऋषि जी महाराज की अगाध निष्ठा है। निर्धन निकेतन आश्रम में उन्होंने गायत्री देवी की प्राण-प्रतिष्ठा की हुई है। अनेक गायत्री पुरश्चरण किये हैं। सायंकालीन सामूहिक सन्ध्या में छात्रों द्वारा गायत्री जाप करवाया जाता है। ऋषि जी स्वयं गायत्री जप करते हैं तथा अपने शिष्य-मण्डल को गायत्री जाप की उपादेयता बताते हुए गायत्री जाप की प्रेरणा देते हैं।

इस तरह पूज्य गुरुवर ने सनातन धर्म के उक्त तत्त्वों को अपने आचरण में लाकर और दूसरों से उक्त निष्ठाओं में निष्ठा बनवा कर सनातन धर्म को पूरा संरक्षण दिया है अतः आप सनातन धर्मावलम्बी महापुरुष हैं।

संकल्पसिद्ध ऋषि– ऋषि जी मूलतः संकल्प-विकल्प शून्य व्यक्ति हैं। उनका जीवन ही उनकी निष्काम कर्म की कथा है। यह सब कुछ होते हुए भी ऋषि ने यदि कुछ चाहा तो वह हो कर ही रहता है। ये देवालय, विद्यालय, यज्ञ, महिला-समुन्नति, विशाल आश्रम, दुर्गम यात्राएं आदि उनके सकल्पों की सिद्धि के प्रत्यक्ष परिचायक है। सचमुच ऋषि जी ने पहिले तो कुछ चाहा ही नहीं और यदि कुछ चाहा तो वह अवश्य हुआ।

लोग आप से कहते हैं- "देखो नाम के निर्धन कार्य राजोचित" जब आपके पास पैसा नहीं तो इतने बड़े-बड़े कार्य कैसे सम्पन्न करते हैं। तब आपका कहना होता है- 'बस मां की जेब और मेरे हाथ हैं।' कैसा अनूठा अटल विश्वास है आपका! वास्तव में ऋषि जी हैं तो निर्धन ही, क्योंकि इनके पास कोई संचित धनराशि नहीं है। आज आश्रम में रसद-पानी है तो कल की कोई चिन्ता नहीं, और जब मां भगवती के विश्वास बल से बड़े-बड़े कार्य प्रारम्भ कर देते हैं तो आपकी सच्ची निष्ठा को देख कर मां को पूरा प्रबन्ध करना ही पड़ता हैं। पैसा पास न होने पर भी 'लक्षचण्डीयज्ञ' जैसे गुरुतम कार्य विधिपूर्वक निर्विघ्न सम्पन्न हुए हैं। आश्चर्य इसलिए नहीं क्योंकि आपकी भगवतीस्वरूपा-शक्ति आपके कार्य सम्पन्न करती आयी हैं और करेंगी। सच्चे उपासक सदैव संकल्पसिद्ध होते हैं।

निष्काम कर्मयोगी– संन्यासी होकर भी आप बहुत बड़े गृहस्थ हैं और गृहस्थ होकर भी आप बड़े संन्यासी हैं। घर छोड़कर निष्काम भाव से धर्म प्रचार और विश्व-कल्याण मे लगे हुए हैं। अतः आचरण से आप संन्यासी हैं किन्तु संस्कृत विद्यालय के छात्र, अध्यापक व अन्य सभी कर्मचारी, यात्री और अतिथि लोग आदि के रूप में आपका पूरा परिवार है जिसके भरण-पोषण हेतु नून-तेल लकड़ियां आदि समस्त गृहस्थ कार्यों के प्रबन्ध में लगे रहते हैं। अहर्निश अन्नपूर्णा-भण्डारा आपका खुला रहता है। सब प्रकार के अतिथियों का आप सत्कार करते हैं। अतः आप सबसे बड़े गृहस्थ हैं। सामान्यतः एक संन्यासी गृहस्थ नहीं बन सकता और एक गृहस्थ संन्यासी नहीं हो सकता परन्तु आप के दोनों रूप हैं कारण कि आप दोनों आश्रमों के क्रिया-कलापों में निष्कामभाव से लगे हुए हैं अतः आप निष्काम कर्मयोगी हैं।

सब के शुभचिन्तक- आप सन्त महापुरुषों विद्वानों, ब्राह्मणों और अध्यापकों को हृदय से बहुत मानते हैं। पूर्ण सत्कार देते हैं, बशर्ते कि वे अपने कर्म में निष्ठावान हों। छात्रों के प्रति भी मां जैसा वात्सल्यपूर्ण हृदय और पिता जैसा अनुशासन रखते हैं। सभाओं में, मञ्चों पर अथवा भाषणों में कभी-कभार ऋषि जी का क्रोधाभास लोगों को दृष्टिगत होता है परन्तु वे लोग विचारोपरान्त उनके क्रोध के रहस्य को समझ जाते हैं कि वे किसी भी चालाकी या हृदयहीन बात का समर्थन नहीं कर पाते हैं अतः अनुचित पर ऋषि जी को रोष आता है। रोष कोई दुष्प्रवृत्ति नहीं बल्कि दुष्प्रवृत्तियों का नियामक है। रोष को वेद में 'मन्युः' कहा है। वैदिक साधक का आराधक यज्ञवेदी पर बैठ कर ईश से प्रार्थना करता है -

"हे प्रभो ! मन्युरसि मन्युमयि देहि।" (वेद)

तुम मन्यु स्वरूप हो मन्यु मुझे भी प्रदान करें जिससे संसार की दुष्प्रवृत्तियों का दमन करने में मैं समर्थ रहूँ। यूँ भी अनुचित्त पर महापुरुषों ने ध्यान न दिया तो समाज और पतनोन्मुख होगा और अनुशासन हीनता और भी बढ़ती जायेगी। पूज्य ऋषि जी अध्यापकों और ब्राह्मणों के गौरवमय जीवन को देखना चाहते हैं जैसाकि वह अतीत में था। वास्तव में तो हृदय से वे सब के हितचिन्तक हैं। सच्चे ब्राह्मण, विद्वान, तपस्वी, कर्मठ एवं असहाय व्यक्तियों के लिए ऋषि जी का तन-मन-धन न्यौछावर है। वे विश्व हित की धारणा रखते हैं।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्?

आप ऋषि जी को दूर से नही, समीप से समझें। दूर से सुन्दर से सुन्दर वस्तु की कलात्मक बारीकियाँ दिखायी नही देती हैं मेरा अपना अनुभव है वे सब के परम शुभ-चिन्तक हैं।

महान ऋषि- ऋषि जी ने सदैव कठोर मार्ग चुना किन्तु प्रकृति उनके मार्ग को कोमल बना देती है। वे निर्धन हैं किन्तु धन उनके पीछे फिरता रहा है वे त्यागी हैं किन्तु भोग उनका पीछा करता रहता है। शायद इसी कारण विद्वान् लोग उन्हें राजर्षि शब्द से सम्बोधित कर देते हैं।

भक्तों की भावना है आपको अच्छा खिलाने की, तो भाव के भूखे आप छत्तीस व्यंजनों का भोग लगाते हैं। सेवकों की प्रसन्नता है अच्छा पहराने की, कारों में घुमाने की तो आप उनकी प्रसन्नता पूर्ण करते हैं। अतः आप राजर्षि हैं। किन्तु सन् १९६२ ई. में अज्ञातवास की अवस्था में फटी धोती पहने हुए, कन्द-मूल पर निर्भर मां के ध्यान में मग्न उत्तराखण्ड की तलहटियों में तपस्यामय जीवन व्यतीत करते हुए आपको ढूँढने निकले हुए गुरुभक्तों ने देखा। 'चिन्तपूर्णी' के पहाड़ो में ४०-४० दिन का उपवास, मौनव्रत, श्रीदुर्गासप्तशती-पाठ का अनुष्ठान आदि कार्य में संलग्न हमने देखा। फिलहाल वर्ष १९८० में वैष्णोदेवी की कठिन पदयात्रा, नंगे पैर, छाले पड़े हुए, मैले-कुचैले कपड़ों में, बासी रोटी और सूखा चना, वह भी मिला न मिला ऐसी स्थिति में कठोर तपस्या करते हुए आपको मैने ही नहीं सब लोगों ने देखा। आपने चारों धाम, सातों पुरियों और भी अनेक तीर्थस्थलों की कष्टप्रद दुर्गम यात्राएं की हैं। यात्रा करना तो आसान कहा भी जा सकता है किन्तु अनेक अन्य वृद्ध लोगों को यात्रा पूरी करवाना बड़ा कठिन कार्य है। फिर एक यात्रा एक बार नहीं, अनेक बार, स्वयं करना और अन्य लोगों को भी करवाना - यह आप ही की तपस्या का फल है। ठीक है, आप राजर्षि रहें, या तापस-ऋषि बनें, परन्तु मैंने आपको दोनों अवस्थाओं में प्रसन्नचित्त देखा है अतः आप महान ऋषि हैं। यूँ देखा जाय तो आपके ऋषित्व के आगे महान शब्द भी बौना नजर आता है।

सभी गुण तो सब में नहीं होते। अवतारवाद में भगवान राम १४ कला सम्पन्न हैं तो श्रीकृष्ण १६ कलासम्पन्न। परन्तु उपासक मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के भी अनगिनत हैं और भगवान श्रीकृष्ण के भी बहुसंख्यक। दोषवृत्ति को छोड़कर हमें गुणग्राही प्रवृत्ति से अपने कल्याण मार्ग पर अडिग रहना चाहिए।

संक्षेपतः आप सच्चे धर्म प्रचारक हैं, समाज सुधारक हैं और सर्वांगीण व्यक्तित्वधारक हैं। ऐसे उच्चकोटि के विद्या और दीक्षागुरु को नतमस्तक होने में किस को गर्व नही होगा?

डा० सतीश कुमारी

श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज जी के माता-पिता

श्रद्धेया माता श्रीमती श्याम प्यारी
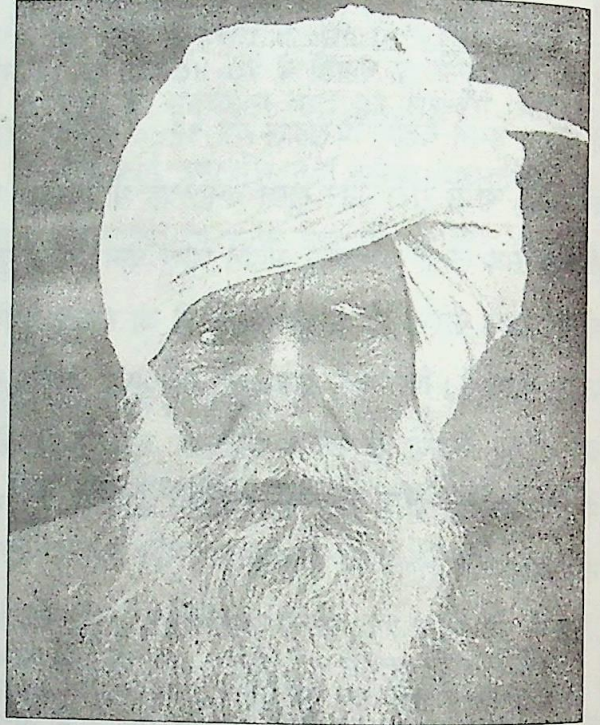
पूज्यपाद पिता श्री पं० मुन्शीराम शर्मा

पूज्यपाद ऋषि जी का जन्म-स्थान (चहलाँवाला)
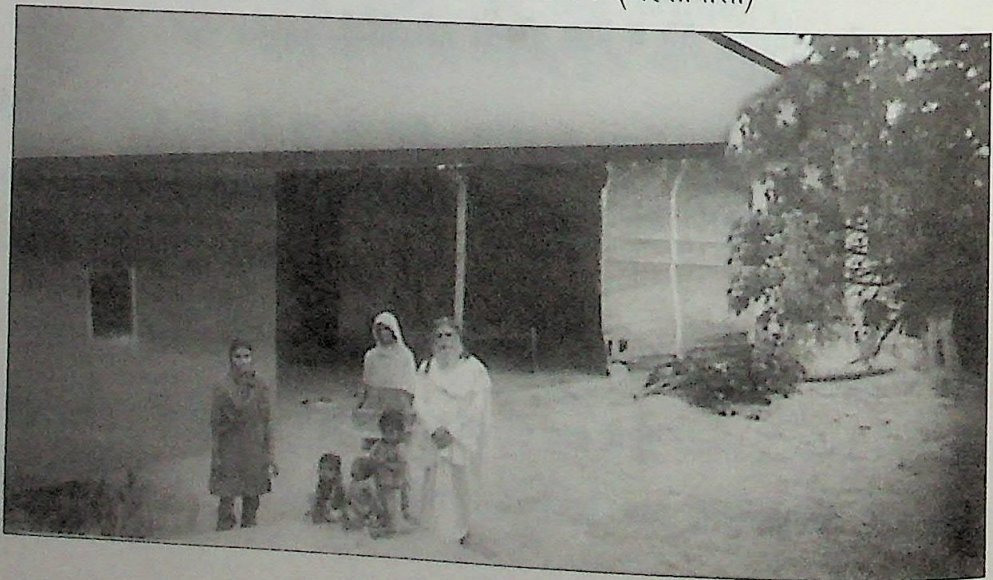
श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज जी के जीवन के विविध आयाम

विद्यार्थी जीवन
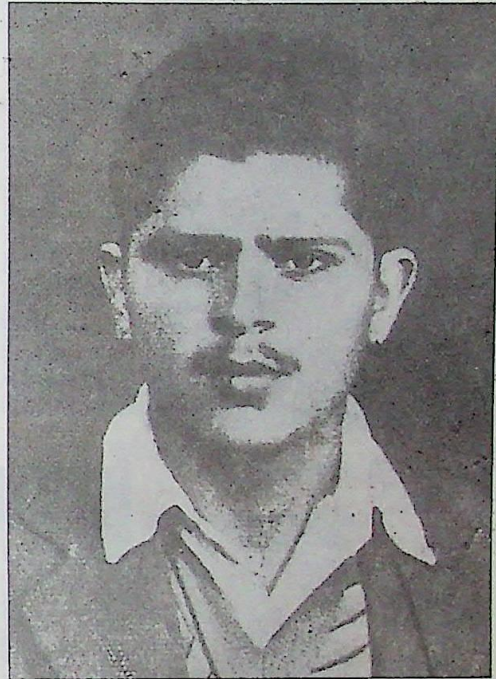
कालेज जीवन
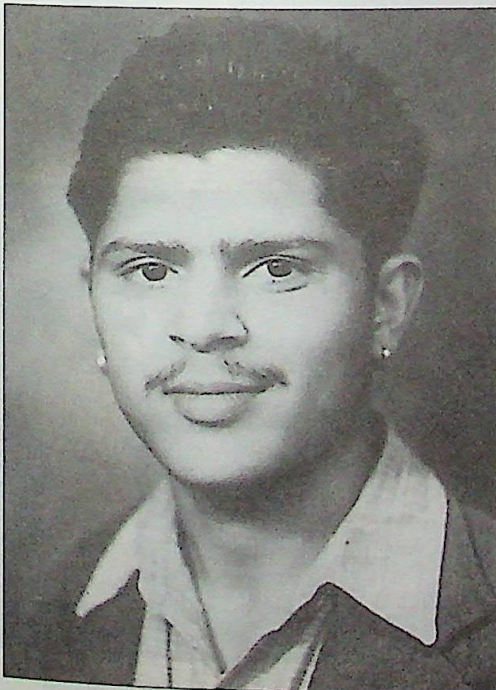
ऋषि कालेज के प्रिंसीपल

गीता-प्रचारक

श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज का साधनामय जीवन

सूर्य उपासना
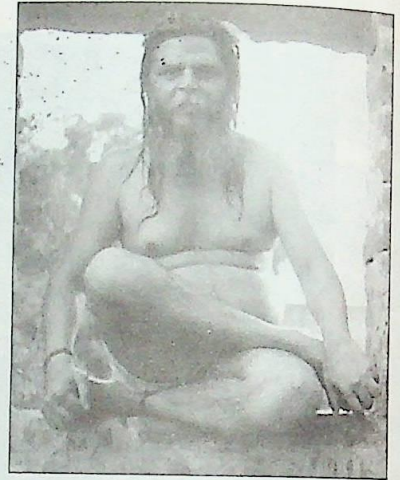
सूर्य उपासना

गंगा जल में पद्मासन
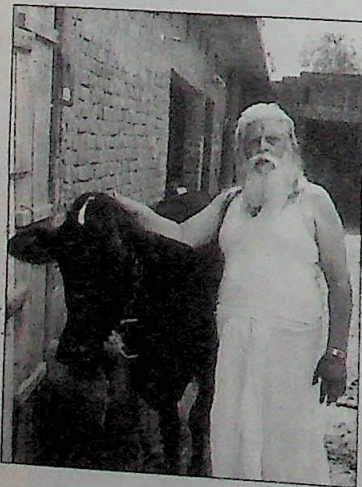
गो-सेवा

उपवन-निरीक्षण

श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज का साधनामय जीवन
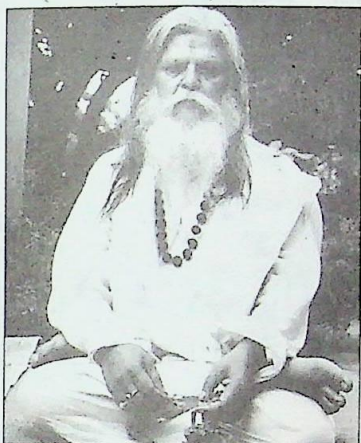
ध्यान मग्न

सूक्ष्म-चिन्तन

आरण्य में शास्त्र चिन्तन

प्रकृतिस्थ
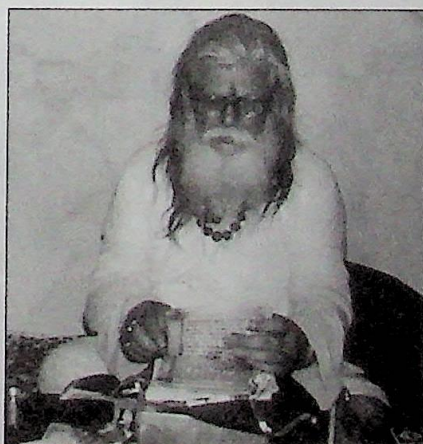
श्री दुर्गासप्तशती का पाठ करते हुए

काशी के प्रकाण्ड विद्वानों के संग ऋषि जी
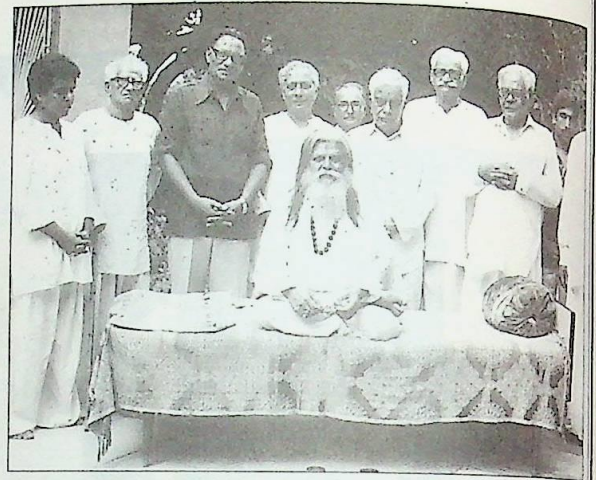
भक्तों के मध्य में पूज्य ऋषि महाराज

साध संगत के मध्य में ऋषि जी

ब्राह्मण-बालकों का उपनयन संस्कार कराते हुए ऋषि
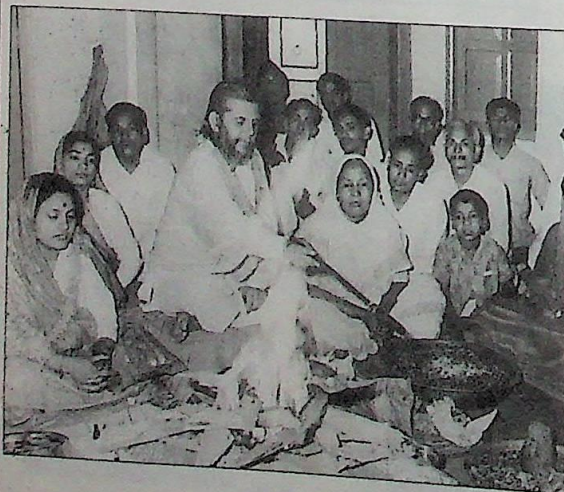
पूज्य ऋषि जी की यज्ञनिष्ठा
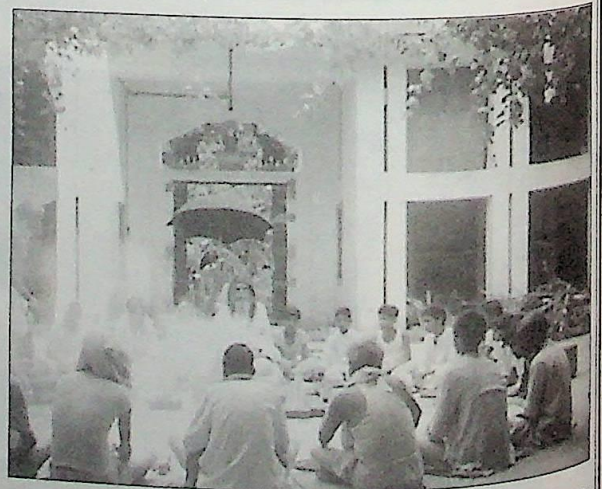
सहस्रचण्डीयज्ञ करते हुए ब्राह्मणों एवं भक्तों के मध्य ऋषि जी

निर्धन-निकेतन मन्दिर फिरोजपुर (पंजाब)
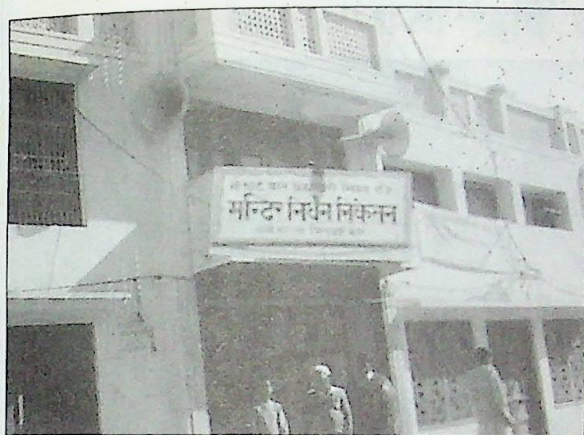
मन्दिर प्रवेश द्वार
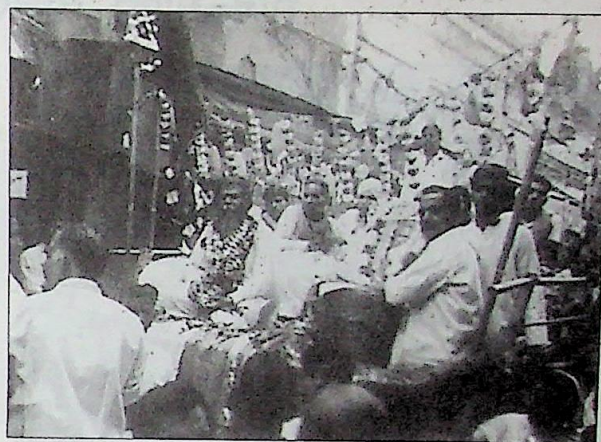
सनातन धर्म योग सभा मन्दिर, फिरोजपुर से श्रद्धेय गुरुदेव श्री वंशीधर महाराज की फोटो को नवनिर्मित निर्धन-निकेतन मन्दिर, फिरोजपुर में शोभा यात्रा के रूप में पालकी में ले जा रहे भक्तों के संग पूज्य ऋषि जी

श्रद्धेय गुरुदेव श्री वंशीधर जी महाराज "विरकां वाले"

निर्धन-निकेतन मन्दिर फिरोजपुर में समायोजित ज्ञान-भक्ति सम्मलेन की झलकियाँ
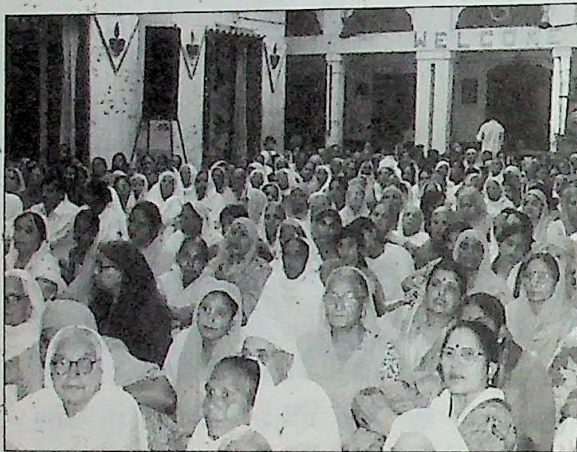
ज्ञान भक्ति सम्मेलन में समुपस्थित भक्तजन

भक्तों को प्रबोधित करते हुए ऋषि जी

मूर्ति-स्नानार्थ जल-भरे कलश उठाये हुए, भक्त गण

महापुरूषों और भक्तों के मध्य विराजमान पूज्य ऋषि जी
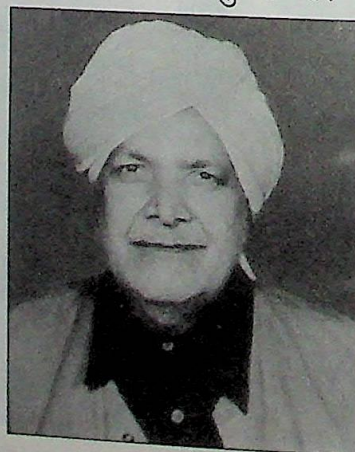
'निर्धन-निकेतन मन्दिर' फिरोज़पुर के निर्माण में प्रथम कर्मठ सेवादार श्रद्धालु भक्त स्व० लाला बहालीराम बजाज

श्री वैष्णों देवी की पैदल यात्रा की समाप्ति पर हरिद्वार आगमन पर पूज्य ऋषि जी का भव्य-स्वागत
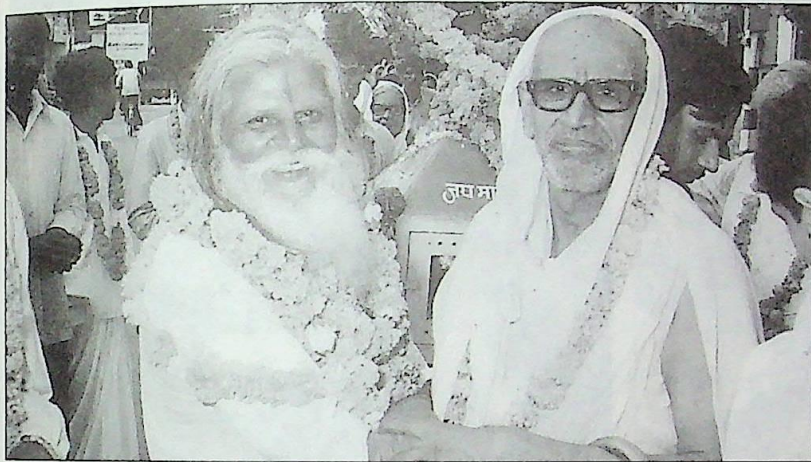
श्री गुरू मण्डल आश्रम के सम्मुख पूज्य ऋषि जी का अभिनन्दन करते हुए अखिल भारत साधु समाज के अध्यक्ष, महामण्डलेश्वर स्वामी श्री रामस्वरूप जी महाराज।

श्री वैष्णों देवी की दुर्गम पैदल यात्रा के समय श्री वैष्णों देवी की गुफा से लायी गई "अखण्ड ज्योति" की शोभा यात्रा में सम्मिलित म.म.स्वा.राम स्वरूप जी महाराज के साथ पूज्य ऋषि जी
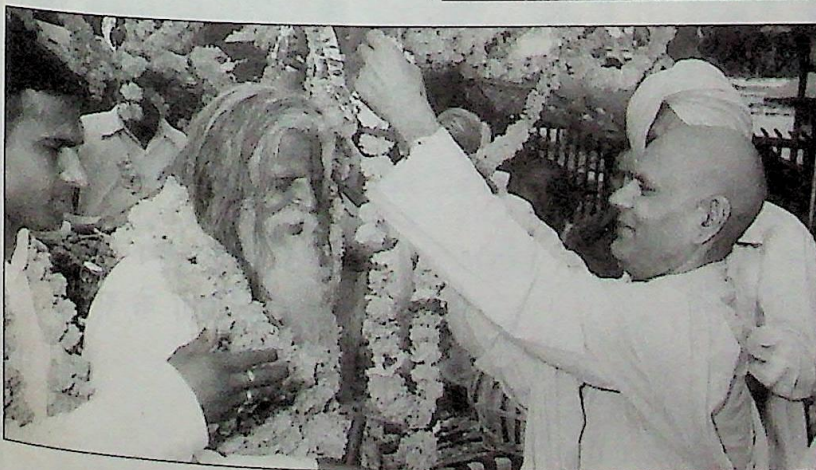
श्री गरीबदासी साधु-आश्रम के सामने आश्रम के अध्यक्ष महामण्डलेश्वर स्वा. श्यामसुन्दर दास जी महाराज द्वारा पूज्य ऋषि जी का अभिनन्दन

प्रथम लक्षचण्डी महायज्ञ की झलकियाँ
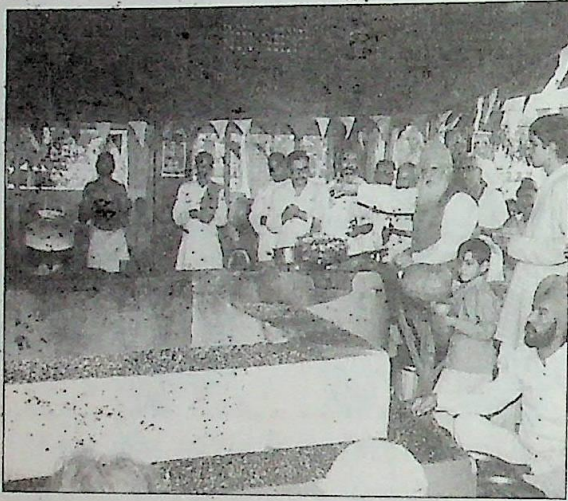
यजन करते हुए पूज्य ऋषि जी

यज्ञ स्थल की परिक्रमा करते हुए भक्त जन

यज्ञ-पूर्णाहुति के पश्चात अवभृथ स्नानार्थ हरकी पौड़ी की ओर बढ़ रहे भक्तों के संग पूज्य ऋषि जी महाराज
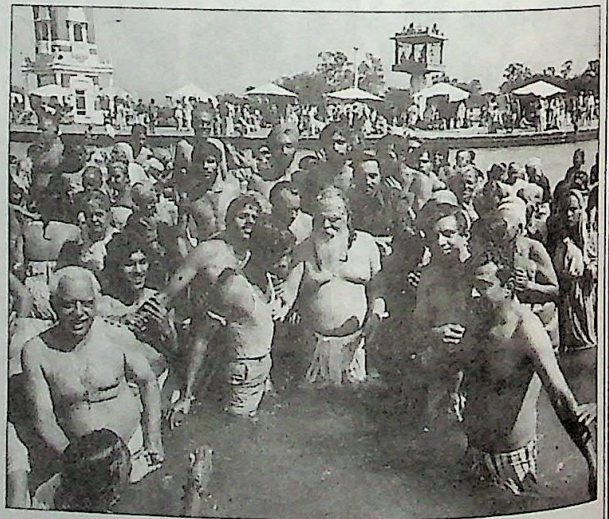
हरकी पौड़ी 'ब्रह्मकुण्ड' में अवभृथ स्नान करते हुए ब्राह्मणों और भक्तों के संग पूज्य ऋषि जी

प्रयागराज में महाकुम्भ-पर्व के अवसर पर आयोजित कुम्भ-शिविर

कुम्भ शिविर का मुख्य द्वार

कुम्भ शिविर का अन्न क्षेत्र
साधु-सन्तों को फल वितरण करते हुए ऋषि

अन्न क्षेत्र का निरीक्षण करने पधारे
पूज्य ऋषि जी महाराज
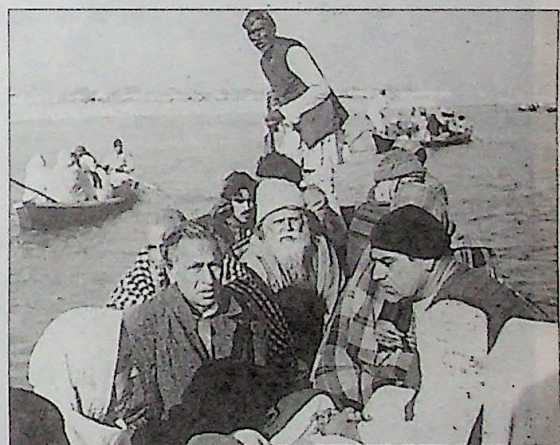
संगम स्नानार्थ जा रहे, नौका में विराजमान
भक्तों के संग पूज्य महाराज

संगम पर स्नान करते हुए भक्तों के संग पूज्य ऋषि जी
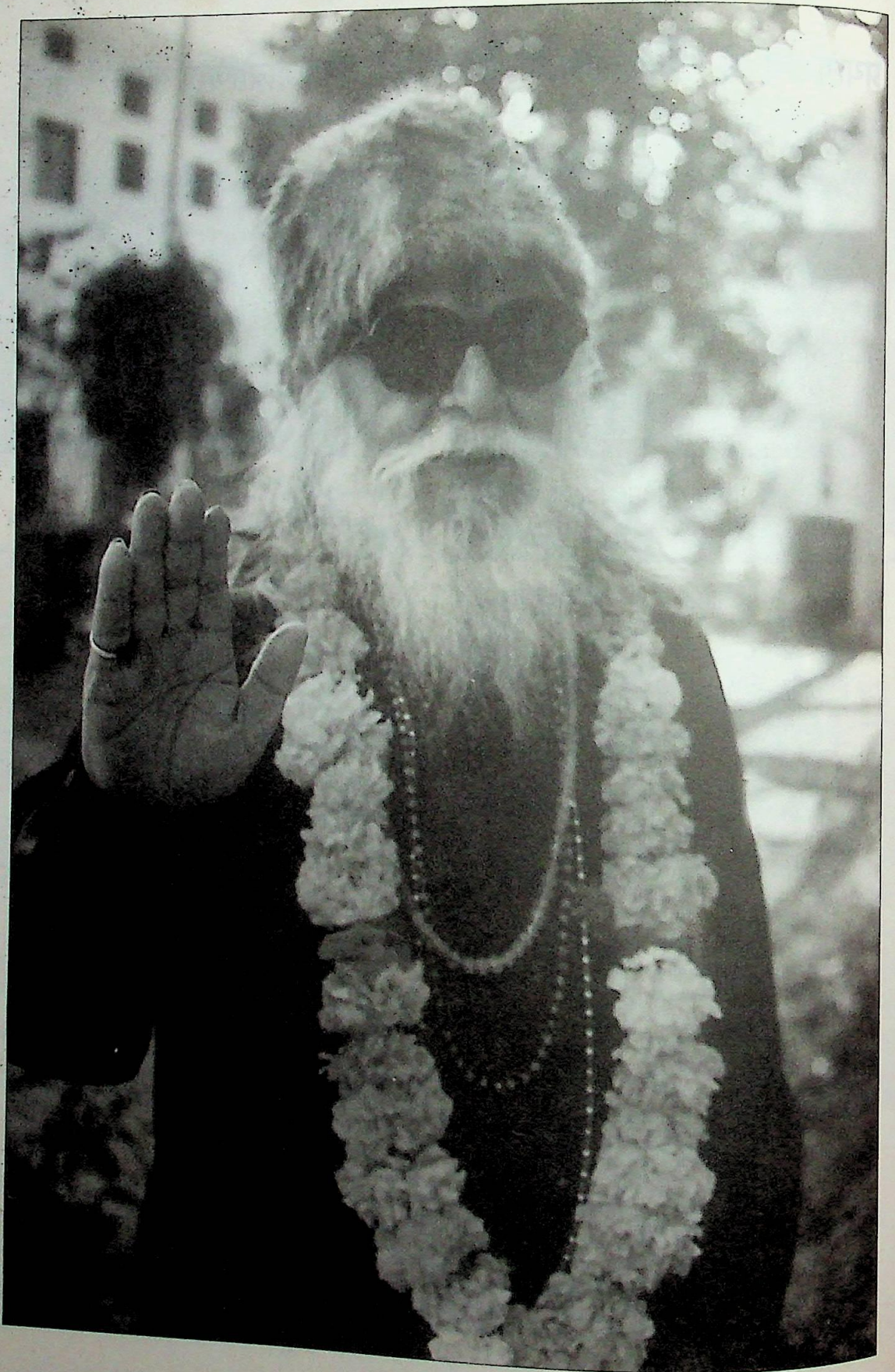
संस्कृतलेखमाला

संस्कृतलेखमालानुक्रमणिका

क्रमांकः	विषयनाम		लेखकनाम	पृ०सं०
१.	ऋष्यभिनन्दन सप्तपर्णी	:	डा० सत्यव्रतः शास्त्री, पूर्व कुलपतिः श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालयः पुरी, (उड़ीसा)	१०७
२.	ऋषिकेशवानन्दस्य ऋषित्वम्	:	प्रो० वेदप्रकाशः शास्त्री, आचार्य-उपकुलपतिश्च गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्।	१०८
३.	ऋषित्वं प्रतिपद्यते	:	डा० रामकृष्ण शर्मा, पूर्व संस्कृतशिक्षासलाहकारः भारत सर्वकारः	११२
४.	श्रद्धेयाः श्री बंशीधर तापसाः	:	डा०सतीश कुमारी, प्राचार्या ऋषि संस्कृतमहाविद्यालयः हरिद्वारम्।	१२३
५.	ऋषिकेशवानन्द महाराजानामार्षज्ञानस्य वैचित्र्यम्	:	आचार्य मनसाराम शर्मा, पूर्व प्राचार्यः श्री भगवानदास-आदर्श केन्द्रिय संस्कृत महाविद्यालयः हरिद्वारम्।	१२४
६.	श्री निर्धननिकेतनस्य कार्यकलापानां संक्षिप्तपरिचयः	:	डा० स्वामि श्यामसुन्दरदास शास्त्री, अध्यक्षः श्री गरीबदासीय साधुसेवाश्रम, हरिद्वारम्।	१३१
७.	ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः	:	डा० देवनारायण झा उपाचार्यः (सा०वि०) का०सि०द०सं०वि०वि० दरभङ्गा (बिहार)	१३२
८.	ऋषिस्तवः	:	आचार्य रामनाथ वेदालङ्कारः, पूर्व-उपकुलपतिः गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्।	१३६
९.	तत्वज्ञपतञ्जलिमुनेः जीवनदर्शनम्	:	डा० सुरेन्द्र पाठकः, उपाचार्यः (व्या०वि०) श्री सदाशिव केन्द्रिय संस्कृत विद्यापीठम्, पुरी (उड़ीसा)।	१३७

१०.	श्री ऋषि केशवानन्द अभिनन्दनाष्टपदी	:	आचार्य बुद्धिवल्लभः शास्त्री, पूर्व-प्राचार्यः हरिद्वारस्थश्रीजगद्देवसिंहसंस्कृतमहाविद्यालयस्य।	१३६
११.	सप्तर्षीणाञ्जीवनपद्धतिः	:	डा० रामकृपालः त्रिपाठी, साहित्य विभागाध्यक्षः वृन्दावनस्थ श्री रंगलक्ष्मी आदर्श संस्कृतमहाविद्यालयः।	१४०
१२.	ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तका ऋषयः	:	डा० भारतनन्दनः चौबे, प्राध्यापकः (व्या०) ऋषि संस्कृत महाविद्यालयः, हरिद्वारम्।	१४४
१३.	सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे	:	डा० ओमप्रकाशः भट्टः, प्राचार्यः श्री रामानुज श्री वैष्णवसंस्कृतमहाविद्यालयः, हरिद्वारम्।	१४७
१४.	ऋषेरार्यता	:	डा० हरिगोपालः शास्त्री, प्राचार्यः गुरुकुल महाविद्यालयः ज्वालापुरम् हरिद्वारम्।	१४८
१५.	राष्ट्रस्य कृते हरिद्वारस्थ आश्रमाणां योगदानम्,	:	डा० पद्मप्रसादः सुवेदी, प्राचार्यः श्री गरीबदासीय साधु संस्कृतमहाविद्यालयः हरिद्वारम्।	१५०
१६.	संस्कृत संरक्षकः सौम्यवपुर्महात्माः	:	डा० भोला झा, प्रवक्ता (व्याकरण) श्री भगवानदास केन्द्रिय संस्कृत महाविद्यालयः, हरिद्वारम्।	१५३
१७.	हरिद्वारस्थ दर्शनीयानि स्थलानि	:	पं० ज्ञानचन्द्रः शास्त्री, पूर्व प्राध्यापकः (सा०) हरिद्वारस्थ श्री जयभारतसाधुसंस्कृतमहाविद्यालयस्य।	१५७
१८.	श्री केशवानन्दर्षेर्नवनव दर्शनम्	:	डा० शिवकुमारः शर्मा, प्रवक्ता (व्या०) हरिद्वारस्थ श्री जय भारत साधु संस्कृत महाविद्यालयः हरिद्वारम्।	१६३
१९.	महर्षेरभिनन्दनम्	:	पं० जगदीश प्रसादः शास्त्री, प्रधान, श्री ब्राह्मणसभा, सिरसा।	१६७

२०.	मार्गदर्शकः ऋषिकेशवानन्द महाराजः	:	पं० सन्तरामः शास्त्री, मोगा, (पंजाब)	१६८
२१.	श्रेयोदानपत्रम्	:	लक्षचण्डीमण्डलस्था विद्वन्मण्डली।	१७२
२२.	ऋष्यभिनन्दनम्	:	आचार्याश्छात्राश्च ऋषि संस्कृतमहाविद्यालयस्य।	१७३
२३.	सादरमभिनन्दनम्	:	परिवारवर्गाः, श्री सदाशिव केन्द्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, जगन्नाथपुरी।	१७५
२४.	अभिनन्दनपत्रम्	:	गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयवास्तव्याः हरिद्वारम्।	१७६
२५.	अभिनन्दनपत्रम्	:	प्राचार्याऽचार्याश्च, ऋषि संस्कृतमहाविद्यालयः, हरिद्वारम्।	१७८

ऋष्यभिनन्दन सप्तपर्णी

डा० सत्यव्रत शास्त्री पूर्व कुलपतिः
श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालयः पुरी, उड़ीसा

निज गुण गरिमाणं ख्यापयञ्जीवलोके
विमलमतिरुदारो ज्ञानिनामग्रगण्यः
ऋषिरितिपदवीधृक् तापसानां वरेण्यो
जयति जयति धन्यः केशवानन्द संज्ञः ।।१।।

भगवति दृढनिष्ठः सिद्धलोकोपसेव्यो
मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णः
सकलजनहितार्थं खिद्यमानोऽतिमात्रं
क्षपयति निजकालं यो मुनीनां वरेण्यः ।।२।।

दिशि दिशि विमला यत्कीर्तिरुद्गीयमाना
जनयति हृदि तोषं सर्वदुःखौघनाशम्
अनवरतरतो यो धर्मकार्ये विपश्चिद्
दिशति जनसमूहं धर्मतत्वं तपस्वी ।।३।।

मृदु तर बचनोपन्यास पूर्वं स्वभक्तान्
श्रुतिवचनरहस्यं बोधयन् यो निगूढ़म्
प्रवचनपटुतां स्वां बाढ़माविष्करोति
अव कलित विचित्रानेकशास्त्रः सुखेन ।।४।।

बहुतरदृढ़भक्तिः सांस्कृतो वाङ्मये यः
कलयति सुरवाचः शिक्षणं साधु साधु
तदतिरुचिरवाचः शिक्षणार्थं च विद्या
लयमयमतिरम्यं चालयत्यात्मशक्त्या ।।५।।

यत्र विद्यालये छात्रै ब्रह्मचर्य तपोऽन्वितैः।
एकतानेन मनसा संस्कृतं समुपास्यते।।६।।
ऋषिरेष चिरंजीव्याल्लोकसङ्ग्रहतत्परः।
इत्यहं प्रार्थये पहः शङ्करं लोकशङ्करम्।।७।।

ॐ

ऋषिकेशवानन्दस्य ऋषित्वम्

प्रो० वेदप्रकाशः शास्त्री
आचार्य उपकुलपतिश्च
हरिद्वारस्थ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयस्य

सकल ब्रह्माण्डनिर्मातुः परमात्मनः सृष्टिरियं विचित्रा स्थावर जङ्गमात्मके जगति यदपि चक्षुगम्यं तदखिलं वैचित्र्यमञ्चति। यथा स्थावर पदवेद्ये संसारे सर्वेपदार्थाः बुद्धिमतामुल्लासकरा स्तुष्टिपुष्टिप्रदाः प्रियंकराश्च सन्ति तथैव जङ्गमात्मके जगति नानायोनिगतदेहाकारमाश्रित्य प्रवर्तमानाः प्राणिनोऽपिमधुरेणाऽकारेण रसानुरागवत्या चेष्टया च भवन्त्युपदेशकाः संशयनिरासकाः। मानवेतरयोनिमापन्नाः प्राणिनः स्व स्वभावपरिष्करणाय न भवन्ति शास्त्राधिगमे प्रवृत्ताः शास्त्राणां मानवेतरयोनिमध्य परिगणितजीवानधिकारित्वात्। केवलं मानवमभिलक्ष्य तदभ्युदयाय परमात्मना प्रदत्ता वेदास्तथा वेदानुगामिभिः ऋर्षिभिर्विरचिता आर्षग्रन्थाः। पशवस्तु स्वभावपरिवृत्यसहत्वात् न विमुञ्चन्ति स्वभावं तेषामेकस्मिन् योनिक्रमे न कश्चिदपि भवत्यपरः स्वभाव विकल्पः। मानवास्तु संसारेऽस्मिन्नेकस्मिन्नेव योनिक्रमे बहुध ा स्वभावविकल्पन क्षमा भवन्ति। केचन मानवाः शास्त्राधिगमात् अनधिगत संस्कार विशेषाः केवलं लोके निवसन्ति स्वपन्ति भ्रमन्ति सुखमदन्ति जीवन्ति च। परं केचन पुरुषाः शास्त्राण्यधीत्य संसारनिःसारतां विज्ञाय तपस्तप्त्वा परमं तत्वमभिविमृश्य जायन्ते योगिनो विद्वांसो मुनयस्तपस्विनो ब्रह्मवर्चस्का दिवस्पुत्रा याथार्थ्य विदस्तेजस्विन ऋषयो देवाश्च। ते लोके भवन्ति समदर्शिनः सर्वजनकल्याणकारिणः दीनहीनजनदुःखकण्टकोत्पाटकाः, शास्त्रप्रणेतारो धर्मार्थकाममोक्षाणां याथार्थ्यविदो निखिलसहृदयधार्मिक जनहृदयपीठाधिष्ठिताश्च।

भारतेऽस्मिन् समस्तवेदानुगतपरम्पराणां जन्मदात्रीयमृषिपरम्परा समये समये सत्यानुगामिभिर्ऋषिभिः प्रतन्यते प्रगीयते प्रकाश्यते च प्रख्याप्यते। प्राक्कालादेवाविच्छिन्नरूपेण प्रसृतायामस्यामृषिपरम्परायां केचन पूर्वतमा ऋषयः केचन मध्ययुगवर्तिन ऋषयो बभूवुः। केचन चाधुनातने काले परामृषिपरम्परामाहवनतः पूर्वतमानामृषिनिर्दिष्टानां मार्गाणामेवान्वेषणे प्रचारे परिरक्षणे च निरालसाः सन्ति सततमभ्यासरताः। तेषामेवंविधानामृषीणां परिगणनायां गणनाधिष्ठात्र्या कनकावदातया कनिष्ठिकया सम्प्रति निरपवादं सोल्लासं परिगण्यते भक्तजनमानसराजहंसस्य पवित्रात्मनः परमतत्त्वविदोऽनन्तश्रीविभूषितस्य ऋषिकेशवानन्दस्य प्रियङ्करं नाम।

ये मनुष्या ऋषिपदवेद्या विद्यन्ते लोके तेषां जीवनं किमपि विशिष्टं भवति। तेषामाकारस्तु सामान्यजनसम एव परं चिन्तनं तु सामान्यजनभिन्नमेव दृश्यते। सामान्यजनानां शरीराङ्गानि लोके कथ्यन्ते यदिमानीन्द्रियाणि सन्ति परं यदा विद्यारसप्रक्षालितमनीषामालिन्यः सत्त्वोन्मेषविहितचित्तविस्तारः आत्मभावालोकालोकितजगन्मण्डलः, पुरुषो महतीमाध्यात्मिकीं साधनां संसाध्य संसारसरोवरे कमलमिव प्रभासते तदा सः पुरुषो लौकिकः सन्नपि भवत्यलौकिकः। लोकोत्तरतामधिश्रितः पुमान् जनैरुच्यते यदयमृषिरेव। ऋषिगतं यदपि तत्सर्वमृषिमयमेव। अत एव वेदमन्त्रे निगदितं यदृषेरिन्द्रियाण्यपि ऋषिनाम वेद्यानि। यतो हि ऋषिर्यदा मित्रदृष्ट्या जगदीक्षते, सर्वस्मिन्स्वात्मानं पश्यति, जगद्भद्रं

श्रृणोति, जगन्माङ्गल्ये तन्मनो रमते तदा तदिन्द्रियाणि ऋषित्वप्रकाशकानि चकासति यथा मन्त्र :-

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे, सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र, जाग्रतो अस्प्नजौ सत्रसदौ च देवौ।।

ऋषिपदवाच्यः पुरुषः पूर्वंतु "ऋषयोमन्त्रद्रष्टार" इत्यनुसारं सार्थं मन्त्रं पश्यति तदनन्तरं मन्त्रानुसारं कर्मणि मनो नियोजयति। निर्मलचेतसामृषीणां नह्येकमपि जगद्वस्तु विभात्यविदितम्। ऋषयस्त्वखिलं जगद् हस्तस्थितमामलकमिव पश्यन्ति। ऋषयो निर्मलमनसा सार्वभौमिकं भद्रं कामयन्ते तपश्चरन्ति दीक्षया चात्मानं प्रकाशयन्ति यथा।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्चजातं तदस्मै देवा।।

यथा प्राकृतिकाः सर्वे पदार्था जगन्नियन्तृनियमबद्धा निरन्तरायाः सततं सन्ति गतिमन्तस्तथैव परमात्मप्रदत्तवेदवाण्यनुसारमृषयो नियतं नियममनुपालयन्तो जीवन्ति जगत्कल्याणाय चात्मानं प्रथयन्ति मानवमात्रमुन्नेतुमहर्निशंप्रयतन्ते । ऋषयो दिवस्पुत्रा अत एव प्रकाशपुञ्जास्ते सर्वत्र राजन्ते । यथा प्रकाशः सर्वमनावृतं करोति तथैव वेदज्ञानेन सर्वमाभासयन्ति ऋषयः - यथा -

ब्राह्मणासः सोमिनोवाचमकृत, ब्रह्मकृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवो धर्मिणः सिष्विदाना, आविर्भवन्ति गुह्या न केचित्।।

एकस्मिन् वेद मन्त्रे भवति महतामृषीणां स्वरूपदर्शनम् के ते सन्ति पुरुषा ये लोके न्वस्मिन्नृषिपद्भाजो विभान्ति। *ऋषयः सहस्तोमा भवन्ति* सहस्तोमाः के ? ये श्लाघाभिः सह वर्तमाना यद्वा शास्त्रस्तुतयो येषां ते भवन्ति सहस्तोमाः। अत्र प्रश्नः समुदेति यत्कस्य श्लाघां कुर्वन्ति ते किमात्मश्लाघासमाहितमानसास्ते, नहि नहि न कदाप्यात्मानं मनागपि ते प्रशंसन्ति ते तु परमात्मानं तद्विरचितं निखिलं ब्रह्माण्डं ब्रह्माण्डे च वर्तमानान् चन्द्रदिवाकर व्योम नक्षत्र पर्वत नदी-वन-सरोवर-भूखण्डादीन् पदार्थान् मुहुर्मुहुः पश्यन्ति प्रशंसन्ति च। ऋषीणां दृष्टिगतं सर्वमपि पदार्थजातं प्रशंसास्पदम्। ऋषयः सर्वदैव समदर्शितां प्रथयन्ति परिपुष्णन्ति च। ऋषयः शास्त्रे रमन्ते ते शास्त्रचिन्तनपरा अतएव शास्त्रानुमोदितमनुमोदयन्ति शास्त्राऽख्यातं प्रख्यापयन्ति शास्त्रसिद्धम् साधयन्ति शास्त्रधिया च ध्यायन्ति जगत्। सम्प्रति तेषामेव प्रथितयशसामृषीणां परम्परां परिपालयन् ऋषिकेशवानन्दो भक्तवृन्दैरभिवन्द्यते वेदनिर्दिष्टसहस्तोमगुणानुपालकत्वात्।

ऋषयः सहच्छन्दस :- सहच्छन्दसः के भवन्ति? ये च्छन्दसा सह वेदाभ्यासासक्तचित्तास्ते सहच्छन्दसः। सर्वा ऋचश्च्छन्दसा समाच्छादिताः सन्ति, च्छन्दसा बिना ऋचां गानं न भवति, च्छन्दो मघया वृत्त्या अनुद्गेया ऋग् ऋगेव न स्यात्। छान्दोग्योपनिषदि गानं बिना मन्त्रोच्चारणमात्रेण न भवति चित्तोल्लासः। अत एव मन्त्रविधाने ध्यानावस्थायां च्छान्दस प्रयोग एवं भवत्यनुष्ठानवर्धकः। कामपि देवतामभिलक्ष्य क्रियते मन्त्रप्रयोगः परं मन्त्रप्रयोगस्तदैव

साफल्यभाग्भवति यदा छन्दः शिथिलं न भवति।

ऋषिपदभाजा ऋषिकेशवानन्दा निजानुष्ठानं निर्विधानं न निर्वहन्ति । प्रातरुत्थाय *"ओ३म् ह्युद्गायति"* इति श्रुत्यनुसारं वाचा वाचस्पतिमुच्चारयन्ति । यथा सामगानावसरे प्रचेतसामृषीणां जगत् कल्याणकारिणी वाक् सर्वेषां मनुष्याणां कर्णविवरमभिनिविश्य लोकोत्तरमानन्दं जनयति तथैव श्रीमतां केशवानन्दब्रह्मपीयूषपायिनां केशवानन्दानामृषीणां सारवती सरसा वाक् स्व समीपस्थानां निज-निज कर्त्तव्यावबोध प्रबुद्धानां सेवाधर्मनिरतानां निखिलवर्णाश्रयाश्रमवासिनां भगवत्कथासमाकर्णनवर्धितलालसानां भक्तानां मनसि पवित्रं संस्कारमुद्बोधयति शतधारं सुखं च प्रवेशयति ।

ऋषय आवृता भवन्ति :- ऋषीणामेतद् वैशिष्ट्यं यत्ते निजगुरोश्चरणयोः सन्निधिमवाप्य गुरुमुखादेव निःसृतेन विद्यारसप्रवाहेणात्मानं पावयन्तो विद्याभ्यासं सोल्लासमभिवर्धयन्ति। जीवितेनाजीवितेन भुविवर्तमानेन दिविवर्तमानेन वा गुरुणाऽऽवृतमेवात्मानं मन्यमानो मनुष्यः शनैःशनैः शुद्धसंस्कारोच्चयं संजीवयन् महान् भवति। यो हि मनसा गुरुं मन्यते वाचा तद्गुणान् गायति, गुरुं समितपाणिरुपसर्पति सो हि विद्यया यशसा गुणवत्तया श्रिया श्रद्धया धि या कान्त्या च लोके प्रकाशते प्रकाशयति चान्यानपि शरणागतान्। ऋषिप्रवराणां केशवानन्दानां जीवनलता गुरुभक्ति रस सिक्ता विभाति । अद्यापि ते यदा गुरुं ध्यायं-ध्यायं मधुरं वदन्ति तदा प्रतीयते यत्तेषां श्री मुखात् गुरुभक्तिरस निष्यन्दः पस्रवति। उपनिषदि यद् विद्यते तत् सत्यमेव - यथा

यस्यदेवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

ऋषयः सहप्रमाः सन्ति :- सहैव प्रमा यथार्थ प्रज्ञानं येषां ते भवन्ति सहप्रमाः । यद्यपि बहव ऋषयः पूर्वतमा आसन् मध्यकालेऽपि बहवो बभूवुस्तथाद्यापि सन्ति ऋषयः। ऋषयो भवन्ति साक्षात्कृतधर्माणः। अत्राभिप्रायो विद्यते यत्ते याथार्थ्यविदो भवन्ति। ऋषीणां ज्ञानं संशयतिमिरहरं भवति। कस्मिंश्चिदपि काले वर्तमानानामृषीणां धर्मविषये यन्मतं तन्मतं सर्वसम्मतमेव। ऋषीणां विचाराः परस्परमविरुद्धा एव। पूर्वतमेन यत्कथितं तदेवाधुनातनेन ऋषिणोच्यते। यथा वेदमन्त्रे-अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत्। प्राक्काले यथा अग्निरीड्यते स्म तथैवाद्यापि ऋषिभिरीड्यते प्राग्वर्तिनामृषीणां या परम्परा वर्तमाने परिवर्धनीया परिपालनीया च तथैव ऋषिकेशवानन्दा ऋषिपरम्परां निरालसतया निर्वहन्ति। तैः समये समये सम्पादितानि यज्ञानुष्ठानानि म□लकामनयोदीरितानि वचांसि विद्वज्जनसत्कृतियोग्यानि क्रियामाणनि सम्मेलनानि तेषामृषित्व-प्रकाशनयोग्यानि। यो हि युगपदेव समेषां चित्तं स्नेहवर्षिण्या दृशा, मधुरयावाचा सौम्ययाऽकृत्या समाकर्षति स तु भवत्येव ऋषित्वगुणोपेतः।

ऋषयस्तु सप्तदैव्याः - महर्षिणा देवदयानन्देन सप्तदैव्याः पदस्य व्याख्या या कृता सातीव निर्मला सर्वविद्वज्जनस्वीकारणीया च विद्यते । यथा (सप्त) पञ्चज्ञानेन्द्रियाण्यन्तः करणमात्मा च (दैव्याः)देवेषु गुण कर्म स्वभावेषु कुशलाः। अर्थात् येषां पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि दिव्यकर्मकारित्वात् दिव्यानि अन्तःकरणं दिव्याचिन्तनात् दिव्यं, आत्मा च दिव्यसंस्काराधिक्याद् दिव्यो भवति ते भवन्ति सप्तदैव्याः । ऋषीणां चिन्तनं दर्शनं सर्वं दिव्यमेव । ऋषयः

प्राणिमात्राभ्युदयाय दैवी सम्पद् विवर्धनोचितोपायान्वेषणकृतभूरिश्रमा भवन्ति । ते दिव्येन चक्षुषा द्रष्टव्यं पश्यन्ति, दिव्येन कर्णयुगलेन श्रोतव्यं श्रृण्वन्ति दिव्येन घ्राणेन घ्रातव्यं जिघ्रन्ति, दिव्यया रसनया रसनीयमास्वादयन्ति दिव्यया त्वचा स्पर्शनीयं स्पृशन्ति दिव्यया वाचा वक्तव्यं वदन्ति दिव्याभ्यां हस्ताभ्यामादातव्यमनुगृह्णन्ति दिव्यपादाभ्यां गन्तव्यं स्थानं च गच्छन्ति। एवं सर्व कृत्यजातं दिव्य भावनयैव सम्पादयन्ति सत्त्वसम्पन्ना ऋषयः। ऋषिकेशवानन्दानां निखिलमपि जीवनं दिव्यप्रकाशेन प्रकाशते। तेषां सर्वाः प्रवृत्तयः सर्वा वृत्तयश्च दिव्यभावसम्पृक्ताः। एतानभिलक्ष्येमानि सरसानि वचांसि समुद्गिरन्ति विद्वांसो यदिमे दिव्यद्रष्टारः दिव्यस्पृष्टारः दिव्यश्रोतारः, दिव्यघ्रातारः, दिव्यरसयितारः, दिव्यमन्तारः, दिव्यबोद्धारः दिव्यकर्तारः दिव्यविज्ञातारश्च सन्ति। अमीषां जीवने सुकुमारता ममता, वत्सलता, सरसता, दयालुता, धवलता, स्नेहलता, भद्रता, उदात्तता शास्त्रवत्ता गुणवत्ता, आर्षपरम्परानुरागिता चेमे गुणाः पूर्णतया विभासन्ते। पुण्यश्लोकानामृषीणां गुणगणनायां मन्त्रद्वयं प्रस्तूयते।

सहस्तोमाः सहच्छन्दसऽआवृतः सहप्रमाऽऋषयः सप्तदैव्याः।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीराऽन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन्।।

सोमा पवन्त इन्दवो अस्मभ्यं गातुवित्तमाः।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः।।

❋❋ॐ❋❋

ऋषित्वं प्रतिपद्यते

डा० रामकृष्ण शर्मा
पूर्व शिक्षासलाहकारः (संस्कृत)
मानव संसाधन विकास मंत्रालयः, भारत सर्वकारः

१. आत्मदृष्टिपरिष्कारः

ऋच्छति सर्वथा सर्वं गतिप्रापणशक्तिमान्।
स ऋषिः उच्यते शास्त्रे क्रान्ति दर्शी तपोनिधिः।।१।।

दृश्यते येन सर्वेषां तत्वरूपं प्रमायुतम्।
सा दृष्टि दर्शनं प्रोक्तं सच्चिदानन्ददायकम्।।२।।

संसार आत्मतत्वञ्च दर्शनीयद्वयं खलु।
ऋषिदर्शनतोह्येतद् हस्तामलकवद् भवेत्।।३।।

जन्ममृत्युजराव्याधि कामक्रोधादिलोभकाः।
रतिरुल्लाससन्ताने भोक्तव्या दर्शनेन वै।।४।।

मननार्थं मुनिर्जातः ऋषीणां दर्शनस्य तु।
विवेक्ति स सुखाद्दुःखं सत्यासत्ये गुणक्रियाः।।५।।

ऋषिदर्शनतो यद्यद् दृष्टं विश्वं चराचरम्।
तत्वज्ञलोकैस्तत् सर्वं शास्त्रेषु प्रतिपादितम्।।६।।

विश्वाभूतानि पादोऽस्य त्रिपादस्यामृतं दिवि।
विराड्स्माद्धि जातोऽस्ति यस्तु यज्ञमतन्वत।।७।।

यज्ञो हि पूरूषः स्रष्टा धाता, माता पिता
सखा।
तेन भूतानि जायन्ते जीवन्ति विचरन्ति च।।८।।

तत्वं तद्विविधं प्रोक्तं क्षरञ्चाक्षरमेव हि।
अक्षरन्तु परं ब्रह्म संसारः क्षरमुच्यते।।९।।

कर्म ब्रह्मोद्भवं प्रोक्तं ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
अतो ब्रह्मैव सर्वस्य सर्वकर्म प्रकाशकम्।।१०।।

अक्षरः पुरुषः सत्यमात्मा ब्रह्म क्रतुस्तु तत्।
सत् प्राणः प्रणवः साक्षी शब्दैरेतैः प्रकीर्त्यते।।११।।

ब्रह्मतत्वस्य व्याख्यानं ब्रह्मसूत्रेऽस्ति सूत्रितम्।
श्लिष्टक्लिष्टन्तु सूक्ष्मं तत् वेदव्यास महर्षिणा।।१२।।

ब्रह्मसूत्रस्य व्याख्यैव बहुविस्तारिता जनैः।
येनानन्त्यं हि भावानां दुर्ज्ञेयत्वं च जायते।।१३।।

यथाद्वैतं तथा द्वैतं द्वैताद्वैतं यथातथम्।
विशिष्टाद्वैतसहितं शुद्धाद्वैतं चिकीर्षितम्।।१४।।

कठिनो बुद्धिव्यायाम एष सर्वैः कथं जनैः।
कर्तुं शक्योऽस्ति विज्ञाय जनाः ऋषिमुपागताः।।१५।।

वेद एव पराकाष्ठा यदि लोकेष्वमन्यत।
कथं कृष्णेन कथितं निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।।१६।।

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा नेति नेतीति वादिता।
कर्माकर्म विमोहश्च रहस्यं वर्तते नु किम्।।१७।।

ऋषीणां दिव्यनयनै र्विलोक्य सर्वभावनाः।
यदुक्तं तदिहालेख्यं लोककल्याण हेतवे।।१८।।

मानवै र्दर्शनीयं हि स्वजन्ममृत्युकारणम्।
येन नित्यं चलत्येषा संसारसन्ततिः भृशम्।।१९।।

तत्वं तदेव ध्यातव्यं येन सर्वमिदं ततम्।
पञ्चभूतं च चैतन्यमेतयोर्मेलनन्तथा।।२०।।

आकाशःह्यक्षराज्जात आकाशाद् वायुरेव च।
वायोरग्निस्तत आपः अद्भिरौषधिसन्ततिः।।२१।।

ततः शुक्रं ततो जीवाः जीवाज्जीवः प्रजायते।
जन्ममृत्युविचक्रोऽयं संसारं सारयत्यहो।।२२।।

जायते ह्येकतो जीवो ह्यन्यतो म्रियतेऽनिशम्।
जीवनं मरणं त्वेष श्चक्रश्चलति सन्ततम्।।२३।।

सुखदुःखे जराव्याधी आनन्दोल्लास एव च।
संयोगो विप्रयोगश्च एते जीवस्य जीवनम्।।२४।।

सुख दुःखेष्वनुद्विग्न आत्मारामस्तु योगवान्।
जीवो महान् महानत्र सूर्यचन्द्रादिवत् कृती।।२५।।

जड़ पूजां तु सम्पाद्य ततश्चैतन्यमाविशेत्।
येन स्यात्प्रगतिस्तत्र परं धाम्नि तुह्यात्मनः।।२६।।

इन्द्रियाणि मनोबुद्धी चित्ताहङ्कारसंयुताः।
रमन्तां विश्वचैतन्ये महत्प्रकृतिभाविते।।२७।।

प्रकाशो हि प्रकाशो हि अनन्तश्चितिमत् तु सत्।
व्याप्नुयात् परितो येन आत्मारामत्वमाप्यते।।२८।।

आत्मारामाभिरमतां धर्माधर्मौ तु शून्यकौ।
तेषां सर्वत्र सर्वं हि ऋतं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।२६।।

जायतां हि हरिद्वारे ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्।
ज्ञानविज्ञानमूर्तीनां सतां ऋषिपरम्परा।।३०।।

क्रमते केशवर्षिस्तु विधिनानेन स्वाश्रमे।
दृष्टिं दातुं हरिद्वारे निर्धनेऽस्मिन्निकेतने।।३१।।

२-आश्रमः

आसमन्ताच्छ्रमो यत्र खेदो दैन्यं तपस्विता।
स्थूलात् सूक्ष्मगति दिंव्या ह्याश्रमः स हि कीर्त्यते।।१।।

विश्रामः सर्वभूतानां सन्तप्तानां परा गतिः।
रमणीयपराकाष्ठा ह्याश्रमः स हि कीर्त्यते।।२।।

भूतं भव्यं भविष्यच्च यत्र दीव्यन्ति सम्मुखम्।
चिद्विलास प्रकाशात्मा ह्याश्रमः स हि कीर्त्यते।।३।।

जीवनक्रम सिद्ध्यर्थमाश्रमाः परिकल्पिताः।
मूलादूर्ध्वगति र्यत्र सदाचारात् प्रजायते।।४।।

योगैश्वर्य परानन्दाः वैकुण्ठे परमा गतिः।
आश्रमाचार निर्वाहाल्लभ्यन्ते तु सुनिश्चितम्।।५।।

३- आश्रमस्वरूपम्

त्रयी मन्त्रध्वानैः परिसरधराधूत कलुषः
पुरोडाशामोदाहृत निकट लोकाञ्चितमना
निसर्ग सौविध्याद् द्विज सुजन विश्रामधरणिः
समेषां नीडत्वाज्जयतु जयतादाश्रमवरः।।६।।

सदन्नं सद्वृत्तिः प्रतिपलसदाचारसरणिः
गुरूणां सान्निध्यं नय विनय विद्याधिकरणम्
निसर्गे संसर्गः प्रकृतिरमणं सात्विक मतिः
समाह्लादानन्दः जयतु जयतादाश्रमवरः।।७।।

विशिष्टाः व्यायामाः यम नियम योगेसु हि गतिः
मनीषा वेदानां भृगु कपिल विज्ञान विषयाः
नदीनामानन्दः गिरि विल गुहाराधन रतिः
समाधेराभोगः जयतु जयतादाश्रम वरः।।८।।

गवां दुग्धं भूयो मधु प्रचुरता स्वादुफलता
यवाः मुद्गाः ब्रीहिचणकतिलशाकादि बहुलम्
अपूपा चामादेः प्रचुररसता गोरसयुता प्रदाह्यन्नानां
जयतु जयतामाश्रमवरः।।९।।

वितानं रम्भाणाममृत कलि शैलूषतरुता
अरिष्टश्चाम्पेयः प्रियक गणिका सोमबहुता
लताश्लिष्टाः वृक्षाः प्रणमितशिखा आर्षप्रणये
स्फुरद् स्पन्दानन्दो जयतु जयतादाश्रम वरः।।१०।।

लतानां शृंगारे भ्रमति भ्रमराली मधुतृषा
निशीथे स्नेहात्मा हृदयहरणः कोकविरहः
शरज्ज्योत्स्नाह्लादामृत जलधि मग्नात्मधिषणा।
लसन्ते यद्देशे जयतु जयतादाश्रम वरः।।११।।

नदत् केकी भृङ्गस्वर मिलित साम स्वर जुषां
विचित्रं सङ्गीतं प्रणव सहितं छात्र विदुषां
तदाधीनाः रम्या द्रुमदल लता नर्तन क्रियाः
धरा गान्धर्वी वा जयतु जयतादाश्रम वरः।।१२।।

क्वचिद् बीणाक्वाणः क्वचिदपि तु वन्शीमधुरिमा
मृदङ्गानां तालाः स्वरलयसुसाम्येन सुखदा
क्वचिन्नाट्यं नृत्यं स्फुरित जनता सात्विक गुणं
रसानामाकारः जयतु जयतादाश्रम वरः।।१३।।

पुराणव्याख्यायाः मुनिजनमुखै र्नित्यकथनम्
जनैस्तास्याचारानुसरणविधे र्नित्यमननम्
निदिध्यासाभ्यासात्परमपद प्राप्त्यै स्थलमिदं
सुसाधूनां भव्यं जयतु जयतादाश्रम वरः।।१४।।

समेषां जीवानामभय सुखसञ्चारणधरा
तपःस्वाध्यायार्चा गुरुचरण सेवादि सुरसा
त्रिलोकी सौन्दर्यात्परमरमणोल्लास सदनम्
ऋषीणामैश्वर्यम् जयतु जयातादाश्रमवरः।। १५।।

४. निर्धननिकेतनम्

खड़खड़ी त्रिपथस्यास्ति पूर्वास्यां दिश्याश्रमः।
गङ्गान्तं निर्मितः सोऽस्ति निर्धनानां निकेतनम्।।१।।

पूर्वाभिमुखतात्वस्य गङ्गापर्यन्ततां गता।
सूर्योदये प्रभातीत्थं सुवर्णक्षोदधूसरा।।२।।

तत्र श्री केशवानन्द ऋषिः सूर्यार्चनेरतः।
कामभिख्यामहो धत्ते सुवर्णवर्ण ब्राह्मणः।।३।।

एकतो ब्रह्मवेला स्यादन्यतो जाह्ववीतटम्।
तत्र हिरण्यगर्भस्य वर्णविस्तार प्रक्रिया।।४।।

अहो भव्या अहो दिव्या हंहो लोकोत्तराच्छटा।
सप्तलोकान्तगेयन्तु सप्तवर्ण विचित्रता।।५।।

प्रकृतिरमणीकाये रश्मिभिर्वर्णताञ्चनम्।
ससूर्यनायकाश्लिष्टं, अनुरागातिशायनम्।।६।।

रात्रि मेचककञ्चुकं प्रियमुखादुत्सारयन्नायकः।
प्राची कान्त मुखं प्रकाश्य सविताह्यारोहते रोदसी।।
एतस्माद्धि शनैश्शनैः दिशि दिशि चैतन्यमातन्यते।
सिद्धानां हृदयेषु प्राङ्मुखतया रागोऽनुरागायते।।७।।

तस्यास्तुङ्गललाट मध्यगमनात् सिन्दूरविन्दुर्यथा।
ईषद् रोहित पाटलादिमुरवतां हित्वा हरिद्रायितः।।
पश्चात् स्वर्णिमधूलिधूसरिततां विस्तारयन् भास्करः।
सिद्धानां हृदयेषु प्राङ्मुखतया रागोऽनुरागायते।।८।।

भूतानां जड़ताप वारणतया दीप्तिप्रदानेन यो।
गायत्री स्तवनं त्रिकालसदनं वेदार्थसारो रविः।।
प्रत्यक्षं त्रिदशः स सूर्यभगवान् आनन्दलीलायते।
सिद्धानां हृदयेषु प्राङ्मुखतया रागोऽनुरागायते।।९।।

कोऽन्यः स्याद्धि हिरण्यगर्भ प्रतिथो मार्तण्ड लोकात्परः।
येनास्यां भुवि वर्णसंकरतया अग्निः सुवर्णोकृतः।।
तेजोराशिरयं नियामयति यो वैश्वानरीं प्रक्रियां।
सिद्धानां हृदयेषु प्राङ्मुखतया रागोऽनुरागायते।।१०।।

उदेति प्राणाञ्चनता सुहृत्सु।
उदेति सा चेतनता जगत्सु।।
उदेति भूतेषु गतिर्मतिः कृतिः।
सूर्योदयो नूतनमेव जीवनम्।।११।।

वृक्ष चतुष्टय मध्यगतेयं।
जह्नुसुता तटगीत शिवेयं।।
छात्रशताधिक पूर्ण सभेयं।
केशव चन्द्र सुकौमुदिकेयम्।।१२।।

प्रत्यहं ब्रह्मवेलायां ब्रह्मचारिशतैर्युता।
गायत्री जपसंलग्ना सभेयं राजतेतराम्।।१३।।

ताराशतगणैर्युक्ता सचन्द्रारजनी यथा।
राजते तद्वदेवेयं सार्षिका छात्र संहतिः।।१४।।

सूर्यात् सञ्जायते ऊष्मा, उष्मणा जलदागतिः।
जलदैः सृष्टिविभवः तेनान्नानि हि प्राणिनाम्।।१५।।

लोकानां सविता सूर्यः द्रष्टाभर्ता प्रकाशकः।
सर्वचैतन्यसञ्चारी प्रत्यक्षदेवता भगः।।१६।।

सूर्योपासनसंलग्ना ऋषयो मन्त्रदर्शकाः।
आत्मनां क्रान्तिभावेन चैतन्यं जनयन्ति वै।।१७।।

तमिस्रा जड़ता तावद् यावद् सूर्यस्य नोदयः।
प्रभाते सूर्यदेवे तु प्रतिभाति वसुन्धरा।।१८।।

गङ्गातटं निर्धनतानिकेतनम्।
सूर्योदये च्छात्रशतैः समन्वितम्।।
श्री केशवानन्द वचोनिषेवणम्।
श्रद्धान्विताः भाग्यभृताः लभन्ते।।१६।।

५. दृष्टिसृष्टिः

श्रद्धा मूलं हि धर्मस्य गुहान्तर्गत वस्तुनः।
श्रद्धया निर्मितो भावः फलत्वं प्रतिपद्यते।।१६।।

तन्त्रे मन्त्रे द्विजे देवे मूर्त्याञ्च ऋषिवाणिसु।
यावती भवति श्रद्धा तावत्येव फलागतिः।।२०।।

यथा दृष्टि स्तथा सृष्टिः रहस्यं परमद्भुतम्।
रहस्यस्यास्य प्राचार्याः ऋषय ऋषयः खलु।।२१।।

दर्शना च्छ्रवणाद्यस्य वस्तुनः स्यात् प्रसन्नता।
तद् श्रद्धा कीर्त्यते लोके यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।२२।।

श्रद्धासम्पादनायैव कार्यो यत्नः सुधीजनैः।
येन मानस संशुद्धि र्लोके कर्तुं हि शक्यते।।२३।।

तादृशाचार संरक्षाद्याश्रमेषु भवेत् यया।
भक्तानामनुरक्तानां सत्वभावः समुद्भवेत्।।२४।।

केशवानन्दचरणैर्व्यवस्था तादृशी कृता।
यया बुद्धिविकासो स्यात् निर्धनेऽस्मिन्निकेतने।।२५।।

६. श्री केशवानन्दर्षिचरणाः

हरिद्वारे बन्शीधर चरणसेवार्पितमना
तपस्याग्नौ हव्यं परममकरोद् यौवनधनम्
ऋषि गङ्गातीरे बहुजनशरीरेऽपि विजनः
लसद्दुर्गारागः ऋषभसुरतालं विजयते।।१।।

वियद्गङ्गाफेनैः बदरिवनकेदारभ्रमणे
परिस्नातो यस्मादधिगतमहास्नातक पदः
अतो ज्ञानं दित्सुः परमरमणं भारत भुवि
जनानामानन्दाकरविभवकामो विजयते।।२।।

गृहेवारण्ये वा कुसुमिनि तथा कंटकवति
सरन्मार्गे नित्यं प्रकृतिकृत सौन्दर्यरमणात्
सुखे वा दुःखे वाह्यविचलितमनस्त्वात् स्थितप्रधीः
रमन् सौन्दर्येषु प्रकृतिरमणोऽयं विजयते।।३।।

त्वया ह्याकैलासाज्जलधिजललीलोत्थविसरात्।
अवाप्ता ज्योत्स्नेव प्रथमरमणीया शुचिसिता

शतश्वेतद्वीपप्रथितशुचितौपम्यविधिना
वहिर्वान्ते सैव परमशुचिता ते विजयते।।४।।

दिवा वा नक्तं वा प्रतिदिवससन्ध्यं त्वहरहः
सरस्वत्याः काल्याः सततशुभलक्ष्म्याः प्रणतिमान्
त्रिदेवीसेवित्वात् कृतसकल देवी तनुमना
सदादुर्गापाठहृदय गतिकोऽयं विजयते।।५।।

जन-आधिव्याधि व्यथित बहुपीड़ाञ्चितमना
अगेहो दुर्देहो निजजन विडम्बायित धनः
समागच्छन् त्वां सः नियतमनुधत्ते सुखगतिं
महापीड़ावेग व्यथित पतिता ते विजयते।।६।।

ततस्तन्त्रै र्मन्त्रै र्भगवतिरतिज्ञानदिशया
समस्तो लोकात्मा त्वदधिगत सौन्दर्यलहरी
सदा गङ्गातीरे सलिल सुसमीरे विहरते
जनानामानन्दाधिककरणरम्यो विजयते।।७।।

प्रथा वंशे प्राप्ता दृढ़ितपद वन्शीधर कृता
भगिन्याः सन्तानं प्रभवतु वितानं ऋषिकुले
त्वयेयं निर्व्यूढा ऋषिकुल प्रथाराधनधिया
न्यसन् रामं कृष्णं पदनिहितरामो विजयते।।८।।

सरस्वत्याः काल्याः सकल शुभलक्ष्म्याश्च कृपया
पराविद्या शक्ति र्विभव सुख सौन्दर्यलहरी
विराजन्ते दिव्यास्तव ह्यधिसुषुम्णं यतिवर
निराकाङ्क्षो देवीत्रयरमण सिद्धो विजयते।।९।।

अयोद्ध्या शक्तिस्ते विततबहुदुर्गा सनतया
सुमित्रासेवित्वात् प्रकृति सुलभा किङ्करक्रिया
श्वसन् त्रेताकाले जित कलियुगाधर्म धिषणः
दृढ़ा रामे भक्तिः दशरथमनस्वी विजयते।।१०।।

यथान्येषामाधि व्यथयति जनान् मन्मथतया
करोत्येनान् लोके तृणलघुतया याचन परान्
ऋषीणां सैवाभिर्भवति दृढ़वैराग्य जनकः
विचित्रं लोकेऽस्मिन् ऋषिजनरहस्यं विजयते।।११।।

वियोगे योगे वा जनपरिभृते वा रहसि वा
विपत्तौ सम्पत्तौ विगतव्यसनः सर्वस्पृशनः
अतर्क्ये चारित्र्ये ह्यविदितकथे कः किमु वदेत्
अविज्ञेयं लोके ऋषिजनरहस्यं विजयते।।१२।।

कदाचिन्नृत्येषु ह्यथ च प्रियगीतेसु रमणम्
श्मशाने हर्म्येषु ह्यविषमरतिः प्रोषित मतिः
प्रियालापे रक्तः सपदि तु विलापे विचरणम्
स्थिरत्वाभावेऽपि प्रकट निजभावो विजयते।।१३।।

अधोवृक्षाणां यो वसति करपात्राशनक्रियः
सहायास्तिर्यञ्च स्तृण शकल शय्याविधिनिधिः
स्वभावाभावादि जनिमृतिसु संक्षेपित स्वधीः
विदग्धो व्यग्रोऽपि पिबति परमानन्द लहरीम्।।१४।।

न तस्यास्ते देहं तदिव न हि गेहं न च स्वपूः
न नारी नो वारि र्न च परजनो नैव स्वजनः
क्व प्रेमी क्वाप्रेमी कुह तु निजदेशःक्व च परः
नितान्तं कैवल्यं ऋषिजनमनस्यं विजयते।।१५।।

सदैव प्रत्यूषे प्रतिदिन दिनेशार्चनतया
गतो गङ्गातीरे द्रवितबहुनीरेऽद्भुतरसः
इनौ द्वौ पश्यन् यो नभसि ह्यधिगङ्गं विचकितम्
द्विसूर्यदृष्टित्वाच्चकितचकितोऽसौविजयते।।१६।।

असौ ऋषिः केशवनाम धेयः सेवार्थ प्रस्तावित देह गेहः
चिकीर्षति प्रकवितां तु सत्यां कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।।१७।।

७. ऋषेरभिलाषः

मानवः करुणो भूत्वा प्रकृतिं लालयेत्सदा
सा परिष्कृत्य द्रव्याणि लोकानानन्दयेद्भृशम् ।।१।।

कौमारं स्यात्तपः पूतं यौवनं त्वनुरक्तिमत्
वार्धक्यं शिवसंकल्पं जीवनान्तञ्च ब्रह्मसात् ।।२।।

छात्रेषु ब्रह्मचर्यं स्यात् गृहस्थेषु समन्वितिः
अधिकारिषु कर्तव्यं लोकेषु समवेदना ।।३।।

दुष्टाः सभ्या अदुष्टाः स्युर्जनाः सर्वहितेरताः
ज्ञान विज्ञान शारवासु वर्धन्तां विश्वश्रेयसे ।।४।।

सर्वसौभाग्यसम्पन्नाः कान्ताः दैवभयाः सदा
अनधाः सर्वकरुणाः मैत्राः अध्यात्मचेतसः ।।५।।

आश्रमाः शमसम्पन्नाः चिद् विलास प्रयोजनाः
प्राकृताः सर्वकल्याणाः साधूनामेव भूमयः ।।६।।

एवमेवास्तिकः साधुः जिज्ञासुः श्रद्धयान्वितः
दुःखार्तो दानदाता च आश्रमस्यातिथि र्भवेत् ।।७।।

असतां वञ्चकानाञ्च धर्मकैतव धारिणाम्
पदाहंकार मनसां प्रवेशो मास्तु आश्रमे ।।८।।

अनीत्या च कुरीत्या च प्राप्तदानधनैस्तु यः
आश्रमः प्रचलत्यत्र स तु पापाश्रयः खलु ।।९।।

स्वाध्यायश्च तितिक्षा च आर्ताणामार्तिनाशनम्
सर्वथाभय मैश्वर्यम् आश्रमस्य तु सम्पदः ।।१०।।

गङ्गाद्वारे हरिद्वारे निर्धनानां निकेतने
उपर्युक्तं भवेत्सर्वं प्रशासननिदेशनम् ।।११।।

ज्ञायतां रामकृष्णेन कर्मचारिगणैस्तथा
ऋषि प्रोक्तोऽभिलाषोऽयं, ऋषि सन्तोष दायकः ।।१२।।

ॐ

श्रद्धेयाः श्री बन्शीधर तापसाः।

डा० सतीश कुमारी, प्राचार्या
ऋषि संस्कृत महाविद्यालयः, हरिद्वारम्

पञ्चाप प्रान्तभूमिस्थे विरकां नाम ग्रामके।
अष्टादशशताब्द्यास्तु त्रिसप्त्योत्तरेऽब्दके।।१।।

अमरनाथ ठाकुरस्यात्मजत्वं धरन्नसौ।
श्री बन्शीधर नाम्ना हि सुतो भूम्यामवातरत्।।२।।

द्वादशवर्ष देशीयो गुरुमाचारसम्भृतम्।
मिलखीराम विख्यातमगच्छद् ज्ञानप्राप्तये।।३।।

नगरेऽस्मिन् धर्मकोटे धारणाध्यानतत्परः।
धैर्येण धारयन् धर्मं जातो धर्मधुरन्धरः।।४।।

निवर्त्य गुरुगेहात्स विरकामेव ह्यागतः।
यत्र पर्णकुटीं कृत्वा तपश्चर्यापरोऽभवत्।।५।।

एष धर्मभृतां श्रेष्ठः सदाचारश्च मूर्तिमान्।
सरलः सर्वसम्मान्यो ब्रह्मचर्यैक जीवनः।।६।।

आजानुबाहुर्जटिलस्तेजस्वी निर्भयोऽभ्रमत्।
केदार-वदरीक्षेत्रे पदातिरेव सर्वदा।।७।।

एक वस्त्रधरो, धीर एकाशनकरः कृती।
एकासन स्थिरःस्थैर्ये ऐक्य योगयुतो यतिः।।८।।

प्रत्याहार पराकाष्ठा प्रत्यर्पण परागतिः।
प्रतिमामात्र कायस्तु परब्रह्मणि संस्थितः।।९।।

केनापि बन्धनेनासौ बद्धुं नैवाप्यशक्यत।
अवधूतेश्वरः साक्षात् सर्वभूत हिते रतः।।१०।।

सहजा सुगमातस्य ह्यासीद्धर्मस्य धारणा।
येन दान्तः शुचिस्त्यागी करुणो मानवो भवेत्।।११।।

धर्मः श्रद्धेति विज्ञेयं सोऽस्ति व्यक्तिपरो भृशम्।
यत्र निष्ठा भवेद्यस्य तत्र श्रद्धा प्रतिष्ठिता।।१२।।

श्रद्धया सम्प्रदायोऽस्ति सम्प्रदायैः सुसंस्कृतिः।
संस्कृत्या सुसमाजोऽस्ति सुसमाजे परं सुखम्।।१३।।

एतदादि प्रसाराय निर्धनानां निकेतनम्।
स्थापितमृषिशिष्येण केशवानन्द स्वामिना।।१४।।

ॐ

ऋषिकेशवानन्दमहाराजानामार्षज्ञानस्य वैचित्र्यम्

आचार्य मनसाराम शर्मा
पूर्व-प्राचार्यः
श्रीभगवानदासआदर्शसंस्कृतमहाविद्यालयः हरिद्वारम्

शब्दोपमानयो नैव पृथक् प्रामाण्यमिष्यते अनुमानेनगतार्थत्वादिति वैशषिकमतम् वैशेषिका हि शब्दोपमानयोः पृथक् प्रामाण्यं नेच्छन्ति, किन्तु तयोरनुमानेऽन्तर्भावं कथयन्ति तन्न सम्यग् बिना व्याप्ति बोधं शब्दादि बोधतः। शब्दप्रमाणं नानुमानेऽन्तर्भवति व्याप्तिपक्षधर्मताभावेऽपि शब्द प्रमाणं विशेष ज्ञानं जनयति, तथाहि स्वर्ग कामो ज्योतिष्टोमेन यजेत' इदं शब्दप्रमाणं यागस्वर्गयोः कार्यकारणभावं प्रकाशयति, न च यागस्वर्गयोः कार्यकारणभावोऽनुमानगम्यो दृष्टान्ताभावात् व्याप्तिग्रहासंभवाच्च, प्रत्यक्षस्य तु कथैवात्र न प्रसरति, प्रधानपरमाणु जीव ब्रह्म धर्माधर्माद्यतीन्द्रिय पदार्थपरिचयः केवलेनार्ष प्रत्यक्षेण जायते, यथाहि लौकिक प्रत्यक्षाऽनुमानागोचरत्वेन लोक प्रसिद्धाः पितृ रक्षः पिशाचानां सिद्धयः कुड्यादीनाम् अवयव विभागमन्तरैव गृहान्तःस्थितवस्तुविषयक दर्शनमन्तर्धानादयश्च कर्मजाः कर्माधीनादृष्टविशेष सिद्धाः एव सन्ति एवम् ऋषीणामपि ज्ञानं तपः स्वाध्यायादृष्ट जन्यं न प्रत्यक्षानुमानजन्यम्, निरन्तर साधनाऽनुष्ठान पुरः स्सर वेदशास्त्राभ्यास जन्यम् किञ्चिद्विलक्षण मेवार्ष प्रत्यक्षमित्युच्यते, रजस्तमोभिरनभिभूत चेतसां तपसा क्षीणकल्मषाणाम् निरावरणप्रत्यक्षाणाम् निरावणख्यातीनाम् ऋषीणाम् यदतीन्द्रिय विषय साक्षात्कारः तदस्माकं प्रत्यक्ष ज्ञानवत् आर्षप्रत्यक्षमित्युच्यते, यथा लोकः स्वमुखमपश्यन्नपि स्वच्छ दर्पणे प्रतिबिन्ब रूपेण पश्यत्येवम् ऋषयस्तपसा विशुद्धेऽन्तःकरणेऽस्मदादिभिरग्राह्यमपि वस्तु अव्यभिचरितं पश्यन्ति तच्चार्षज्ञानं योगप्रत्यक्षजन्यं न लौकिक प्रत्यक्ष जन्यमनुमानजन्यंवा येन लौकिकप्रत्यक्षाऽनुमानयोरसंभवाल्लोकानां तत्राविश्वासो भवेदिति।

अतीन्द्रियान् असंवेद्यान् प्रत्यक्षपूर्वकैरनुमानादिभिरप्यग्राह्यान् भावान् अन्तर्यामिणं शब्दब्रह्म देवताः कर्मणां फलप्रदसंस्कारमित्येवमादीन् ये ऋषय आर्षेण व्यावहारिकादन्येन अलौकिक समाधिरूप तपो लब्धेन चक्षुषा चक्षुः सदृशेन योगज धर्मेण पश्यन्ति तेषां बचनमनुमानेन अव्यवस्थितेनातीन्द्रिये प्रवर्तितुमशक्तेन च न कदाचिदपि बाध्यते। आर्ष विज्ञानमुपनिषज्जन्य ब्रह्मविज्ञानवद् सर्वविज्ञानोपरि विराजतेतराम नितरामिति।

यथैवं विधमार्ष ज्ञानं प्रतियुगं वर्तते प्रतियुगञ्च ऋषयो जनतायाः सन्मार्ग दर्शनं कुर्वन्ति, तथास्मिन् यथामत्यूहिते लघु निबन्धे प्रकाशयितुं यतितम् विश्वसिमो गुणैकपक्षपातिनो विद्वांसः हंसा इव नीरक्षीरविवेचन, न्यायेन व्यवहरिष्यन्ति।

युगानि सकलान्यपि महापुरुषैर्व्यवस्थाप्यन्ते, धार्यन्ते भवन्ति बहवो महापुरुषा महापुरुषेष्वपि ये खल्वग्रिमां कोटीमाटीकन्ते त एव नामर्षयो कथ्यन्ते, ऋषीणां खलु प्रभावसम्पत्तिरतिक्रम्य देशकालसीमां विराजतेतराम्। तेषां खलु ऋषीणाम् प्रातिभ्यमार्षज्ञानं जायते, यस्य प्रभावेण लोकानां सन्मार्गं दर्शयन्तस्ते जगती तले सकललोक पूजास्पदानि जायन्ते। अमीषां सद्व्यवहारविचारसंस्कारसंभाषणानि काञ्चिदलोक सामान्यमिव प्रतिभा विशेषमुद्गिरन्ति,

कृते त्रेतायाम् द्वापरे च युगे अत्रिवशिष्ठागस्त्यविश्वामित्र प्रभृतयो बहव ऋषयः प्रादुरभूवन्-येषाञ्च महिमातिरेकः श्रुति स्मृति पुराणेषु विस्तरेण वर्णितोऽस्ति। कलावप्यस्मिन्युगे यत्र-तत्र सर्वत्रानेके ऋषयः समभवन्, भवन्ति, भविष्यन्ति च। यतो हि कालोऽयं निरवधिर्विपुलाच पृथ्वी कदा किं घटिष्यते को वा साकल्येन परिच्छेतुं शक्नोति। अस्मिन्नपि युगे समवतरत्सु ऋषि महाभागेषु श्रद्धा भाजनान्यस्माकम् श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठा अनन्त श्री विभूषिताः १००८ श्री मन्तः केशवानन्द जी महाभागाः काञ्चिद् कमनीयामग्रिमां पङ्क्तिं समलङ्कुर्वन्ति, यतो हि कमनीयगुणरत्नामृतमय दुग्ध दधि-स्वादु फलादि वसुन्धरेयं वसुन्धरा कानिचिद्रम्याण्येव भव्यानि भूतान्युत्पाद्य स्वनाम्नोऽन्वर्थतां प्रकटयेत् भव्यानां भवोहि लोकाभ्युदयाय भवति। गीतायामपि यदा धर्मस्यग्लानिरधर्मस्याभ्युत्थानञ्च प्रसरति तदा-तदा साधूनां सदाचाराणाम् परित्राणाय बिनाशाय च दुष्कृतां दुराचाराणाम् भगवान् स्वकीयविशिष्टज्ञानैश्वर्य्यं विभूतिमाध्यमेन स्व प्राकट्यं विधाय जगति स्थेम क्षेमयो व्यंवस्थां विदधाति इति स्फुटमेव प्रतिपाद्यते, परमपूज्या ऋषि केशवानन्दजी महाभागा अपि साङ्गान् सरहस्यान् बहुधाभिन्नान् वेदान् अधीतिबोधाचरणप्रचारणैरात्मसात्कृत्य सर्वोपनिषदां गवाममृतमयदुग्ध गीतामृतमिति व्यवस्थाय व्यवस्थाप्य च देहेन्द्रियमनोबुद्धीनां परिष्काराय पवित्रता सम्पादनाय च ऋते भगवत्गीताया नास्ति जनानामज्ञान ध्वान्त विनाशाय कल्याण सरणिरिति तरणिकिरण व्रताः पर्यटन्तो लोकानामुद्दिधीर्षुतां प्राचीकटन्।

इत्थञ्च सद्धर्म प्रचाराय पर्यस्यन्तोऽपि मनस्तोषमलभमानाः कदाचित् कुत्रचिद् भागीरथीपवित्रतटे शुचावकाशे दर्भपवित्रपाणयो नीरन्ध्रामृतमय ब्रह्मपरायणा विचारयन्त स्तनिमानमुपेयुषि सदाचारसद्विचार सद्धर्मकलापेऽलघिमानमुपेयुषि कदाचार हिंसानृतमया धर्म मंडलेऽस्मिन् कलौयुगे किं किं कीदृशं धर्मरक्षा व्रतमिति वितर्क्य विचार्य निश्चित्यैवमेवं कर्तव्यमिति निरधारयन्।

परमहंस परिव्राजकानाम् ब्रह्मनिष्ठानाम् अनन्तश्रीविभूषितानां सकलजनतापूजास्पदानाम् प्रातः स्मरणीयनाम् स्वगुरु चरणानाम् पूज्य श्री वंशीधर जी महाभागानाम् धर्मान्न प्रमदितव्यम् सत्यान्नप्रमदितव्यम् तमसोमाज्योतिर्गमय स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्, मातृ देवोभव, पितृदेवोभव, अतिथिदेवो भव, इत्येवमादिकं स्वदीक्षाङ्गभूतममृतोपममुपदेशं मनोक्षिलक्षी कृत्य, तदङ्गतया सर्वप्रथमम् ऋषिमहाराजैरेभिर- धिगङ्गातटम् श्री निर्धननिकेतनस्याश्रमस्य निर्माणाय व्यवसितम्। तदानीं नैजमृज्वर्थं विभ्रद्दिं निर्धनमेवासीद्, किन्तु गच्छता कालेनेदं निर्धन निकेतनं शब्दविद्याकुशलैरन्यथान्यथा व्याख्यातमभूत्। सत्यमेव प्रतिक्षणपरिणामिनः सर्वेभावा ऋते चितिशक्तेरिति सांख्य सिद्धान्त इति। यदर्थमाश्रम निमार्णमिदं कृतम्। गीताया मर्मज्ञास्तत्र भवन्तो भवन्त बालब्रह्मचारिव्रताः सर्वकर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ज्ञानसामग्री मयं तपोव्रताऽनुष्ठानादिकं सर्वमिति निभाल्य ऋषिवर्य्या ज्ञानमन्दिरं विद्यामन्दिरं प्रत्यतिष्ठिपन्, मया खलु स्वयममीषाममृतमयीं संगतिमवाप्य विचार प्रचारे श्रुतं विदुषां समागमः सदासुगमस्तेषामस्ति ज्ञान साधनी भूत सर्वकर्मजातमिति केचन मीमांसका न सहन्ते ते तु मन्यन्ते आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्' इति श्रुत्या तु ज्ञानादीनामेव कर्मार्थत्वमुच्यते। कुत्रचित् कुत्रचिदन्यथान्यथापि श्रुति वचनानि भवन्ति। कथं निर्णेतव्यं यत् कर्मादिकमखिलं केवलं ज्ञानाङ्गभूतमिति, शंकायाम् महाराजानाममीषां समाधानमतीव रोचकं यत्सत्यं सर्वा अपि श्रुतयो ज्ञान प्रधानाः कर्मप्रधाना उपासना

प्रधाना वा स्वतः प्रामाण्यमेव विभ्रति किन्तु तत्परातत्पर विशेषतया श्रुतिप्रामाण्यम् व्यवस्थाप्यते तत्र च यथा ज्ञान प्रामाण्य प्राधान्यश्रुतीनां तत्परत्वं न तथा कर्मादि प्राधान्यश्रुतीनां तत्परत्वं निश्चीयते तत्परातत्परत्वयोस्तत्परत्वस्यैव वलीयस्त्वं मीमासायां समर्थितम्, अत एव शत्रुगृहभोजनायामन्त्रितेन केन चित्स्वमित्रं पृष्टम् किं मयास्य गृहे भोक्तव्यम् मित्रेणोत्तरितम् विषं भुङ्क्ष्व माचास्य गृहे भुङ्थाः अत्र विषं भुङ्क्ष्व इति वाक्यस्य तत्परत्वं न सम्भवति न हि मित्रं विषं भक्षणायमित्रं प्रवर्तयति अपितु सर्वथा शत्रुगृहभोजन निवृत्तावस्य वाक्यस्य तात्पर्यमिति प्रतिभाति।

ऋषि जी महाराजाः प्रत्यतिष्ठिपन् यत् कर्मावबोधकश्रुतीनां व्यावहारिकं प्रामाण्यम् व्यवहार मार्गे यथाश्रुत एव पन्था अनुगम्यते द्वैतश्रुतयोऽपि व्यवहार विषयतया कर्मादिप्रतिपादकतया प्रामाण्यं भजन्ति किन्त्वद्वैत ज्ञान श्रुतीनां व्यवहारविषयतया कथञ्चिदपि प्रमाणभावो न सिद्ध्यति प्रमृदित ब्रह्मक्षत्र भेदं स्वप्रकाश ब्रह्मामृतैक रसब्रह्माद्वैत भावनाया लोकव्यवहारेण दूरतोऽपिनास्ति सम्बन्धो न च श्रुतीनां कयापिरीत्यास्ति परस्परं कलहः सर्वेषामपि श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणादीनाम् अद्वैतज्ञानैकरसब्रह्मण्येवपरं प्रामाण्यम्। गीतायामपि बहुशोऽद एव प्रतिपादितमिति प्रमाणपुरस्सरमिंद व्याख्याय, किं तावत्स्वकीयम् ऋषि परम्परा निर्वाहकत्वं न प्रकटितम्। अक्षुण्णामिमां परम्पराम् रक्षितुमेभिः आश्रमे महानेकं ऋषिसंस्कृतमहाविद्यालयः प्रतिष्ठापितस्तदनु राष्ट्रभाषाप्रचारायापि ऋषिवालमन्दिरम् ऋषि माध्यमिक विद्यालयादयो बहवो विद्यालया आश्रमेऽस्मिन् सुव्यस्थापिताः छात्राणामावासभोजनवस्त्रादि दानस्यापि अन्यत्र दुर्लभाव्यवस्थात्र परिदृश्यते याच सर्वैरपि निर्मत्सरैः सहृदयैर्भावुकैः श्रद्धालुभिरहर्निशं कंचनामन्दानन्दसन्दोहमनुभवद्भिः सादरं प्रशस्यते सत्याऽनुष्ठान् सम्पन्नता धर्मानुष्ठान् सम्पन्नता ज्ञानानुष्ठान् सम्पन्नता दानानुष्ठान सम्पन्नतेत्यादिकं हि ऋषि परम्परा निर्वाहकताङ्गम् महायज्ञैश्च चाश्रयैः ब्राह्मीयं क्रियते तनुः दानतप यज्ञादि व्रतानुष्ठानेन देहेन्द्रियमनोबुद्धीनां पवित्रता जायते शान्तोदान्तः समाहित उपरतः श्रद्धान्वितोहि जिज्ञासुरात्मसाक्षात्काराय प्रभवति नान्यथेति श्रुतिशिक्षापद्धतिमनुसृत्य श्रीमद्भिः ऋषिजी महाभागैः आश्रमपरिसरे बहूनि सन्ध्याबन्दनादीनि नित्यनैमित्तिक यज्ञाद्यनुष्ठानानि समनुष्ठीयन्तेऽनुष्ठाप्यन्ते च नित्यमेव भगवत्गीता पारायणप्रवचनपुरस्सरं सर्वा दैनिक क्रियारभ्यते उषस्येवास्मिन्ननुष्ठाने आश्रम निवासिनः समेऽपि जनाः सर्वेऽप्यध्यापकाः, छात्राश्च सत्संगभवने सम्मिलिता भवन्ति, सन्ध्याकाले देवपूजावसरे च छात्रा सम्भूय देवपूजा प्रार्थनादिभिरात्मानमकलुषी कुर्वन्ति "यद्यदाचरति श्रेष्ठो लोकस्तदनुवर्तते" इति दिशा लोक संग्रहायवारत्रयंलक्ष चण्डी यज्ञानुष्ठानमपि आश्रमेऽस्मिन् सम्पन्नतामगमत् शतचण्डी सहस्रचण्डी यज्ञानुष्ठानानि तु अदुर्गाश्रयैरपि दुर्गा श्रयैरेभिर्महानुभावैः प्रतिवर्षं बहुशोऽनुष्ठाप्यन्ते। ऋषिर्वेदः तदुक्तमृषिणेति प्रतिपादनात् वस्तुतो वेदार्थवाचकः ऋषि शब्दस्तथापि ये खलु वेदमार्गानुमामिनो वेद शास्त्र मर्मज्ञा धन्या मनुष्यास्तेऽपि ऋषिशब्देन व्यवह्रियन्ते इदञ्च भगवता सूत्रकारेण पाणिनिना *"संख्यावंश्येन"* इति सूत्रयता तदुपरिवार्तिककृता वररुचिना तदुपरिमहाभाष्यकृता भगता पतञ्जलिना *"त्रिमुनि व्याकरणम्* इति सूत्रोदाहरणं प्रत्युपस्थापयद्भिश्चार्थोऽयं निर्लुठित गर्भतया प्रकाशितोऽभूत् न तिरोहितं त्रय्यन्त वेदना परिष्कृत चेतसां केषामपि सचेतसामिति एवं विधसत्कर्माऽनुष्ठानाऽनुष्ठापनपरायणाः खलु पूज्या श्री केशवानन्दजी ऋषि महाभागा आर्षपरम्परा निर्वाहकाअग्रेसरा न केषामनेकेषां श्रद्धाप्रीति भाजनानि भवेयुः स्वयमनुभूतं मया यच्छास्त्र चर्चायाम् सकलकला कलायामेते न कदाचिदपि खेदमावहन्ति अपि च समुत्सुकतां निजां प्रकटयन्ति।

प्राचीन संस्कारैरैहिकाभ्यांससाधन सम्पत्ति वशाद् ऋषि केशवानन्द जी महाराजानाम् करामलकवत्सर्वशास्त्र ज्ञानं परिपूर्णमभ्रान्तमस्ति नात्र संशीति लेशावसरः तेषामुपदेशगोष्ठीषु कदाचित्केनचित् कदाप्यपरेणापि केनचित्प्रश्नोऽयमुद्भावितो यज्जगत्कारण विषये सन्ति वादिनां विप्रतिपत्तयस्तथाहि केचन प्रधानं जगत्कारणं वदन्ति सांख्याः। अपरे नैयायिकाः परमाणून् जगत् कारणमुद्गिरन्ति, केचन बौद्धाः शून्यमेव जगत्कारणमिति मन्यन्तेऽथापरे चार्वाकाः स्वभाववादं प्रतिपादयन्ति, तत्रापि तेषु केचन सांख्यादयः सत्कार्यवादिनोऽपरे नैयायिका माध्यमिक बौद्धादयोऽसत्कार्यवादिन इति। सर्वेऽपि च तर्कप्रमाणयुक्तिभिस्तदा मासैर्वा स्वस्व मतं प्रमाणयितुं यतन्ते तत्रैवं सति वाताहत नौरिव प्रवात स्थितं दीपशिखेव न कुत्रचिदेकस्मिन्मते मतिः प्रतिष्ठां लभते, अतो महतीं कृपामाविष्कृत्य भवन्तो जिज्ञासूनामस्माकं मार्ग प्रदर्शयन्तु, निरन्तराभ्यासायास सत्काराधितशक्ति महिम्ना भवन्तो नूनमस्माकं सन्देहमपाकर्तुमर्हन्ति।

परम पूज्यानामृषि जी महाराजानां स्वभावोऽयमस्ति यत्ते सहसा किमपि न प्रतिपादयन्ति विचार्य तादृशीं शैलीमवलम्ब्य वदन्ति यथाच हितमपि मनोहारि भवेत्। तथा च तैः प्रतिपादितं यदा पातरूपेण सर्वेषां विदुषामपि वचनं सत्यमेव भवति, यतो हि विद्वद्भिरपि स्वस्ववासनावशादेव सर्वमपि यत् किञ्चिदुच्यते, किन्तु वेदाः प्रमाणम् वेदोऽखिलो धर्ममूलम् इति दिशा वैदिक सिद्धान्तेन यत्प्रमाणम् यद्रूपञ्च प्रपञ्चस्य प्रतिपाद्यते तदेव सत्यतयाग्रहीतुं युज्यते। यतो हि आप्तवाक्यंप्रमाणं आप्तश्च यो रागादिवशादपि नान्यथावादी अतः आप्तस्य वेदस्यैव निर्दुष्टं प्रमाणम् स्व स्व तर्कमूलकस्मृतीनां पौरूषेयतया न तथा प्रमाणम् यथापौरूषेय श्रुतीनां तिष्ठति प्रमाणता, इत्थमेव वेदमूलक मानवादिवचनानामपि भवत्यविकलं प्रमाणत्वं वेदाश्च चेतनमेव ब्रह्म जगत्कारणमित्युद्घोषयन्ति तस्माद्वा एतस्मादाकाशः सञ्जात आकाशाद् वायुर्वायोरग्निरद्भ्यः पृथिवी पृथिव्याः सर्वाणि जायन्त इति "तत्राप्यसङ्गोऽयं पुरुषोऽसङ्गो न सज्जते" अविकार्योऽयमुच्यते, इति एभिर्महद्भिर्वचनैः स्वतोऽविकारि ब्रह्मणो जगत्कारणता न घटते। अतश्च दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्ययेति, माया च विद्या च स्वयमेव भवति, इत्थञ्च लूता तन्तु दृष्टान्तेन यथा न केवलं लूता शरीरं तन्तूत्पादकं तथा सति मृताया लूताया अपि च तन्तूत्पत्ति प्रसङ्गान् नहि मृताया लूताया तन्तुरुत्पद्यते। न केवलाच्चेतनात् इदं हि न कुत्रचिद् दृष्टचरं कुत्रचित् श्रुतचरं वास्ति अतः ब्रह्मएव जगत्सृजति इत्येष एव ऋजु पन्था अस्ति।

अस्मिन्नपि प्रसङ्गे श्री महाराजैः प्रतिपादितं यदस्ति तावदज्ञानस्यापि शक्तिद्वयम्, एकावरण शक्तिः द्वितीया विक्षेप शक्तिरिति, प्रथमं हि आवरण शक्तिर्वस्तुनः स्वरूपमावृणोति पश्चाच्च विक्षेप शक्ति र्विक्षेपमुद्भावयति रज्जु सर्पादि दृष्टान्ते तथा दृष्टत्वात्, यथा हि अन्धकारेणावृतायामेवरज्जौ विक्षेपशक्तिः सर्पादिविक्षेपमुद्भावयतीति नेयं कल्पनादृष्ट अदृष्ट श्रुता वा, श्रुतिरत्र प्रभवति *"विक्षेपशक्ति र्लिङ्गादि ब्रह्माण्डान्तं जगत्सृजेत्"*। तथा च तमः प्रधान विक्षेप शक्तिमदज्ञानोपहित चैतन्याज्जगज्जायते इति शतं श्रुति वेदान्तवचनानि सततमुद्घोषयन्ति तेषु जाड्याधिक दर्शनात् तमः प्रधानाज्ञानकार्यत्वम् परन्तु पूर्वोक्तमिदं न जातु विस्मरणीयम्। यन्न केवलादज्ञानान् न वा केवलाच्चेतनाज्जगज्जायते किन्तूभयादेव तादृशं सामर्थ्यम् अत एवोभयान्वयि विक्षेपो भवति, सन् घटो जडो घट

इति। किञ्च प्रपञ्चोऽयमंशपञ्चकात्मको भवति, अत्रैवमुच्यते अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पञ्चकम् आद्यं त्रयं ब्रह्म रूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् तान्येतानि रूपाणि स्पष्टमेव जगत्यनुभूयन्ते तथा च एकस्मिन्नपि घटे अस्ति घटः भाति घटः प्रियो घटः इति सततमेव सदाऽनु भूयते। चिज्जडयोः स्वरूपतो धर्मतश्च परस्पराध्यासेनोभयस्मिन् उभय धर्माणामध्यासात्मको व्यवहारो दृश्यते। विषयेऽत्र केनचिदाक्षिप्तम् यदि सर्वत्र ईदृशोऽध्यासमयो व्यवहारस्तर्हि दुःखमस्ति, दुःखं भाति चेति दुखेऽंशचतुष्कव्यवहारो दृश्यते तथा दुःखं प्रियमिति व्यवहारो न कस्माद् भवति इति, अत्र इत्थं समादधत्यद्वैत विद्याचार्या यत्सत्यमिदं यद् दुःखे दुःखं प्रियमिति नास्ति व्यवहारस्तथापि नास्ति हानिः यतो हि एषोऽत्र सिद्धान्तः यदध्यासे सति निमित्ताऽनुसरणम् नहि निमित्तमस्तीति अध्यास इति दुःख प्रियमिति नास्ति जगति कश्चन व्यवहारोऽध्यासो वा तेन च दुखं प्रियमिति प्रसिद्धिरपि गगन कमलिनी कल्पा न जातु कथञ्चिदपि व्यवहार वर्त्मनि किञ्चिदास्पदं भजती तिभावः। आप्ता श्रुतय एव प्रमाणम् तदुक्तं चेतन कारणवादः समीचीनः तर्कमूलका प्रधान परमाणु शून्यवादानामप्रामाण्यमित्थं श्री ऋषि महाभागैः समर्थितम्।

एवन्तावत्सर्वैरप्यवगन्तव्यम् यच्चेतन पूर्वकत्वमेव कारणत्वमवधारणीयम्, सांख्यास्तु मन्यन्ते यदचेतनानामपि प्रधान महदादीनां प्रवृत्तिः पुरुषार्था भवति, भोगापवर्गश्च पुरूषार्थः विवेक ख्यातिश्च पुरूषार्थः तत्र पुरुषस्य कर्तृत्वम् न संभवति पुरुषस्य निर्व्यापारत्वम् नास्ति पुरुषस्य कर्तृत्वम् न हि निर्व्यापारस्तक्षा वास्यादि साधनमधिष्ठाय तक्षणादि कार्ये प्रवर्तते, यथाहुः न केनचित् कार्यते करणम्' तथाच प्रकृत्यतिरिक्तस्य कस्य चिदन्यस्य चेतनस्य ईश्वरस्य वा न प्रयोज्य कर्तृत्वम् न वा प्रयोजक कर्तृत्वम् इति किन्तु नेदं मतं समीचीनतामञ्चति दृष्टानुसारेण हि तावददृष्टार्थ कल्पना भवति, दृष्टञ्चैतल्लोके यन्नखलु रथादयोऽचेतनाः न चेतना सारथि मन्तरा प्रवर्तन्ते अधिष्ठायैव तु चेतनं सर्वमचेतनं प्रवर्तितुमर्हति ज्ञानेच्छा प्रवृत्तीनां परस्पर कार्यकारण भावः। पुरुषो हि प्रथमं जानाति तत इच्छति समनन्तरञ्च प्रवर्तत इति ज्ञानवतः पुरुषस्य सर्वत्र द्वारभावः प्रवृत्तावगन्तव्यम्।

इत्थमेव परमाणुकारणवादोऽपि न सङ्गतिं भजति ते तु वदन्ति द्वाभ्यां परमाणुभ्यां द्व्यणुकं प्रथममुत्पद्यते पश्चात्त्रिभिर्द्व्यणुकैस्त्र्यणुकमेवं चतुरणुकादि क्रमेण सर्वप्रपञ्चजातमुत्पद्यते, ते तु प्रष्टव्या कस्मादकस्मादचेतनानां सतां द्वयोः परमाण्वोः संयोगो भवति तदानीं शरीराभावात् जीव चेतनस्यास्तित्वं नास्ति तदा केन प्रेरितयोस्तयोः संयागो जायते कथं तावच्छरीरमन्तरा जीवस्य स्थितिस्त्वया साधयितुं शक्या, यदि सपृष्टोवदेदीश्वर चेतन प्रेरितयोस्तयो भवति प्रवृत्तिरीश्वरस्य सदातनत्वेन तदापि सत्वादिति चेत्सदातर्हि ईश्वर द्वारा सृष्टिरेव भवेत्, ईश्वरस्य व्यापकत्वात् नित्यत्वात् परमाणूनामपि नित्यत्वात्, किं वा सदा प्रलय एव भवेत् तत्रापि कारणस्य विद्यमानत्वात् अतश्च नैषामपि पन्थाः कथञ्चिदपि प्रामाणिकतामञ्चति, अज्ञान कारण वादे तु सर्वं साधु भवति यतोहि वेदान्तिनोऽविर्वचनीयमज्ञानं मन्यन्ते, मन्यन्ते च न हि अविद्यायाः किञ्चिद्दुष्करन्नामेति, इत्थमेव शून्यवाद मतमपि तर्काघातं न सहते, तथाहि पृष्टव्यास्ते किं जगति शून्यत्वं वास्तवमवास्तवंवा, यदि वास्तवं शून्त्वम् शून्यत्वस्यैव वास्तविकधर्मस्य सत्वात् यदि शून्यत्वम् शून्यत्वस्यैव वास्तविक धर्मस्य सत्वात् यदि शून्यत्वमवास्तवं तर्हि जगतः सत्यत्वमेव। किञ्च शून्यत्वस्य स्वतः सिद्धिः? परतो वा? आद्ये स्व प्रकाशतया ज्ञानस्यैव शून्यतेति यदि परतः शून्यता सिद्धिस्तर्हि शून्यता

साधकस्यापिशून्य तैव तर्हि साधकाभावात् न शून्यत्वस्य सिद्धिरिति न किञ्चदेतत्।

भगवद्गीताया स्तत्त्वं ये पश्यन्ति त एव पश्यन्ति तत्वमिति दिशा ऋषि जी महाराजानाम् गीताया स्वाध्यायाध्ययनाध्यापन विधौ महानभिनिवेशोऽस्ति, विद्या व्यसनिनो गीताभ्यसनिनश्च छात्रानेतेऽनेकवसन द्रव्यादि पुरस्कारेण प्रोत्साहयन्ति वर्धयन्ति च, उक्तं यद् गीतापरायणप्रवचन नियमआश्रमे सततं प्रचलति प्रातरेव तादृशें रमणीये सत्सङ्गे समाजे आश्रम वासिनामन्तेवासिनामध्यापकानामन्येषां वोपिस्थतिर्नियता जायते एकदा शुश्रूयमाणेषु तावदस्मादृशेषु सत्सु नासतो विद्यतेभावो ना भावो विद्यते सतः इति श्लोक व्याख्या प्रसङ्गेनात्रोद्भवतो बहून् वादानूत्थाप्य पर्य्यन्ते सत्कार्यवादस्ते वेदान्त सांख्य स्वीकृत अविष्कृतः। व्यक्ताव्यक्त रूपेण कार्यस्यावस्थाद्वयं प्रतिपाद्याव्यक्तावस्थानेन कारणे सदैव कार्यं व्यक्तावस्थायामन्यथाऽन्यथा रूपेण भाषते, पूर्ववादिषु वौद्धाः खलु असतः सतः प्रादुर्भावं वदन्ति किन्तु सूक्ष्माद्बीजावयवादेवाऽकुंरोत्पत्तिर्जायते नाभावादिति अभावद् भावोत्पत्तौ तु दृष्टान्त समर्पणे सोऽपि मूकायते।

तार्किकास्तु सतः कारणात् पूर्वमसतः कार्यस्य उद्भवं वदन्ति यतो हि परमाणुषु पूर्वमसतोद्व्यणुकस्य जन्मेति प्रतिपादयन्ति अत्र ब्रूमो भवेदयं भवतः सफल मनोरथ यदि सिद्वान्तोऽयं तर्काघातं सहेत, "नासतो विद्यते भावो न खलु कदाचित् सत्वं किञ्चित्कदाचिदसत्वं कर्तुं शक्नुवन्ति, न खलु स्वभावे नासत्खपुष्पं कदाचित् सद्भवति, सत्सदेव असदसदेवेति निर्णयोऽयम्।

अत्र तार्किकाः प्रत्यवतिष्ठन्ते- ननु न वयं नरविषाणवदसत् स्वभावं विकारजातमिति मन्यामहे येन तद्वत् नरविषाणवन्नोत्पद्येतेत्थ मेवमाक्षिप्येत अपितु सन् घटोऽसन्घट इत्यादि व्यवहारान्यथाऽनुपपत्त्या सदसत्त्वे विकारजातस्य धर्मौ ते च सदसत्वे स्वकारणाधीनलब्धजन्मतया कदाचिदेव भवत इत्यङ्गीकुर्महे तथा च यथा घटें पाकात्पूर्व श्यामतापाकानन्तरञ्च रक्तता तथोत्पतेः प्राग्घटस्याऽसत्वं धर्मः पश्चाच्च तस्य सत्वं धर्म इति चेन्न।

यदि तयोः सदसत्वयो धर्मत्वं तर्हि धर्मिरूपं वस्तु दण्डायमानं सनातनमिति न कस्य चिद् धर्मिवस्तुनोविकार इत्यापद्यते, अथासत्वसमये तन्नास्ति तर्हि कस्य धर्मोऽसत्वं नह्यविद्यमाने धर्मिणि तद् धर्मोविद्यमान इत्युपपद्यते, यतो धर्मिसत्वं विना धर्मसत्वमनुपपन्नम् अतः सत्वं तस्यावश्यकम्, उत्पत्तेः प्रागपि कार्यस्य सत्वं स्थितम् तथा च न भवदभिमतं कार्यस्यासत्वं सिद्धमित्यर्थ : ।

<u>उपसंहारः</u> - तदित्थमेकदर्शनस्य ज्ञानं दर्शनान्तरज्ञानमन्तरा न संभवतीति दर्शनस्य दर्शनान्तराऽनुबन्धित्वात्, ऋषि केशवानन्दजी महाभागानाम् उपदेशेन व्यवहारेण च स्वैरकथायामपि चैषां ज्ञान वृद्धत्वं भक्तिरसिकत्वं शक्त्युपासकत्वञ्च पदे पदेऽभिव्यज्यते। व्याकरणमधीयमानेषु सूत्राणां वार्तिकानां भाष्याणाञ्च व्युत्पत्तयश्चर्च्यन्ते, साहित्यज्ञेषु लक्ष्यलक्षणग्रन्थग्रन्थय उद्भाव्यन्ते, सर्वदर्शनशास्त्रसर्वस्वं त्वमीषामात्मतत्वमिव प्रेमास्पदत्वं भजते, मया तु महदाश्चर्यं भ्रियते, यदाश्रमव्यवस्थाव्यवस्थापनव्यग्राः कथंकारेणामी शास्त्ररहस्यमेव सदासेवमानाः कालं नयन्ति महत्स्वपि लक्षचण्डी प्रभृत्यनुष्ठानेषु कदाचित्सर्वथा धनाभावे समुत्पन्नेऽपि कदापि नामी व्यग्रदृष्टाः मन्ये समीपेऽमीषां काचिदनिर्वचनीया शक्तिः प्रोत्साह संधुक्षणपरम्परा विराजते। यस्याः स्वं संकल्पसिद्धिकत्वं नैषां

केवलमनुमितमपितु निश्चितमेव विद्यतेतराम्। सत्यमेव निसर्गभिन्ना स्पदमूश्रीश्च सरस्वती चेतिद्वयमस्मिन्नेकस्मिनेकसंस्थं संतिष्ठते सर्वेऽपि रसा आनन्दमयाः श्रृंगार-वीर-करुण शान्त प्रभृतयो युगपत्सहस्थितिं लभन्ते विरुद्धानामप्येकत्राव स्थितिरालम्भनादिभेदेन यथा न दुष्यति तथा नाविदितचरं साहित्यमर्मज्ञानां विविधविरुदावली मण्डितानां पण्डितानामिति नाऽयंविषयः क्षोद क्षमतां जहाति,

अमीषां स्वाभाविक भाषणमपि तादृशीमास्वादतां धारयति यत् तच्छ्रवण पराणामापारपण्डितां जनानां न कदाचिदलं बुद्धिर्जायते, सत्यमेवोक्तम् यत् लोकोत्तराणां चेतांसि कोऽनु विज्ञातुमर्हति, किञ्च देशाटनं पण्डित मित्रता च चातुर्यमूलानि कथ्यन्ते, महतामयमनुभवो यन्महतां याः स्वैरकथास्ता एव भवन्ति शस्त्राणि किन्तु एता दृशीभिः सतीभिः कथाभिरपि कैश्चन भाग्यशालिभिर्विरलैरेवनरैः सदाचरणशिक्षा धर्मपरायणता वा गृह्यते। भगवान् भवो भवानीति द्वयमपि निरन्तरमपि ऋषि जी महाभागानामुत्साहवृद्धये ज्ञानवृद्धये धन-धान्य वृद्धये धर्म परायणता भक्ति परायणता वृद्धये कल्पतां येन च संस्कृतस्य संस्कृतेश्च महाऽनुपकार एभिर्मनसि सङ्कल्पितः अङ्कुरितः पुष्पितः फलितश्च सम्पद्येत यथा चैषां कीर्तिकौमुदी निखिलमपि हृदयसन्तापं जनानां सम्मार्जयन्ती मनांसि कुमुदानि च तेषा विकाशयन्ती यावच्चंद्रदिवाकरौ जगति दुर्लभां प्रतिष्ठां लभतामिति मार्कण्डेयासुषामेषां दीर्घायुष्यं कमनीयं किमपि कामयमानः भावपुष्पाञ्जलिना प्रणमन् विरमामि।

श्री निर्धननिकेतनस्य कार्यकलापानां संक्षिप्तपरिचयः

डॉ. स्वामी श्यामसुन्दरदास शास्त्री अध्यक्षः
श्री गरीबदासीय साधुसेवा आश्रम, हरिद्वारम्

मातृशक्तिं चण्डी देवीं, मायादेवीं च वैष्णवीम्।
वन्दे श्री मनसा देवीं ब्रह्म विष्णु महेश्वरीम्।।१।।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मकम्, शुभगंगाद्वारं हरिद्वार तीर्थम्।
तत्रापि पुण्यं ब्रह्मकुण्ड क्षेत्रम्, भर्तृहरिकं प्रख्यात सुघट्टकम्।।२।।

तदुपकण्ठे श्री भीमजानुकम्, तालं प्रसिद्धं पाण्डवस्मारकम्।
विद्या धनस्य शुभज्ञानकेन्द्रम्, निर्धनं निकेतनं शुभं जयेत्।।३।।

ऋषि केशवानन्द ब्रह्मर्षि वर्य्यैः, गुरुतीर्थ निष्ठैः संस्थापिता शुभा।
अध्यात्मक ज्ञानस्य प्रदीप्त दीपिका, निर्धन निकेतन संस्था सुख्याता।।४।।

ऋषि प्रवराणां गुरूदेवदेवाः विरक्त संरक्त सुभक्त-रक्षकाः।
श्री वंशीधराख्याः विरकांवलीयाः, महायोगिराजाः हि पंचनदीयाः।।५।।

ऋषिवरै रत्र संस्थापितं हि, श्री दुर्गामातृपीठं सुमन्दिरम्।
श्री राधाकृष्णीय देवालयोऽपि, गवां हि शाला शुभ यज्ञशाला।।६।।

संस्कृत संस्कृत्योश्च संरक्षण जार्थम्, शुभान्नक्षेत्रं संस्कृत विद्यालयः।
चिकित्सालयोऽपि शिशु शिक्षा मन्दिरम् गुरू पूर्णिमा पर्व महोत्सवश्च।।७।।

ऐतिहासिकाः लक्षचण्डी यज्ञाः, कुम्भ पर्व शिविराण्यप्यद्भूतानि।
गुरूप्रसादाच्च शुभ तीर्थयात्राः, संपाद्यन्ते हि निगमागमाः क्रियाः।।८।।

सर्वैरभिज्ञैर्नितरां हि स्मारितः अभिनन्दनग्रन्थो हि समर्पणीयः।
ऋषिवराणाममृत महोत्सवे, अहमपि सुधन्यो जातोऽस्मिमन्ये।।६।।

देशे विदेशे भारत संस्कृतिम् , प्रचारयन्तः सदाचारदीक्षाम्।
विश्वबन्धुत्वं नरनारी मानम्, ऋषिप्रवराः हि स्वस्थाः जयन्तु।।१०।।

अन्ते मदीया शुभकामभावनाः, ऋषेरहोमिशनस्यसदस्यकेभ्यः।
सद्भ्यो महद्भ्यो गुरूसादुयोगिभ्यः, श्री श्यामसुन्दरदासस्य शास्त्रिणः।।११।।

ॐ

ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः

डॉ० देवनारायण झा
उपाचार्यः (साहित्य विभाग)
का. सि.द.सं. वि.वि., दरभङ्गा

ऋषयो मन्त्रद्रष्टार इति प्रसिद्धा सूक्तिः सर्वत्र शास्त्रेषु जागर्तितमाम्। जानन्तु भवन्तो विद्वांसो यत् स्वप्रकाश परब्रह्म निः श्वसित निरस्त समस्त.प्रदोष शङ्काकलङ्कपङ्कानामपौरूषेयशब्दराश्यात्मकानां मन्त्रब्राह्मणात्मकानां वेदानां सर्वातिशायि माहात्म्यं सर्वत्र विद्योतते तमाम्। येषां कृपयैव अतीन्द्रिया अपि पदार्थाः करतल गता इवाभान्ति। तत एव निजात्मतत्व बोधनाय परम कारुणिकस्य परमेश्वरस्य वेदात्मना प्रादुर्भावः। अतएव उक्तम् :-

वेदोनारायणः साक्षात् स्वयम्भूरिति शुश्रुम।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात् तत्र मुह्यन्ति सूरयः।।

वस्तुतस्तु सर्वासामष्टादश विद्यानां तन्त्रागम पुराण न्यायसांख्ययोगमीमांसा धर्मशास्त्रोपबृंहितानामनेक विधानवद्य विद्योद्गम स्थानभूतानां वेदानां सर्वथा स्वतः प्रकाशकत्वमपि सुतरां सिद्ध्यति वेदश्च-इष्ट प्राप्त्यनिष्ट परिहाराय उपायं वेदयति। अतएव वेद पदवाच्योऽपिभवति। "वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे" इति मनु प्रतिपादितदिशा वेदानामनितर साधारण्यं स्वभावतः सिध्यति तत्रभगवता - उदयनाचार्येण" अनुपलभ्यमान मूलान्तररत्वेसति महाजनपरिगृहीत वाक्यत्वम् वेदत्वम्" इति तल्लक्षणं प्रतिपादितम्। "शब्दातिरिक्तं, शब्दोपजीविप्रमाणातिरिक्तञ्च यत् प्रमाणं तज्जन्यप्रमिति विषयानतिरिक्तार्थको यो यस्तदन्यत्वे सति आमुष्मिकसुखजनकोच्चारणकत्वेसति, जन्य ज्ञाना जन्ये यः प्रमाणी भूतः शब्दस्तत्त्वं वेदत्वम् इति प्राचीनैस्तल्लक्षणं कृतम्।" वस्तुतस्तु वेदानां संख्या गरीयसी वर्तते।

"अनन्ता वै वेदाः" इति श्रुत्यनुरोधात्। तथापि एकत्रिंशदधिकशतोत्तरसहस्रशाखोपवृंहितोमन्त्र ब्राह्मणात्मकोऽविच्छिन्न परम्परयाऽनुष्ठीयमानोऽपौरूषेय शब्द समवायो मानबुद्धिसमधिगम्यो वेदराशिरिति सम्यक् प्रतिभाति। अनादि पारम्पर्येण गुरोर्मुखादनुश्रूयमाणत्वादेवान्वर्थकानुभवत्वमपि तस्य श्रुतित्वं संसाधयति। अत्रैव अमरकोषकारोऽपि स्वकीयं तात्पर्यं रक्षति । "श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायः" इति। विश्वकोषेऽपि इत्थमेव प्रतिपादितमस्ति। "श्रुतिः क्षेत्रे अथाम्नाये वार्त्तायां श्रौतकर्मणि" इति। वेद पदार्थस्तु" मन्त्र ब्राह्मणात्मको वेदः" इति बोध्यः। उभयोर्वेदत्वबोधने तात्पर्यमस्ति। तथाहि मनुना प्रोक्तम् -

तपो विशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधिचोदितैः।
वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना।।

अत्र पद्ये "कृत्स्न शब्दो मन्त्रब्राह्मणयोरुभयोर्वेदत्वं प्रतिपादनायैव गृहीतो वर्तते। अतएव भट्ट पादेन तत्र

भगवता कुमारिलेन तन्त्रवार्तिके ''मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'' इति निरूपतिम्। ''आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्य-मतदर्थानाम्'' इत्यत्रापि आम्नाय शब्दः मन्त्रब्राह्मणात्मकं सम्पूर्णवेदराशिमेव बोधयति। शुक्रनीतावपि- ''मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनाम प्रोक्त मृगादिषु'' इतिरीत्या उभयोर्वेदत्वं सूचयति एवमेवबोधनाय स्तम्भश्रौतसूत्रेष्वपि प्रतिपादितमस्ति। तस्य च वेदस्य निःश्वसितत्वमुक्तं भवति। अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः'' इत्यादिवचनैः भगवन्निःश्वसितस्यर्ग्वेदादेरकृत्रिमत्वमपौरूषेयत्वञ्च प्रतिपादितम्। यत्र कुत्रापि सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणः'' इति वाक्यं श्रुतिगोचरं भवति तत्र सर्वत्र निर्मिता इत्यस्याविर्भाविता इत्यर्थः संयोजनीयः करणीयश्च प्रति भाति। अन्यथाऽपौरुषेय परिकल्पनेमहत् काठिन्यं स्यात्। ''यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै'' इति श्रुत्यनुसारेण वेदाः न निर्मीयन्ते अपितु चतुर्मुखस्य कर्त्रा परमेश्वरेण प्रवाहसिद्धाः नित्यात्मका वेदा ब्रह्मणो हृदि प्रहीयन्ते। यदुक्तम्-

निःश्वसितमस्य वेदा वीक्षितमेतस्य पञ्च भूतानि।
स्मितमेतस्य चराचरस्य च सुप्तं महा प्रलयः।।

इत्यभियुक्तोक्तेश्च वेदस्यापौरुषेयत्वं सिध्यति। सर्वाणि शास्त्राणि वेदमूलकत्वेनैव प्रामाण्यमर्हन्ति। न हि वेदमन्तरा कस्यापि शास्त्राङ्गस्य प्रामाण्यमभ्युपगम्येत। इदमपि न विस्मर्त्तव्यम्, यदवाधितानधिगतगन्तृत्वेनैव हि प्रमाणानां प्रामाण्यं स्वीकृतं भवति। नहि बुद्धेः स्वतः प्रामाण्यं स्वीक्रियते। तथैव वेदमन्तरा प्रमाणशतैरपि न धर्मनिर्णयो भवति। अत एव धर्मब्रह्मज्ञापकत्वेनैव वेदस्य वेदत्वमङ्गी क्रियते,। नान्यथा। यदुक्तम् भट्टमहोदयेन --

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता।।

यो हि जनः संसारे शास्त्रोक्त मार्गैरभीष्टं साधयति त एव प्रशस्ताऽनिन्द्याश्च भवन्ति । समग्रस्यापि वेदस्य निष्काम कर्मानुष्ठान एव तात्पर्यमिति फलकामना राहित्येनैव कर्मानुष्ठेयम्। तादृक्कर्मानुष्ठानस्यान्तःकरणशुद्धि द्वारेण नैष्कर्म्यज्ञानहेतुत्वेन च सर्वत्र सम्प्लुतोदकस्थानीयब्रह्मप्राप्तिफलकत्वेन प्रशस्ततमत्वान्महाफलत्वाच्चास्यवैशिष्ट्यं विश्रुतमस्ति। अतएव भगवता श्रीकृष्णेन गीतायामुक्तम्।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।।

अत्राह मधुसूदन सरस्वती ''न चैवं शङ्कनीयं सर्वकामना परित्यागेन कर्म कुर्वन्नहं तैस्तैः कर्म जनितैरानन्दैर्वञ्चितः स्यामिति। यस्मात् उदपाने क्षुद्रजलाशये। जातावेकवचनम्। यावानर्थ यावत् स्नान पानादिं प्रयोजनं भवति, सर्वतः सम्प्लुतोदके महति जलाशये तावानर्थो भवत्येव। यथाहि पर्वतनिर्झराणामेकत्रैव कासारेऽन्तर्भावात्। एवं सर्वेषु वेदेषु वेदोक्तेषु काम्यकर्मसु यावानर्थो हैरण्यगर्भानन्दपर्यन्तस्तावान् विजानतो ब्रह्मतत्वं ब्रह्मनन्दांशत्वात् तत्र क्षुद्रानन्दानामन्तर्भावात्। ''एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति, इति श्रुतेः। इदमपि न विस्मर्त्तव्यम्, यन्निष्काम कर्मानुष्ठानेनान्तः

करण शुद्ध्या तत्त्वज्ञानं हृदि समुपजायते । यदुक्तम् --

नाचरेद् यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः।
विकर्मजाऽस्वधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः।।
वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे।
नैष्कर्म्य सिद्धिं लभते रोचनार्था फलुश्रुतिः।।

वस्तुतस्तु वैदिका आर्या आसन्। ते च ज्ञान-विज्ञानयुक्तावेदार्थपरिशीलिनश्च बभूवुः। वैदिकानामपि प्रगति विज्ञानस्य चर्चा ऋग्वेदीये मन्त्रे स्पष्टं श्रूयते अन्तरिक्षगमनं मृतानामपि जीवनं दातुं प्राभवन् वैदिका इति श्रुत्या सम्पाद्यते। तथाहि --

यदि क्षितायु र्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमाहरामि निऋते रूप स्थादस्पार्श मेनं शतशारदाय।। (अथर्व सं० ३/११/२)

इत्थञ्चासम्भविनोऽपि वस्तुनः सम्भवत्वं वेदैः संसाध्यते । वस्तुतः त्रयीनां वेदानां ब्रह्मणि पर्यवसानम्। यथा श्री मद्भागवतस्यैकादशे स्कन्धे तृतीयाध्याये कर्मयोग प्रसङ्गे आविर्होत्रेणोक्तम् --

कर्माकर्म विकर्मेति वेदवादो न लौकिकः।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात् तत्रमुह्यन्ति सूरयः।।

वेदरीत्या त्रीणि कर्माणि प्रतिपादितानि सन्ति, तानि च कर्माकर्मविकर्मेति भेदेन विश्रुतानि सन्ति तानि च कर्माणि वैदिक समधिगम्यानि सन्ति। नहि वेदाध्ययनं बिना एते वादाः लौकिकेनोपायेन बोधगम्या भवन्ति। अतः निःश्वसित न्यायेन वेदस्येश्वरात्मकत्वं संसाधितं भवति। यथा निःश्वासस्य स्वाभाविकत्वाद् बुद्धिप्रयत्नानपेक्षत्ववद् वेदस्यापि बुद्धिप्रयत्नापेक्षत्वेनाकृत्रिमत्वमपौरुषेयत्वञ्च निसर्गत एव फलति। पुरुष वाक्ये वक्तुरभिप्रायतोऽर्थ ज्ञानं भवति। अपौरुषेये तु केवलं वाक्यपौर्वापर्य्येणैव तात्पर्यनिर्णयो भवति। तच्च न सुकरमपितु दुष्करम्। अत्र कर्मादौ विद्वांसोऽपिमुह्यन्ति किमुतान्ये। वेदानामपि स्वर्गादिफले मुख्यं तात्पर्यं नास्ति अपितु वेदः स्वर्गादिफलैः प्रलोभयन् कर्म मोक्षाय कर्मणि विधत्ते यदुक्तम् :-

परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम्।
कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्तेऽह्यगदं यथा।।

अत्र "ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः" इत्यर्थमादाय ऋषयः कवय इत्युच्यन्ते तैस्तत्वदर्शिभिः मन्त्रेषु यानिकर्माणि दृष्टानि तान्येव वेद त्रय्यां समाहितानि। एतावता तत्त्वार्थदर्शित्वम्, कवित्वम्, ऋषित्वञ्च, परस्परं सम्बद्धमेव वर्तते । यदुक्तम् भट्टतोतेन -

नानृषिः कविरित्युक्तम् ऋषिश्च किलदर्शनात्।
विचित्र भावधर्मांश तत्वप्रख्या च दर्शनम्।।
स तत्त्व दर्शनादेव शास्त्रेषु प्रथितः कविः।
दर्शनाद् वर्णनाच्चाथ रूढा लोके कविश्रुतिः।।
तथाहि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्मुनेः।
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना ।।

अतः तत्त्व दर्शनाद् ऋषिरित्युच्यते। ऋषिरेव कविपदमपि दधाति। "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथार्थ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

इति सिद्धम्
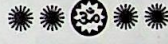
ऋषिस्तवः

आचार्य रामनाथ वेदालङ्कारः पूर्व-उपकुलपतिः
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्

यो वेदवेदाङ्ग-विचारसाधु-
र्वेदान्तसारप्रवणः सुधीन्द्रः।
पुराणगाथासु कृतावगाहो
रामायणे दत्तरुचिर्यतात्मा।।१।।

स्वाध्याययोगे तपसि प्रवृद्धो
विद्याविनीतो व्रतिनां वरिष्ठः।
सन्मन्त्रसिद्धिं महतीं प्रपन्नो।
भक्तिं परां ध्यानमयीं विभर्ति।।२।।

धर्मे रतः पूतमनाः प्रशान्तो
जितेन्द्रियः ख्यातयशस्तपस्वी।
गङ्गातरङ्गे वसतिं दधानः
सार्थं जपं शान्तहृदा दधाति।।३।।

निरञ्जनो निष्कलुषो मनस्वी
छात्रप्रियो दत्तधनो दयालुः।
दरिद्रनारायण सेवनार्थी
वेशे सुकान्ते सुखदे विभाति।।४।।

देशे विदेशे महनीयकीर्ति-
रनेक भाषाव्यवहार विज्ञः।
व्याख्यानसंभाषणशास्त्रचर्चा-
विद्याविनोदं सुकृती करोति।।५।।

सरस्वतीपू जनदत्तचित्तो
विद्यार्थिनां संस्कृतपाठनार्थी।
विद्यालयं चालयति प्रकृष्टं
विद्वन्मनोरञ्जन हृद्य शोभाम्।।६।।

यो रामपादार्चन हृष्टचेताः
श्री कृष्णयोगेऽपि मतिं विधत्ते।
चण्डीपदे यश्च प्रगाढभक्तिः
संश्रव्य संकीर्तनचारुचित्तः।।७।।

प्रज्ञानपूतः क्रतुकर्मपूतः
सौहार्दपूतः सुतपःप्रपूतः।
समाधिपूतो मुनिधर्मपूतः
ऋषित्वयोगं बहुधामनन्ति।।८।।

बुधेन्द्रसत्कारमुदा प्रफुल्लः
सत्काव्यगोष्ठी सुखमातनोति।
पाण्डित्य संदर्शनकौतुकेन
प्राज्ञान् समग्रान् सरसान् करोति।।९।।

व्रतोपवासादि प्रतप्तकाय-
स्तथापि सत्त्वेन महाविशालः।
प्रभावरश्मिः परितः प्रयाति
सन्देशमार्षं भुवि दातुकामः।।१०।।

यथा ऋषीणां खलु याज्ञवल्क्यो
पूजां जनानां महतीं दधार।
तथा प्रतापी कमनीयकान्तिः
श्री केशवानन्दऋषिश्चकास्ति।।११।।

✵✵ॐ✵✵
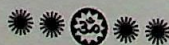
"तत्वज्ञपतञ्जलिमुनेः जीवनदर्शनम्"

डा० सुरेन्द्र पाठकः
उपाचार्यः (नव्यव्याकरण विभाग)
श्री सदाशिवकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्, पुरी

"दुःखादुद्विजयते जन्तुः सर्वस्य सुखमीप्सितम्"

एतस्य पद्यस्य सार्थक्यमस्माभिरनुपपन्नं संसारेऽस्मिन् सर्वेषां मानवानां पशूनां पक्षिणां कीटपतङ्गानां क्रियया अनुभूयते दृश्यते, सूक्ष्मतमा अपि कीटा स्वकीयं दुःखं कदापि नेच्छन्ति स्वसमीपे आगतं वह्न्यादिकं दुःखदायकं यद् किमपि वा वस्तु समीक्ष्य शीघ्रमेव ते पलायन्ते, सुखदायकं भोजनादिकं दृष्ट्वा झटिति एव तस्य कृते उन्मुखीभवन्ति आतपात् शीतात् वृष्टेर्वा सर्वे भयार्ताः तदस्ति नूनं दुःखपूर्णं किन्तु सुखस्य अभीप्सया प्रचुरेऽपि ग्रीष्मकाले कष्टदायके तत्रापि मनुष्याः गम्भीरं श्रमं कृत्वा दिवा वा रात्रिं व्ययन्ति तत्र मुख्यो हेतुः सुखमेव वर्तते नैवैतावदेव सुखस्य प्राप्तये प्रबलेऽपि पापकर्मणि निपत्य चौरादिके लुण्ठनहत्यादिकार्ये प्रवृत्ता भवन्ति अविचिन्त्य पारलौकिकं स्वकीयं सुखं विनिपातयन्ति गर्ते स्वकीयं जीवनम्। सन्ति ह्यस्मिन् भूमण्डले बहुसंख्य कोटिपरिमिताः मनुष्याः किन्तु सर्वे मनुष्याः मनुष्या एव किं मनुष्यस्य करौ पादौ शिरः बुद्धिः वक्षः, उदरं, श्वासः, प्रश्वासो यत्र यत्र वर्तन्ते तत्र तत्र मनुष्यत्वमिति विवेक्तुं शक्यते तत्र स्वयमेव भगवान् बादरायणः कथयति -

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे"

यदि जीवनं केवलं जीवितुं वर्तते, श्वसनार्थं वर्तते, पानार्थं भक्षणार्थञ्च वर्तते ततो धन्यं जीवनं तेषां तरूणा वर्तते ये स्वल्पमेव जलं अस्मात् गृहीत्वा फलं पत्रं पुष्पं शाखादिकं च ददति भस्त्राः स्वल्पमेव वायुं गृहीत्वा बहुशः प्रकाशयति, पशवोऽपि किञ्चिदेव तृणादिकं गृहीत्वा अत्यन्तं बलकारकं पयः घृतादिकं प्रयच्छन्ति। अतएव भर्तृहरिः प्रतिपादयति -

एके सत्पुरुषा परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये।
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये।।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये।
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।।

सामान्यो मनुष्यः स्वकीयं जीवनं परेषामहितं विधाय जीवति इतः परं ये सन्तो महान्तो मुनयो भवन्ति ते स्वकीयं सुखं न विचिन्त्य लोकस्य कृते जीवन्ति दुःखमपि सोढ्वा। अतः मननात् मुनिरित्युच्यते यः उचितं वानुचितं कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं विचार्य स्वकीयं जीवनं जीवति स भवति मुनिः अतएव अमरकोषकारः लिखति "वाचंयमो मुनिः"

वाचं यच्छति नियमयति इति विग्रहे वाचि उपपदे यम-उपरमे धातोः वाचि यमो वृते "३.२.४० इति सूत्रेण खच् प्रत्यये कृते सति वाचंयमः"। मनु-ज्ञाने इत्यस्मात् 'मनेरुच्च' इत्यनेन इन् प्रत्यये मुनिः शब्दो व्युत्पन्नः ननु मुनिशब्दस्य वाचंयमः इत्यस्य पर्यायवाचित्वात् मौनिव्रतिनः एव वाचकः इति न शङ्कनीयः वाचं यच्छति इत्यत्र वागिन्द्रियं सम्पूर्णस्यापि इन्द्रियमात्रस्य उपलक्षणम् अर्थात् यः सर्वेषामिन्द्रियाणां सुखं विहाय लोकाहिते तत्परः स एव मुनिः। अत एव मेदिनीकारः लिखति मुनिः पुंसि वशिष्ठादौ, वशिष्ठः महान् तपस्वी, शान्तः दान्तः सत्यवादी सततसमाजसेवी यस्य शिष्यत्वं स्वयमेव भगवान् श्री रामचन्द्रः गृह्णाति। एवमेव जीवनमस्ति भगवतः पतञ्जलेः येन सम्पूर्णस्यापि लोकस्य कल्याणं स्वकीयं लौकिकं सुखं विहाय बहुप्रकारेण विहितम् तेन यादृशं महत् कार्यं सम्पादितं तादृशं कार्यं केनापि नाद्यावधि विहितं व्याकरणशास्त्रं यत् अत्यन्तं दुरूढं दुर्बोधमासीत् तस्य सम्पूर्णव्याकरणस्य सूत्रं गृहीत्वाद्यावधि अत्यन्तेन सरलेन प्रकारेण तस्य व्याख्यानं सम्पादितं यत् अतीव गौरवमयं वर्तते सर्वेऽपि विद्वांसः तन्नतमस्तकाः सन्ति सर्वेषां शास्त्राणां नूनं किञ्चिद् उपकाराय तद् वर्तते। एवमेव तस्य चरकसंहिताशास्त्रं। चरकसंहिताविषये अयं चरकः पतञ्जलिरेव वर्तते अन्यो वा तत्र पतञ्जलिः प्रायशः काठकसंहिता पाठानामेव उद्धरणं प्रददाति, काठकसंहिता चरक चरणान्तर्गता एवं वर्तते यथा - महाभाष्यम्

पुनरूत्स्यूतं वासोदेयं २.१.४ काठक सं०-पुनरूत्स्यूतं वासो देयम् ८-१५ महाभाष्यम् आम्बानां चारु नाम्बानां चरुरिति प्राप्ते काठक सं० आम्बानां चरूः -१५.५.- ८.२.५

वृद्धत्रयीत्यत्रापि पं० गुरूपदहालादारः लिखति यत् पतञ्जलिः चरकसंहिता-प्रणीतवान् पतञ्जलिना महानन्दकाव्यमपि प्रणीतम् सिद्धान्तसारावलीनामक वैद्यकग्रन्थोऽपि प्रणीत एवं सांख्यशास्त्रं कोषशास्त्रं तेन प्रणीतम् एतादृशं महत् कार्यं सामान्येन पुरुषेण भोग विलास संलिप्तेन भवितुं नार्हति स्थले-स्थले तेषां ग्रन्थे ये विषयाः प्राप्यन्ते तेषामध्ययनेन ज्ञायते यत् आसीत् तस्य ज्ञानम् अतीव गाम्भीर्यपूर्णं वेदस्य स्मृतेः न्यायमीसांसादिशास्त्राणाञ्च जीवनं वा अतीव सरलं लोकोपकाराय अतएव तस्य कुलपरम्परा जन्म विषये न ज्ञायते किमपि एवमेव भवन्ति मुनयः यस्य सर्वं भवति अन्यस्य कृते सुखं दुःखं वा समानं न भवति इन्द्रियभोगः। एवमेव अस्ति गङ्गातीरे हरिद्वारे निर्धननिकेतने श्री ऋषिकेशवानन्दमुनिः यः स्वकीयं सर्वं विहाय लोकहिते अस्ति तत्परः, प्रचालयति विविधाः पाठशालाः, व्यवस्थापयति च विविधानां शास्त्राणामध्येतृणाम् आवासभोजनपठनपाठनव्यवस्थां धन्यः स महान् पुरुषः वर्धतामेतादृशस्य मुनेः श्री ऋषिकेशवानन्दमहाभागस्य यशो यो वर्तते वास्तविक ऋषि इति मङ्गलं कामयते।

ॐ

श्री ऋषिकेशवानन्द अभिनन्दनाष्टपदी

आचार्य बुद्धिवल्लभ शास्त्री, पूर्व-प्राचार्यः
हरिद्वारस्थश्रीजगद्देवसिंहसंस्कृतमहाविद्यालयस्य

कौण्डिन्यं प्रियगोत्रमाश्रयति योमाश्यामप्यारीतपः
मुंशीरामपितुश्च योऽस्ति महतो वंशस्य सन्मौक्तिकम्।
शुभ्रं भाति यशश्च यः प्रियगुरोर्वंशीधरस्याखिलं
कीर्त्या कर्मभिरावृणोति स सदा श्री केशवं केशवः।।१।।

विद्वांसो मधुपा इव प्रतिदिनं बाला विहङ्गा इव
वासन्त्यः सुषमा इवामृतमया नार्यस्तु भक्त्यानताः।
शिष्यास्ते प्रियपल्लवा इव सदा वृद्धाश्च हंसा[१] इव
यं भूकल्पतरुं भजन्ति शरदां जीवेत् शतं केशवः।।२।।

विद्याविनोदनिपुणेषु नवोत्सवेषु शास्त्रार्थनाटकविवादकलासु तासु।
वाग्वैभवं च विदुषां प्रतिभा विलासं सा शारदार्चति यदिङ्गितदिव्यलक्ष्म्या।।३।।
आध्यात्मिकं यश्च सदाधिभौतिकं पदं च भूयोऽपि तथाधिदैविकम्।
विन्यस्य विष्णोरपि तत्त्रिविक्रमं पदं हरन् स्वं निजगाद केशवम्।।४।।

रुद्रं रुद्राभिषेकैरविरतचलितैश्चण्डिकां लक्षचण्डी-
पाठैरभ्यर्च्य होमैरपि विधिविहितैस्तर्पणैर्दुग्धदिग्धैः।
देवीमूर्तिप्रतिष्ठाविधिभिरपि तथा जीर्णदेवालयाना-
मुद्धारैर्दुर्लभं तत्समधिगतमिवाऽमर्त्यमृत्युञ्जयत्वम्।।५।।

गोष्ठे स्थिता यस्य तु कामधेनवः प्रत्युत्सवं नृत्यति यस्य लक्ष्मीः।
अभ्यागतानर्चति चान्नपूर्णा विवर्द्धतां केशवकल्पवृक्षः।।६।।
अभ्रङ्कषैस्तैर्भवनैः सहस्रैः सहस्रशीर्षा पुरुषो विभासि।
सहस्रयात्राभिरहो कृताभिः सहस्रपादोऽसि सहस्रबाहो !।।७।।

धूमैर्होमसमुद्भवैरविरतैर्दृप्ता नभःश्रीः श्रिया।
द्रव्यैर्याज्ञिकगेहगैरगणितैर्दृप्ता गृहश्रीः श्रिया।
स्वाहाभिश्च स्वधाभिराभिरभितो दृप्तासुरश्रीः श्रिया
कीर्तिश्रीर्भुवि केशवस्य नितरां दृप्ता वसन्तश्रिया।।८।।

हंसाः = पक्षिणः (कल्पवृक्षात्) मोक्षकामा मुक्तात्मानश्च । (२) परोक्षतः स्वं विष्णुं स्वीकृतवान् ।
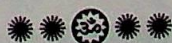
सप्तर्षीणाञ्जीवनपद्धतिः

डा. रामकृपालः त्रिपाठी
साहित्यविभागाध्यक्षः
वृन्दावनस्थ श्रीरंगलक्ष्मीआदर्श संस्कृतमहाविद्यालयः

ऋषति प्राप्नोति सर्वान् मन्त्रार्थान् ज्ञानेन पश्यति, संसारपारं वेति व्युत्पत्या ऋष् गतौ धातोः इगुपधात्किम् इति उणादिसूत्रेण किम् प्रत्यये ऋषिशब्दः सिद्ध्यति। ज्ञान संसारयोः पारगन्ता शास्त्रकृदाचार्य ऋषिरित्यभिधीयते। अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवा एह वक्ष्यति' इति ऋग्वेदः (१-१-२) रिषिर्हलादिश्च। विद्याविदग्ध मतयो रिषयः प्रसिद्धाः। इति प्रयोगदर्शनात्। तत्र-

सप्तर्षि ब्रह्मर्षि-देवर्षि-महर्षि-परमर्षयः।
काण्डर्षिश्च श्रुतर्षिश्च राजर्षिश्च क्रमावराः।।

इत्योदयो रत्नकोशे ऋषि भेदाः दृश्यन्ते। मत्स्यपुरोणेऽपि-

भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
मनुर्दक्षोवशिष्ठश्च पुलत्स्यश्चेति ते दश।।
ब्रह्मणो मनसा ह्येते उत्पन्नाः स्वयमीश्वराः।
परत्वेनर्षयस्तमाद् भूतास्तस्मान्महर्षयः।। इति

महीयसी तावदृषिपरम्परा प्रत्यपादि। पुराणेषु कालविभाग क्रमे ब्रह्मणो दिवसे यत्र चतुर्दशमन्वन्तराणि भवन्तीति प्रायेणवर्णितमस्ति, तत्रैव प्रतिमन्वन्तरं पार्थक्येन नामग्राहपूर्वकं देवा देवेन्द्रः सप्तर्षयश्च निर्दिष्टाः। सत्स्वपि-

कुमारो नारद ऋभुरङ्गिरा, देवलोऽसितः।
अपान्तरतमो व्यासो मार्कण्डेयोऽथ गौतमः।।
वशिष्ठो भगवान् रामः कपिलो बादरायणिः।
दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथारुणिः।।
रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतञ्जलिः।
ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पञ्चशिरास्तथा।।
हिरण्यनाभः कौशल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः।
एते परे च सिद्धेशाश्चरन्ति ज्ञानहेतवः।।

इत्यादिषु महावर्चोवत्सु महर्षिषु। विद्यमानेषु चान्येषु -

अत्रिर्वशिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुराङ्गिराश्च,
पाराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमदेहमवाहौ।
मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः,
मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भ योनि द्वैपायनो भगवान्नारदश्च।।

इत्यादिषु सुगृहीतनामधेयेषु महात्मसु, श्री मद्भागवतमहाभारतादिषु गन्थरत्नेषु नानानामगोत्रेषु प्रसिद्धेष्वन्येषु च महर्षिषु मन्वन्तरानुसारमेतेषामन्येषाञ्च भूतभवत्भव्यानामृषीणां सप्तैव नायकत्वमूरीकुर्वन्ति "सप्तर्षयः" इति च कुलसंज्ञया निर्दिश्यन्ते।

वर्तमानेऽस्मिन् वैवस्वतमन्वन्तरे

कश्यपोऽत्रि र्वशिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथगौतमः।
जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः।।

इति श्रीमद्भागवतस्याष्टमे स्कन्धे मन्वन्तरविभागक्रमे वर्णिताः सप्तर्षयो विराजन्ते । तपोमानधना ऋषयः सकलवसुन्धरोपभोगसमर्था अपि त्यागैकनिष्ठा सन्तः न केवलमुपदेशद्वारेण सदाचरणद्वारेणापि लोकशिक्षकाः अनुशासकाश्चावर्तन्त। वनवासिनोऽप्येते सकलैश्वर्यसम्पन्ना सकललोकस्य निग्रहानुग्रहेसमर्था वशीकृताणिमादिसिद्धयो सर्वदालोकाराधन तत्परा स्तिष्ठन्ति स्म। तथाहि वर्णितमध्यात्मरामायणे भरद्वाजमहर्षेः सपरिजनस्य ससैन्यस्य रामानुजस्य भरतस्य निरपेक्षस्याप्याराधनम्। रामविरह विधुराणामयोध्यावासिनां दुःखं लघुकर्त्तुं प्रायतत महातपाः समहर्षिः –

भरद्वाजस्त्वपः स्पृष्ट्वा मौनी होमगृहे स्थितः।
दध्यौकामदुधां कामवर्षिणीं कामदोमुनिः।
असृजत्कामधुक् सर्वं यथाकाममलौकिकम्।
भरतस्यससैन्यस्य यथेष्टं च मनोरथम्।।
यथा ववर्ष सकलं तृप्तास्ते सर्वसैनिकाः।

एवमेव च वाल्मीकीये महर्षेः वशिष्ठस्य ब्रह्मतेजोसम्पन्नस्य महाराजस्य गाधिसूनोः तर्पणम् वर्णितम्। तथैव च भागवत्महाभारतादौ जमदग्न्यादिभिः कार्तवीर्यादिः स्वसिद्धिसामर्थ्यात् दिव्येनैश्वर्येणाश्चर्यकरमातिथ्यं कृतं दृश्यते। यद्यप्येते स्वयं भोगनिरपेक्षा मुनय आसन्। सम्पूर्णा अपिसिद्धयोऽणिमादयस्तेषां सदैव वशीभूता आसन्। तथापि तेषाञ्जीवनमतीववैराग्यमयमेवावर्तत। इमे ऋषयः स्वाध्याय व्यसनिनो धर्मपरायण वेदप्रणिहितकर्माचारा अवर्तन्त। सर्वाण्यपि निषिद्धाचरणानि यथा-अग्नि होत्रत्यागो, लौल्येन भिक्षाटनं, श्वभिर्मृगया, क्रयविक्रयवृत्तिः, न्यासभक्षणं, परद्रव्यजिघृक्षा, ब्रह्महत्या, सुरापान, परस्त्रीरमणं, शूद्रायां सन्तत्युत्पादनं, स्त्री द्रव्यजीवनं, कृतध्नता, चिकित्सावृत्तिः, अध्यापनवृत्तिः, एक कूपग्रामवासः, दिवास्त्रीप्रसङ्गः, शूद्रगृहे श्राद्ध भोजनं, द्यूतक्रीड़ा, सद्भिस्तपस्विभिर्विरोधः, ऋतुकालातिरिक्त

कालेस्त्रीसमागमः, परिव्राजकत्वेऽपि गृहेवासः शास्त्रवचनेष्वनादरः, आकुलस्वरेण वेदपाठः, गुरूणामनादरः सूर्याभिमुखंमूत्रपुरीषत्यागः, पदागोस्पर्शः, शरणागतत्यागः, राजपौरोहित्यं, गर्दभयानं, ग्रामणीत्वं, असदाचरणं, दयाराहित्यं नृशंसता, बन्धुघातः, दिवाशयनं, सन्ध्ययोः स्वापः, स्वधर्मत्यागः, एतानि चान्यानि न तेषाञ्जीवने लेशतोऽप्यासन्। शिलोञ्छनमेव तेषां धनं धर्मसारमेव तेषाञ्जीवनम्। उक्तं हि बाल्मीकीयेऽरण्यकाण्डे-

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदञ्जगत्।।

चतुर्णामपि पुरूषार्थानामविकला प्राप्तिरसन्दिग्धं धर्मदेव भवति। तत्रापि तुरीयं पुरुषार्थः पुरुषस्य मोक्षोनाम। न चान्तरा धर्मं तल्लभ्यते। न चार्थलाभ एव धर्मफलम्। न चार्थे न काम फलके न भाव्यम् । कामफलञ्च नेन्द्रियतर्पणम्। न च कर्मानुष्ठान् मात्रं जीवनपरिणामः। प्रतिपादितमेतत्सर्वं श्रीमद्भागवते द्वितीयेस्कन्धे-

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मेकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः।।
वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमोत्मेति भगवानिति शब्द्यते।।

इति मोक्षमूलकत्वमेव धर्मस्यस्थिरी कृतमासीत्। 'क्रच्छाय तपसे चेह प्रेत्यानन्त सुखायचेति समेषामृषीणामासीत् जीवनोद्देश्यम् । धारणात् धर्म इत्याहुः । धर्मं बिना न जगद्ध्रियते । ऋषयः स्वजीवनाचारेणैव धर्मप्रतिष्ठां विदधति स्म। यथा प्रत्यपादयद् भगवान् वेदव्यासः सोद्घोषम् -

ऊर्ध्वबाहुर्विरोम्येष न च कश्चित् श्रृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते।। इति।

ऋषीणामासीत् द्रढीयान् प्रयासो यद्धर्मस्थापनाय प्रकृति संरक्षणमपि करणीयम्। न स्ववृत्तये कस्यापि सत्वस्योद्वेजनं भवेत्। यावन्मात्रं वस्तु जीवनधारणायापेक्षितं तावदेव प्रकृतेरासादनीयम्। प्रतिग्रहस्तु दूरत एव त्याज्यः। श्रूयते महाभारतेऽनुशासनपर्वणि वृषादर्भिसप्तर्षिसंवादरूपेण कथानकमिदं, यथैकदा चिररात्राय दैवो नावर्षत् सर्वत्र पृथिव्यां महद्दुर्भिक्षमापतितम्। शिविपुत्रोनृपो वृषादर्भिस्तत्रव्यतिकरे क्वचित् मार्गेऽटन् सप्तर्षीनपश्यत् बुभुक्षितान् दुःखितांश्च तान् प्रतिग्रहस्वीकरणमेव तद्दुःखोद्धारप्रकारमबोधयत्। किन्तु प्रतिग्रहं निरयहेतुं पश्यन्तः सप्तर्षयो दवाग्निर्वनमिव राजद्रव्यं तपोनो धक्ष्यतीति न तद्दानं स्वीचक्रुः। ततश्च राजौदुम्बराणि फलानि सुवर्णगर्भाणि विधाय तानिसप्तर्षिभ्यो दातुमियेषुः। तथापि सदासावधानै र्ऋषिभि र्नृपकपटमज्ञायि। परलोक भयकराणि च तानि फलानि नगृहीतानि। न केवलं दानं परिहरन्ति स्म तेऽपितु फलमूलान्यपि यथोपेक्षमेव प्रकृतेराददतिस्म! यथा वर्णितन्तत्रैव महाभारतेऽनुशासन पर्वणि यदेकदा तीर्थ यात्रा प्रसङ्गे नारद पर्वतभृगु वशिष्ठ कश्यपगौतम विश्वामित्र जमदग्नि गालव भरद्वाज बाल्यखिल्य प्रभृतय ऋषयो राजर्षयश्च शिविदिलीपाम्बरीषययातिधुन्धुमार पुरुप्रभृतयो

देवराजं पुरुहूतं पुरस्कृत्य तीर्थान्यटन्त आसन्। क्रमेण ते ब्रह्मसरोवरं (पुष्करतीर्थ) प्राप्ताः तत्र सर्वेब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च स्नात्वा पुष्पाण्येव भुक्तावन्तः। कैश्चित चर्षिभिः कमलानि संग्रहीतानि। अधितटं स्थापितानि लोपामुद्राधवस्य कमलानि तु केनापि चोरितानि। केन मे चोरितानि कमलानीति कुम्भजवचनमाकर्ण्य सर्वे महर्षयः भयेन कम्पमानाः सशपथं स्व-स्व दोषराहित्यं साधयितुमारभन्त। तत्रसरोवरे नासीत् कमलानामभावो न चागस्त्यस्य दुलर्भानि तान्यासन्। किन्तु धर्मं सत्यं चवीक्षमाणास्ते चौरान्वेषणे तत्पराबभूवुर्न चान्यकमलादाने। यदि नाम धर्मं प्रकृतिप्रदत्तवस्तु प्रति वातेषामुपेक्षाभावना भवेत् तदातैस्तानि कुम्भजकमलानि समुपेक्ष्यापराणि तानि गृहीतानि स्युः। धर्मस्य सूक्ष्मामपि मर्यादां ते स्व सूक्ष्मदृष्ट्या पश्यन्ति स्म। सर्वथानिर्दोषस्य समाजस्य निर्माणे तेषां महीयांन् प्रयासोऽभवत्। भोगं तु ते मनसापिन स्पृशन्ति स्म्। अतएव ऋषीणां जीवनपद्धतिमेवाभिलक्ष्य बाल्मीकीये रामायणे निरूपिता ऋषिभेदाः -

वैखानसा बालखिल्या सम्प्रक्षाला मरीचिपाः।
अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः।।
दन्तोलूखलिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे।
गात्रशय्याअश्य्याश्च तथैवानव काशिकाः।।
मुनयः सलिला हारा वायुभक्षास्तथापरे।
आकाशनिलयाश्चैव तथास्थण्डिलशायिनः।।
तथोर्ध्व वासिनो दान्तास्तथार्द्रपटवाससः।
सजपाश्च तपोनिष्ठास्तथा पञ्चतपोन्विताः।।

एवं वसन्त ऋषयस्सर्व साधननिरपेक्षमेव न केवलमात्मनो जगतोऽपि कल्याणमनायासमेवव्यदधुः। कलावस्मिन् युगे यद्यप्येतदाचाराणान्तपोमूर्तीनां विरलभावो किन्तु न सर्वथाभावः। अस्मिन् क्रमे स्वनामधन्यानां पूज्यपूज्यानां शक्त्याराधनगृहीतैकव्रतानां संस्कृतसंस्कृतिसमाराधनतत्पराणां पञ्चसप्ततिवर्षदेशीयत्वेऽपि तरुणोत्साहानामस्मद्गुरुनिर्विशेषाणामृषिकेशवानन्दानान्नामधेयमग्रगणनामर्हति । एतेषामश्रमस्य निर्धननिकेतनाख्यस्य दिन चर्यावलोकनेन स्मरन्ति जनाः पूर्वेषामृषीणामाचाराणाम्। अध्यायपनमग्निहोत्रं दानमतिथितर्पणं सर्वमत्राविकलं दृश्यते। प्रथमामारभ्य स्नातकोत्तरकक्षापर्यन्तमत्र शिक्षार्थिभ्यः प्रदीयते अशनवसननिवसनप्रदानपुरस्सरं प्रयच्छन्ति द्विजातिभ्यो लौकिकीं वैदिकीञ्चविद्याम्। सर्वथा विजयन्तान्तत्र-भवन्तोभवन्तः। जीवेयुश्चस्वास्थ्यलाभपूर्वकं शरदांशतम्।

ॐ

"ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तका ऋषयः"

डॉ० भारतनन्दन चौबे
प्राध्यापकः (व्या०)
ऋषिसंस्कृतमहाविद्यालयः, हरिद्वारम्

'षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चे' तिश्रुत्या षडङ्गवेदाध्ययनस्यावश्यकता प्रतिपादितास्ति। षट्स्वङ्गेष्वपि ज्योतिषं, चक्षूरूपेण वर्णितमस्ति । यथा चक्षुषो दर्शनरूपं कर्म तथैवेदं शास्त्रमपि काल दर्शकमुच्यते। कस्याप्यभीष्टकार्यस्य साफल्याय प्रथमं मुहूर्तं शोध्यते। मुहूर्तं शोधयित्वा क्रियमाणा यज्ञादिक्रियाविशेषाः फलाय कल्पन्ते नान्यथा, तन्मुहूर्तज्ञानञ्च ज्योतिषायत्तमतो ज्योतिषशास्त्रस्य वेदाङ्गत्वं स्वीकृतम्। उक्तञ्च वर्तते -

शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी
श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पकरौ।
या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका
पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः।।

चत्वारो वेदाः सन्ति। चतुर्णामपि वेदानां पृथक्-पृथक्ज्यौतिषशास्त्रमासीत्। तेषु सामवेदस्य ज्योतिषशास्त्रं नोपलभ्यते। त्रयाणामितरेषां तु वेदानां ज्योतिषाण्यवाप्यन्ते तद्यथा -

ऋग्वेदस्य ज्योतिषम् - आर्चज्यौतिषम्, इदं षट्त्रिंशत्पद्यात्मकं वर्तते।
यजुर्वेदस्य ज्यैतिषम् - याजुष ज्योतिषम्, इदम् ऊनचत्वारिंशत्पद्यात्मकमस्ति।
अथर्ववेदस्य ज्यौतिषम् - आथर्वणज्यौतिषम्, इदं द्विषष्ट्युत्तरशतपद्यात्मकं विद्यते।

एतेषां त्रयाणामपि ज्यौतिषाणां प्रणेता लगधो नामाचार्य आसीत्। तत्र याजुष ज्योतिषस्य पामाणिकं भाष्यमपि प्राप्यते, एकं सोमाकरविरचितं प्राचीनम्। द्वितीयं सुधाकरद्विवेदिविहितं नवीनमस्ति। एतस्य ज्यौतिषशास्त्रस्य त्रीणि वर्त्मानि सन्ति। तदिदं शास्त्रं त्रिस्कन्धमुच्यते, उक्तञ्च -

ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्,
तत्कात्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः सङ्कीर्त्यते संहिता।
स्कन्धेऽस्मिन्गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ,
होरान्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोऽपरः।।

किञ्च संहिताभागः फलितज्यौतिषस्य प्रधानमङ्गमस्ति, तत्र ग्रहचारादिफलादन्यदपि शिवारुत-मृगचेष्टितश्वचेष्टित गवेङ्गिताश्वेङ्गितहस्तिचेष्टितशाकुनादिविषयाणां फलमपि निर्दिष्टमस्ति, अतोऽयं फलितस्य प्रधानाङ्गत्वेनामन्यते। ज्योतिः शास्त्रप्रवर्तका अष्टादश ऋषयो विद्यन्ते, तद्यथा -

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिरा।।
लोमशः पुलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शोनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिः शास्त्रप्रवर्तकाः।।

एष्वष्टादशऋषिषु सम्प्रति पराशरभृग्वो र्नाम वाहुल्येनाकर्ण्यते। पराशरऋषिविरचितं 'पाराशर होराशास्त्रम्' बहुप्रचलितमस्ति। भृगुऋषि विरचिता 'भृगु संहितापि फलितशास्त्रेषु मुकुटायमाना विराजते। गर्गसंहितादयोऽपि ग्रन्थाः स्वीयं विशिष्टं स्थानमादधति। अन्येऽपि पश्चवर्तिनो ज्यौतिषग्रन्थकारा वर्तन्ते, यैः खलु ज्योतिर्जगति महदुपकारजातं विहितम्। तेषु मुख्यतमा केचनाधोलिखितनामानः सन्ति। तद्यथा -

आर्यभट्टो, वराहमिहिरो, ब्रह्मगुप्तो, लल्लः, उत्पलाचार्यः, श्रीपतिः, भोजदेवो, भास्कराचार्यः, केशवो, गणेशः कमलाकरः इति। एतेषां ग्रन्थ नामानि च क्रमशो ज्ञेयानि। आर्यभट्टीयम्, पञ्चसिद्धान्तिका, वृहज्जातकं, लघुजातकञ्च ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तः, खण्डखाद्यं, ध्यानग्रहश्च रत्नकोशः, धीवृद्धि यन्त्रञ्च। बराहमिहिरग्रन्थानां टीकाः। सिद्धान्तशेखर धीकोटिकरण-रत्नमालाजातकपद्धतयः,राजमृगाङ्ककरणम्। सिद्धान्तशिरोमणिः, करणकुतूहलञ्च। ग्रह कौतुकमुहूर्ततत्वजातक पद्धतयः। गृहलाघवम्, सिद्धान्ततत्वविवेकः इति। एतदतिरिक्ता अपि व्यवहारोपयोगिनो ज्यौतिषगन्था वर्तन्ते। तद्यथा - लघुपाराशरी, लघु जातकम्, वृहज्जातकम्, जैमिनिसूत्रम्, सारावलिः जातकाभरणम् जातकपद्धतिः जातकालङ्कारः होरारत्नमित्यादि ग्रन्थसमूहैः शास्त्रं समवर्द्धत। ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकैः ऋषिवर्यै र्यादृश उपकारो मनुष्यजाते विहितो न तादृशोऽन्यैः कैश्चिदपि, यतोहि कस्मिन्नपि कर्मणि प्रवर्तनात्पूर्वमन्तःकरणेऽनिश्चयात्मिका स्थिति र्भवति। कार्यं सिद्धेन्नो वेत्यत्र दैवज्ञोऽशंसयी भवति, यतो हि तेन कार्यारम्भात्पूर्वं सम्यग्विचारितं भवति। कस्यां बेलायां, कस्मिन्मुहूर्ते, कस्यां तिथौ, कस्मिन्वारे, लग्ने वा कार्यमारम्भणीयम् येन साफल्यं स्यादिति। परम्परया दैवज्ञोऽपि समाजस्य हितसाधको भवति। यत्र समाजे दैवज्ञो निवसति तत्रत्या जना दैवज्ञसकासादेवावगच्छन्ति कार्यारम्भकालम्।

अद्यत्वे वैज्ञानिकैरपि यन्न ज्ञायते, तदस्मदीयैः ऋषिवर्यैः सहस्राधिकवर्षपूर्वमेव विज्ञातमासीद्, गर्भगतं शिशुं प्रश्नमाध्यमेन दैवज्ञो निर्दिशति पुत्र एव भविता पुत्रीवेति, किञ्च तत्परीक्षणे तत्पराणि 'अल्ट्रासाउण्ड' यन्त्राणि विफली भूतानि दृश्यन्ते। यन्त्रं तु निर्दिशति गर्भे पुत्रोऽस्ति, किञ्च सञ्जाते प्रसवे पुत्री दृश्यते, एतादृशानि बहून्युदाहरणानि सन्ति। अतोऽस्मदीया ऋषिपरम्परा महनीया वर्तते। एषा परम्पराऽस्माभिः सदासंरक्षणीया संवर्धनीया च। कथञ्च परम्पराया संवर्द्धनं स्यात् इति जिज्ञासायामुच्यते-ज्योतिर्विद्याया प्रचारः प्रसारश्च करणीयः। एतस्य प्रचाराय प्रसाराय च प्रत्येकं संस्कृतविद्यालयेषु ज्योतिर्विद्यायाः पाठनं भवेत्, एतदर्थं विश्वविद्यालयो विनिवेदनीयः। अनेन खलु छात्राणामपि महदुपकारजातं भविष्यति। संस्कृतछात्राणां कृते ज्योतिर्विद्या जीविकोपार्जने सहायिका भविष्यति। 'अग्रे किं किं भविष्यति' इति ज्ञातुं सर्वे समुत्सका दरीदृश्यन्ते। अद्यतनो यातः श्वः कथं स्यादितीच्छा सर्वानालोडयति। सम्यगधीतश्छात्रो ज्योतिर्विद्यया सादरं जीविकां निर्वहति, देशे विदेशे च सम्मानमर्जयति, उच्चपदारूढा जना अपि ज्योतिर्विदे सम्मानं प्रयच्छन्ति। अतः ज्योतिर्विद्याया प्रचाराय प्रसाराय चास्या अध्ययनव्यवस्था करणीयैवेति।

ज्योतिर्विद्यायाः प्रचलनं समाजे प्राक्कालादेवासीत्। श्री कृष्णस्यालौकिकं कार्यजातं वीक्ष्य माता यशोदापि ज्योतिर्विदे गर्गाचार्याय विनिवेदितवती, यन्मे सूनोः कृष्णस्य कीदृशा ग्रहाः सन्ति? शुभमस्ति भाग्यमशुभं वेति? गर्गाचार्यश्च सम्यक्पर्यालोच्य फलं कथयति। अस्य प्रमाणन्तु पाणिनीयव्याकरणे दृश्यते, तत्र "राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः" १/४/३९ इति सूत्रमस्ति। अनेन 'राध्' 'ईक्ष्' धात्वो र्योगे यस्य विषये विविधाः प्रश्नाः क्रियन्ते तस्य सम्प्रदान संज्ञा विधीयते, उदाहरणञ्चास्य 'कृष्णाय राध्यति ईक्ष्यते वे' त्यस्ति, अत्र मात्रा गर्गः पृष्टः कृष्णविषयकं शुभाशुभञ्च पर्यालोचयतीत्यर्थः। उदाहरणेनेदं निश्चप्रचं वक्तुं शक्यते यज्ज्योतिर्विद्यायाः प्रचलनमार्षं विद्यते। अस्य संरक्षणपरम्परायां संस्कृतसंस्कृतिसरंक्षण तत्पराणामहर्निशं कर्मनिरतानां तत्र भवतां श्रीमतामृषिकेशवानन्दजी महाभागानामविस्मरणीयं योगदानमस्ति। तेषामार्षविद्यासमुपासकानामाध्यक्षे नवतितमे वर्षे २३.२.९० दिनांकादारभ्य १५.३.९० दिनांकपर्यन्तं 'कर्म काण्डशिविरमा' योजितम्। तत्र च ज्योतिर्विद्याया महत्वं प्रतिपादयन्नैकशो विद्वांसो ज्ञानगंगां प्रावाहयन्। एतदर्थमवश्यमेवर्षिवर्याः समभिनन्दनीया विद्यन्ते इतिशम्।

सनातनस्त्वं पुरुषो-मतो मे

डॉ० ओम प्रकाश भट्टः

प्राचार्यः

श्रीरामानुजश्रीवैष्णवसंस्कृतमहाविद्यालयः

तोताद्रिमठ (रा.स.भ.) हरिद्वारम्

वेदव्याहारानुसारं तपसः ऋतं सत्यञ्चाभिजायते। एतत्प्रवर्तितमेवाहर्निशं सूर्यचन्द्रमोधात्र्यर्णवादि प्रभवः। एतद् वदेवाकाशवाय्वग्न्यापःपृथिव्यौषधभूतान्नशुक्रजीवजनिः। ततः कार्यकारणविलयक्रमेण प्रलयः पुनश्च प्रभवः। पुनश्चानयोरावर्तनम्। एष विधिः। एषा नियतिः एतदेव विश्वम्। विश्वे च मत्स्यकूर्मवराहवामननृसिंह परशुरामरामकृष्णावतारव्याजेन प्राणिनां विकासक्रमः। विकासक्रमे शक्तिसङ्घर्ष सिद्धान्तः एतदेव सनातनत्वम्।

सनातनत्वमाद्यन्त विरहितत्वम्। तदस्मिन् सनातने विश्वव्यवस्थाप्रक्रमे भूतेषु प्राणिनः प्राणिषु बुद्धिजीविनः, बुद्धिजीविसु-मानवाः, मानवेषु-ब्राह्मणाः, ब्राह्मणेषु ऋषयः - श्रेष्ठाः। इति सिद्धान्त एव सिद्धान्तः। ऋषित्वञ्च ऋतज्ञ सत्यज्ञ तत्वज्ञत्वम् यतस्ते ऋषयः एतत्त्रिकज्ञाः भवन्ति। अतस्ते क्रमन्ते, परिवर्धन्ते, वर्धापयन्ति च विश्वम्। इयमेव तेषां क्रान्तिदर्शिता। अनयैव क्रान्तिदर्शितया दीव्यति जीवलोकः।

तदत्र निर्धननिकेतनाध्यक्षाः केशवानन्दर्षिमहाराज आलोच्यते। परिवृद्धसर्वप्रकारक परिकरोऽपि कैवल्यं भजमानः मन्त्रव्याख्याकृदाचार्योऽपि शत-सहस्रचण्डी यज्ञादिषु यजमानः, सहज सम्प्राप्य सहस्रधनोऽपि त्यजमानः, दम्भिनां दम्भ दमनः, यातनादातृणां प्रयमणः, विबुधां वशंवदः, प्रियाणां प्रियंवदः, चिकीर्षूणां प्रियङ्करः, जिज्ञासूनां ज्ञानदः, दीनानां मानदः, दरिद्राणां धनदः, बुभुक्षूणामन्नदः, परममैत्रः, परमकरुणः, दुर्गैकप्रतिपत्तिगतिकः सकलमार्षमार्गमङ्गीकुर्वन् गङ्गतरङ्गमुखाश्रम- मुख्यद्वारे, हरिद्वारे स ऋषिर्विराजते। आगृहीतधौत धवलपटः, जरच्चन्दनतरुरिवभुजङ्गनिर्मोक धवलजटाकुलः, दिवस इवोद्यदर्कविम्बभास्वरमुखः सदैव स्मितमुखोऽयं ऋषिः रहस्यान्वेषीव कदाचिद् गायत्री जपे, कदाचिद् गीता ज्ञान प्रवचने, कदाचिद् गङ्गातटे, कदाचिद् गणपत्यादिदेवपूजने, कदाचिच्च गोसेवायां प्रणिहितमना भवति।

विच्छिन्नवयः समता सूत्रेऽपि प्रकृति सनातनत्वं निर्वहति प्रसिद्धेयं तस्योक्ति :-

गायत्री-गुरु-गङ्गा-गो-गीता गौरव रक्षणम्।
केशवानन्दवर्यस्य सनातनं व्रतं त्विदम्।।

❋❋ॐ❋❋

ऋषेरार्यता

डॉ० हरिगोपाल शास्त्री
प्राचार्यः
गुरुकुलमहाविद्यालयः ज्वालापुरम्, हरिद्वारम्

अयं तावत् निरन्तराजादजनकातीवप्रमोदावसरः यत् पवित्र भागीरथी-तीर-नीर 'शिशिर-समीर' पवित्र कृते सर्वाश्रमाखण्डले श्री निर्धननिकेताश्रममण्डले आर्षपरम्परा-प्रचार प्रसारपरायणः काचिद् कमनीया समितिः, निखिल-भुवन-मण्डल विख्यात दिग्दिगन्त-विश्रान्त विख्यात मनोहारि यशस्कानां, गीतागंगाजलसदृश नितान्तपवित्र-चरितानां समङ्गीकृत सकलशुभ सदाचाराणाम्, अत्राश्रम परिसरे अन्यत्रापि च अनेक बालविद्यालय-विद्यालय, संस्कृतमहाविद्यालय प्रतिष्ठापनसमर्जितकीर्तीनां परमश्रद्धेय श्री स्वनामधन्य श्रीविभूषित १००८ श्री ऋषि केशवानन्द जी महाराजानां पञ्च-सप्तति वर्षाऽऽयुषि रजतजयन्ती महोत्सवावसरे तदीय गुण-गण-गणनपराम्, आर्षपरम्परां प्रकाशिकां कामपि पुस्तिकां प्रकाशयितुं कामयते। धन्या महान्तो विद्वान्सः अत्र स्व-स्व लेख-कौशलद्वारा तदीय बुद्धि-वैभवं नूनं प्रकाशयि स्यन्तीति, तदीय अखिलसुभद गंगा-सरस्वती महति प्रवाहे अहमपि स्ववाणीनिर्झरीं यथा बहुलानिर्झरप्रवाहगंगां प्रविश्य स्वात्मानं सिन्धुगामिनं विदधति, तथैव अहमपि ऋषेरार्यता' इति लेखमाध्यमेन स्ववाणीप्रवाहमपि महति प्रवाहे मेलयितुं कामये।

ज्ञानगमनार्थकात् "ऋ" धातोः ऋषि आर्यश्च शब्दौ व्युत्पद्येते। क्रान्तिदर्शनाद् वेदोऽपि ऋषिः, वेदतत्त्वज्ञो वेद विहितधर्मानुगोऽपि ऋषिः। आचारव्याख्याकृच्छास्त्रव्याख्याकृदाचार्यानुशासनानुसारं भूतेषु प्राणिनः, प्राणिषु बुद्धिजीविनः, बुद्धिमत्सु नराः नरेषु ब्राह्मणाः श्रेष्ठा इति राधान्ताङ्गीकृतिः प्रभवति। इत्थम्भूत श्रेष्ठ एव आर्य शब्देन व्यवह्रियमाणः संस्कृतवाङ्मये प्रसिध्यति निष्कृष्टार्थोऽयं प्रस्फुटितः यद् वेदशास्त्रानुसारि क्रान्तिदर्शनधौरेयस्य ऋषेः सर्वभावेनानुगामी एव मार्यः।

ज्ञानाग्निदग्धकर्मा, त्यक्तसर्वपरिग्रहः ऋषिः, क्रान्तिदर्शकत्वात् सर्व शारीरं कर्म कुर्वन्नपि किल्बिषविरहितो भवति। कर्मणि-अकर्म अकर्मणि च कर्म, उदाहरन्नसौ कर्मगतिगहनत्वं साधयन् प्रदर्शयति लोकान् देशकालानुकूलमार्गम् निजार्यत्वसंरक्षणार्थम् अहिंसारक्षणार्थं प्रेरिता भगवता कृष्णेन स विषादवेपथु विपन्नोऽर्जुनो दुर्जनानां रक्तपाताय। तत्कालिकीमर्जुनस्य ममतां करुणाम् अनार्यजुष्टाम्, अस्वर्ग्याम्, अकीर्तिकरीमिति प्रतिपाद्य कृष्णः "आर्यत्वम्" उन्मीलयति साधयति च यद् रागद्वेषवियुक्तः आत्मवश्यैरिन्द्रियै विषयाँश्चरन्नपि प्रसादमधिगच्छति येन सर्वदुःखहानिः बुद्धेः पर्यवस्थानम् जायते । इदमेवालम्भवति आर्यमानवजीवनसाफल्याय ।

अस्यामेवार्षार्यभूमिकायामत्रभवतां श्रीकेशवानन्दर्षिजीवनविषयकं किञ्चिद् भाष्यते । कमनीय सौकुमार्ये सुविद्याराधनं कृत्वा प्राचार्यत्वञ्च प्राप्यापि पुत्रदारगृहादि कामपराङ्मुखः सन् तापसप्रवर श्री वन्शीधर-चरणसेवार्पितमनाः, गङ्गाद्वारे हरिद्वारे निर्धननिकेतनाश्रमं सञ्चालयन्, विविधविद्याप्रदानपेशलः विविधार्थि जनाभिलाषां यथाशक्ति पूरयन् विदुषां वशंवदता धारयन् दुर्गाराधनैकजीवनः सदैव स्मितमुखः अतिथिसत्काराप्तसुखः दृश्यते। अत्र ऋषेः वेदविहितशासनानुकूलं मातृदेव-पितृदेवाचार्यदेवातिथिदेवतासत्कारतां निर्वहन् सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां मा प्रमद-इत्यादेशपूरणबद्धपरिकरो दृश्यते। वेद वेदाङ्ग विहितार्यधर्मिता अत्र प्रत्यक्षं परिदृश्यते। यच्च गीतोपदिष्टं ऋषिसम्मतं क्षेत्रक्षेत्रज्ञत्वं तत्र वर्तते तदत्र न केवल बहुधा अपितु उभयथाऽपि संदृश्यते । एतच्च मुक्तिभुक्तिकर्मसंन्यास तत्वज्ञानार्थ दर्शनं तद्भक्तैरनुरक्तैश्चात्र निर्धननिकेतने सर्वथानुभूयते। पौरस्त्य पाश्चात्य कवि कविता सौरभाकृष्टमानसैरत्र द्विरेफायत इत्यपि प्रत्यक्षं दृष्टिवद्भिर्दृश्यमानत्वात् ''ऋषिदर्शनम्'' अहरहः क्रियते ध्रियते चेति कृत्वा तेषां पञ्चसप्ततिसम्वत्सरसम्पूर्तौ इदमेवाभिनन्दोपचारप्रकाशकं स्यादित्यपि अस्माकमानन्दवर्धनाय कल्पते। तथा हि -

क्षेत्रक्षेत्रज्ञ व्यक्तित्वात् तत्र शाक्तदृढ़ब्रतात्।
सारस्वतोपलब्धित्वाद् ऋषिरार्यः सनातनः।।

बर्धतां ऋष्यानन्दः । बर्धतां ऋषिपरम्परा। बर्धतां ऋषेरार्यत्वम्। इति।

राष्ट्रस्य कृते हरिद्वारस्थ आश्रमाणां योगदानम्

आचार्य पद्मप्रसादः सुवेदी
प्राचार्यः
श्री गरीबदासीय साधुसंस्कृतमहाविद्यालयः मायापुरी हरिद्वारम्

हरिद्वारम् विश्वस्मिन्नपि विश्वे प्रसिद्धतमं सुविख्यातं च तीर्थमिति को नामानभिज्ञः? प्रचीन कालत एवास्य तीर्थस्य सर्वं प्राचीनत्वं सर्वश्रेष्ठत्वं च सर्वेषु भारतीयदर्शनेषु विदितचरमेव सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मणा पूर्वमत्रैव यज्ञः कृत इति ब्रह्मकुण्डः स्वीयं प्राचीनतमत्वं स्वयमेव प्रमाणयति द्विसहस्रवर्षपूर्वं महात्मा भर्तृहरिरपि हरिद्वारम् ब्रह्मकुण्ड समीपं समागत्य गुहायां तपस्तप्तवानिति जानीमः। इतोऽपि पूर्वं कश्यपादयः सप्तर्षयः हरिद्वारस्योत्तरस्यां दिशि गंगायाः पश्चिमे तटे तपस्तप्तवन्तः तेषान्तपः प्रभावात् गंगा भागीरथी अपि स्वां सप्तधा विभज्य सप्तर्षीणां पुरस्तात् सप्तधारा कृतवती येनाद्यापि तत्स्थानं सप्तसरोवरः इति नाम्ना प्रतिजानीते। नैतन्मात्रं पर्याप्तम्, उत्तराखण्डस्य यमुनोत्तरी केदारनाथ-श्रीबदरीनाथानांचतुर्णांधाम्नां पंचप्रयागाणां पंचकेदाराणां गोमुखज्योतिष्मठ-गोमुखादि तीर्थानां यात्रारम्भोऽपि हरिद्वारत एव क्रियते। पुण्यसलिलाया गंगायाः पवित्रताऽपि हरिद्वारत एव समारभ्यते। हरिद्वारस्य एताः सर्वा विशेषताः समवलोक्य प्राचीनकालत एवानेकैर्महात्मभिस्तपस्तप्तः।

देवदानवैः समुद्रमन्थनादुत्पन्नः सुधाकुम्भोऽपीन्द्रसूनुना जयन्तेनात्रैवानीतः। ततः प्रारभ्य प्रतिद्वादशवर्षं कुम्भमेलाऽप्यत्रैव सम्पद्यते। सहस्रायुताधिक वर्षतो हरिद्वारतीर्थं सेवन्तो बहवो महात्मानः स्वीयां सम्प्रदायपम्परामद्यापि हिमवतः प्रवहन्ती गंगा इव परम्पराप्रवाहं सुष्ठु वाहयन्ति। अत्रानेके आश्रमा द्रोणप्रदेशसीमत आरभ्य दक्षप्रजापतिक्षेत्रं यावद्विशालभूभागे विस्तृताः सन्ति। सर्वेष्वाश्रमेषु बहवो महात्मानः स्वकीय सम्प्रदाय परम्परामनुसरन्तः गंगातटमुपविशन्तो जीवात्म-परमात्मनोरैक्यं विचारयन्ति। बहुष्वखाडाश्रमेषु संस्कृतविद्यालया महाविद्यालयाश्च सन्ति। तेषु विद्यालयेषु नेकेऽन्तेवासिनो विद्वांसश्चाहर्दिवं सरस्वतीं समुपासते। यतोहि भारतस्य प्रतिष्ठा संस्कृतभाषायां निहिता विद्यते।

"भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा" भारतमातुः सत्पुत्रभूता महात्मानः संस्कृत भाषाप्रचार-प्रसार-माध्यमेन जगद्गुरुपदमलंचक्रुः। भगवतो भूतभावनस्य शंकरस्यावतारभूताः शंकराचार्यमहाभागा आद्यजगद्गुरुपदमारुरोह। तै वैदिकसनातनधर्मस्यरक्षार्थं भारतवर्षस्य चतुर्षुदिक्षु चत्वारि पीठानि स्थापितानि अन्यथा बौद्धधर्मस्यमहत्प्रभावाद्वैदिकी परम्परा कदा प्रणश्यति स्म इत्यनुमितुन्न शक्यते। वैदिकीं परम्परां विनास्माकंजीवनमजगलस्तनमिव प्रतिभाति वैदिक धर्मरक्षाया उत्तरदायित्वं चास्माकं परमं कर्तव्यम्। द्रव्यलोलुपतां परिहायास्माभिर्देववाण्याः रक्षा विधेया। महार्षिणा पतंजलिनोक्तम् :-

"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति"

उपर्युक्त कारणेन वैदिकसनातनधर्मस्य रक्षार्थं संस्कृतभाषाप्रचारप्रसारार्थं च हरिद्वारस्थाश्रमाणां महद्योगदानं विद्यते। साम्प्रतं सर्वत्रैव राष्ट्रभक्तिभावनाया अभावो दरीदृश्यते। सर्वेष्वपि देशेषु नेतृणां सदाचार हीनत्वमुत्कोच

ग्रहणशीलत्वं समेधते । स वीतरागाणां महात्मनां सान्निध्यं समागत्यैव प्राप्तुं शक्यते । मनुना कथितम् :-

एतद्देशप्रसूतस्य सकासादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

एषा राष्ट्रियभावनया प्लाविता शिक्षा समस्तेऽपि भूमण्डले ग्रहणीया वर्तते। राष्ट्रस्य विकासार्थं भ्रष्टाचार-स्वार्थ-घृणा-धर्मान्धता-असहिष्णुतादिदुर्गुणेभ्यो मुक्तये साधूनां योगदानं सर्वदावश्यकं प्रतिभाति। हरिद्वारस्थ आश्रमेभ्यो भारतीय वैदिकसनातनधर्मस्य भारतीयदर्शनस्य धारान्तर्धार-बौद्धिकान्तर्द्वन्द्व-आध्यात्मिको द्वेगमध्येऽन्तर्निहितसततप्रवाहित भारतीय संस्कृतेरजस्रां भारतीयधीषणायाः शक्तिं चावबोधयितुं महात्मनः सकासादेवपारयामः। तेषां महात्मनां सुविचारैरेव वैदिकसंस्कृतेः सर्वोत्कृष्टता जगति प्रतिष्ठिता ।

विलियम थियोडोरोऽकथयत्-पुरातत्वानुसन्धान कार्यं संस्कृताध्ययनं विना जगतो जातिदेशकालभूगोले तिहासा अपूर्णा एव वैज्ञानिक संसाधनैः संसारस्यैकतामेधत एव किन्तु संस्कृतज्ञानपूर्वक सांस्कृतिकपरम्परां विना बहुकालं स्थापयितुं न शक्यते । संसारस्य समुद्धारः संस्कृताधीनम् तदप्याश्रमाधीनम्।

ग्रीकदेशीयः पाश्चात्य तत्वविदामाद्यः प्लेटो महोदयः चतुर्विंशतिशताब्द पूर्वमभाणीत् :-

"तत्ववेत्ता हि राष्ट्राग्रणीर्भवितुमर्हति"

अतो मन्तारो वेदशास्त्रार्थतत्वावगन्तार एव राष्ट्रहितं कर्तुं प्रभवन्ति। साधवश्च मानवानां परस्परप्रीतिसंवर्धनशीलाः प्राणिनः। ते कदापि निष्क्रियाः न। सर्वे भवन्तु सुखिनः इत्यादि भावनाताननवरतं प्रवर्तयते। न केवलमात्मबुद्ध्या देह बुद्ध्याऽपि महात्मानः सर्वेषु समानभावं भजन्ति। सर्वेषुप्राणिष्वात्मदृष्ट्या प्रवृत्तिमन्तं साधुमामनन्ति साधवो हीश्वरं सम्यग्रूरूपेण प्रतिपादितुं समर्थाः। नास्तिकानां मनसि स्थितमनीश्वरवादिभावनामपि ते परावर्तयितुं पारयन्ति।

विश्वविख्यातश्चिन्तको वनार्ड रसेल महोदयः सर्वपल्ली राधाकृष्ण महोदयस्य परम सखा आसीत्। स हि परलोके परमात्मनि च न विश्वसिति स्म। एकदा स राधाकृष्णमपृच्छत् :-"ईश्वरांगीकारो नाम मनुष्यस्य परस्पर प्रद्वेष हेतुरिति मानवेतिहासः प्रमाणयति। तत्वविचारस्य एतादृश्या आस्तिकतायाश्च वस्तुतोऽहिनकुलभावो जागर्ति । सत्यप्येवं किमिति भवान् तत्वविचारसन्दर्भे धर्ममीश्वरं वा सकृदुदाहरति" ? इति ।

प्रश्नेऽस्मिन् राधाकृष्णोऽपि प्रण्यगादीत् "धर्म ईश्वरो वा मानवस्य परमश्रेयसः साधने स्तः अनलीकं धर्मानुष्ठानमीश्वरास्था च नैकेषां जगदुपकाराणां महापुरुषाणां प्रवृत्तिबीजमिति नूनमितिहास एवं प्रमाणयति। कामक्रोधाद्यभिभूतो मानवो यदि धर्ममीश्वरं वा पुरस्कृत्य स्वस्य दुर्वासनां उपशमयितुं दुश्चरति तर्हि तत्तस्यापराधः। न खलु धर्मो नापीश्वर स्तत्रापराध्यति। भुजंगपीतं पयोऽपि विषभावमाप्नोति न तावता पयोविषहेतुरिति व्याहरेद् विचारवान्। सम्यगनुष्ठितो धर्मोऽच्छद्मनोपासितश्च परमेश्वरो व्यक्तेः साधुभावस्य जगतश्च श्रेयसोऽनुपमं

साधनमित्यवैतु प्रज्ञाधनो भवानिति"।

एतादृशी उदात्तभावना राष्ट्रस्य कृते महात्मान एव व्यक्तीकर्तुं शक्नुवन्ति। परमहंसाः परिव्राजकाः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठा ब्रह्मा महामण्डलेश्वराः साधवोराष्ट्रस्य गौरवाय स्वतः कल्पन्ते। ते तु राष्ट्रस्यापि पूज्या राज्ञामपि वन्दनीयः। यतो हि राष्ट्रापत्तिकाले स्वीयान् प्राणानपि राष्ट्राय समर्पयितुं समर्थाः। तेभ्यस्तु राजा करमपि न गृह्णाति। उक्तंच मनुस्मृतौ :-

म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम्।
नचक्षुधाऽस्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन्।।"सप्तमोऽध्याय, १३३"

क्षीणधनोऽपि राजा श्रोत्रियात्करं न गृह्णीयात्। न च तदीयदेशे वसन् श्रोत्रियोबुभुक्षयाऽवसादं गच्छेत्।

तेषां सेवया राष्ट्रस्यापि समुन्नतिर्जायते। राज्ञा राष्ट्रपतिना वा ते सदा सम्यग्रक्षणीयाः। उक्तश्चाग्रे :-

संरक्ष्यमाणो राज्ञायं कुरूते धर्ममन्वहम् ।
तेनायुर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ।।"सप्तमोऽध्यायः १३६"

स च श्रोत्रियो राज्ञा सम्यग्रक्ष्यमाणो यं धर्मं प्रत्यहं करोति तेन राज्ञ आयुर्धनराष्ट्राणि वर्धन्ते राष्ट्रिय एकतायाः कृते साम्प्रदायिकसद्भावनायाः कृते धर्मरक्षायाः कृते संस्कृत-संस्कृति-प्रचार-प्रसारसंरक्षणसंवर्द्धनाय चाश्रमाणां भूमिका पूर्वकालत एव प्रसिद्धा। रामकृष्ण परमहंसस्वामिविवेकानन्द-स्वामि रामतीर्थ प्रभृतीनां राष्ट्रभक्तिः कीदृशी आसीदिति तेषां जीवनचरिताध्ययनेनावगन्तुं शक्यते। सर्वेषां सम्प्रदायानां तेषामाश्रमाणांच केन्द्रभूतं हरिद्वारम् इदानीं समग्रस्यापि राष्ट्रस्यैकतायाः शान्तेः प्रतिनिधित्वं विदधाति।

संस्कृतसंरक्षकः सौम्यवपुर्महात्मा

डा० भोला झा, प्रवक्ता (व्याकरण)
श्रीभगवानदासकेन्द्रीयसंस्कृतमहाविद्यालयः, हरिद्वारम्

नूनं धन्या कृतार्थाश्च भूरिभाग्यवन्तस्ते समेऽपि देहभाजो येऽत्र पुण्यतमे सुरैरपि स्पृहणीये दिवोऽपि विलक्षणे सकलभुवनललामभूते भव्ये भूतिमति भवविभवसम्पन्ने भारतजिरे लेभिरे जनिम्, लभन्ते जनुम् लप्स्यन्ते च जनुः। राशीभूतहराट्टहासातिधवलप्रबलहिमसंहतिसमाच्छादितहरालयकैलाशादिशिखरमण्डितशिखरिश्रेष्ठहिमालयरूप मुकुटमण्डिता, पूर्वापरतोयनिधि सततप्रक्षालितचरणयुगला अलकनन्दा-मन्दाकिनी-भागीरथ्यादिसुधापूरपूरित सरित्सहस्रहृदयहारा भारतधरेयं कर्मभूमिर्धर्मभूमि र्मोक्षभूमिश्च समस्तराष्ट्रकुलाचलमुकुटायमाना जगति विराजतेतराम्, विजयतेतमाम्। अत्रैव विकसिता स्मिन्नपि जगति ज्येष्ठाप्रेष्ठा श्रेष्ठा च सर्वजनकल्याणी परमर्षि-ब्रह्मर्षि-देवर्षि राजर्षिगणतपोवारिसिञ्चिता भारतीय-वैदिक संस्कृतिकल्पलतिका। सेयं विश्वबन्धुत्व सन्देशवाहिनी विश्वस्य पुराणतमा प्राणिमात्राभ्युदयनिःश्रेयसाकाङ्क्षी दिव्यारम्यासर्वजनवन्द्याऽनवद्या च संस्कृतिकल्पलता गीर्वाणवाणीरूपायामेवोर्वरायां भुवि अङ्कुरिता पल्लविता पुष्पकिसलयफलसम्पत्समन्विता च सञ्जातेति सर्वथा न तिरोहितोऽस्या महिमा कस्यापि दृशेः सुरभारत्याः ।

सेयं भारतीयाया आर्यसंस्कृतेः सम्पोषिका संरक्षिका संवर्द्धिका चामरभाषा न केवलं विश्वस्य सर्वासु भाषासु प्राचीनतमा, किन्तु मधुरतमा समृद्धतमा सर्वथा दोषलेषविकला सम्प्रतिपन्ना सर्वदेशीयैर्भाषाविद्भिः सुतरां वैज्ञानिकी च 'कम्प्यूटर' क्षेत्रे प्रयोगाय सर्वाधिक प्रयोगयोग्यतावती अद्यापि चिरयौवना सुरूपेव कामिनी रमणी सर्वजनमनोहारिणी धारिणी सर्वविषयाणाम् । अस्यामेव विलसन्ति प्रमाणानां प्रमाणभूताः स्वतः प्रमाणानि अपौरुषेयाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नास्त्रिंशदुत्तरशताधिकसहस्रशाखासम्पन्नाः । अत्रैव विद्योतते आदि कवेर्ब्रह्मर्षेर्भगवतो बाल्मीके र्दिव्याऽभिरामा रामायणी कथाऽऽदिकाव्यसुगुम्फिता व्याधबाणविद्धमिथुनीभूत क्रौञ्चयुगलान्यतर मर्मान्तक विरहवेदनादर्शनप्रस्फुटितकरुणाधारा प्रवाहस्यर्षेर्मुखारविन्दात् -

> **''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।**
> **यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।''**

इत्यनेन रूपेण इदम्प्रथमतया लोके प्रादुर्भूताऽऽद्यकवितालतानिबद्धा । अत्रैव विभ्राजते विष्णोरंशावतारस्य भगवतो बादरायणस्य वेदव्यासस्य लक्षसंख्याकश्लोकसम्पत्समृद्धा सकलविषयवस्तुप्रपञ्चपरिपूर्णा ''यन्न भारते तन्न भारते'' इत्युक्तिं चरितार्थयन्ती महाभारतीयकाव्यसुषमा। अष्टादशपुराणानि तावन्त्येवोपपुराणानि, धर्मशास्त्राणि, मन्वादिस्मृतयः, अष्टोत्तरशतमुपनिषदः, उपनिषदां सारभूता भारतान्तर्गता श्रीमद्भगवद्गीता, भगवतो वाङ्मयो विग्रहः श्रीमद्भागवतम् आस्तिक-नास्तिकभेद भिन्नानि बहूनिदर्शनानि, भास-कालिदास-भवभूति-बाणभट्ट-दण्डि-श्रीहर्षजयदेवादिकालजयि-विमलविश्रुतकविवरेण्य विरचितसुधाधारापूरित सरसकाव्यानि चात्रैव विलसन्ति। सेयं सुरभारती

अद्यापि तथैव सुमधुरासरसादिव्यानन्दप्रदायिनीसहृदयहृदयहारिणी च विलसति, यथा सहस्राब्दीभ्यः प्रागासीत्। तदेव भाषागतमुदारत्वम्, तदेव मार्दवम्, तदेव सुकुमारत्वम्, तदेव नानाविधभाव प्रकटन् प्रागल्भ्यम्, तदेवोर्जस्वलरूपत्वम्, तदेव स्निग्धत्वम्। एवमियमद्यापि सुरूपेव कस्य न प्रबुद्धस्य सचेतसश्चेतश्चोरयेत्! सेयममरभाषा न केवलममराणां भाषेत्यस्माद्धेतोरमरभाषेति गीयते, किन्तु येऽपि एनां समाश्रयन्ते, तानपि अमरान् विदधती स्वयमपीयं चिरारूढ़यौवनतया चिरनूतनाऽमराऽभिधीयतेऽभिज्ञैः। तस्या अस्या अमरत्वसम्पादने प्रधानो हेतुर्भगवतो वेदपुरुषस्य मुखरूपं प्रधानमङ्गं व्याकरणमेव। व्याकरणस्यैव महिमा यदियं सुरगवी अति पुराणी अपि सद्योयौवनेवालक्ष्यते। अस्या मधुरतमं स्वरूपं व्याकरणशास्त्रेणैवाक्षुण्णमविकृतं चिरस्थास्नु च सम्पादितम्। विश्वस्य बह्व्यो भाषाः कालकवलिताः सञ्जाता एतादृश सर्वाङ्गपरिपूर्णव्याकरणवैभवाभावात्, तासां नामान्यपि नाद्य जनैः स्मर्यन्ते। परमियं कोटि-कोटि जनै रद्यापि लक्षेषु संस्कृत विद्यालय-महाविद्यालय-विश्वविद्यालयेषु च सर्वविध शिक्षणालयेषु अधीयानाऽध्याप्यमाना चास्वाद्यते जेगीयते च। अस्या मधुरमास्वादम् आस्वादम् आस्वादम् धन्यान् कृतकृत्यांश्चात्मनो मन्यन्ते रसलोलुपा लोकाः। सोऽयं सर्वोऽपि अस्या व्याकरणस्यैव सुविदितः प्रभावः। इमां शिक्षितुं शिक्षयितुं च नान्यः कश्चनोपायोऽपि दृश्यते ऋते व्याकरणात्। व्याकरणविद्यामाश्रित्यैव जना इमामधीयते चाध्यापयन्ति च।

न चैतादृशमविकलं व्यवस्थितं परिपूर्णं च वाङ्मयमवलोक्यते कुत्रापि अन्यस्या भाषाया व्याकरणे। यदि व्याकरणमन्तराऽन्यत् किमपि संस्कृतस्य वाङ्मयं नास्थास्यत्तदापि जनाः केवलेन व्याकरणेनैव सर्वाङ्गपरिपूर्णामिमां संस्कृतभाषामधिगन्तुं प्राभविष्यन्। सन्तिह्यत्र धातवः, यैस्तिङन्तपदानि सिध्यन्ति। धातुभ्य एव कृत्प्रत्ययोत्पत्तौ नानाविधानि असङ्ख्यानि प्रातिपदिकानि सिध्यन्ति, येभ्यः सुबुत्पत्तौ सुबन्तरूपाणि पदान्यपि ज्ञास्यन्ते। प्रातिपदिकेभ्य एव तद्धितविधौ पुनस्तद्धितान्तप्रातिपदिकेभ्यः सुप्सु जातेषु, एवं समास विध्यनन्तरं समस्त प्रातिपदिकेभ्योऽपि सुपि सुबन्तपदानि सेत्स्यन्ति। स्वरादीनां चादीनां चाव्ययानां शाकटायन प्रणीतोणादिसूत्रैर्व्युत्पत्तिसिद्धेस्तेषामपि कृदन्तत्वात् प्रातिपदिकत्वे सुपि सुबन्तपदसिद्धिर्भविष्यति। कारकप्रकरणेन वाक्यरचनाज्ञानं स्त्रीप्रत्ययप्रकरणेन स्त्रीत्वबोधक प्रत्यययोगः, सन्धिप्रकरणेन च सन्धिज्ञानमपि सिध्यत्येव। एवञ्चान्यत् किमपि वाङ्मयमनधीत्यैव एवं व्याकरणमेवा नुशील्य कोऽपि जनः संस्कृतं सर्वात्मना शिक्षितुं प्रभवति। किन्तथा कामपि अन्यां भाषां व्यवहारं सहित्यादिवाङ्मयाभ्यासं च बिना कोऽपि केवलं व्याकरणाश्रयेणैवाधिगन्तुं कथमपि प्रभविष्यति। अत एव संस्कृत व्याकरणवैभवस्यासाधारणं वैशिष्ट्यं सर्वैरपि मुक्तकण्ठतया गीतम्। न केवलं भारतीया एव, किन्तु पाश्चात्यचिन्तका अपि संस्कृतव्याकरणस्यासाधारणं वैभवं दर्शं-दर्शं चकित चकिता भवन्ति। अत एव इङ्गलैण्ड देशवास्तव्यः प्रो० मोनियर विलियम्स् लिखति यद् – "संस्कृतव्याकरणं मानवमस्तिष्कस्य प्रतिभायास्तद् आश्चर्यतमं प्रतीकम्, यन्न केनाप्यन्येन देशोनाद्यावधि उपस्थापितम्।" एवं जर्मनदेशवास्तव्यो मैक्समूलरो लिखति–"हिन्दूनां व्याकरणयोग्यता संसारस्य कस्या अपि जाते र्व्याकरणवाङ्मयात् श्रेष्ठा।" लेनिनग्रादवास्तव्यः शेरवात्सकी तु "पाणिनीयं व्याकरणं मानवमस्तिष्कस्य महत्तमां कृतिम्" वर्णयति।

सत्यपि संस्कृतस्य बहुषु पाणिनेः प्राक्तनेषु अर्वाचीनेषु च व्याकरणेषु पाणिनीयमेव व्याकरण-मन्यानि सर्वाणि व्याकरणानि स्वासाधारणवैशिष्ट्येनातिशेते। अत एवेदमेव व्याकरणं बह्वीभ्यः शताब्दीभ्यः

लोकेऽध्ययनाध्यापने प्रचलितम्, अन्यानि सर्वाणि लुप्तानि लुप्त-प्रायाणि वा। सर्वैरपि प्रामाणिकैराचार्यैरस्यातुलनीयो महिमा मुक्तकण्ठं गीतः। पाणिनीयशास्त्रस्य किमपि एकमपि अक्षरं नास्ति निरर्थकम्। स्वयं भगवान् भाष्यकारो भाषते-"प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः सूत्राणि प्रणयति स्म। तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुम्, किं पुनरियता सूत्रेण?

"उदक् च विपाशः" (पा०अ० ४/२/७४) इति सूत्रवृत्तौ काशिका कारो जयादित्योऽपि जगाद-"महती सूक्ष्मेक्षिका वर्त्तते सूत्रकारस्य। एवं वङ्कवेङ्कटमाधव ऋग्वेदभाष्यकारोऽपि ऋगर्थनिर्णयविषये भगवतः पाणिनेः प्रामाण्यं स्वीकुर्वन्नाह - **"शाकल्यः पाणिनिर्यास्क इत्यृगर्थपरास्त्रयः।"** अतएव सर्वस्मिन्नपि विश्वस्मिन्नस्यैव व्याकरणस्य प्रचुरः प्रचारः सञ्जातः।

एवं पाणिनि-कात्यायन-पतञ्जलीतिमुनित्रय सन्दृब्धा द्वितीय व्याकरण शास्त्रानुशासनसंस्कारिता येयं सुरगवी तेषु-तेषु कालेषु नारद-बाल्मीकिवसिष्ठ-गौतम-व्यास-गर्ग-मनु-याज्ञवल्क्य-कपिल- कणाद- जैमिनि- यास्क-शाकल्य-शाकटायनप्रभृतिभिरसङ्ख्यैस्तैस्तैर्महर्षिभिर्मन्त्रद्रष्टृभिर्भूतमात्र हितचिन्तकै वैदिकसंस्कृतिस-मुन्नायकैर्वैदिकसनातनमार्यसिद्धान्तं प्रचारयितुं तानि-तानि कालजयीनि ग्रन्थरत्नानि प्रणीय न केवलं परां समृद्धिं समानीता, परं परं रमणीयकं प्रापय्य जन-जनकण्ठधारणीयतामपि सन्नीता, सर्वत्र लोके सम्प्रचारिता, संरक्षिता सुरक्षिता चास्माकं सौभगत्वाय। सेयममरभारतीभागीरथी अजस्रभारतीयसंस्कृतिधारासन्धारिणी अद्यापि अतिविषमें कराले कलिकाले भारतगौरवसंरक्षणाय प्राणिमात्रकल्याणभावनयैव च तैस्तैर्भगीरथैः ऋषिभिः सद्भिर्मुनिभिश्च भारतस्य तेषु-तेषु सर्वेषु भागेषु संवाह्यते प्रवाह्यते संरक्ष्यते सुरक्ष्यते च। एतादृशेष्वेव भगीरथेषु येषां सर्वजनवन्द्यानाम् ऋषिप्रवराणां नाम कनिष्ठकामधितिष्ठति, त एव सन्ति अस्माकं समेषां प्रणतितति भाजो हरिद्वारे खड़खड़ी क्षेत्रे 'निर्धन निकेतन' नामकस्याश्रमस्य, तस्मिन्नाश्रमे च ऋषिसंस्कृतमहाविद्यालयस्य बालविद्यालयस्य च बालवदुत्साहवन्तः संस्थापकाः सञ्चालकाःसंरक्षकाश्च संस्कृतमधिजिगषूणां छात्राणां मातृवत् वात्सल्यप्रदानेन सम्पोषकाः संस्कृतज्ञांश्च सातिशयं स्निह्यन्तः **श्रीमन्तः ऋषिप्रवराः केशवानन्द जी महाराजाः**। सम्यगुक्तं महाकविना- "यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति" इति एतान् ऋषि जी महाराजान् दृष्ट्वा सहसा कोऽपि वक्तुं प्रभवति। हेमाभगौरवर्णानां चन्दनचर्चितभव्योन्नतभालानां समुन्नतनासिकानां चिरसमर्जिततपसां दिक्षु विततयशसां च राशिनेव प्रक्षालितेन दुग्धधवलितेन सुदीर्घकेशपाशेन कूर्चश्मश्रुजालेन शुद्धं, दीनान् प्रति दयार्द्रं करुणाविगलितं च सदैव परोपकारपरायणपरमिति तथ्यम्। मन्ये एतादृशानेव महानुभावान् प्रत्यक्षीकृत्य महाकविना भर्तृहरिणा सत्यं समुदीरितम् ।

"वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः।।"

एषां महात्मनां सम्पूर्णमपि जीवनं सर्वस्वं च संस्कृतसंरक्षणायैव समर्पितम् । बहुभ्यः प्राक् वर्षेभ्यः स्वकीयसद्गुरुचरण प्रेरणया हरिद्वारे संस्कृत विद्यालयं संस्थाप्य सञ्चाल्य अदम्येनोत्साहेन समुद्यमेन च क्रमशो 'ग'

वर्गे ततश्च 'ख' वर्गे ततश्च 'क' वर्गे समुन्नीय विद्यालयछात्रावासेऽद्यावधि सहस्राणि छात्रान् वात्सल्यामृतपानेन सम्पोष्य स्वयं सोत्साहं सस्नेहं अधिकाधिकयोग्यतासमर्जनाय राष्ट्रस्य सच्चरित्रं योग्यतमं नागरिकं भवितुं सम्प्रेर्य च तान् वस्तुतो योग्यान् सुसंस्कृतान् च विधाय देशे तत्र-तत्र विदेशेषु च संस्कृतसंस्कृतिप्रसाराय सम्प्रेष्य अपूर्वमेव किमपि श्रीमद्भिरनुष्ठितमनुष्ठीयते चाद्यापि सन्ततम् । देशस्य कः स्यात् प्रतिष्ठितः संस्कृतसेवको विद्वान् यः श्रीमतः ऋषिजीमहाभागान् न परिचिनुयात्? न केन खलु विदुषाऽधिकारिणा च श्रीमतां सस्नेहमामन्त्रणं प्राप्य निर्धननिकेतने पुण्यकेतने समागत्य सर्वदाऽविस्मरणीयं सभाजनं समधिगतम्। श्री वेंङ्कटाचलम्-श्रीरामकरण शर्मसदृशा विद्वांसः संस्थाया अस्या गतिविधिमालोकमालोकम् अतिप्रभाविताः सन्तः सामोदम् ''सजीवेयं संस्था'' इति वर्णयामासुरित्यस्य साक्षी अयमपि जनः । यद्यपि सर्वे एव संस्कृतसम्बद्धा लोका मत्तोऽपि सम्यक्तया सुतरां परिचिन्वन्ति जानन्ति च श्रीमतोऽत्रभवतो भवदीयां संस्थां च, तथापि श्रीमताम् 'ऋषि' जीमहाराजानां हीरकजयन्त्यवसरेऽस्मिन् स्वकीयां सपर्यां तेषां चरणेषु समर्पयितुमिमं यं कमपि भावकुसुमाञ्जलिं समर्पयामि औषधिपतिभ्राजितभालं भवानीजानिं श्रीमतामत्रभवतां शतायुष्ट्वं याचमानः इतिशम्।।
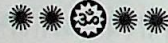
हरिद्वारस्थ दर्शनीयानि स्थलानि

पं० ज्ञानचन्द्र शास्त्री
पूर्व-प्राध्यापकः (साहित्य)
हरिद्वारस्थ श्रीजयभारतसाधुसंस्कृतमहाविद्यालयस्य

हरिद्वारे दीव्यतमविभूतिसमलङ्कृता भुक्तिमुक्तिप्रदाभगवतीगङ्गा भारतीयसंस्कृतेः प्राणभूता परा शक्तिर्विराजते। महर्षीणां जपतपयागमंत्रश्रुति स्वाध्यायसमाधिसाधनैः परिपूते-हरिहरयोर्द्वारदेशे-ब्रह्मकुण्ड हरकीपैडी-स्थले सर्वप्रथमं धरायां गङ्गावतरणं संजातं तदैवास्य गङ्गाद्वारमितिनाम प्रसिद्धम्-

स्वर्गान्निपतिता गङ्गा पृथिव्यामागता यदा।
तदैवास्य द्विजश्रेष्ठ! गङ्गाद्वारमितिश्रुतम्।।

इदमेव महाभाग ! स्वर्गद्वारं स्मृतं बुधैः।
यस्यदर्शनमात्रेण विमुक्तो भवबन्धनैः।।

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या देवा नित्यं प्रतिष्ठिताः।
मुनयः सिद्धगन्धर्वा गुह्यकाप्सरसां गणाः। (स्क.पु.के.ख. १०६ अध्याये)

मायापुरी गङ्गाद्वार स्वर्गद्वार हरिद्वार-हरद्वार तपोवनाभिधानै विश्वप्रसिद्धमेतत् तीर्थं- नगाधिराजस्य हिमालयस्य शिवालिकपर्वतशृँखलायां विल्वनीलपर्वतयोर्मध्ये प्रवहमानायाः गङ्गायाः पश्चिमेतीरे श्रीमद्भागवतमहापुराण-माहात्म्याधारेण-निगदितुं शक्यते यदत्रैव गङ्गाद्वारे सनकादयः नारदाय ज्ञानयज्ञरूपेण भागवतीं कथां प्रोक्तवन्तः। यथा-

श्रुणु नारद वक्ष्यामो विनम्राय विवेकिने।
गङ्गाद्वारसमीपे तु तटमानन्द नामकम्।। माहात्म्य अ० ३-४

नष्टसदाचारो दासीपतिरजामिलोऽपि गङ्गाद्वारमुपेत्य सद्यः भगवत्पार्श्ववर्तिनां स्वरूपं जगृहे-

हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु।
सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम्।। भा ६/२/४३

हरिद्वारेऽगाधबोधवता मैत्रेयेण भगवद्भक्ताय विदुराय श्रीकृष्ण निर्देशानुसारेण श्रीमद्भागवतं निगदितम्-

द्वारिद्युनद्या ऋषभकुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम्।
क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः। भा.३ स्क.५ अ.११ श्लोक

पद्मपुराणोत्तरखण्ड २२ अध्याये हरिद्वारतीर्थस्य-माहात्म्यं विस्तृतया विवेचितं वर्तते-

हरिद्वारे यदायाता विष्णुपादोदकी यदा।
तदैवतीर्थं प्रवरं देवानामपिदुर्लभम्।।

तत्तीर्थे च नरः स्नात्वा हरिं नत्वाविशेषतः।
प्रदक्षिणं प्रकुर्वन्ति न चैते दुःखभागिनः।।

प्रोक्तञ्च भगवता श्रीशिवेन यदहं हरिद्वार तीर्थयात्रा प्रभावात् विष्णुरूपवान् जातः-यथा-

एकदाकेशवस्थाने हरिद्वारि ह्यहं गतः।
तस्मात्तीर्थ प्रभावाच्च जातोऽहं विष्णुरूपवान्।।

हरिद्वारस्य दर्शनीयानि पञ्चपौराणिक स्थलानि-

गंगाद्वारे कुशावर्ते विल्वके नीलपर्वते।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते।।

गंगाद्वारमेव हरिद्वारं-बदरीनाथद्वारम्, हरस्यद्वारं केदारनाथस्यद्वारम्, गंगापि स्थलमेतत् द्वारं विधाय गाम्-पृथिवीं-गतेति गंगाद्वारमिति नामभिः प्रसिद्धंजातम्। ब्रह्मकमण्डलु विनिर्गतं हरिपाद- पद्मप्रक्षालितं हरजटाटवीभ्रमणशीलं पावनं गङ्गां जलं गृहीत्वापीत्वादृष्ट्वास्नात्वा च जनाः ब्रह्मकुण्डे-परमानन्द सन्दोहमनुभवन्ति। ब्रह्मकुण्डे चात्र ब्रह्मपुत्रेणदक्षेण भगवान् विष्णुः समाराधितः। सप्रसन्नेन भगवताविष्णुना स्वपदारविन्देन-स्थलमेतत्समलङ्कृतम् तदास्य-हरिपद-हरकीपैडी-इतिनाम विख्यातम्। यथा नारदपुराणे-कथितम्

तत्क्षेत्रं पुण्यदं नृणां सर्वपातकनाशनम्।
यत्र यक्षेश्वरःसाक्षाद् भगवान् विष्णुरव्ययः।।
स्तुतो दक्षिणमज्ञैश्चतत्तीर्थं हरिसंज्ञितम्।
तत्रयोविधिवन्मर्त्यःस्नायात् हरिपदे सति।।
स विष्णोः बल्लभो भूयान्मुक्तिभुक्त्येकभाजनम्।

सापूर्व प्रथमशतके महाकविना कालिदासेन स्वकीये- मेघदूते यक्षस्य कैलाशयात्राप्रसंगे स्वर्गसोपानपंक्ति-स्वर्ग सीढी-हरकी पैडी-रूपेण कनखल समीपे गङ्गा-वर्णनंकृतम् यथा-

तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनया स्वर्गसोपान पंक्तिम्।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोःकेशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता।। (पूर्वमेघ-५०)

हिमालयस्योपत्यकायां वर्तमान हरकीपैडी स्थले-प्रस्तरशिलायां भगवतः शिवस्य चरणोल्लेखोऽपि कविना कालिदासेन मेघदूते कृतः-

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणं यासमर्द्धेन्दुमौलेः। (पूर्वमेघ ५५)

श्वेतकेतु समाधिसु प्रसन्नेन प्रजापतिना ब्रह्मकुण्ड विषये स्वयं कथितम्-

इदं क्षेत्रं महापुण्यं त्रैलोक्ये चातिदुर्लभम्।
अतः परं च मन्नाम्ना विख्यातं हि भविष्यति।।
ये वै स्नास्यन्त्यत्र कुण्डे गच्छेयुस्ते परं पदम्।
यत्कर्म क्रियते चात्र तत्सर्वं स्यादनन्तकम्।।

भर्तृहरि महाराजस्य तपस्थलमप्येतदेववर्तते, अत्र श्री गंगामन्दिरम्, लक्ष्मीनारायण मन्दिरम्, हरिचरणमन्दिरम्, गंगाधरमन्दिरम्, अष्टस्तम्भ मन्दिरम् मध्येगंगं च मानसिंह महाराजस्य मन्दिरम्-दर्शनीयं वर्तते। अत्र सायं काले गंगार्चननीराजनस्य आरती-भव्यं दिव्यमलौकिकं दर्शनीयं चायोजनं - श्री गंगासभा द्वारा विधीयते।

धर्मशास्त्राधारेण भगीरथरथखातावच्छिन्ना गंगाधारा स्नान-श्राद्ध यज्ञधर्मानुष्ठानाय पवित्रतमा स्वीक्रियते। वैदेशिकाङ्गलशासनेन हरकीपैडीस्थलादुपरिभागे 'गंगनहर' निर्माय यदा गंगाबन्धं विधाय 'बाँध' निर्माणस्य चिकीर्षा कृता तदा पतितपाविन्याः मोक्षदायिन्याः भागीरथ्या गंगायाः हृदये हरकीपैड़ी-ब्रह्मकुण्डे-जलाभाव सम्बन्धिनी विकटां-समस्यामवलोक्य हरिद्वारस्थ तीर्थपुरोहितानां श्रीमहन्तानां च सहयोगेन महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय महाभागैः १६१४-१६१६ ई० वर्षे कृत्रिम नियंत्रितधारा विरोधे प्राकृतावच्छिन्न गंगाधारा समर्थने च विशालतमान्दोलनं प्रारब्धम्। तत्परिणामेन कोटिभावुक गंगाभक्तानां श्रद्धास्थलं पवित्रतमं दर्शनीयं हरिकीपैड़ी-ब्रह्मकुण्ड-स्थलमद्यापि भगीरथरथरवातावच्छिन्नया धारया समलंकृतं वर्तते। यत्र कोटिसंख्यकानां जनानां समागमः प्रतिवर्षं पूर्णिमा-अमासंक्रान्ति पर्वसु महाकुम्भार्द्धकुम्भावसरे च जायते।

यस्यब्रह्मकुण्डतः दक्षिणेभागे ''कुशावर्तं'' महातीर्थं महामुनेः दत्तात्रेयस्य पुराणप्रसिद्धं तपस्थलं वर्तते, यत्रश्रद्धालुभिर्देवर्षिपितृ कर्म सम्पाद्यते -

कुशावर्त महातीर्थ दक्षिणे ब्रह्मतीर्थतः।
तत्र स्नात्वा महाभाग ! न च भूयोऽभिजायते।
स्नानं दानं जपोहोमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
यदत्र क्रियते कर्म तत्तत् स्यात् कोटिसंख्यकम्।।

ललतारो सेतुतः पश्चिमे दिग्भागे विल्वपर्वते 'बिल्केश्वर' महोदवस्य प्राचीनं दर्शनीयं मन्दिरं चास्ति।

प्राचीन कालादेव विल्ववृक्षाणां बाहुल्याद् ऋषिभिरस्य विल्वपर्वत इति नाम कृतम् ।

तत्रेको विल्ववृक्षस्तु तस्याधः शिवलिङ्गकम्।
यस्य दर्शन मात्रेण शिवतां याति मानवः।।

विल्वकेश्वरस्य समीपे गौरीकुण्डनामकं पार्वती तपस्थलमप्यवलोकनीयं वर्तते। मनसादेवी मन्दिरमपि विल्वपर्वतोपरि राजते। मनसा देवी मन्दिरात् सम्पूर्णहरिद्वारस्य गंगायाश्च दृश्यं विलोभनीयं दर्शनीयं च विलोक्यते। अत्र रज्जुमार्गेण गमनागमनस्य सौविध्यं वर्तते। हरिद्वारे गंगायाः पूर्वभागे नीलपर्वतप्रतिविम्बेन गंगा 'नीलधारे' तिनान्मा प्रसिद्धा, अत्रापि स्नानस्य माहात्म्यं विद्यते। नीलपर्वतस्योत्तुंगे शिखरे चण्डीदेवीअंजनादेवी- अधोभागे च गौरीशंकर नीलेश्वरस्य मन्दिरद्वयं तथा च शाक्तोक्तं कालिदेव्याःमन्दिरमपि पुराणप्रसिद्धं दर्शनीयं वर्तते । चण्डीदेवी मन्दिरेऽपि रज्जूमार्ग व्यवस्था संजाता ।

महाभारत श्रीमद्भागवत शिवपुराण स्कन्दपुराणेषु च कनखले दक्षप्रजापतेर्यसस्य विस्तृतं विवरणं समुपलभ्यते अस्मिन् यज्ञे प्रजापतिदक्षेण जामाता शिवः यज्ञाधिकारे वंचितः। अनेनापमानेन क्षुब्धा शिववल्लभा सती यज्ञवेदीसमीपे योगाग्नौ स्वकलेवरं हुतवती। शिवाज्ञया वीरभद्रेण दक्षः विध्वंसितः, देवगणानां प्रार्थनया सुप्रसन्नेन शिवेन दक्षशरीरे अजस्य शिरः प्रत्यारोप्य स पुनरुज्जीवितः। यज्ञेऽस्मिन् भगवान् विष्णुः हरिपदे-हरकीपैड़ी-स्थले स्वयमवतीर्णः कनखले च यज्ञवेदी समीपे दक्षेश्वरो ज्योतिर्लिंगरूपेण विराजते, अत्रैव सतीकुण्डमपि पुराण प्रसिद्धं वर्तते । हरिद्वारस्य प्राचीनतमं नाम मायापुरी-

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका।।

सप्तमोक्षपुरीषु मायापुर्या माहात्म्यं स्कन्दपुराण- केदारखण्ड १०२-११५ मध्ये विस्तरेण वर्णितं वर्तते। हरिद्वारस्याधिष्ठातृ देवी मायादेवी वर्तते -

माया भगवती साक्षात् सृष्टिस्थित्यंतकारिणी।
तत्क्षेत्रं हि समाख्यातं भवमुक्ति प्रदायकम्।।

मायादेव्या मन्दिरं मध्येनगरं दर्शनीयं वर्तते। मायादेवी माहात्म्ये पुराणप्रसिद्ध प्राचीन दर्शनीय तीर्थ स्थलानां - गंगाद्वार - ब्रह्मकुण्ड - कुशावर्त - बिल्वपर्वत - नीलपर्वत - कनखल - सतीकुण्ड - रामतीर्थ - विष्णुतीर्थ - नारायणी शिला - मायादेवी -चण्डीदेवी मनसादेवी-कालीदेवी-सुरेश्वरीदेवी भीमस्थल- सप्तश्रोतादि दर्शनीयपावनस्थलानां वर्णनं विस्तारेण विवेचितं वर्तते। सप्तसरोवर गंगागमनात्पूर्वमेव सप्तजमदग्नि-भरद्वाज-विश्वामित्र-गौतम-अत्रि-कश्यप वशिष्ठ ऋषीणामाश्रमा आसन्। एते वाच्छन्ति स्म यत् गंगा ममाग्रतः गच्छेत्। तेषां तपः प्रभावाद् गंगा सप्तधा जाता

तेषां तपः प्रभावेण गंगायाश्च प्रसादतः।
तत् स्थानं तीर्थतां प्राप्तं सप्तश्रोतेति नामतः।।

वर्तमानकाले हरिद्वारे विविधाश्रममठमन्दिर-धर्मस्थलानि दर्शनीयानि सन्ति। यत्र भावुकभक्तैः ज्ञानपिपासुभिः साधकैश्च निरन्तरमाध्यात्मिकवातावरणे कथासत्संगप्रवचनार्चनपूजनयज्ञानुष्ठानयोगाभ्यासमाध्यमेन श्रेयप्रेययोर्लाभः समवाप्यते। प्रसिद्धदर्शनीयाश्रमेषु निर्धननिकेतनाश्रम -जयरामआश्रम शान्तिकुंज-गीताकुटीर दूधाधारी आश्रम-परमार्थ निकेतन - सप्तर्षिआश्रम - वैष्णवदेवीमन्दिर - भारत माता मन्दिर-पावनधाम-भूमानिकेतन-साधुबेला-सप्तसरोवरक्षेत्रे, गुरूमण्डल-अवधूतमण्डल-मुनिमंडल आनन्दमयीआश्रम-चेतनदेव कुटिया-रामकृष्ण-सेवाश्रम-जगद्गुरु आश्रम-साधनासदन-सन्तोषीआश्रम-गीतामन्दिर-मानवकल्याण आश्रम-कृष्णनिवासाश्रम-सूरतगिरिबंगला च कनखलक्षेत्रे प्रसिद्धा सन्ति मध्यहरिद्वारे भोलागिरिआश्रम-श्रवणनाथमठ - गोरक्षनाथमन्दिर - गरीबदाससीयसेवाश्रम - रामानन्दाश्रम -नृहसिंहधाम च दर्शनीयाः। विविध चत्वरेषु मुख्यस्थलेषुच श्री मृत्युंजय श्रीशंकराचार्य-महर्षि बाल्मीकि-दत्तात्रेय-गोस्वामीतुलसी-महामना- पं० मदन मोहन मालवीय-स्वामी विवेकानन्द - श्रीचन्द्राचार्य - किशोरीदासवाजपेयी -स्वामी श्रद्धानन्द-सन्तटेऊराम -महापुरुषाणां स्थापिताः प्रतिमाः हरिद्वारस्य सांस्कृतिकं गौरवमुद्गिरन्ति।

प्राचीनकालादेव हरिद्वारस्य शिक्षाक्षेत्रेऽपि महत्वपूर्णं स्थानामासीत्, अद्यापि प्राच्यार्वाचीन शिक्षणस्य चिकित्साभियांत्रिकी प्रशिक्षणस्य प्रतिष्ठानानि जनानामाकर्षणस्य केन्द्रस्थलानि जनपदे प्रतिष्ठितानि। गुरुकुलकाँगड़ी विश्वविद्यालये वेदपुरातत्वेतिहासदर्शनहिन्दीसंस्कृतसाहित्यविज्ञानकम्प्यूटर्सप्रबन्धनयोगादिविविधविषयेषु स्नातकोत्तरशिक्षणानुसंधानस्य समीचीना व्यवस्था विद्यते। अभियांत्रकी प्रशिक्षणे रुड़की विश्वविद्यालयः देशे विदेशे चाकर्षणस्य केन्द्रस्थलमस्ति। अस्य विश्वविद्यालयस्य सिविलवैद्युत-मैकेनिक-भूकम्प-एलोट्रोनिकाभियांत्रिक-विभागाः पराख्यातिमवाप्तवन्तः। आयुर्वेदशिक्षणे ऋषिकुलगुरुकुलायुर्वेदिकराजकीयमहाविद्यालयौ प्रसिद्धौ स्तः ।

हरिद्वारजनपदे स्नातकोत्तर-उच्चतर माध्यमिक-माध्यमिक विद्यालयानां ४५ संख्या वर्तते । महाविद्यालयेषु एस.एम. जे.एन. कालेज सतीकुण्डकन्यामहाविद्यालय-चिन्मयडिग्रीकालेज-बी.एस.एम.-नारसनगुरुकुल-के.एल. डी.ए.बी. तथा च.एम.डी.पी.सी. कन्यामहाविद्यालय रुड़की कार्यरताः सन्ति।

संस्कृतशिक्षाक्षेत्रे-ऋषिकुलविद्यापीठ-गुरुकुलमहाविद्यालय ज्वालापुर-जयभारत साधुमहाविद्यालय-सप्तर्षिविद्यालय-ब्र०रामकृष्णपालीवाल ऋषिसंस्कृतमहाविद्यालय-शम्भुदेव-रामानुज-गरीब दासीय-निर्मल-उदासीन-बस्तीराम-मुनीमण्डल-गीताकुटीर-चेतन ज्योति विद्यालयाः समुल्लेखनीयाः सन्ति। केन्द्रीय शासनानुदानितः भगवानदासंस्कृतमहाविद्यालय उच्चस्तरीयः संस्कृतकेन्द्रमस्ति ।

बृहद् विद्युत् संयन्त्र निर्माण संलग्नं प्रगतिशीलनवभारताधुनिकतीर्थ रूपेण विश्वविख्यातं बी०एच०ई०एल०

संस्थानं दर्शनीयं वर्तते, प्रतिष्ठानमेतद् 'एशिया' भूभागे प्रथमं स्थानमलभत् ।

हरिद्वारं परितः नैसर्गिकसुषमासमन्वितानि भीमगोडाडाम-चीला-नीलधारा-राजाजी अभयारण्य स्थलानि, शिवालिक बिल्ब नीलपर्वतयोश्च्छटा मध्येनगरं कल-कल निनादमाना निर्मलगंगाधारा, मठमन्दिराश्रमाणामाध्यात्मिकं वातावरणम् मनसा चण्डी मार्गे रज्जुदोलामनोरञ्जनम्, तत्रदेवीदर्शनम्, तत् पर्वतात् हरिद्वारनगरस्य प्राकृतिक-सौन्दर्यावलोकनञ्च पर्यटकानां चेतसि-अमन्दानन्दसन्दोहं जनयति ।

अन्ते च दर्शनीयहरिद्वारतीर्थवंदनं विधीयते -

प्राच्यां चण्डी विल्वकेशः प्रतीच्याम्
सप्तर्षीणां सप्तश्रोतांस्युदिच्याम्
मध्ये गंगा भाति दक्षोऽप्यवाच्याम्
बन्दे दिव्यं श्री हरिद्वारतीर्थम् ।।

'श्रीकेशवानन्दर्षेर्नवनवदर्शनम्'

डा० शिवकुमार शर्मा
प्रवक्ता (व्याकरणविभाग)
हरिद्वारस्थ श्रीजयभारतसाधुसंस्कृतमहाविद्यालयः

कः खल्वज्ञो भारतस्य 'भा' रततायाः? भारते 'भा' रताता कुतः? केभ्यः? कदा आरभ्य? किं किमधिकृत्येयं प्रचलिता प्रख्यापिता, प्रसृताश्चास्ति, एवमनल्पमनर्धञ्चाशयं संधार्यमाणानां प्रश्नानां सङ्कल्पनायां सञ्जातायां सत्याम् समुदेति कारणं प्रत्युत्तरं प्रतिवचनमन्तस्तलस्पर्शि भारतीय संस्कृत-साहित्यार्णवभूते सति हृदयार्णव 'ऋषित्वमिति'

'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' वचनमिदन्नीते सति चिन्तनसरणौ भारतस्यास्य 'भा' रतत्वम्, ज्ञानस्य माहात्म्यम् साहित्यस्य गौरवम् विश्वस्य गुरुत्वम् धर्मस्य सहिष्णुत्वम् संस्कृतेः व्यापकत्वम्, क्षेत्रस्य रोचकत्वम्, नदीनां मातृत्वम् पर्वतानां पितृत्वम् वेदानां गाम्भीर्यम्, ऋषीणां संरक्षणत्वम् चर्मचक्षुषां समक्षे चमत्कृतिं संस्थापयति।

समुद्भावयति चान्तः करणे ऋषित्वस्य व्यापकतां विशालताञ्च, विबुधेषु अगाधताम्, जनसामान्येषु दुर्ज्ञेयताम् चिन्तकेषु रहस्यम् कुबुद्धेष्वावरणम् अध्येतृषु तात्पर्यम्, वाचालेषु प्रतिविम्बम् भक्तेष्वभयम्, वञ्चकेषु भयम्, चेतनेषु प्ररेणाम्, जडेषु ताडनाञ्च।

एवं विधर्षित्व-संधर्ता श्री केशवानन्दो भारते संस्कृतजगति चोभयत्रावासशीलेन केन खल्वपरिचितः श्रीमतानेनाप्यृषित्वं विस्तृतं व्यापकञ्चोपस्थापितं स्वीयेन सामाजिकदर्शनेन। यदृषेः सामाजिकदर्शनं नवविन्दुषु नवं नवमत्र संस्थापनीय विषयत्वेनादृतमप्रतिहतगति भूताया मम लेखन्याः। यथागुरुभक्तिः गृणात्युपदिशति धर्मादीन् गिरत्यज्ञानं वा सो गुरुस्तस्य मनसा-वाचा-कर्मणा च सेवनमेव गुरुभक्तिः। ऋषयश्च सत्यवचसो भवन्ति। "ऋषि" शब्दस्यैवं विधपरिभाषाया आश्रयस्थलमिम ऋषिवर्याः सन्तीत्युच्चारणमथस्थानमत्र। गुरुभक्ति रेषां मनो-वाक्कर्मसु त्यक्तसकलचाञ्चल्यवाचं यम-वृत्तिमाश्रित्य संस्थिता। गुरोरुपनाम 'निर्धन' शब्दमधिकृत्य भारतीयसंस्कृतेराधारभूताया देववाण्याः प्रचारकेन्द्रत्वेनेव प्रतीयमानं निर्धननिकेतननामाश्रमः संस्थापितोऽस्ति हरिद्वारे गङ्गायाश्च तटे। गुरुरभिधानाक्षराण्येषां श्री १०८ बालब्रह्मचारि वंशीधर जी इत्यासन्। एभिः वृषभयानानामश्वयानानां रिक्सादि वाहनानाञ्चाप्रयोग एव कृतोऽनेनाखिलेऽपि स्वजीवने। यतो ह्यात्मपाञ्चभौतिकशरीरेण न कस्मैचिदपि किमपि कष्टं भूयादतः पादत्राणानामप्रयोग एव प्रत्याख्यातः सर्वमिदं स्वेषत्स्मितानननेनाभिधीयर्षिवर्याः स्वीकुर्वन्ति यज्जीवनस्य यादृगानन्दात्मकं स्वरूपं मम गुरुणा श्री वंशीधरमहात्मनैवावाप्तं न त्वहम् । स्वात्मानन्दन्त्वन्तर्मुखिन एवाधिगच्छन्ति। रोमाञ्चितः सन्तः श्रावयन्ति यद्गुरवो मम मया सह सर्वदैव सूक्ष्मत्वेन स्थिरीभूय मम रक्षां कुर्वन्ति। उदाहरणं यथा एकादाहं चिन्तपूर्णी देव्या दर्शनार्थंगच्छन्नासम् । मनसि च दर्शनं कथञ्झटिति स्यादितीच्छाक्षणे क्षणे प्रवर्धमाना आसीत्। निर्जनारण्यमार्गे मन्दं मन्दं गच्छन् सन् सहसा कयाप्यदृष्टमय्या शक्त्योत्थायाग्रे स्थिरीकृतमहमदृहासमप्यश्रृणवन्निर्दे शञ्चावाप्नवम् यदग्रेऽवलोक्य गमनीयमिति, अवालोकयञ्च पृष्ठभागे निर्झरस्यैकस्य गमनमार्गन्तस्य गह्वरता दश,

पञ्चदश वा फुट परिमिताऽऽसीदतो मम शरीरे रोमाञ्चोऽभवत् यतोह्यरक्षितः सन्गुरुवरैरद्यावश्यमेव मम शरीरं पञ्चत्वम् प्राप्तं स्यात्। घटनामिमां संस्मृत्य संस्मृत्य रोमाञ्चितः सन्नश्रुयुताननो भवामि संस्मरामि च गुरुवरम्।

अश्रृणवमपरमप्येकं संस्मरणमहमृषिवर्यैर्यथा-एकदाऽज्ञातवास उत्तराखण्डे भ्रमणं कुर्वन्मम शरीरमशक्तं सञ्जातम् पदमपि गमनेऽसमर्थं समवाप्यात्मानमचिन्तयमशक्त्यपहर्तारं यो मम शारीरिकीं पीडां पादौ सम्पीड्यापहरेत्। शिथिलः सन्निपतित एवासम् तत्क्षण एवानुभूतं यत्कोऽपि पादौ सम्पीडयति परमशक्तत्वान्नावलोकितं, कोऽस्ति शनैः शनैर्यदा शक्तिं समवाप्यावलोकनाय प्रयासं कुर्बन् सहसैवैको विषधरः सत्वरं पलायमानः सन्दृष्टिपथमागच्छता प्रकृतिः स्वाश्रितान् कथं रक्षति इति विचारणीयो विषयः आस्तिकनास्तिकोभयेषामपि ।

निर्धननिकेतनसंस्था संस्थापन एषामित्थं वैयक्तिकी विचारणा यच्छ्रीशङ्कराचार्यमाश्रित्यैका सन्यास परम्परा, अपरा स्वामिशुकदेवानन्दमनुगताऽन्या च श्री श्रीचन्द्रमाश्रित्योदासीनपरम्पराः प्रचलिताः सन्ति तथापि मम तु समाः सर्वाः अत एव गुरूदेवमाश्रित्यैषा निर्धननिकेतनसंस्था तदीय कृपाप्रेरणया तदीय स्मृतौ संस्थापिता अस्ति।

देव्युपासना -- दीव्यति या सा 'देवी' अर्थात् अस्मिन् जगति शक्तित्वेन विद्यात्वेन स्त्रीस्वरूपेण वा या दीव्यति सा 'देवी'

यथा-विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः।
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्।
का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः।।

तस्याः उप-समीपे आसनं-उपवेशनम् पाठकर्तृत्वेन, जपकर्तृत्वेन, ध्यानकर्तृत्वेन, बालत्वेन, आर्तत्वेन, रुग्णत्वेन येन केनाप्यन्यप्रकारेण वा तस्याश्चिन्तनमथवा सेवनं वा अखिलमप्युपासनमेव देव्याः। अत्रर्षिवर्यैः मनोवाक्कर्मभिरुपास्यते देवी। कर्मत्वेन संस्थापनं मन्दिराणां देवी विग्रहाणाञ्च। करणं लक्षचण्ड्यादि यज्ञानाम्। वचसा प्रतिदिनं प्रातः सायं यात्रायाम् वायुयाने रेलयाने पदयात्रायां सर्वत्र निर्विघ्नमेव पाठः क्रियते एभिः।

विद्याविलासः - 'वि' विशेषेण द्योतते या सा विद्या शक्तिरूपेण, मननरूपेण, श्रवणरूपेण कथनरूपेण, संहारकर्तृत्वेन, पालनकर्तृत्वेन, सृष्टिकर्तृत्वेन, ज्ञानकर्तृत्वेन अर्थात् सत्वगुण सम्पन्ना या विशिष्टा शक्तिः त्रिगुणात्मिका वा शक्तिः सैव 'विद्या' पदवाच्या भवितुमर्हति। एतादृश स्वरूपायाः विद्यायाः विलास एव 'विद्याविलासो' भवति। अत्र संस्थायाम् बाल विद्यालय ऋषिमाध्यमिकविद्यालय, ऋषिसंस्कृतमहाविद्यालये च शतशश्छात्राः अध्ययनेऽनुरक्ताः सन्ति। 'ऋषिनाट्यम्' नाम नाट्यसंस्थाया माध्यमेनात्रत्याः छात्रा संस्कृतमाश्रित्य नाटकानामभिमञ्चनंकुर्वन्ति। अध्ययनेतरक्रियाकलापेषु च साफल्यमधिगच्छन्ति। यदा कदा शैक्षणिक गोष्ठ्योऽपि प्रचलन्त्यलङ्कृताश्च भवन्त्यत्र समुपस्थित्या ऋषिवर्याणाम्। न केवलं हरिद्वारेऽपित्वखिलेऽपि भारते संस्कृते जगति किमधिकं विदेशेष्वप्येषां विद्या-विलासो विश्रुतोऽस्ति।

संस्कृति-संरक्षणम्:- भारतीय-संस्कृतिः संस्कृते सन्निहिता। अर्थात् साहित्येऽस्मिन् यादृशं वर्णनमस्त्यधीत्याचरन्ति जनास्तादृशमेव। अत एवात्रत्याश्छात्राः नवरात्रादिषु पर्वसु विशिष्टासु च तिथिषु रामनवम्यादिषु रक्षाबन्धनाद्यवसरेषु विहितेषु क्रियाकलापेषु सम्मिलिताः भवन्ति। संस्कृते परिचायकत्वेनायोज्यमानाः महोत्सवाः ऋषिवर्यस्योदारया समुपस्थित्या आशीः परम्परयैव पूर्णताङ्गच्छन्ति। व्यासपूर्णिमावसरे प्रकटयति जनसम्मर्दे आबालवृद्धजनप्रियतां संस्कृतिसंरक्षकताञ्च। अत्राध्ययनशीलाश्छात्राः ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय प्राप्नुवन्ति सत्सङ्ग भवनम् कुर्वन्ति पाठङ्गीता रामायणादीनां शृण्वन्ति च प्रवचनम् । भारतीयसंस्कृते मूलभूतषोडशसंस्काराणाम्परिचयङ्कारयितुं भारतस्यास्य संभावितनागरिकाणाञ्छात्राणाङ्कृते शिविराणामप्यायोजनङ्क्रियत ऋषिवर्यैः ।

संस्कृत-संवर्धनम्:- सर्वविध-संस्कारयुक्ता वैज्ञानिकैः सङ्गणकाय सर्वोत्तमा भाषा इति ख्यापिता या भाषा सैव संस्कृतभाषा। यस्यां भाषायां भारतस्यास्य 'भा' रतत्वमभिव्यापकं सन् राजते तस्याः संवर्धनाय संस्थापितः संस्कृतविद्यालयः संरक्षिताः विदुषा संगोष्ठ्यः, सञ्चालिताः कविगोष्ठ्य आयोजिताः त्रिभाषा-भाषण-प्रतियोगिताः अन्त्याक्षरी प्रतियोगिताः क्रीडाप्रतियोगिताः अन्याश्च विविधाः प्रतियोगिताः अपि च नाट्याभिमञ्चनमपि संस्कृत माध्यमेनैव भवति सर्वत्रर्षेः स्नेहेनाप्लाविताः जना अधिकारिणश्च सर्वविधसौविध्यं सहाय्यं निर्देशञ्च प्रददति, येन संस्कृत संवर्धनात्मकमुद्देश्यं सर्वथा सरलं सुगमञ्च भवति ।

विद्वज्जन-प्रियता :- विदुषां स्वागतं सम्मानञ्च कर्तुम्प्रतिवर्षं स्वागत प्रक्रियाप्रचालिता अस्त्येभिः प्रक्रियायामस्यां बहवो विद्वान्सोऽभिनन्दिता सन्तोऽमीषामाधमर्ण्यं स्वीकुर्वन्ति परं स्वात्मानमेव गौरवान्वितं स्वीकुर्वन्त्येतेऽभिनन्दितेन विदुषाम्। भारतीयार्षपरम्पराया इमामेव पराकाष्ठां संस्पृष्टवन्त ऋषिवर्याः विदुषोऽवस्था न गण्यत एषां हृदि संस्थितया विद्वज्जनप्रियतया कदापि। यतो हि हृदि संस्थिता वृत्तिर्विद्याविलासमयी।

छात्रानुरागिता :- विराजतेऽनल्पः स्नेह ऋषिवर्याणां हृदि छात्राणाङ्कृते। संस्थापितासु संस्थास्वेभिः शतादप्यधिकाश्छात्रा अध्ययने दत्तावधाना एषाम्प्रवर्धमानां यशः पताकां संधार्यमाणा नैकधासु प्रतियोगितासु संगत्य भागं सम्प्रर्धष्य परानधिकृत्य विजयचिह्नम्मोदमानाः विविधेषु पर्वसु विशिष्टेषु जनेषु अनेकेषु स्थलेषु सम्प्रदर्श्य ज्ञान मधिगम्यमानन्त्ररीनृत्यमानाः संस्कृतं समधित्य संस्कृतिमवबुध्य विदेशं सम्प्राप्य सेनासु पदमधिरुह्य संप्रदर्श्यकौशलं संप्रचार्य संस्कृतिं समवाप्य लक्ष्मीं सम्प्रसार्य दिक्षु विमलां कीर्तिमतिहाय दुःखमाधाय सुखं जीवनं याप्यमानाः संराजन्ते विवुधेष्वभिनन्दनीयस्थलेषु च किमधिकमेषां औरसपुत्रकल्पाः छात्रा एतेषां संरक्षकत्वेऽहमपि छात्रजीवनं यातितवानस्मि।

सम्प्रति जयभारतसाधु संस्कृत महाविद्यालये व्याकरणविभागे प्राध्यापकत्वेनाध्यापनकार्यकुर्वन्नस्मि, कैलाश चन्द्रः शर्मा अमेरिकायाम्! लालकान्त, आस्ट्रेलियादेशे, शिवशङ्करः कनाडा देशे च संस्कृतेः प्रचारं प्रसारञ्च करोति, अनिलः स्वदेशे एव अम्बालानगरे धर्मगुरुः अस्ति, रमेश चन्द्र पोखरियालः "निशङ्कः" पर्वतीय राज्यविकासमंत्री अस्ति, पूर्णचन्द्रपाण्डेयः अन्ताराष्ट्रीयज्योतिष केन्द्रं दिल्लीनगरे सञ्चालयति। अन्येऽपि बहवः छात्राः सम्मानितेषु विविधेषु पदेषु नियुक्ताः सन्ति।

देशाटन रुचि :- देशाटन रुचिरप्यनिर्वचनीया ऋषिवर्याणाम्। भारतीया संस्कृतिः कथं पुष्पिता पल्लविता चस्यादिति कृत्वा देशाटनमेवानुपमेयं मार्गम् अत एव तत्र दत्तावधाना अवलोक्यन्ते। न केवलं देशे एवापितु विदेशेऽपिनैकवारं भ्रमणङ्क्रियते एभिः देव्या उपासना प्रभावेणाप्रतिहत गतिर्भूत्वा अनेकशो दुर्गमस्थलेषु बद्रीनाथ धामादितीर्थस्थलानां पदयात्रा विहिता अस्ति। तत्रेभिः सह गता अनेके भक्तजना अपि यात्रायामतीतानां क्षणानां संस्मरणेनालौकिकमानन्दमनुभवन्ति रोमाञ्चिताः सन्तोऽपरान् अनुभवं श्रावयन्ति भारतीयार्यमर्यादाया यो निर्देशस्तीर्थस्थलानां भ्रमणङ्कर्तुं तत्रदत्तावधाना अपि चार्षपरम्परा संस्थापनाय शास्त्रप्रसिद्धस्थलानां बारं बारं भ्रमणं भक्तैः सह क्रियते यत एषा परम्परा मम शिष्यैरपि संरक्षणीया स्यात् ।

जनेषु सहृदयता :- सौहार्दमृषिवर्यस्यानिर्वचनीयतामावहति। जनो य ऋषौ विश्वसिति मनसा, वचसा, कर्मणा चानुकूल्यं भजते स एसां कृपा प्रसादमाशिषञ्चाधिगम्य क्रियासु दाक्ष्यं साफल्यञ्चाधिगच्छति। न किमपि वैमत्यमेषां हृदि न च पक्षपात एव सर्वेषामात्मा एक एव, जने सामान्य एव निकृष्टाः तवममात्मकाश्च विचारा भवन्ति परं येषां वसुधैव कुटुम्वकमिति भावना हृदि सन्निविष्टा तेन सविशेषाः महापुरुषाः पराम्बायाश्च भक्ताः हीनासु तुच्छविचारधारासु न कदापि तिष्ठन्ति त एवास्मिञ्जगति दृढपरिकराः सन्तो धर्ममनुसरन्ति सर्वैश्च साकमात्मवदेव व्यवहरन्ति। न तेषां यशः काये जरामरणजं भयं भवति । तेषां कृते जगदेवात्मस्वरूपमस्ति । तुलसिदासो यथा -

निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं विरोध। तदवदत्राप्यात्मस्वरूपमेव यदा सर्वेजनाः तेषां कल्याणार्थमेव भूमण्डलेऽस्मिन् गमनं ममास्ति तर्हि कथं कोऽपि विरुद्धो भविष्यति, एवञ्जनेषु सहृदयता सर्वत्र सर्वस्मिन् व्यापकी भूय तिष्ठति । सामाजिक दर्शनेनर्षिवर्यस्य प्रस्फुटतियज्जनानामाचरणं व्यवहारो लोकपक्ष माध्यात्मिकपक्षं किमधिकमखिलमपि जीवनं जनैरनुकरणीयं मननीयं गेयमप्यस्ति । अस्तु !

सामाजिकं हि परं तत्त्वम्, यन्नवं नव विन्दुषु।
प्रसादतो गुरोरत्र, सहजेनैव कीर्तितम्।।इति!

महर्षेरभिनन्दनम्

पं० जगदीश चन्द्रः शास्त्री, प्रधानः
श्रीब्राह्मणसभा, सिरसा

मायावती पुण्य पुरी पुनीता
निकेतनं तत्र तु निर्धनाख्यम्।
संचालकस्तस्य निकेतनस्य,
श्री केशवानन्द महोदयोऽस्ति।।१।।

यो वेरकाँ पत्तन संस्थितानां,
योगीश्वराणां हि सुयोग्य शिष्यः।
श्री केशवानन्द ऋषिर्मनीषी,
भवेच्छतायुः स्वगुरुप्रसादात्।।२।।

वेदादिशास्त्रेषु परं प्रवीणः
संरक्षको धर्मसनातनस्य।
सदा सदेहोऽपि परं विदेहः
न कर्मलिप्तोऽस्ति स कर्मयोगी।।३।।

आस्ये तु कान्तिरधरे सुहासः,
माधुर्यपूर्णो वचसां विलासः।
नेत्रेऽनुरागो हृदये सुहर्षः,
श्लाघ्यं हि सर्वं खलु केशवस्य।।४।।

कायेन वाचा मनसा स्व कृत्यैः,
ऋषिस्त्वमेवाऽसि स्व भूषयाऽपि।
आनन्द युक्तः किलकेशवस्त्वम्
सत्यं यथानाम तथा गुणोऽसि।।५।।

परोपकारे निरतो महात्मा,
यो लोककल्याण कृतिं करोति।
निष्कामभावेन समाजसेवी।
देवत्वमाप्नोऽस्ति सकर्मयोगी।।६।।

विद्यां तथान्नं च तथोपदेशम्।
दीक्षां समीक्षां खलु धर्मवृत्तम्।
दिव्यौषधिं चापि तथाऽऽतुरेभ्यः
किं किं न दत्ते खलु केशवोऽयम्।।७।।

न चाटुकारो न हितं समीक्षे
वदामि सत्यं मनसाऽनुभूतम्।
श्री केशवानन्दगुणानुवादम्
निजात्मतोषाय हि कीर्तयामि।।८।।

✱✱ॐ✱✱

मार्गदर्शकः ऋषिकेशवानन्दमहाराजः

पं० सन्तराम शास्त्री
मोगा (पंजाब)

स्वस्ति श्रीमान् महितमहिमामहनीयः, अप्रतिमप्रतिभाप्रतिमाप्रसरप्रसारितयशाः विसादिवाङ्मयविवरण विधूत विरोधिवचोऽवितसनातनविवेकविधिनिधिः, प्रतिवर्षं विद्वद्वराणां तथा सर्वशास्त्रपारंगतानां महामण्डलेश्वराणां मुक्तकण्ठोऽभिनन्दकः, नीहारकरकिरणनिकरसम्पर्कलब्धावबोधः, अमन्दहृदयानन्दसंफुवदनारविन्दः, हृदयेनोद्वहन पुरातनींऋषिपद्धतीं प्रहृष्टान्तरात्मा, दिनकरकिरणैरिवोरासितमुखाम्बुजः, अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्ट विद्यासंभारभासुरभूसुरनिकरः, अगाधगाम्भीर्यसागर तृणवल्लघुतामुपनायकः यशः सौरभेण दिगन्त सुरभीकारकः संस्कृतविद्या नास्तीदानीमर्थकरीति विरोधिनां प्रवादं समूलमुत्खातकः, विसृत्वरप्रतिभाभाग्यसौभाग्यभाजः, सदाचारपरा महान्तः क्वचित् कदाचिदेवेश्वरेच्छया प्रादुर्भवन्ति सर्वसहृदयहृदयावर्जकः ऋषिरेषप्रत्यक्षमालोक्यते। वर्तमाने ऋषिप्रवर्तितपथप्रचारे कनिष्ठिकागणनीयानां विदुषां करावलम्बनं लब्धुमग्रेसरः यथाभूतदयापराः प्राचीनऋषयो निस्पृहाः स्वार्थत्यागिनश्च ते भूतानुकम्पापरायणाः सन्तः संसारकल्याणायैव स्व जीवितं प्रायुञ्जत, तथैवेषो ब्रह्मर्षिः परमहंसरूपेण ऋषिकल्पमर्यादां संरक्षितुं विद्योततेऽर्कवत् विदेशेऽपि गत्वा भारतीयपरम्परां मर्यादामनुसरन् तदर्थमेवोपदिशति। वैदेशिका अपि अस्य प्रभावानुगता अभवन्। ऋषिमुनीनामाध्यात्मिकधराभारते अनेकानेकसन्मार्गदर्शकाः प्रकाशपुञ्जाः समये समये प्रादुर्भवन्ति तेष्वेवायं महाभागो ब्रह्मर्षिः श्री केशवानन्दः यस्य श्यामले पञ्चाबुप्रान्ते-चन्द्रवसुग्रहैकाब्दे (१९८०) शुक्लपक्षे श्रावणे तृतीयायां बुधवासरे निजजननीजनकसुखखनिं जनिं लेभे। अद्यत्वेऽयं ब्रह्मर्षिस्तेष्वेव पथ प्रदर्शकेष्वेको वर्तते । जन्मनानन्तरमेवैनं श्री १००८ प्रातः स्मरणीय बाल ब्रह्मचारि योगिराज श्री वंशीधराणां चरणयोरर्पितः पितृभ्यां तैरेवपालितः पोषितः पाठितश्च, अयं पवित्रचरित्रचणः प्रशंसनीयगुणः शास्त्री तथा एम.ए. सम्यक्तयोत्तीर्णो भूत्वा स्व गुरोः पदपदवीमनुसरन्, भगवत्याः कृपापात्रमभवत् तस्याः कृपया सर्वाणिकार्याणि करोति सा एव पूर्ततां नयति। तस्याः प्रेरणयाऽसौ शतशस्तथा सहस्रशः शतचण्डी त्रिवारञ्च लक्षचण्डी यज्ञमकरोत्। भगवती स्वयं यथादिशति तथाऽचरति। प्राचीनकाले वाल्मीकिवसिष्ठअगस्तादयः ऋषयो बनान्ते स्वाश्रमान् चक्रुः तत्रैव सुरभारतीमपाठयन्। लवकुशौ वाल्मीकाश्रमे संस्कृतशिक्षामधीतवन्तौ एवं गुरोः विश्वामित्राश्रमे रामलक्ष्मणौ शस्त्रशास्त्रविद्यामपठताम्। तथैवानेन ब्रह्मर्षिणा विद्यार्थिनां पठनाय स्वाश्रमे ऋषिसंस्कृतविद्यालयः स्थापितः तद्यथा -

उद्घाटितोऽनेन महाशयेन, विद्यालयः संस्कृतनामधेयः।
विभाति खल्वाश्रममध्यभागे, गुरोरिवादेशगृहं दिवोंशे।।१।।

द्विजोत्तमानां शिशवोह्यमुष्मिन्, पठन्ति वै वेदमतानुयाताः।
वसन्ति तत्रैव च भुञ्जतेऽन्नं, धरन्ति वासांसि च पुस्तकानि।।२।।

यात्रिणां निवासाय भवनानि, रोगाणामपनयनाय औषधालयः पुस्तकानां पठनाय पुस्तकालयः अपि

निर्मितः चायपानकं भोजनं सर्वेभ्य स्तेषामिच्छानुकूलं दीयते। राज्याधिकारिणोऽप्यत्र स्वेच्छया तिष्ठन्ति। सर्वेभ्यः समानव्यवहारो भवति। स्वोपार्जितकर्मफलातङ्कानल देयमानमानसान् मानुषान् उद्दिधीर्षुरेष ब्रह्मर्षिः पुरातनीं ऋषिकल्पां मर्यादां गोपयन्नेव परम पावनी भगवती भागीरथ्यास्तटे निर्धननिकेतन नामाश्रमो निर्मितवान् प्रत्येकं पर्वणि सहस्रशो मानवा अत्रागत्य तिष्ठन्ति तेषां सेवा शुश्रूषा सम्यक्तया भवति किं बहुना अस्यमहर्षेः कतिपय गुणान् संक्षेपेण वर्णयामि---

शौचं क्षान्तिः शमो ब्रह्मचर्यं भक्तिर्गुरौ परा।
सत्यं दयाऽऽर्जवं लोक सेवा भावश्च धीरता।।१।।

आस्तिक्यं धर्मनिष्ठा च प्रमिता सूनृता च गीः।
गुणिनामादरः शास्त्रतत्वाभ्यास उदारता।।२।।

उत्साहश्चेत्यमी सर्वे सन्ति गुणा ऋषौ खलु।
आदर्शं जीवनं चोक्तं संक्षेपात् हि यथामतिः।।३।।

लब्ध्वा विप्रकुले जनिं सुविदिते पुण्यैरगण्यैरिह
विद्या बुद्धि बलेन चात्र विदुषामग्रेगतः सर्वदा।
जातोऽयं कुलभूषणः सुचरितः श्री केशवानन्दकः
तस्याहमृषिभावतामुपगतां वृत्तिं कथं वर्णये।।४।।

शास्त्रज्ञानविदांवरः ऋषिवरो देव्याः समाराधकः
पीत्वा शास्त्ररसायनं कु-वलये वाणी सुधा स्यन्दिनी।
नीरक्षीरविवेकिनीमतिरियं जाता प्रशान्तोत्तमा
विद्वत्स्वप्रतिमो विचारकुशल स्त्वत्तः परोनापरः ।।६।।

पञ्जाबे जनिमाप्य सर्वसुखदे द्वारे हरेः संस्थितः
प्राचीने ऋषिकल्प मार्ग गमितः ख्यातः परंभारते।
नित्यानन्द युतः सदा ऋषिवरो विद्यावदान्तः शुचिः
सोऽयं ब्रह्मविचार मग्नमनसो जीयाच्चिरं भारते।।७।।

श्रावं श्रावं पय इव यशो निर्मलं तावकीनं
विस्मेराक्षाः प्रणय भरिताः प्रेक्ष्य तुभ्यं महान्तः।
ऊचुश्चेत्थं नयन-युगलं जातमद्यैव सार्थं
प्रेमप्रह्वा मुदित-बदना जात हर्षास्तथान्ये।।८।।

दृष्टा मयाऽनेकगुणा भवत्सु
विद्या-दया-धैर्य-वदान्यता च।
सौजन्यशीलं मधुभाषणं वा
संवर्णये तेषु ऋषे ? कमत्र।।९।।

आयुस्ते शरदां शतं प्रभवतु स्वास्थ्यं तथानामयं
याचेऽहं जगदम्बिकां भगवतीं बद्धाञ्जलिं प्रेमतः।
मातस्ते पदपद्मसेवनरतो ब्रह्मर्षिरेषस्थितः
त्वं तावत् सुतमात्मकं ऋषिममुं यज्ञात्मकं पालय।।१०।।

ऋषे ? कथं वा वद ते वदान्यतां
ब्रवीतु वाङ् मेऽतिकृपामहीयसीम्।
मन्ये जनानामुपकार हेतवे
धाता भवन्तं विदधे सुनिश्चितम्।।११।।

सर्वत्र सर्वैरभिनन्द्यमानः
श्री केशवानन्दमहानुभावः।
यशो वितन्वश्च वसुन्धरायां
ज्योत्स्ना प्रसारीन्दुरिवाति रेजे।।१२।।

संसेव्यमानश्चरणौ गुरूणां
धर्म्याणि कर्माणि चकार नाना।
लोक प्रकृतिं परिलक्ष्य भव्याः
शर्मोत्तरं कर्म न संत्यजन्ति।।१३।।

यथावकाशं प्रतिवर्षमेष
हर्षेण साकं शुभतीर्थयात्राम्।।
कर्तुं प्रवृत्तो महतां वरेण्यः
श्रेयः प्रवृत्यै ऋषिरेष जातः।।१४।।

देशे विदेशे प्रथित प्रभावः
दुर्गाभवान्या करुणैकपात्रः।
तपोनिधिः संचित पुण्यकर्मा
यशः प्रकर्षेण विराजतेऽसौ।।१५।।

धन्यः स एव पुरुषः
यस्य वित्तं तथा मनः।
शरीरं चोपकृतये
परेषां विनियुज्यते।।१६।।

निष्काम कर्मैव हि सत्त्व शुद्धे
र्निदानमाहु स्तत आत्मबोधः।
सकामता कर्मसु दुःख राशे
र्बीजं तु संसार परम्परायाः।।१७।।

धैर्यौदार्य दयाक्षमा गुण गणस्यैकं निवासाश्रयं
ब्रह्मर्षि प्रथितञ्च केशवममुं विद्याप्रवाहोद्वहम्।
त्रातारं सुरभारतीमनुदिनं शिक्षाप्रसारोद्यतं
वन्द्र्यं तं ऋषिमेन पूतमनघं हे नाथ? नाथामहे।।१८।।

चारित्रौदार्य साम्यं ऋषिकुलतिलके भ्राजमानं नितान्तं
सौशील्यं सन्मतित्वं सकलगुणयुता साधुता शान्तियुक्ता।
पाण्डित्यं कायवागूहृद्गतमथ सकलान् सद्गुणानेतदादीन्
आस्तेऽतीत्यास्य चित्ते प्रकृति परिणतं दीनवात्सल्य मुच्चैः।।१६।।

संसारे किल ते भवन्ति विरला ये नाम धन्या नराः
हित्वा कीर्तिमरीचिकां प्रमुदिता ध्यायन्ति विद्योदयम्।
तेष्वादेशमनुब्रजन् नियमतः प्राचां ऋषीणां सदा,
अद्याप्येष ऋषि र्गुणैरनुपमैः प्राप्तः प्रतिष्ठां पराम्।।२०।।

अद्य स्वीयमुदारभावमतुलं यत्प्रौढ़भावोदयात्
सत्यंचार्षिरयं सदा सदुदयं संभावयन् भावितः।
आबद्धाञ्जलिभक्तिभावमधुरं पीयूषवर्षाकिरं
तामुद्दामदयादृशं भगवतो वन्दामहे सादरम्।।२१।।

पुरातनीं तां ऋषिपद्धतीं च
संवाहनैषो ऋषिरद्यलोके।
अनन्त कृत्यैः परिलक्ष्यमाणो
विराजते वै ऋषि चक्रवर्ती।।२२।।

श्रेयोदानपत्रम्

लक्षचण्डी मण्डलस्था विद्वन्मण्डली

धन्या प्रसूस्ते जनकश्च धन्यो
धन्याधरा साद्य जनिस्त्वदिया।
धन्यङ्कुलं चाद्य वयं च धन्याः
धन्यो भवान् वै ऋषिवर्य धन्यः।।१।।

अस्मिन् महाघोर कलौयुगे वै।
चण्डीप्रयोगो भवता कृतो यः
अदृष्टपूर्वं समवेक्ष्य लोकाः
नूनं समे विस्मय माप्नुवन्ति।।२।।

वस्वग्निगव्योमाक्षि मितेसु संख्यके
संवात्सरे भाव सुभाव नाम्नि।
राकातिथाबाश्विन नाम मासे
श्री लक्षचण्डी विधिवत् सुपूर्णा।।३।।

द्वारे हरेः निर्धनसद्म संज्ञे।
वराश्रमेऽस्मिन् शतवासरात्मकः,
लक्षप्रयोगः समवाप सिद्धिम्
शतद्वयेन व्रतिनां द्विजानाम्।।४।।

अद्यैव विज्ञातमलौकिकत्वम्
नूनं भवान्या वरदात्मजस्त्वम्।
स्वनामधन्यस्य जितेन्द्रियस्य
ऋषीश ! ते मङ्गलमस्तु नित्यम्।।५।।

श्री दीनाथशर्माणः कर्मकाण्डविदाम्बराः
प्रशान्तमूर्तयो धीरा आचार्य पद भूषिताः।।६।।

यज्ञेऽस्मिन् सुवृताश्चा ये पण्डिता विजितेन्द्रियाः
कीर्तयन्ते चिरायुष्यं भवतस्तत्वदर्शिनः।।७।।
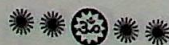
ऋष्यभिनन्दनम्

सन्ततमस्मिन् लोके त एव ध्यातव्याः प्रणम्या, वन्द्या, ब्रह्मर्षिवर्याः श्री श्री १०८ श्री ऋषिकेशवानन्दपादा, येषाङ्किल, मनोज्ञामूर्तिः, दिग्गामिनीकीर्तिः, प्राणिमात्रेप्रीतिः, निष्कपटानीतिः, सुधाधवलकान्तिः, सदामनसिशान्ति, शास्त्रेष्वभ्रान्तिः, सरलाव्यवहृतिः, कुटिलायष्टिः, दलितेऽर्तिः, चित्ते च जागृतिः, ये हि प्रसीदन्ति स्वजने, जिगीषन्ति षड्वर्गं विषीदन्ति दीने, निषीदन्ति पौरुषे, चिकीर्षन्तिपरहितं, जिहीर्षन्ति गुणिगुणगणम्। येषाञ्च सात्विकोऽभ्यवहारो, राजसोव्यवहारस्तामसः परिहारो हरन्त्यनुरागिचित्तमिति वित्तम्। यदीयं सस्मितं भाषणं, सविनयं दानं, परमितं पानमपरिमितं वितानम्, श्वेतं यानं परिधानञ्च, हरितमुपवनं धनञ्च, पीतमुत्तरीयं क्षीरञ्च, रक्तं ध्वजवस्त्रं प्राणिजातञ्च चित्रमासनङ्कर्म च कृष्णमग्निशरणं शत्रुमुखञ्च नीलं शिवपूजाकमलंदेवीबलिकर्मकृपाणञ्चालोक्य सहसा मुह्यन्त्यहो ! जनाः। येषां हि सदक्षिणः स्वभावो यज्ञश्च कुशाग्रा शेमुषी पितृक्रिया च शालते सचेतसां चेतःसु। ये खलु जुगप्सन्ते पापेभ्यो निलीयन्तेऽकार्येभ्यः कुप्यन्ति कदर्येभ्य ईर्ष्यन्ति दुर्गुणेभ्यः स्पृहयन्ति सद्गुणेभ्यः, वितन्वन्ति दानशौण्डीर्यं तन्वन्ति यशः। तेषामेव पाश्चात्यपौरस्त्यविद्याविदां सकलगुणरत्नैकोदधीनां विद्याप्रचारप्रसारैकप्रयत्नवतां दर्शनेनैव भक्तलोककोकतापविमोकदिवाकराणां बहुशः शतचण्डी-सहस्रचण्डी-लक्षचण्डीयागविधानप्रसादितमखभुजामत्र भवतां ब्रह्मचारिणामपि कविताकामिनीकान्तानां निर्धनानामपि श्रीमतां देवीप्रियाणामपि केशवानन्दानामभिनन्दने प्रस्तूयन्त इमे पद्यप्रसूनाञ्जलयः –

केशवानन्द ! स्वामिन् ! शुभे ते करे, पुण्डरीकेऽञ्जलिं वाक्प्रसूनैर्युतम्।
सज्जनानां गुरो ! मञ्जुले मञ्जुलं, सादरं नम्रभावैरिमं प्रस्तुमः।।१।।

साधकं चण्डिकापूजनं शुभ्रभं, साधुसेवारतं धर्ममार्गे स्थितम्।
संस्कृता भारतीं वर्धयन्तं गुरुं केशवर्षिं सदा नौमि नित्यं मुदा।।२।।

'निर्धन' नामधेयं कृतं किन्तु वः सम्पदो वीक्ष्य यक्षाधिपो लज्जितः।
सन्निधिः पद्ममुख्यो यतस्तस्य वै सत्सु विद्वत्सु वः सन्निधिः सन्निधिः।।३।।

वन्द्यपादा तपोविग्रहा कापि या सूतपुत्रं भवन्तं यशोदं प्रियम्।
मर्त्यलोके स्थितः स्वर्गतायास्तु यः कीर्तितन्वा चिरं मातुरेवाङ्कगः।।४।।

पर्यटन् मेदिनीं पादचारी भवान् वैष्णवं पीठमासाद्य भूयो गतः।
ज्योतिषः पीठकं गाङ्गसूपर्वतं नाभिधा त्वर्थतो वै परिव्राजकः।।५।।

लोकलोका विशोकाः क्रियन्तेऽनिशम् दर्शनेनैव किं वाग्वितानैः कृतैः।
लक्षचण्ड्यादिभिः सत्क्रियाभिस्तथा देवलोकाः सुतृप्ताः प्रसीदन्ति वः।।६।।

कालिकाराधकं भोगदं मोक्षदं निर्धनं भूतमित्रं युतं भोगिभिः।
जाह्नवीवासभूमिं जटालं गुरुं केशवं शङ्करं प्राञ्जलिर्नौम्यहम्।।७।।

सर्वदा सर्वदं शर्मदं शर्वकं चण्डिकावल्लभं चन्द्रचूडामणिम्।
कालिकाकामलीलाविधौ पण्डितं पूजयन् भाति भासा नुदन् हृत्तमः।।८।।

वंशीधरस्य तपसां विगृहीतमूर्ते ! विद्यालयस्य यशसाञ्च हिरण्यगर्भ।
विद्याप्रचार गुरुकार्यविधानदक्ष हे दिव्यरूप ! तवपादयुगं नमामः।।९।।

ऋषिसंस्कृतमहाविद्यालयस्य
आचार्याश्छात्राश्च

सादरमभिनन्दनम्

सदा मन्दाकिन्याः सततमुखराया ज़लकणैः
समासिक्ते धाम्नि ध्वनितहरिनामैकनिनंदे।
हरिद्वारे पुण्ये प्रकृतिरमणीये यतिवरं
वसन्तं वैराग्याद्वयमिह नमामो बहुतरम्॥

हे सौम्याकार ! गौर ! क्षयितकलिमल ! श्वेतवस्त्रादियुक्त!
पुण्यात्मन् ! पुण्यश्लोक ! प्रथितबहुयशः ! सन्ततं हर्षवक्त्र!
क्षेत्रात् क्षेत्रं स्वपद्भ्यामटत इह पुनः श्रद्धयोपस्थितस्य,
श्री क्षेत्रे व्याहरामो मधुरसुरगिरा हार्दिकं स्वागतं ते।
यो वृद्धोऽपि युवा सदाऽध्ययनतः संस्थास्वपि स्वत्ववान्
यो धर्मं च सनातनं प्रतनुते सन्त्यज्य जातिप्रथाम् ।
यो नित्यं बहुविप्रभोजनरतो भूत्वाप्युदारो महान्,
सोऽयं सातिशयं जयेदृषिरिति प्रख्यातनामा मुनिः ॥

शास्त्राणि वेत्ति सकलानि च सर्ववेदान्,
भाषाश्च वेत्ति सकलाः सह संस्कृतेन।
विद्यालयान् बहुविधान् तनुते प्रकामं,
वेदादिशास्त्र - कुल - संस्कृतिरक्षणार्थम्।
स्वयं विधाय सकलं कुरुते न गर्वं,
दान्तश्च शान्तहृदयो मधुवाक् सुशीलः।
यो नित्यनिर्धननिकेतन एव तिष्ठन्
सर्वान् करोति धनिनो नितरां स धन्यः

श्री सदाशिव केन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठ

परिवारवर्गाः जगन्नाथपुरी, उड़ीसा
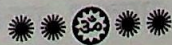
अभिनन्दन-पत्रम्

श्रद्धासमाराधितगुरुप्रभावप्रशमितत्रिविधतापानलानाम् इष्टदेवतार्चनेष्टिसमुल्लसितमानसानाम्, प्रतिक्षणं वेदवेदाङ्गाभिरक्षणक्षमाणाम्, आर्षपरम्परापरिवर्धनार्पितजीवितानां, विश्वशान्त्येकभावनयाऽनुभावितानेकविधानुपमेयानुष्ठानानां, स्वतपस्वितासुरसरित्स्रोतसा प्रक्षालिताखिलकिल्बिषाणामूअधुनातनमनीषिमुनिमनुजवृन्दवन्दितपादारविन्दानां, सांस्कृतिकोपक्रमचातकजीमूतायमानानां, निदाघकाले प्रचण्डरश्मिरश्मिभिरभितप्तायामपि भुवि श्रीकेदारनाथस्यासुकरमप्यसूनामुल्लासकरं पदयात्रानुष्ठानं सम्पाद्यावभृथाय जाह्नवीतीरमुपाश्रितानां, निखिलविद्यानिकेतनस्य निर्धननिकेतनपरमाध्यक्षाणाम्, ऋचामुद्गातृणां, स्वनामधन्यानाम्, अनन्तश्रीविभूषितानाम्, ऋषिकेशवानन्दमहाभागानां पाणिपल्लवयोः श्रद्धयोपह्रियमाणम् अभिनन्दन-पत्रम्।

हे अक्लान्तपदातिप्रवर !

श्रीमता मईमासस्यैकोनविंशतितमे पुण्ये दिवसे सायंतने सवनकर्मणि प्रवृत्तिं निधाय, निजेष्टदेवतामभ्यर्च्य, भवभयहारिणीं पापनाशकारिणीं गङ्गां मातरं सम्पूज्य च प्रस्थानकालोचितं स्वस्तिकरं शङ्करं मन्त्रोच्चयमुच्चैरुच्चार्य, पवित्राचारैर्निजानुगामिभिर्भक्तैर्जनैः सह भगवन्तं श्रीकेदारनाथमुद्दिश्य निजाश्रमपदात् पदयात्रा समारब्धा। यात्रायां भवताम् उच्चावचपर्वतवनभुवि शयनं, शुष्कतृणाङ्कुरेषु चासनबन्धं, मार्गस्थपादपच्छायासु विश्रामं, निर्झरजलानां पानं, कन्दमूलानामशनञ्चालोक्य, बसमोटरकारयानसाधनानां यात्रिणां मनःसु महता विस्मयेन पदमकारि। तथापि यात्राकष्टमविगरणयतां भवतामदम्यसाहसवतां यात्रा सरलतया पूर्णताङ्गता।

इतः पूर्वमपि तत्र भवद्भिः पदातिभिरेव वैष्णवीदेव्या गङ्गोत्री-यमुनोत्री-बदरीनाथधाम्नां च विविधसंकटसंकुला यात्रा अपि स्वभक्तैः छात्रैरध्यापकैश्च साकं सानन्दं साफल्यमुपनीताः। श्री वैष्णवीदेव्या मन्दिरात् समानीतं दिव्यज्योतिरद्यापि पवित्राश्रमपदं स्वप्रभया सततं समुज्ज्वलीकरोति।

तत्र देवालयमुपेत्य अवाङ्मनोगोचरं श्रीकेदारनाथसन्निधिसुखं समधिगम्य आप्तकामास्तत्र भवन्तो भवन्तस्ततः प्रतिनिवृत्ताः पवित्रं निजाश्रमपदमुपागता महतां विदुषां, तपोनिधीनां, मनस्विनां, भक्तानाञ्चाभिवन्दनार्हाः

हे यज्ञानुष्ठानपरायण !

श्रीमता निजाश्रमपदे प्रतिवर्षं नवरात्रावसरे वारद्वयं सहस्रचण्डीयज्ञानुष्ठानेन हविर्दानेन च देवताः समर्च्यन्ते। विविधोपद्रवशान्त्यर्थं लक्षचण्डीयज्ञानुष्ठानमपि वारद्वयं श्रीमद्भिः संजीवितम्।

हे प्रियदर्शन !

भवतां सदयं हृदयं, प्रसादसदनं वदनम् अमृतमयं वचनं, सरलं गमनं, श्वेतांशुरश्मिपुञ्जमिव जटाकलापं, कलधौतपट्टिकायमानमिवायतं ललाटं प्राणिमात्रानुरागरमणीयं नयनयुगलं दर्शं दर्शं, प्रभूतं प्रभावमनुभावमनुभावमनुभावं,

पवित्रमन्तर्भावञ्च वेदं वेदं कस्य पुण्यभाज उत्तमाङ्गं श्रीमतां पापमुपोश्चरणयोर्न नमन्निति।

हे तपःपूत !

जगति भवतां द्वे निःश्रेयसकरे प्रथिते स्तः। प्रथमं तपोबलं विद्याबलञ्चापरम्,। भवता तपसा हन्यते किल्विषं विद्यया पीयते चामृतम्। विद्यावता सुकृतिना भवता महीयान् संस्कृति-प्रचारः कृतः, यज्ञकर्मणि जना दीक्षिता धर्माचरणाय प्रेरिताश्च। धर्मप्रधाने भवतां जीवने विद्यानां वृद्धिः, सत्यस्योन्नतिः, नैतिकमूल्यानां संसृतिः, सकलसच्छास्त्राणां पठितिः, सतां सत्कृतिः, पापेऽरतिः, गुणग्रहणे सुमतिः, दोषदिशि विमतिश्च दृश्यते दिने दिने। एवं विधं गुणगणालङ्कृतं भवन्तं पुण्यबहुले सुदिवसे श्रद्धयाभिवन्द्याभिनन्द्य च वयममन्दमानन्दमनुभवामः। भूयो भूयो भवतामायुषो दीर्घतां यशस्वितां च कामयामहे।

एते स्मो वयं -

गुरुकुल-कांगड़ी-विश्वविद्यालयवास्तव्याः

दिनांकः १६ जून १९९१, हरिद्वारम्

✱✱ॐ✱✱

अभिनन्दन-पत्रम्

प्रततशिवसङ्कल्पानां पदवाक्यप्रमाणपारावारीणानां श्रौत्राईन्तीचर्णैर्गुण्यैर्महद्भिर्विद्वद्भिरहर्निशं तोष्टूयमानानाम्, भक्तिज्ञानविरतिशुचितासाधुताकरुणादयादिमहनीयगुणगणालङ्कृतानाम्, अनेकानेकविद्यालय महाविद्यालयौषधालयगोशालमल्लशालान्नक्षेत्रनिर्मापकाणाम्, श्रौतस्मार्तादिविविधयज्ञानुष्ठापकानाम्, वारत्रयं लक्षचण्डीयज्ञानुष्ठानदिगन्तविश्रान्तकीर्तीनाम् जलधरसमयानामिव प्रशमितरजः प्रसराणाम् , वरुणानामिव कृतोदवासानाम् असंयतानामपि मोक्षार्थिनाम्, सामप्रयोगपराणामपि सततावलम्बितदण्डानाम्, कालेऽधुनातिलधिमानमुपेयुषीयं निलिम्पवाणी पितरं सुतेव यान् प्राप्याद्य निजपदप्रलिप्सया संमोदते तेषाममीषां सद्वंशमुक्तामणीनाम्, अन्यत्रासुलभसर्वशुभगुण श्रीमतां श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठानाम्, अनन्तश्रीविभूषितानाम्, श्रीनिर्धननिकेतानाश्रमपरमाध्यक्षाणाम् परमपूज्य ऋषिकेशवानन्द महाभागानाम् रमणीयहीरकजयन्तीवर्षेऽस्मिन् अमृतमहोत्सवे समुपह्रियमाणम् - अभिनन्दन पत्रम्

शान्तोदान्तस्तपस्वी श्रुतिशिरसिरतो दिव्यदृष्टिर्महात्मा,
सभ्यो भव्यो मुनीन्द्रः श्रवणमननधीः धन्यधन्यो वदान्यः।
योऽसौवाचां विलासैः श्रवणमधुरसैः सर्वचिन्तापहारी,
सोऽयं सिद्धोनवार्णं स्वमनुमनुजपन्केशवः कै र्न सेव्यः।।१।।

विद्वन्मनोऽलिपरिपूजितपादपद्मः विद्यादयाविपुलभूतिगुणैकराशिः।
श्रीमानहोभिरभिवर्जितसर्वक्लेशः सोऽयंसदा विजयतामृषिकेशवोऽलम्।।२।।

येषां श्रीमद्गुरूणां चरणकमलयोः श्रीलवन्शीधराणाम्,
दृष्टा निष्ठा वलिष्ठा तदनुबहुविधाः शक्तयो भान्ति भव्याः।
तासामासां प्रभावात् अतुलितविभवां भान्तिसंस्थाः समस्ताः
तेषां श्रीकेशवानां गुणगणगणने मानसं कस्य न स्यात्।।३।।

सुविदितमिशनस्य स्थापकोलोकगीतः, हितवचनसुधायाः प्रेरणः सिन्धुबन्धुः।
रविरिव हि दिशानां ध्वान्तहारीसुतेजाः भवतु हि शतजीवी जीवलोकस्यमान्यः।।४।।

वेदान्तार्थविचारचारुधिषणः शब्दार्थविच्छाब्दिकः
काणादीनिपुणः पुनीतचरितः श्री जैमनीये रतः
सोऽयं सर्वगुणैर्वृतो विजयते श्रीमान् सुधीपूजीतः
शास्त्रार्थे किमु भाषणेऽपि महतीं ख्यातिं दधानो मुनिः।।५।।

महाविद्यालयस्य त्रयस्त्रिंशत्तमो वार्षिकोत्सवः
दिनांक : २०-१२-९८

भावत्काः-*प्राचार्याऽध्यापकाश्च*
ऋषिसंस्कृतमहाविद्यालयस्य हरिद्वारस्थस्य

हिन्दी लेखमाला

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	लेख का शीर्षक	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
१.	हार्दिक अभिनन्दन	पीताम्बरदत्त शर्मा, प्रशासनिक अधिकारी (सेवानिवृत्त) हरिद्वार	१
२.	प्राचीन भारतीय चिन्तन में ऋषि की अवधारणा	पद्मश्री विभूषित आ.वि.वेंकटाचलम्, भारतीय दार्शनिक अनुसन्धान परिषद् (शि.वि.) मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार	३
३.	ऋषि केशवानन्द महाराज लोकोपकारी अनुभाव की एक आभा	डॉ० अमरनाथ पाण्डेय, पूर्व-संस्कृत विभागाध्यक्ष, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।	९
४.	महान गुरु के महान शिष्य	डा० रिपुदमन विज, पूर्व दन्त-चिकित्सक,वाराणसी	१९
५.	पंगु चढ़इ गिरिवर गहन	हंसराज धींगड़ा, हैड-पोस्टमास्टर, (रिटायर्ड), पंजाब।	२१
६.	साधन और साध्य	प्रो० राम माटा, पी०ई०एस०(रिटायर्ड), पंजाब	२३
७.	भारत के प्राचीन ऋषियों की शिक्षा-परम्परा और ऋषि केशवानन्द	डा० कृष्ण कुमार, पूर्व-संस्कृत विभागाध्यक्ष गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उ०प्र०)	२५
८.	निर्धन निकेतन मन्दिर फिरोजपुर का निर्माण	रामप्रकाश नरूला, सचिव, बा०ब्र०मि०, निर्धन निकेतन, हरिद्वार	३३
९.	ऋषि, सृष्टि की मूल्यवान कड़ी है	डॉ० गिरीशचन्द्र त्रिपाठी, सम्पादक- "दूधाधारी-वचनामृत" पत्रिका, हरिद्वार।	३७
१०.	असंचय वृत्ति के पक्षधर ऋषि जी महाराज	शिवचरणदास मित्तल, कोषाध्यक्ष, बा०ब्र०मि०, निर्धन निकेतन, हरिद्वार।	४३
११.	उन्नीसवीं शताब्दी के महापुरुष	वैद्य मुक्तिनारायण झा, 'नाड़ी विशेषज्ञ' तिरुपति निदानकेन्द्र, भोपतवाला।	४५

१२.	महान विभूति ऋषि केशवानन्द जी	डा० जयदेव वेदालंकार, प्राच्यविद्यासंकायाध्यक्ष, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।	४७
१३.	वैदिक ऋषि परम्परा	डा० महावीर, प्रोफैसर एवं निदेशक श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।	५०
१४.	भारत का लोकमंगलकारी ऋषिजीवन	सोमप्रकाश शाण्डिल्य गाँधी मार्ग, कनखल, हरिद्वार	५५
१५.	पैदल तीर्थ यात्रा	डॉ. सतीश कुमारी, प्राचार्या, ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार।	६०
१६.	विश्ववन्द्य भारतीय संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ	कृष्णगोपाल चान्दना, सहा० प्राध्यापक (अंग्रेजी) ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार।	६१
१७.	ऋषि	डॉ० मनुदेव बन्धु, वेदविभागाध्यक्ष, गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार	७१
१८.	सन्त हृदय नवनीत समाना	शिवशंकर प्रसाद द्विवेदी, आध्यात्मिक प्रवक्ता, हिन्दू कल्चरल सोसाइटी, एडमण्टन (कनाडा)।	७६
१९.	क्रान्तदर्शी ऋषि	प्रो० कैलासपति त्रिपाठी, पूर्व-साहित्यविभागाध्यक्ष, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी	७८
२०.	निर्धन निकेतन की संस्थाओं का विवरण	सत्या सचदेव, प्रबन्धिका शिक्षा संस्थान, निर्धन निकेतन,हरिद्वार	८३
२१.	भावना के रिश्ते	सरदार गुरदीप सिंह, प्रोफैसर माता गुजरी कालेज, सरहंद (पंजाब)	८८
२२.	गरिमामयी गरिमा	नीलम बन्सल, धूरी, पंजाब	९०
२३.	श्रद्धेय श्री१०८ बंशीधर जी महाराज "विरकांवालें"	इन्द्रपाल विज दन्त-चिकित्सक, वाराणसी	९३
२४.	मेरी तन्दराओं में	प्रेमसागर बंसल, धूरी (पंजाब)	९६

२५. पूज्य गुरुदेव के सानिध्य में — उषा मेहता, न्यूयार्क, (अमेरिका) — ९८

२६. गुरुदेव का विदेश आगमन — अमिता दत्ता, न्यूयार्क, (अमेरिका) — १०१

२७. निर्धन निकेतन के अविस्मरणीय व्यक्तित्व, — देवां, सदस्या, बाल ब्रह्मचारी मिशन, निर्धन निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार। — १०३

२८. यात्रा संस्मरण — डिल्लीराज शर्मा, सहा०प्राध्यापक (साहित्य) ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार — १०८

२९. सबहिं मानप्रद आपु अमानी — सुनीता गुलाटी, शिक्षिका, (आधु.) ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार — १११

३०. नारी के प्रति उदात्त भावना — डा० सुमन अग्रवाल, प्रधानाचार्य, ऋषि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, हरिद्वार — ११६

३१. सस्ते में सुच्चा सौदा — डॉ. मोद नारायण झा, अभिभावक, ऋषि बाल विद्यालय, हरिद्वार — ११९

३२. परमपूज्य ऋषि केशवानन्द जी महाराज — स्वामी ज्ञानानन्द, श्री राम निकेतन, भूपतवाला, हरिद्वार। — १२१

३३. अभिनन्दन — डा० बीना बजाज, प्रधान अध्यापिका ऋषिबाल विद्यालय एवं ऋषि लोट्स एकाडमी निर्धन निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार — १२३

३४. अहेतुकी कृपा — तृप्ता बजाज, लिपिका, ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार — १२६

३५. सन्तदर्शन — चन्द्ररेखा शर्मा, अध्यापिका ऋषिबाल विद्यालय, निर्धन निकेतन, हरिद्वार — १२७

३६. गुरुकृपा — मुरलीधर अग्रवाल, हैदराबाद। — १२८

३७. ऋषि कालेज के प्रिंसिपल — राम प्रकाश नरूला, फरीदाबाद — १३१

३८. देखो जी सतगुरु दीयाँ "गल्लाँ" न्यारियाँ — उषा मेहता, न्यूयार्क, (अमेरिका) — १३३

३९. गुरुदेव तुझ से अरज है (भजन) — शामा देवी, एडमण्टन (कनाडा) — १३४

४०.	सद्गुरु महिमा	विजय अग्रवाल, एडमण्टन (कनाडा)	१३५
४१.	मेरा अपना अनुभव	सतस्वरूप बजाज,एग्जेक्टिव आफिसर (रिटार्यर्ड, पी.डब्लू.डी), फरीदाबाद, हरियाणा	१३७
४२.	हिमालयी फूल और हेमकुंड लोकपाल	दिगम्बरदत्त थपलियाल, सेवानिवृत्त ए.डी.एम., सिविल सेवा, उ०प्र०	१३९
४३.	सन्त मिलन सम सुख जग नाहीं	रमेश अग्रवाल, एडमन्टन (कनाडा)	१५२
४४.	अपर्णा	परमेश्वरी थपलियाल, सहारनपुर (यू०पी०)	१५३
४५.	गुरुतत्त्व	डा०अम्बिकेश्वर शर्मा, एडमण्टन (कनाडा)	१५५
४६.	कुछ अनमोल क्षण	लक्ष्मन दास मित्तल, दिल्ली	१५७
४७.	मैत्री के प्रतीक ऋषि केशवानन्द जी	रमेश चन्द्र, पूर्व-अंग्रेजीविभागाध्यक्ष डी.ए.वी. कालिज, चंडीगढ़	१५८
४८.	गंगोत्री यमुनोत्री पदयात्रा का अनुभव	लालबहादुर मिश्र, आस्ट्रेलिया।	१६२
४९.	मोक्षधाम गुरु धाम	लीला देवी धवन, कलकत्ता	१६४
५०.	सिद्धपीठ भुवनेश्वरी देवी मन्दिर का जीर्णोद्धार एवं नवनिर्माण	हरिराम कुमार, पूर्व-सदस्य, नगरपालिका, हरिद्वार	१६७
५१.	तुम्हारा मार्ग निष्कंटक हो	प्रो० दुर्गादत्त शर्मा राजकीय महाविद्यालय, रोहतक	१७१
५२.	बिछुड़े दो दोस्तों का अनूठा मिलन	प्रो० धर्म सिंह ढिल्लों, एडवोकेट, कुरुक्षेत्र	१७३
५३.	ज्ञान सागर संतरण में हो तुम्ही नाविक सफल! (कविता)	पूरन चन्द्र पाण्डेय 'यशस्वी' दरियागंज, नई दिल्ली	१७५
५४.	ऋषि गौरव	तारादत्त अवस्थी, शा.प्र.वर्ष ऋ.स.म.वि. खड़खड़ी, हरिद्वार	१७६

हार्दिक अभिनन्दन

पीताम्बर दत्त शर्मा
प्राशासनिक अधिकारी
(सेवा निर्वृत्त) हरिद्वार

अमृत महोत्सव अभिनन्दन,
अमृत महोत्सव अभिनन्दन,
वन्दनीय हैं ऋषि केशवानन्द,
स्वीकार करो हार्दिक अभिनन्दन।१।

हे गुरुचरणन अनुरागी!
गुरु सेवारत बड़भागी!
है धन्य तुम्हारा जीवन,
स्वीकार करो हार्दिक अभिनन्दन।२।

माँ भगवती के अनन्य उपासक,
शक्ति कथा के गुण गायक,
पीते पिलाते राम-रसायन,
स्वीकार करो हार्दिक अभिनन्दन।३।

अविस्मरणीय ज्ञान भक्ति सहस्र यात्राएँ,
दिव्य दशक में अर्पित अमूल्य सेवाएँ,
आज हर्षित है चहुँ ओर जन-जन,
स्वीकार करो हार्दिक अभिनन्दन।४।

हे सद्गुरु ! सदुपदेशों के प्रचारक,
सेवा-प्रेम-विद्या के प्रसारक,
"भले बनो,भला करो" के ज्वलंत उदाहरण,
स्वीकार करो हार्दिक अभिनन्दन।५।

सुवक्ता श्री दुर्गासप्तशती के,
सुहृदय सहायक निसहायों के,
साधक युवावर्ग का करते मार्ग दर्शन,
स्वीकार करो हार्दिक अभिनन्दन।६।

नहीं भेद ऊँच-नीच का,
नहीं अन्तर जाति-वर्ण का,
सदा रहते निष्काम सेवा सलंग्न,
स्वीकार करो हार्दिक अभिनन्दन।७।

प्रभु प्रेम हो साकार तुम,
आनन्द प्रेम के हो आगार तुम,
वन्दन करते सेवकजन,
स्वीकार करो हार्दिक अभिनन्दन ।८।

वंदनीय हैं ऋषि केशवानन्द,
दीर्घायुष्य रहें सदा सुस्वस्थ,
है प्रार्थना भगवती से अनुदिन,
स्वीकार करो हार्दिक अभिनन्दन।९।

अमृत महोत्सव अभिनन्दन,
अमृत महोत्सव अभिनन्दन,
वन्दनीय हैं ऋषि केशवानन्द,
स्वीकार करो हार्दिक अभिनन्दन।१०।

*****

प्राचीन भारतीय चिन्तन में 'ऋषि' की अवधारणा

उपनिषदों के विशेष संदर्भ में

पद्मश्री विभूषित आ.वि.वेंकटाचलम्
भारतीय दार्शनिक अनुसन्धान परिषद् (शि.वि.)
मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार

"नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो, मा माम् ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः परादुः माऽहम् ऋषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परादाम्"।

'ऋषि'-शब्द का प्रयोग – विहंगम दृष्टिः – कृष्ण यजुर्वेद (तैत्तिरीय), शान्तिमन्त्र ।

भारतीय संस्कृति में ऋषियों का अत्यन्त समुन्नत एवं गौरवपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन वैदिक एवं वैदिकोत्तर साहित्य में 'ऋषि' शब्द का इतिहास बहुत लम्बा होने के साथ साथ नितान्त रोचक एवं महनीय भी रहा। वेद-काल से लेकर आज तक इस शब्द का निरन्तर प्रचलन रहा है। उपनिषदों में अनेक ऋषियों के वृत्तान्त के साथ परम तत्त्व की खोज में उनकी भूमिका के रोचक विवरण पद-पद पर मिलते हैं। इनमें से कुछ फुटकर उदाहरण निम्नवत् हैं –

१. तद्धैतत् पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूयश्चेति (बृ.उ. १.४.१०)
२. ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत् (श्वे.उ. ५.२)
३. इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच। तदेतद् ऋषिः पश्यन्नवोचत्। (बृ.उ.२.५.१६ इत्यादि)
४. तस्मादेते ऋषयः प्रजाकामाः दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते। एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः। (प्र.उ.१.६)
५. तदेतत् सत्यम् ऋषिरङ्गिराः पुरोवाच (मुण्ड उ.३.२.११)
६. पुनन्तु ऋषयः, पुनन्तु वसवः पुनातु वरुणः, पुनात्वघमर्षणः। (म.ना. ५.१२)
७. ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनाम्, ऋषिर्विप्राणां, महिषो मृगाणाम्। (म.ना.६.१)
८. ....तुरीयं परमाक्षरम्। ....न तत्र देवा ऋषयः पितर ईशते प्रतिबुद्धः सर्वविदिति। (ब्रह्म२)

हमारे इतिहासपुराणों में अनेक ऋषियों और ऋषिगणों की विचित्र एवं रोमांचकारी किस्से-कहानियों का विशाल भण्डार है। हमारे दोनों विख्यात इतिहासों – रामायण एवं महाभारत के रचयिता वाल्मीकि एवं व्यास, स्वयं भी ऋषियों की श्रेणी में ही आते हैं। यहां मैं मात्र रामायण की संक्षिप्त चर्चा करना चाहूँगा। दो महान ऋषियों का समागम ही रामायण का कथा बीज है। महर्षि वाल्मीकि के देवर्षि नारद के अचानक मिलन से ही कथा का

प्रारम्भ होता है। रामायण के प्रत्येक सर्गान्त की पुष्पिका में ''आर्षे श्रीमद्रामायणे'' कहकर उसके निर्माता कवि वाल्मीकि को ऋषि घोषित किया गया है। "आर्ष" शब्द का अर्थ है- ऋषि के द्वारा प्रणीत। प्रास्ताविक सर्गों में, जहाँ नारद को "महर्षे त्वं समर्थोऽसि", "स यथावत् पूजितस्तेन देवर्षिर्नारदस्तदा", "स यथा कथितं पूर्वं नारदेन महर्षिणा'' इत्यादि संदर्भों में महर्षि या देवर्षि कहा गया, ठीक उसी प्रकार वाल्मीकि का भी बार-बार 'ऋषि' शब्द से निर्देश किया गया। जैसे-'ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत" "रघुवंशस्य चरितं चकार भगवान् ऋषिः", वाल्मीकये च ऋषये संदिदेशासनं ततः", "तच्च कारोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवान् ऋषिः", "चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवान् ऋषिः" इत्यादि। आगे भी परवर्ती युगों के लेखकों के द्वारा वाल्मीकि को 'महर्षि' शब्द का गौरव निरन्तर अर्पित किया जाता रहा। आनन्दवर्धन तथा अभिनवगुप्त ने 'ध्वन्यालोक' एवं 'लोचन' में क्रोञ्चद्वन्द्व वियोग की घटना के प्रसंग में वाल्मीकि का "करुणवेदी ऋषि" के रूप में स्मरण किया है। राजा भोज ने चम्पू रामायण में "मधुमयभणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः" कहकर उनकी कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा की हैं।

महर्षि व्यास की स्थिति भी ठीक इसी प्रकार है। परवर्ती अन्य साहित्य से उदाहरण के रूप में मात्र एक रोचक उल्लेख पर्याप्त होगा। ज्योतिःशास्त्र के मूर्धन्य वैज्ञानिक वराहमिहिर ने प्राचीन ग्रीस देश के निष्णात ज्योतिर्विदों के श्रेष्ठ पाण्डित्य की उन्मुक्त प्रशंसा करते हुए उनको भी परम आदर का पात्र बताया और आगे लिखा कि ये विदेशी भी भारतीय ऋषियों के समान पूजनीय हैं -

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिंद स्थितम्।
ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते किं पुन र्वेदविद् द्विजः।।

'ऋषि' शब्द का अर्थ-मन्त्र-दृष्टा :- 'ऋषि' शब्द का मूल अर्थ है 'द्रष्टा' या देखनेवाला। वैदिक शब्दों के निर्वचन (अर्थात् शब्दों की मूल धातु खोजकर तदनुसार अर्थनिर्धारण) का कार्य 'निरुक्त' शास्त्र के द्वारा सम्पादित हुआ था । इसके कारण निरुक्त शास्त्र को एक वेदाङ्ग के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। ऋषि शब्द के अर्थ-निर्धारण के संदर्भ में वर्तमान में उपलब्ध प्राचीनतम निरुक्त ग्रन्थ में महर्षि यास्क ने लिखा है- ''ऋषिर्दर्शनात्'', यानी देखने के कारण किसी को 'ऋषि' कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि मन्त्रों का साक्षात्कार करने वाला ऋषि कहलाए। ऋषियों के सम्बन्ध में महर्षि यास्क ने यह भी कहा है कि जो धर्म के रहस्य का साक्षात्कार करते हैं, वे ऋषि हैं। "साक्षातूकृतधर्माणो ऋषयो बभूवुः। मन्त्रों का अथवा मन्त्रों में निहित धर्म का साक्षात्कार करने वाले महापुरुष ही ऋषि हैं। हमारे वेदों का प्रमुख भाग तो मन्त्रों का संग्रह है। मन्त्रों का प्रयोगात्मक पक्ष वेदों का दूसरा भाग है। संक्षेप में, मन्त्र एवं मन्त्रों के प्रयोग की विधि यही है वेद का स्वरूप लक्षण। कहा भी गया है - ''मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।'' सामान्य पाठक ध्यान दें -

इस सूत्र में प्रयुक्त ब्राह्मण शब्द ग्रन्थ वाचक है, व्यक्तिवाचक नही है। अर्थात्, यहां 'ब्राह्मण' का अर्थ है, ब्राह्मण नामधारी ग्रन्थ विशेष, दूसरे शब्दों में 'ब्राह्मण' उन ग्रन्थों के नाम हैं जिनमें वैदिक मन्त्रों के प्रयोग की विधि के साथ-साथ वैदिक यज्ञों के अनुष्ठान सम्बन्धी सारी बातें, मन्त्र में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ आदि का साङ्गोपाङ्ग विवेचन हैं।

यद्यपि वेदों में तथा परवर्ती संस्कृत साहित्य में ऋषियों को मन्त्रकृत् यानी मन्त्रों के कर्त्ता बताया गया, फिर भी वेदों की 'अपौरुषेयता' के सिद्धान्त के आधार पर पारम्परिक शास्त्रकारों ने एवं टीकाकारों ने 'मन्त्रकृत्' की भी व्याख्या मन्त्रद्रष्टा के रूप में की है न कि मन्त्रकर्ता के रूप में। उदाहरणार्थ कालिदास ने रघुवंश के प्रथम सर्ग के -

तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात् प्रशमितारिभिः।
प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्याभिदः शराः।।

इस श्लोक में राजा दिलीप के मुँह से अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ को 'मन्त्रकृत्' कहलवाया किन्तु टीकाकार मल्लिनाथ ने इसकी व्याख्या उपर्युक्त प्रकार से ही की है -

ऋषि, महर्षि, परमर्षि, ब्रह्मर्षि, वंश ऋषि, काण्डऋषि - ऋषिसङ्घ - राजर्षि

सामान्य 'ऋषि' शब्द के साथ विभिन्न विशेषणवाची या विशिष्टता के द्योतक शब्दों के प्रयोग से विभिन्न श्रेणियों के ऋषियों का संकेत भी उपनिषदों, इतिहास - पुराणों, परवर्ती दार्शनिक या अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों तथा साहित्यिक ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ, उपनिषदों में ऋषियों में उत्कृष्टता या श्रेष्ठता व्यक्त करने के लिए महर्षि और परम ऋषि (परमर्षि) शब्दों का प्रयोग मिलता है। कभी-कभी महर्षि शब्द का सामान्य ऋषि-शब्द के पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् के द्रुद्रस्तुति परक प्रसिद्ध मन्त्र में शिव को ही महर्षि कहा गया है -

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधियो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भः जनमयास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।। (३.४)

इसी उपनिषद् के अग्रिम अध्याय में भी इस मंत्र को पढ़ा गया, किन्तु वहां तृतीय चरण ''हिरण्यगर्भ पश्यत जायमानं'' इस रूप में है । (४.१२)

यह भी उल्लेखनीय है कि यह मंत्र तैत्तिरीय शाखा के महानारायणोपनिषद् में भी पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध में कुछ शाब्दिक परिवर्तनों के साथ इस प्रकार पढ़ा गया -

यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद् विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्ति।। (१०.३)

ऋषिसंघ- इस प्रकार परम निःश्रेयस की प्राप्ति के लिये तपस्यानिरत ध्यानयोगनिष्ठ ऋषिगण सामूहिक रूप में भी आध्यात्मिक साधना में तल्लीन रहते थे- इस बात का भी प्रमाण अनेक उपनिषदों में तथा अन्य ग्रंथो में उपलब्ध होते हैं, ऐसा सामूहिक प्रयास करने वाले ऋषियों के लिए ऋषिसंघ आदि शब्दों का प्रचलन भी संभावित है। भगवद्गीता के विश्वरूप अध्याय में श्रीकृष्ण के विश्वरूप का साक्षात्कार करता हुआ अर्जुन कहता है कि महर्षियों एवं सिद्धों के संघ स्वस्तिवाचन के साथ तुम्हारी भूरि-भूरि स्तुति कर रहे हैं-

स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षि-सिद्ध-संघाः।
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः।।

ऐसे ब्रह्मचारी ऋषियों के संघ का स्पष्ट उल्लेख श्वेताश्वेतर उपनिषद् में भी है। प्रारम्भ में "ब्रह्मवादिनो वदन्ति" इस उपक्रम वाक्य के बाद इन सबका सामूहिक प्रश्न अवतरित है। इसके बाद भी सबकी सामूहिक साधना-प्रवृत्ति का उल्लेख "ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्" इत्यादि संदर्भो में है। अंत मे उपसंहार के संदर्भ में कहा गया है कि श्वेताश्वेतर ऋषि ने तपस्या के प्रभाव से तथा ईश्वर के प्रसाद से ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर उस पवित्र ज्ञान का उपदेश श्रेष्ठ "अत्याश्रमी" ऋषिगणों को दिया। यहां पुनः "ऋषिसंघजुष्टम्" का उल्लेख भी उसी बात का स्पष्ट संकेत करता है -

तपः प्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वेतरोऽथ विद्वान्।
अत्याश्रतिभ्यः परमं पवित्र प्रोवाच सम्यग् ऋषिसंघजुष्टम्।। (६.२१)

ठीक वैसा ही एक और उदाहरण प्रश्नोपनिषद् में उपलब्ध है। उसमें उपक्रम में छः ऋषियों का नाम गोत्रविकरण के साथ उल्लेख मिलता है, जो सभी ब्रह्मज्ञान साधना में पर्याप्त ऊंचाई पा चुके हैं। अत एव सभी को उपनिषद् "ब्रह्मपराः ब्रह्मनिष्ठाः" की परम श्लाघ्य संज्ञा से विभूषित करती है। ये सभी ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी अपनी ज्ञाननिष्ठा के स्तर से आगे पहुंचने की आकांक्षा से परं ब्रह्म की सामूहिक खोज में निकलते हैं। अपने से अधिक अनुभवी महाज्ञानी महर्षि का मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु परम ऋषि भगवान् पिंप्पलाद के पास पहुंचते हैं।

"सुकेशा च भारद्वाजः, शैब्यश्च सत्यकामः, सौर्यायणी च गार्ग्यः, कौशल्यश्चाश्वलायनः, भार्गवो वैदर्भिः, कबन्धी कात्यायनः- ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणाः; एष ह वै तत्सर्वं पश्यतीति; ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्लादमुपसन्नाः।" (१.१)

इस सन्दर्भ में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है - उपनिषद् की दिव्य वाणी ने यहां पर मात्र महर्षि पिप्लाद को "भगवान्" कहा है। उपनिषद् के उपसंहार भाग की इस उपक्रम संदर्भ के साथ एकरूपता भी अवलोकनीय है। सभी छः ऋषियों के प्रश्नों के समाधान करने के पश्चात् वे सभी ऋषिगण मिलकर सामूहिक रूप में भगवान् पिप्पलाद की पूजा-अर्चना करते हैं और कृतज्ञतापूर्ण भक्ति भरी संवेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं कि आपही ने हमारा अज्ञान दूर कर उद्धार किया तथा तत्वज्ञान के परम पार तक पहुंचाया। आप ही हमारे पिता हैं।

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति। (६.८)

परमऋषिः- कथा संदर्भ की इस समाप्ति के बाद उपनिषद् ऋषियों को प्रणाम करती हुई घोषणा करती है - "परमऋषियों को नमस्कार। परमऋषियों को नमस्कार"। **नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः।**

परमऋषियों को नमस्कार की इस घोषणा के पीछे क्या तात्पर्य है ? इस घोषणा में अचानक परमऋषि शब्द का प्रयोग क्यों किया, जबकि अभी तक किसी को परमऋषि की संज्ञा नहीं दी गई है ? इस शब्द में प्रयुक्त विशेषण "परम" का तात्पर्य क्या है ? इस सम्बन्ध में ऋषि पिप्पलाद का अंतिम सामूहिक सम्बोधन अवधेय है, जिसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में छहों ऋषियों से कहा "मेरे द्वारा अर्जित 'परं ब्रह्म' का ज्ञान इतना ही है कि जितना मैंने आप लोगो का दिया। इससे ऊपर कुछ है नहीं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे ब्रह्मज्ञान के चरम सोपान पर आरूढ़ पिप्पलाद और उन जैसे अन्य ऋषियों की महिमा का गान करना ही तात्पर्य प्रतीत होता है। अन्य श्रेणी के ऋषियों से इन परमऋषियों का उत्कर्ष बताने के लिये ही नये विशेषण का प्रयोग भी किया गया है। इसमें परमऋषि शब्द में प्रयुक्त बहुवचन का संभावित तात्पर्य यह हो सकता है कि शेष छः ऋषि भी गुरु से ज्ञान प्राप्त कर उनके समान 'परमऋषि' हो गये हैं। अत एव उपनिषद् इन सातों परमऋषियों को नमस्कार करती है। प्रश्नोपिषद् के अतिरिक्त अन्य किसी प्रमुख उपनिषद् में परमऋषि नहीं मिलता है। फिर भी सांख्यकारिका की समाप्ति के बाद महर्षि कपिल से प्रचलित शिष्य परम्परा के वर्णन के प्रसंग में महर्षि कपिल को 'परमर्षिणा' समाख्यातम्" कह कर 'परमर्षि' कहा गया है।

वंश ऋषि - वंश ऋषि शब्द भी अधिक प्रचलित नहीं है। बृहदारण्यक उपनिषद् में तीन अध्यायों की समाप्ति में ऋषियों के पूरे वंश की नामावली पूर्ण विस्तार से दी गयी है। तीनों प्रकरणों में इस संदर्भ के प्रारम्भ में 'अथ वंशः' कहा गया है। श्री शङ्कराचार्य ने इस उपनिषद् के भाष्य के मंगलाचरण के रूप में जो सूत्रात्मक वाक्य लिखा है, उसमें 'वंश-ऋषि' शब्द का प्रयोग है। उनका वाक्य है -

ऊँ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासंप्रदायकर्तृभ्यो वंशऋषिभ्यो महद्भ्यो नमः गुरुभ्यः।

देवर्षि - देवर्षि-शब्द उपनिषदों में नहीं मिलता। किन्तु भगवद्गीता में विभूत्यध्याय में देवर्षियों में मैं नारद हूँ कहा है। "देवर्षीणां च नारदः" (१०.२६)। श्रीकृष्ण के द्वारा अपनी विभूतियों के वर्णन के पूर्व अर्जुन

ने भगवान् से उनकी विभूतियों की जो जिज्ञासा की उसके अंतर्गत अर्जुन कहता है -

"सभी ऋषियों ने, देवर्षि नारद ने तथा असित, देवल एवं व्यास इन तीनों ने आप के माहात्म्य का वर्णन किया" इत्यादि। अर्जुन के इस प्रश्न-संदर्भ में भी उन्होंने नारद को देवर्षि कहा है।

आहुस्त्वाम् ऋषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।। (१०.१३)

भगवान् श्रीकृष्ण के कथन से यह बात स्पष्ट तथा सिद्ध होती है कि ऋषियों का एक विशिष्ट वर्ग देवर्षि कहलाता है और उनमें नारद-मुनि सर्वश्रेष्ठ देवर्षि हैं। श्रीकृष्ण ने इसके पूर्व ऋषियों को देवर्षियों से भिन्न मानते हुए कह दिया कि महर्षियों में मैं भृगु हूँ (महर्षीणां भृगुरहम् १०.२५)। अपने प्रश्न में अर्जुन ने भी देवर्षियों को ऋषियों से अलग बताया। अब प्रश्न उठता है कि देवर्षि शब्द का अर्थ क्या है और कौन होते हैं ये देवर्षि? श्री शङ्कराचार्य ने श्रीकृष्ण के वाक्य की व्याख्या में देवर्षि की अवधारणा को इस प्रकार स्पष्ट किया है -

"देव एव सन्तः ऋषित्वं प्राप्ताः मन्त्रदर्शित्वात्, ते देवर्षयः।"

अर्थात् देवता होते हुए जिन्होनें मन्त्रों का साक्षात्कार किया (पृथ्वी के ऋषियों जैसे), वे देवर्षि होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि नारद मुनि ने भी कुछ वेदमन्त्रों का साक्षात्कार किया था।

काण्डर्षि - राजर्षि- ऋषियों के विभिन्न भेदों की चर्चा में ब्रह्मर्षि को सोच समझ कर ही अंत में विचार करने के लिए सुरक्षित रखा है, क्योंकि ब्रह्मर्षि समस्त ऋषि वर्गो में मूर्धन्य माने जाते हैं। काण्डर्षि एवं राजर्षि इन दोनों अवधारणाओं में कोई अत्यन्त विशिष्ट बात नहीं है। यजुर्वेद को अनेक काण्डों में विभाजित किया गया है और ऐसे काण्डों के अंतर्गत मन्त्रों के ऋषियों को 'काण्डर्षि या काण्डर्षि या काण्ड-ऋर्षि' कहा गया प्रतीत होता है। वेदाध्ययन के आरम्भ करने के विधान के अन्तर्गत जो प्रतिवर्ष श्रावण-पूर्णिमा के दिन 'उपाकर्म' का अनुष्ठान किया जाता है, उसमें प्रत्येक काण्ड-ऋषि के नाम से तर्पण करने की परम्परा आज तक धार्मिक परिवारों में सुरक्षित है।

राजा होकर राजधर्मों का विधिवत् पालन करते हुए जो ऋषि-जीवन जीते हैं, ऐसे ऋषिकल्प राजाओं को राजर्षि के रूप में निर्देश किया जाता है, जिसका संस्कृत साहित्य में पर्याप्त प्रचलन है। उपनिषदों में राजर्षि शब्द का प्रयोग नहीं है, किन्तु महाराजा जनक जैसे अनेक राजर्षियों का वृत्तान्त अवश्य है। भगवद्गीता में चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि जिस योग का उपदेश मैंने सृष्टि के आरम्भ में सूर्य को दिया था वह उनसे मनु को और मनु की वंश-परम्परा में आये सूर्यवंशीय प्रथम इक्ष्वाकु को, इस प्रकार क्रमानुसार राजर्षियों को प्राप्त हुआ।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः। (४.२)

आगे नवमाध्याय में भी -

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्त राजर्षयस्तथा। (६.३३)

इस श्लोक में श्रीकृष्ण के द्वारा राजर्षियों का प्रंशसात्मक उल्लेख़ है।

परवर्ती संस्कृत साहित्य में से महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यंत को श्रेष्ठ राजर्षि के रूप में ही प्रस्तुत किया। चतुर्थ अंक में शकुन्तला के सखियों के द्वारा राजर्षि के रूप में अनेक उल्लेखों के अतिरिक्त दूसरे अंक में कण्वाश्रम के तापस-कुमार के द्वारा दुष्यन्त को ऋषियों से लगभग अभिन्न (ऋषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि) कह कर राजा दुष्यन्त और ऋषि के समीकरण का सुन्दर चित्रात्मक वर्णन किया है। महाकवि का सुश्लिष्ट श्लेषानुप्राणित उपमान चित्र दस पद्य में है -

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः।।

ब्रह्मर्षि - ब्रह्मर्षि शब्द में जो समास है, उसका दो प्रकार से विश्लेषण और तदनुसार दो व्याख्यायें संभावित हैं। मध्यमपदलोपी समास मान कर ब्रह्म को जानने वाला ऋषि ब्रह्मर्षि यह एक व्याख्या है। कर्मधारय समास मानकर ब्रह्मैव ऋषिः ब्रह्मर्षिः इस प्रकार विश्लेषण कर ब्रह्म से अभिन्न ऋषि, अर्थात् ब्रह्मीभूत ऋषि, यह दूसरी व्याख्या है। ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' इस श्रुति वाक्य के अनुसार ब्रह्मज्ञानी स्वयं ब्रह्म से अभिन्न हो जाता है। अत एव दोनों व्याख्याओं का पर्यवसान एक ही है।

प्रमुख उपनिषदों में 'ब्रह्मर्षि' शब्द का एक ही प्रयोग का पता चलता है। श्वेताश्वेतर उपनिषद् के जिस मन्त्र में ब्रह्मर्षि शब्द का प्रयोग मिलता है, उससे स्पष्ट है कि ब्रह्मर्षि शब्द का तात्पर्य परब्रह्म का तत्त्व साक्षात्कार पाकर जन्म-मरण-चक्र से मुक्त मोक्ष-प्राप्त या ब्रह्मीभूत ऋषि से ही है -

स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिकः सर्वभूतेषु गूढः।
यस्मिन् युक्त ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति।। (४.१५)

ऋषियों की विभिन्न श्रेणियों में से ब्रह्मर्षि सर्वोत्कृष्ट है, यह बात परवर्ती इतिहास-पुराण साहित्य में साफ-साफ प्रमाणित होती है। वाल्मीकि रामायण में वसिष्ठ-विश्वामित्र की आपसी स्पर्धा का वृत्तान्त इसका बहुत

ही जाज्वल्यमान उदाहरण है। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ से राजा विश्वामित्र के संघर्ष की विस्तृत कहानी से भी यही निष्कर्म निकलता है कि ब्रह्मर्षि ऋषियों में सर्वोच्च है। इस कथा का संक्षेप इस प्रकार है -

वसिष्ठ ऋषि के तपोबल के सामने अपनी अस्त्रविद्या के और अपनी विशाल सेना के शस्त्रों के बल की तुच्छता का कटु बोध होने पर विश्वामित्र ने स्वयं अत्यंत कठोर तपस्या का मार्ग अपनाया। वर्षों तक तप किया। किन्तु अप्सरा मेनका के प्रलोभन से तपोभंग होने के पश्चात् मोह में पड़ कर उसके साथ दस वर्ष तक कामोपभोग में डूब गये और नियम-संयम सब भूल-भाल गये। एक दिन अचानक पूर्व स्मृति जागने पर अपने पतन से लज्जित होकर पुनः पूर्व से भी अधिक कठोरतर तपस्या की। तब ब्रह्मा जी ने प्रसन्न होकर उन्हें महर्षि पद का वरदान दिया।

महत्त्वम् ऋषिमुख्यत्वं ददामि तव सुव्रत। (बालकाण्ड-६३.१८)

विश्वामित्र का लक्ष्य ब्रह्मर्षि पद था, जिससे वसिष्ठ के साथ उनकी बराबरी सिद्ध हो सके। अतएव असंतुष्ट होकर विश्वामित्र ने ब्रह्मा से ब्रह्मर्षि पद की आकांक्षा व्यक्त की। ब्रह्मा ने जब उन्हें उसके लिये अयोग्य बताया, तब अपना ब्रह्मवर्चस बढ़ाने के लिए पूर्व की अपेक्षा अधिक कठोर तपस्या करने लगे। जब अप्सरा रम्भा ने अपने सौन्दर्य के प्रलोभन से विचलित करने का प्रयास किया, तब उसकी इस कुचेष्टा से रुष्ट होकर उसे भयानक शाप दे दिया कि हजारों वर्षों तक वह पत्थर बन कर रह जायेगी। शाप देने के कारण अपना तपोबल से ब्राह्मणत्व अर्जित नहीं कर पाऊँगा ओर ब्रह्मर्षि-पद का अधिकारी नहीं बनूगा तब तक क्रोध करूंगा नहीं, बोलूंगा ही नहीं, शत-शत वर्षों तक शरीर को सुखा दूंगा और सांस ही नहीं लूंगा - यह था तपस्वी विश्वामित्र का अंतिम दृढ़ संकल्प। वाल्मीकि के शब्दों में -

नैव क्रोधं गमिष्यामि न च वक्ष्ये कथंचन।।
अथवा नोच्छ्वसिष्यामि संवत्सरशतान्यपि।
अहं विशोषयिष्यामि ह्यात्मानं विजितेन्द्रियः।।
तावद् यावद्धि मे प्राप्तं ब्राह्मण्यं तपसार्जितम्। (बालकाण्ड,६४ १७-१९)

जब विश्वामित्र की ऐसी अत्युग्र तपस्या से सारे जगत् में तहलका मच गया, तब ब्रह्मा के नेतृत्व में सब देवता उनके समक्ष प्रकट हुए और उन्हे "ब्रह्मर्षि" पद से अलंकृत करते हुए कहा - "हे महान् मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मर्षि के रूप में आपका स्वागत है। अपने इस अत्युग्र तप से आपने ब्राह्मण्य अर्जित कर ही लिया। हम आपको दीर्घ आयु का वरदान भी देते हैं।

ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः।
ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक।।

दीर्घमायुश्च ते ब्रह्मन् ददामि समरुद्गणः।। (बालकाण्ड, ६५. १६-२०)

विश्वामित्र बहुत प्रसन्न हुए। प्रसन्न होकर ब्रह्मा से निवेदन किया कि यदि मुझे ब्राह्मण्य प्राप्त हो गया तो उसके साथ यह भी तो अनुग्रह कीजिये कि ओंकार, वषट्कार और सारे वेद मुझे स्वयं सिद्ध हों। साथ ही ब्राह्मणों के वेदों में तथा क्षत्रियों के वेदों में परम निष्णात वसिष्ठ मुझे अपने मुंह से ब्रह्मर्षि के रूप में स्वीकार करें। तब देवताओं के अनुरोध पर ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने विश्वामित्र के साथ मित्रता स्वीकार की और अपने कण्ठोक्त शब्दों से विश्वामित्र से कहा - ''आप अब निश्चित ही ब्रह्मर्षि हैं'' वसिष्ठ की इस उदारता के बदले में विश्वामित्र ने भी वरिष्ठ ब्रह्मर्षि के रूप में वसिष्ठ की पूजा-अर्चना की।

ततः सुरगणाः सर्वे पितामहपुरोगमाः।
विश्वामित्रं महात्मानं वाक्यं मधुरमब्रुवन्।।
ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः।।
ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक।।
+ + + + + + + + + + + + + + +
ब्राह्मण्यं यदि में प्राप्तं दीर्घमायुस्तथैव च।
ओंकारश्च वषट्कारो वेदाश्चवरयन्तु माम्।।
क्षत्रवेदविदां श्रेष्ठो ब्रह्मवेदविदामपि।
ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठो मामेवं वदतु देवताः।।
+ + + + + + + + + + + + + + +
ब्रह्मर्षिस्त्वं न सन्देहः सर्वं संपत्स्यते तव।।
+ + + + + + + + + + + + + +
विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा लब्ध्वा ब्राह्मण्यमुत्तमम्।।
पूजयामास ब्रह्मर्षि वसिष्ठं जपतां वरम्।
(बालकाण्ड ६५. १८-१६, २२-२३; २५; २६-२७)

वाल्मीकि रामायण के इस रोचक संदर्भ से ब्रह्मर्षि के रूप में वसिष्ठ की महिमा का सहज बोध तो होगा ही, साथ ही ऋषि-महर्षि पदों की तुलना में ब्रह्ममर्षि पद की सीमातीत ऊँचाई का भी स्पष्ट बोध इस बात से होगा कि विश्वामित्र को उसे पाने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ा और कैसे-कैसे विघ्न-बाधाओं और विपत्तियों से लोहा लेना पड़ा।

ब्रह्मर्षि से सम्बद्ध रामायण की इस चर्चा के साथ ऋषि की अवधारणा के संदर्भ में वाल्मीकि रामायण के एक महत्वपूर्ण और मार्मिक प्रसंग का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा। कठोरहृदया कैकेयी के साथ वनवास के

वरदान संबंधी वार्तालाप में राम उनसे कहते हैं - "यदि आपने मुझे प्रत्यक्ष आदेश दे दिया होता तो भी मैं खुशी-खुशी प्रिय भाई भरत को राज्य देकर वनवास हेतु गया होता। मुझे यही तनिक खेद है कि आपने मुझ पर विश्वास नहीं किया। फलस्वरूप बेचारे वृद्ध पिताजी को माध्यम बनाने से उनको असहनीय तनाव और पीड़ा झेलनी पड़ी।" कैकेयी के समक्ष अपनी निःस्पृहता एवं अनासक्त भाव को रेखांकित करते हुए यह परम गंभीर एवं उदात्त घोषणा भी करते हैं - "मां जीवन में मेरा लक्ष्य भौतिक अर्थों का उपभोग नहीं है। धन और सुख-सम्पदा को उद्देश्य बनाकर जीवन जीना ही नहीं चाहता हूँ। केवल धर्म के प्रति ही मेरी आस्था और निष्ठा है। ऐसे धर्मनिष्ठा केन्द्रित जीवन के लिए कृपया मुझे ऋषियों के समान समझिये।"

नाहमर्थपरो देवि लोकभावस्तु मुत्सहे।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं केवलं धर्ममास्थितम्।। (अयोध्याकाण्ड १६.२०)

धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्ग पुरुषार्थ में मात्र धर्म ऋषियों के जीवन का लक्ष्य है, यह वाल्मीकि की अवधारणा, विशेष अवधान देने योग्य है। वाल्मीकि स्वयं महान् ऋषि थे। अत एव उनकी प्रतिभा से प्रसूत यह ऋषि तत्त्व की अवधारणा विशेष महत्त्व रखती है।

वाल्मीकि की सहज ऋषि आंखो ने रामचन्द्र में ऋषि का हृदय देखा और उन्हें ऋषि-बालक या युवा-ऋषि के रूप में देख कर आनन्द का अनुभव किया। यही कारण है कि जब राम और लक्ष्मण ने गंगा पार करने के पूर्व जटा धारण किया तब वाल्मीकि अपनी सहज संवेदना से लिखते हैं कि तब वे दोनों ऋषि-युवा के समान सुन्दर दिखे -

तौ तदा चीरवसनौ जटामण्डलधारिणौ।
अशोभेताम् ऋषिसमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।। (अयोध्याकाण्ड ५२.७०)

ऋषि का सत्य सङ्कल्प एवं सत्यवाक्

इन्द्रियों और अन्य प्राणों को शरीर के नियामक नायक के रूप में स्तुति करते हुए प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है - "ऋषिणां चरितं सत्यम्"। इसमें ऋषियों की वाणी, चिन्तन एवं आचरण की ऐकान्तिक यथार्थता की सूक्ष्म अभिव्यंजना है। इसी संदर्भ में पण्डित-गोष्ठियों में अक्सर उत्तर रामचरित में भवभूति का वाक्य बार-बार उद्धृत किया जाता है-

"ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति"।

ऋषि की अवधारणा का एक महत्वपूर्ण पक्ष है - उनके संकल्प एवं वाणी की अविचलित यथार्थता और अकाट्य सत्यता। ऋषि सदैव सत्यसङ्कल्प होते हैं एवं सत्यवाक्। उनके सङ्कल्प का छोटा सा अंश भी अन्यथा

नहीं हो सकता है, चाहे वह सङ्कल्प होते हैं एवं सत्यवाक्। उनके सङ्कल्प का छोटा सा अंश भी अन्यथा नहीं हो सकता हैं, चाहे वह सङ्कल्प अभेद्य प्राकृतिक नियमों के ही विपरीत क्यों न हो। ठीक वैसी ही स्थिति ऋषि के मुंह से निकली वाणी की भी है। उसका एक-एक शब्द एक-एक अक्षर सत्य सिद्ध होगा। वह अणुमात्र भी इधर का उधर हो नहीं सकता है। प्रकृति के सामान्य नियम जिन्हें अपरिवर्तनीय समझा जाता है ऋषि के सङ्कल्प या शब्दों के सामने बलात् परिवर्तित हो जाते हैं। सीमित काल के लिए या सीमित देश के लिए ही सही, टूट जाते हैं। इसीलिए ऋषि-तत्त्व दुर्बोध और रहस्यात्मक है। इसीलिये ऋषि की महिमा भी अपरंपार है। संसार की समस्त गतिविधियों को नियंत्रित करनेवाली महान् प्रकृति भी उनके सामने झुकती है और उनके सङ्कल्प के अनुरूप स्वयं ढल जातीं है। ऋषि के सङ्कल्प से गूंगा अचानक बोल लेता है और वाचाल पुरूष गूंगा बन बैठता है। गूंगा मानव ही क्यों, गूंगा पशु या जड़ पत्थर भी बोल सकता है, जैसा कि बालक सन्त ज्ञानेश्वर के सङ्कल्प से भैंस के मुंह से वेद-मन्त्रों के पाठ की कहानी महाराष्ट्र में प्रसिद्ध है। यदि ऋषि की वाणी से बात निकल गयी तो काला तुरन्त सफेद होता है और सफेद काला। पत्थर हिल-चलता है, जैसा कि तमिल प्रदेश के एक सामान्य जाति-कुल में जन्मे एक महान् शिव भक्त के कहने पर मन्दिर में शिवलिंग के सामने बैठे पत्थर के नन्दी कुछ हट के बगल में बैठ गये ताकि भक्त को दूर से शिवलिंग का ठीक-ठीक दर्शन हो सके। इस घटना में तो स्थावर वस्तु कुछ क्षणों के लिए जंगम बन गयी। जंगम पदार्थ भी ऋषि की सङ्कल्प शक्ति से स्थावर बनता है। ठीक इसके विपरीत चलने वाला मनुष्य पत्थर बनकर युग-युगों तक पड़ा रहता है, जैसा कि गौतम ऋषि के सङ्कल्प से अहिल्या बनी पत्थर और द्वापर युग तक वैसे ही पत्थर के रूप में दबी अन्तश्चेतना के साथ पड़ी रही, जब तक श्री रामचन्द्र की चरणधूलि उस पर नहीं पड़ पाई। शापोद्धार की देश-काल व्यवस्था के अनुसार इतना ही नहीं ऋषि का सङ्कल्प जीवित को मरण और मृत को पुनः जीवन दे सकता है। जैसे परशुराम के द्वारा हत्या होने के बाद जमदग्नि के सङ्कल्प से रेणुका पुनः पूर्ववत् जीवित हो उठी। इस माने में ऋषि की सङ्कल्प शक्ति ईश्वरीय शक्ति से बहुत कम नहीं है। ऋषि के सङ्कल्प या वाणी से जब ऐसी विचित्र एवं अद्भुत घटनाएं घट जाती है जो मानवीय तर्क बुद्धि से.परे हैं और हमारे दुर्बोध एवं दुःसमाधेय पहेलियां प्रस्तुत करती हैं। तब हम ऐसी घटनाओं को मिरकेल या चमत्कार कहकर संतोष पा लेते हैं।

निष्कर्ष यह है कि सत्य सङ्कल्प एवं सत्यवाक् होना ऋषि के स्वरूप का प्राण है, ऋषित्व की यही आत्मा है। परिणाम स्वरूप, यदि कभी किसी ऋषि को अपने मुंह से निकले वाक्य को मिथ्या या असत्य सिद्ध होते देखने की अप्रत्याशित दुःस्थिति आ पहुँचे तो उनके लिए उससे बढ़ कर बड़ी त्रासदी नहीं होगी। ऋषि के लिए अपने वचन की असत्यता मृत्यु से भी अधिक शोक का कारण बनेगी। ऋषि की चेतना ही इस शोक की गहराई को पहचान सकती है। ऋषि-कवि वाल्मीकि ने ऐसे ऋषि की शोकाक्रान्त व्याकुलता एवं दीन अवस्था को लेकर एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी उपमा का प्रयोग कर ऋषि-मनोविज्ञान की सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। कैकेयी के बुलावे का संदेश प्राप्त कर जब राम कैकेयी के अन्तःपुर में मर्माहत पीड़ित दशरथ के पास जाते हैं, तब दशरथ की वह

अवस्था कवि की प्रतिभा के लिए एक प्रकार से चुनौती है। तुलना किससे जाये? तुलना किससे की जाये? उनके लिए उपमा क्या हो सकती है? तब सामान्य कल्पनाओं से हट कर वाल्मीकि की कवि-चेतना उसकी अपनी स्वानुभूति से जोड़ कर एक सर्वथा नयी उपमा की सृष्टि करती है। वाल्मीकि ने लिखा है कि उस समय राजा दशरथ की पीडित शोकाहत अन्तश्चेतना के लिए दो अन्य उपमाओं के साथ अनृतभाषी ऋषि की मनोदशा की मार्मिक उपमा को भी जोड़ देते हैं।

उस समय का दृश्य इस प्रकार है। कैंकेयी के अन्तःपुर में राम के वनवास के निर्णय के बाद सत्यपाश से बंधे दशरथ अवाक् पड़े हैं। सुमन्त्र का संदेश पाकर राम वहां पहुँच ही रहे हैं, पिता से मिलने। सोचते कुछ और देखते कुछ सर्वथा अकल्पित। पिता के मुंह से "राम" शब्द के बाद कोई शब्द निकलता ही नहीं। शोक एवं व्याकुलता के चरमोच्च बिन्दु का वह छोर भयंकर क्षण है, जिसे कवि ने भी स्वयं "भयानक" एवं "अचिन्त्यकल्प" कहा है। उस "अचिन्त्य" के वर्णन के लिए कल्पना ही एक मात्र सहारा है। पर कहां परम गंभीर महोन्नत उदात्त व्यक्तित्व दशरथ का? और कहो उस वर्तमान क्षण की स्थिति? कल्लोल-हिल्लोल तंरगों के बीच में सर्वदा क्षोभ-रहित महासागर के क्षुब्ध होने की कल्पना। सर्वलोक प्रकाशक प्रखरकिरण तेजःपुंज सूर्य के निस्तेज होने की दूसरी कल्पना। फिर भी कवि की आत्मा में तृप्ति नहीं। और किसी अन्य बिम्ब की खोज में पड़ी है। तब ऋषि हृदय की स्वानुभूति जागती है। उससे अपनी संवेदना के परिस्पन्द से सुन्दर असत्य भाषण की असह्य पीड़ा से आक्रान्त ऋषि की छवि सामने आती है। असत्य वचन से समूल उखड़े ऋषि-चेतना की तीसरी उपमा सें कवि की प्रतिभा असीम सन्तोष पा लेती है। "उक्तानृतम् ऋषिं यथा" इस उपमा से चित्र पूरा हो गया।

वाल्मीकि के मूल शब्दों में समग्र चित्र के दर्शन से अलग ही रसास्वाद है -

रामेत्युक्तवा च वचनं बाष्पर्याकुलेक्षणः।
शशाक नृपतिर्दीनो नेक्षितुं नाभिभाषितुम्।।
तदपूर्वं नरपतेर्दृष्ट्वा . रूपं भयावहम्।
रामोऽपि भयमापन्नः पदा स्पृष्ट्वेव पन्नगम्।।
इन्द्रियैरप्रहृष्टैस्तं शोकसन्तापकर्शितम्।
निःश्वसन्तं महाराजं व्यथिताकुलचतेसम्।।
ऊर्मिमालिनमक्षोभ्यं क्षुभ्यन्तमिव सागरम्।
उपप्लुतमिवादित्यम् उक्तानृतम् ऋषिं यथा।।
अचिन्त्यकल्पं हि पितुस्तं शोकमुपधारयन्।
बभूव संरब्धतरः समुद्र इव पर्वणि।।

ऋषि केशवानन्द महाराज-लोकोपकारी अनुभाव की एक आभा

डॉ० अमरनाथ पाण्डेय,
पूर्व-संस्कृतविभागाध्यक्ष,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

ऋषि-प्रवर का दर्शन कुछ वर्षों पूर्व हरिद्वार में हुआ। कई बार अवसर मिलता है उनको देखने का, उनके वचनों को सुनने का। उनसे जो प्रेरणा मिलती है, उससे हमारी सांस्कृतिक निधि प्रकाशित होने लगती है और प्रतीत होता है कि कोई अपूर्व वस्तु मिल रही है। हम जानते हैं कि इस प्रकार की स्थिति किसी विशिष्ट पुण्य के कारण, प्राक्तन संस्कार के कारण प्रादुर्भूत होती है और अनेक बार तपस्या तथा साधना का प्रभाव भी होता है। इस प्रकार का प्रभाव पार्श्ववर्ती प्रदेश को तो व्याप्त करता ही है, उस परम्परा को भी जन्म देता है, जो आगे चल कर मानव का कल्याण करती है और देश की आध्यात्मिक सम्पत्ति की वृद्धि करती है। जब किसी महापुरुष के सत्संग से इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होती है, तब मैं उसकी व्याख्या करने के लिए अथवा उसके स्वरूप को निर्धारित करने के लिए प्रवृत्त नहीं होता। मैं यह भी नहीं चाहता कि इस प्रकार के काल का रहस्य प्रकट हो जाए, क्यों कि मैं जानता हूँ कि मानव की बुद्धि उस काल विज्ञान का साक्षात्कार नहीं कर सकती, उसमें वह शक्ति भी नहीं है, जिससे सारी क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं का आलोचन हो सके। मैं इन प्रसंगों में अपने अनुभवों तक ही सीमित रहता हूँ। मैं यह देखता हूँ कि मुझ पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ रहा है और मुझमें किस प्रकार का स्पन्दन हो रहा है और मेरी अनुभूति कितनी जागृत और समृद्ध हो रही है।

ऋषियों की जो परम्परा चली आ रही है, वह विच्छिन्न होने वाली नहीं है, वह वर्तमान तक आती है और आगे भी बढ़ती है। यदि उससे पृथक् होकर देखा जाए, तो कुछ मिलने वाला नहीं है । उसी परम्परा में डूब कर उसकी विभावना करनी है, उसके सौन्दर्य को देखना है, उसके प्रभावों को अंकित करना है, उसकी अनेक कड़ियों की स्थिति तथा स्वरूप का मूल्याङ्कन करना है, क्योंकि इससे हमारी साधना समृद्ध होती है और हमारी उपलब्धि परिष्कृत होती है। जब हमारे परम पूज्य ऋषि जी मिलते हैं, दर्शन देते हैं और अपने व्यवहारों से शास्त्र के अनेक पक्षों की व्याख्या करते हैं, नीति के सिद्धान्तों की अवतारणा करते हैं, भारतीय विद्या तथा तत्त्वज्ञान की रक्षा के लिए उद्यत होते हैं, तब हम देखते हैं कि प्राचीन ऋषियों की परम्परा आज भी विद्यमान है तथा प्राचीन सन्दर्भों का उपस्थापन आज भी हो रहा है। भवभूति ऋषि तथा साधु का भेद प्रस्तुत करते हैं -

"लौकिकानां हि साधूनां वागर्थमनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।।"(उत्तररामचरितम्)

लौकिक साधु की वाणी अर्थ का अनुगमन करती है अर्थात् साधु उन्हीं अर्थों को प्रस्तुत कर पाते हैं, जो वर्तमान हैं, जो घटित हो रहे हैं। सामान्य व्यक्ति इस प्रकार के अर्थ को व्यक्त नहीं कर सकता, क्योंकि उसके पास वह दृष्टि नहीं है, जिससे वह उस अर्थ को देख सके, उस अर्थ के घटकों का चित्र बना सके। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि व्यक्ति अर्थ का साक्षात्कार कर लेते हैं किन्तु सत्यनिष्ठा के अभाव में उस अर्थ को यथार्थ रूप में व्यक्त नहीं कर पाता। साधु ही इस प्रकार के अर्थ को प्रकाशित करने में समर्थ होता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि महाकवि भवभूति ने साधु के लिए लौकिक पद का प्रयोग किया है अर्थात् साधु लौकिक होता है। ऋषि इससे भिन्न होता है, उसको लौकिक नहीं कहा जायेगा। लौकिक कहने से ऋषित्व समाप्त हो जायेगा। ऋषि अलौकिक है। बहुत चतुरता से भवभूति ने दोनों के पार्थक्य का उपस्थापन किया है। साधु के विशेषण के रूप में लौकिक पद प्रयुक्त है और ऋषि के विशेषण के रूप में "आद्य" पद। ऋषि की परम्परा प्राचीन है, आद्य है, पुरातन है और प्राचीन काल से चली आने वाली सम्पदा की रक्षा कर रही है। साधु उस कालखण्ड से पृथक हो चुका है, इसलिए वह घटित अर्थ को बता सकता है, अघटित को नहीं। ऋषि तो वह है, जिसकी वाणी का अनुगमन अर्थ करता है अर्थात् ऋषि अपनी वाणी से अघटित अर्थ की अवतारणा करता है, अपनी शक्ति से नवीन वस्तुओं की उद्भावना के अनुरूप योजना करता है, नव निर्माण में प्रवृत्त होता है। जब हम इस दृष्टि से श्रद्धेय ऋषि जी के स्वरूप की मीमांसा करते हैं, तब देखते हैं कि आज भी एक ऋषि अवतीर्ण होता है और मानव-कल्याण के लिए, भक्तों के परित्राण के लिए साधनारत होता है।

जिसमें लोक-कल्याण के भाव का उदय हो जाता है, वह पूज्य हो जाता है। ऋषि-प्रवर महाराज का स्वरूप आकृष्ट करता है, वे सरल हैं, निश्छल हैं। उनका जीवन पूर्णतः समर्पित है। उनका समर्पण-भाव उनको महान् बनाता है। उनकी प्रियप्राया वृत्ति तथा प्रकृत्या कल्याणी मति उनको मण्डित करती है। भगवत्प्रीति उनका अलङ्कार है। लोक-कल्याण का भाव उनकी शक्ति है। हम जानते हैं कि इस प्रकार के महापुरुष कम मिलते हैं, इनसे देश तथा समाज का कल्याण होता है।

ऋषिप्रवर में जो सबसे अधिक प्रभावित करने वाली विशेषता है, वह उनका निश्छल भाव है। न कहीं छल है, न कहीं भेद-दृष्टि है, न कहीं कोई दुराव है। ''सरल सुभाव छुआ छल नाही''-स्वभाव सरल है,

छल का स्पर्श नहीं हो सका है। मुझे लगता है कि उनका यह पक्ष भक्तों को सबसे अधिक प्रभावित करता है, क्योंकि भक्त सरल होता है, और वह अपने पूज्य की सरल प्रकृति से आकृष्ट होता है। आराध्य की ऋजुता ही भक्त को आकृष्ट करती है।

ऋषि जी विद्वानों को स्नेह देते हैं, वे चाहते हैं कि शास्त्रों की रक्षा हो। उसके लिए वे निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। ऋषियों की यह विशेषता रही है कि वे विद्या की परम्परा को आगे बढ़ाते रहे हैं। उन्हें साधना से, अभ्यास से जो कुछ मिला है, उसे आगे आने वाली पीढ़ी को प्रदान करके परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए सतत प्रयास किया है। वर्तमान काल में ऋषि जी ने विद्या के केन्द्रों तथा गोशालाओं की स्थापना करके, छात्रों के लिए सभी प्रकार की सुविधाओं का संग्रह करके ऐसे वातावरण का निर्माण किया, जो विद्या की संक्रान्ति के लिए नितान्त अपेक्षित है। उनका ध्यान विशेष रूप से उन स्थानों की ओर जाता है, जिन्हें कहीं से कोई प्रेरणा नहीं मिल पाती। आज वह स्थिति नहीं है, जो प्राचीन काल में थी। प्राचीन काल में छात्र ग्रामों से आश्रमों में जाते थे तथा विद्याध्ययन करते थे। उन्हें सभी प्रकार के उपदेश-निर्देश मिलते थे। आज की परिवर्तित परिस्थिति को ऋषि जी ने सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। वे गाँवों में जाकर अपने वचनों से जनता को प्रेरित करते हैं। इस प्रकार वे विद्यादान तथा अन्नदान से छात्रों का कल्याण करते हैं। इससे विद्या की परम्परा आगे बढ़ती है, जो भारत की रक्षा के लिए परम आवश्यक है।

ऋषि जी का अनासक्त जीवन आदर्श है। वे वर्तमान में जीवित रहने का उपदेश देते हैं। जो वर्तमान को सुन्दर नहीं बना सकता, वह भविष्य को कैसे सुन्दर बनायेगा ? वर्तमान के क्षणों को साभिप्राय बनाना है। यह तभी सम्भव होता है, जब पूर्ण समर्पण होता है। पूर्ण आस्था,श्रद्धा का उदय तभी होता हैं जब ईश्वर की सत्ता में विश्वास होता है। यह विश्वास ऋषि जी में पूर्णतः प्रकाशित है और इसी से उनका जीवन स्पन्दित हो रहा है। ऋषि जी का एक कल्पनालोक है, जो आभा से मण्डित है। वे चाहते हैं, वह कल्पना-लोक इस भूतल पर उतरे। आरूणि, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों का साक्षात्कार पुनः भारत को प्रकाश प्रदान करे। ऋषियों की इस परम्परा में पूज्य ऋषिप्रवर शतायु होकर भक्तों को आनन्दित करते रहें और समाज को अपने उपदेशामृत से आह्लादित करते रहें- यही भगवान् काशीविश्वेश्वर से प्रार्थना है।

* * * * *

महान गुरु के महान शिष्य

डा० रिपूदमन विज,
पूर्व दन्त-चिकित्सक,वाराणसी

ज़ब-जब संसार में पीड़ित दुखी मानवता को शान्ति का मार्ग दिखाने एवं दुखों से छुटकारा दिलाने के योग्य महापुरुष की आवश्यकता अनुभव होती है। सर्वशक्तिमान् परमपिता परमेश्वर किसी महापुरुष को भेज देता है और दुःखी मानवता का कल्याण करता है। भारत भूमि धन्य है जहाँ अनेक सन्तों व ऋषियों ने अपनी साधना से प्रभु की शक्ति का आभास कराकर, सभी के मन में त्याग व विश्वबन्धुत्व की भावना का महत्त्व समझाकर, शान्ति का मार्ग बताया है। सन्त हो अथवा गृहस्थ हो सभी को विश्वास है कि बिना योग्य-मार्ग-दर्शक व सच्चे-गुरु के सच्ची शान्ति एवं परमपिता की कृपा पाना सम्भव नहीं है। ज़ीवन के विकास के लिए यह आवश्यक है कि गुरु पर दृढ़ता से श्रद्धा विश्वास करते हुए उनके बताये हुए मार्ग पर चला जाये।

गुरु परम्परा अनादि काल से चली आ रही है। श्रीकृष्ण जी व प्रभुराम ने भी स्वयं भगवान् होते हुए भी गुरु मर्यादा का पालन करके आदर्श उदाहरण उपस्थित किया है। सीता जी के स्वयंवर के अवसर पर अनेक राजा स्वयं उठ-उठ कर धनुष तोड़ने का असफल प्रयास करते थे परन्तु प्रभु श्री राम गुरु की आज्ञा होने पर ही उठ कर और गुरु को प्रणाम करके धनुष तोड़कर सफल हुए। गुरु महिमा अपरम्पार है गुरुसेवा में लगा शिष्य उनके सान्निध्य में कण-कण से प्रेरणा प्राप्त करता है जिस पर कृपा गुरु की हो उसे फिर कोई भय अथवा विपत्ति सताती नहीं है। भगवान् भी रुष्ट हो जावें तो गुरु कृपा होने पर स्वयं मार्ग दिखाकर रक्षा करते हैं परन्तु यदि गुरु ही रुष्ट हो जावें तो कोई बचाने वाला नहीं है।

परमहंस श्री रामकृष्ण जी के शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी ने गुरु जी से शिक्षा-दीक्षा लेकर उनकी इच्छा व आज्ञानुसार वैदिक धर्म का प्रचार- प्रसार करते हुए विदेशों में जाकर भारत की महान् संस्कृति का डंका बजाया जिससे वहाँ के लोग अति प्रभावित हुए। अब तो लाखों विदेशी भारत आकर भारत के सन्तों ऋषियों के चरणों में बैठकर मन की शान्ति पाते हैं और परमपिता परमेश्वर की शक्ति का सच्चा अनुभव प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

पंजाब के भठिण्डा जनपद में विरकां स्थान पर प्रातः स्मरणीय परमयोगी, तपस्वी, बाल ब्रह्मचारी पूज्य पिता जी (श्री वंशीधर जी महाराज) प्रकट हुए । हजारों भक्तों को सरल भक्ति का मार्ग बताकर सन्मार्ग पर चलने की सच्ची राह बताकर भगवान की, परमात्मा की कृपा प्राप्त करने का मार्ग सुझाया। संस्कृत भाषा के प्रति उनके उच्चभाव थे कि बिना संस्कृत भाषा को जाने गुरु शंकराचार्य रामानुजाचार्य-बल्लभाचार्य के उपदेशों को नहीं जाना

जा सकता। संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है। महान् तपस्वी पूज्य पिताजी की ज्योति को आत्मसात् करने वाले पूज्य ऋषि केशवानन्द जी महाराज ने अपने महान् गुरु की शिक्षा-दीक्षा एवं आध्यात्मिक ज्ञान का पूर्ण लाभ उठाकर तदानुसार आचरण करके उनकी स्मृति में निर्धन निकेतन आश्रम की स्थापना हरिद्वार में करके उसमें "कवर्गीय" ऋषि संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की जो सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से सम्बन्धित है। पूज्य पिता जी रूहानी दुनियाँ के सम्राट् होते हुए भी अपने को अकिंचन मानते थे, स्वयं को निर्धन ही बताते थे इसलिए उनका 'निर्धन' उपनाम विश्वविख्यात हुआ।

ऋषि संस्कृत महाविद्यालय के छात्र विदेशों में भी अपने ज्ञान का प्रसार कर रहे हैं । महाराजश्री ने आश्रम में कई बड़े-बड़े धार्मिक अनुष्ठान किये हैं। तीन बार तो लक्षचण्डी महायज्ञ किए जो माँ जगदम्बा ने कठिन परीक्षाएँ लेकर सफल किये हैं। उक्त महायज्ञों में देश विदेश से श्रद्धालु भक्तजन, प्रकाण्ड विद्वान्, तपस्वी महात्मा, श्रद्धेय शकंराचार्य एवं आनन्दमयी माँ जैसी विभूतियाँ भी पधारीं। ऐसे महान् कर्मयोगी, तपस्वी, त्यागी ऋषि जी महाराज ने अनेक पैदल यात्राएँ भी की और अनेक प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार भी कराया। माता भुवनेश्वरी देवी मन्दिर का जीर्णोद्धार दि०११-७-६७ को कराया। फिर २८.१०.६८ को माता भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर मार्ग के मुख्य द्वार पर शंकराचार्य जी की भव्य मूर्ति स्थापित करायी। इस अवसर पर अनेक साधु सन्त एवं आसपास के श्रद्धालुओं ने एकत्र होकर बाजे-गाजे के साथ पुष्प वर्षा करते हुए महाराजश्री का यशोगान किया। ऋषि जी महाराज भी भारत की महान् संस्कृति एवं यहाँ के आध्यात्मिक जीवन का प्रचार-प्रसार देश विदेश में प्रभावी ढंग से करते हैं। आप अंहकार रहित होकर विद्वानों का सम्मान भी करते रहते हैं। आपकी वाणी में मृदुता, सुस्पष्टता और तत्त्व-विवेचन की अद्भुत क्षमता है। मुझे अनेक सन्तों के दर्शन व सत्सङ्ग का लाभ समय-समय पर प्राप्त होता रहा है किन्तु जो स्वाभाविक व्यक्तित्त्व ऋषि जी महाराज का जन-सामान्य को आकृष्ट करने वाला है वह अन्यत्र मुझे अप्राप्य लगा। यही कारण है कि मेरी लेखनी इन्हीं महापुरुष के द्वारा प्रेरक प्रसंगों को साकार रूप देने के लिए बलात् उद्यत हो उठी ।

पूज्य ऋषिजी महाराज ने तो अपने कार्यों से व तपस्या-साधना से अपने गुरु महाराज विरकां वाले परमयोगी महान सन्त श्री वंशीधर जी महाराज की कीर्ति-पताका को विदेशों तक फहराया । श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज ने अपने कृत्यों द्वारा संसार में यह प्रमाणित कर दिया है कि वे महान् गुरु श्री वंशीधर महाराज के महान् शिष्य हैं। मैं गुरु-शिष्य दोनों के आदर्श के प्रति नतमस्तक हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि आप की कृपा दृष्टि मुझ पर बनी रहे ।

"बस तेरी भक्ति और सेवा में मेरा मन रम जाये।"

*****

"पंगु चढ़इ गिरिबर गहन"

हंसराज धीगंड़ा

हैड-पोस्टमास्टर, (रिटायर्ड), पंजाब।

पूज्य ऋषि केशवानन्द जी महाराज की पचहत्तरवीं वर्षगांठ के अवसर पर, उनकी भक्तमण्डली उनके अभिनन्दन हेतु 'ऋृषिदर्शनम्' नाम से एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रही है, यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। ऋषि जी महाराज निश्चित ही अभिनन्दनीय महापुरुष हैं, उन्होंने तो मुझ जैसे 'पंगु' को पहाड़ चढ़ा दिया। मैं अनेक रोगों से ग्रस्त व्यक्ति, विशेषकर गठिया दर्द का मरीज, प्रतिदिन गर्मजल से स्नान करने वाला, गद्दे के बिस्तर पर सोने वाला, जोड़ों को मालिश करवाने वाला, वायु-विकार रहित अपने शरीर के अनुकूल गर्म भोजन करने वाला व्यक्ति, ऐसी स्थिति में भ्रमण और फिर तीर्थ-यात्रा जैसी दुर्गम यात्राएँ, मेरे लिए असम्भव ही थीं। देखता पूज्य ऋषिजी आये दिन कभी पैदल यात्रा, कभी समुद्री यात्रा, कभी हवाई यात्रा के लिए तैयार रहते। संगत में से बहुत से व्यक्ति बूढ़े-बच्चे सब जाते। मन में मेरे उनके संग यात्रा करने की बड़ी प्रबल इच्छा होती। अपने शरीर की स्थिति देख चुप कर जाता परन्तु मन के हिलौरे चैन न लेने देते, उधर ऋषि जी से कहने की हिम्मत भी न होती। बस इसी उधेड़-बुन में कई यात्राएँ ऋषि जी संगत को लेकर कर आयें। वर्षों बीत गये, परन्तु उनके साथ यात्रा करने की इच्छा बनी रही।

सन् १६८८ जून में पूज्य ऋषि जी महाराज की गंगोत्री-यमुनोत्री की पैदल यात्रा का कार्यक्रम बना। मैंने बड़ी हिम्मत करके आज्ञा मांगी। पता नहीं किस मौज में थे सन्त! बोले घबराता क्यों है ? चलो देखा जायेगा। मुझे इतना बल मिला, मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं, मै तैयार हुआ और यात्रा में शामिल हो गया। पूरे एक मास की यात्रा थी। सच मानों ठण्डे जल से स्नान करना, ऊँची नीची पहाड़ी भूमि पर सोना, कच्चा पक्का, ठण्डा गर्म जैसा भोजन मिलना, सब हजम। अपनी दैनिक दिनचर्या कपड़ा धोना इत्यादि सब कार्य स्वयं करना परन्तु कोई तकलीफ नहीं हुई। पूरी-यात्रा बड़े आनन्द से की। पूज्य ऋषि जी पूछते, क्यों हंसराज कोई परेशानी तो नहीं! मुझे तो मालूम नहीं हुआ, कि मुझे गठिया का दर्द भी कभी हुआ था। उनकी इस अहेतुकी कृपा का मैं ऋणी हूँ।

फिर सन् १६८६ के अगस्त के मास में महाराज जी अमरनाथयात्रा के लिए तैयार हुए। मुझे पता चला, मैनें भी चलने की आज्ञा मांगी। ऋषि जी मुस्कराते हुए बोले, 'हंसराज! वहाँ ठण्ड बहुत है, मार्ग कठिन है, तुम अपने शरीर की दशा देखो। मैंने हाथ जोड़ प्रार्थना की, महाराज जी पहले जैसी कृपादृष्टि कर दो। पूज्य

महाराज जी थोड़ी देर खामोश रहे । मुझे हाथ जोड़े बैठा देख पूज्य महाराज जी बोले, अच्छा फिर तैयार हो जा। मैं उनकी प्रेरणा और शक्ति के रहस्य को पहले से समझ चुका था, बस यात्रा में शामिल हो गया। यात्रा दस दिन की थी। नैना देवी, चिन्तपुरणी, ज्वाला जी, कांगड़ा देवी सब माताओं के दर्शन करते हुए, श्रीनगर होते हुए बाल-टाल पहुँचे, रात्रि का समय, बहुत बारिश, चिकनी-रेतली भूमि, पैर धंसने लगे, शरीर में कुछ परेशानी होने लगी, जमीन पर सोये, नींद नहीं आई, बस ध्यान करते-करते किसी तरह रात बीती। सुबह अमरनाथ जी के दर्शन, १४ किलोमीटर की चढ़ाई, मन में थोड़ी बैचेनी थी। ऋषिजी घूमते हुए हमारी तरफ हुए और बोले, हंसराज क्यों? कैसे? ''मैंने कहा महाराज!'' आपकी बड़ी कृपा है। महराज जी बोले 'अच्छा तुम्हारे लिए पालकी मंगवा दी है, तुम इसमें आना। पालकी वाला आया।' मैं पालकी में बैठा। कुछ एक माताएँ वृद्ध थीं वे भी पालकी में बैठीं। हम हंसते-खेलते भगवान् अमरनाथ के दर्शन करके रात्रि दस बजे वापिस आये, आने पर फिर बहुत बारिश हो रही थी और कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। शरीर में कुछ कष्ट तो रहा, परन्तु यात्रा पूर्ण कर ली। हृदय में बड़ा उल्लास था और यात्रा में बड़ा आनन्द रहा। ऋषि जी की इतनी कृपा हुई कि इस बार यात्रा के बाद मेरी लाठी जो प्रतिदिन टेक-टेक कर चलता था, वह छूट गयी। आजकल मैं बिना लाठी के चलता हूँ। ऐसे दयावान् को मैं शत-शत नमन करता हूँ।

इस असीम कृपा से मेरा हौंसला और बढ़ गया, कि अक्टूबर १९९७ में मैंने उनके साथ नाथद्वारा, द्वारिका, वापसी में वृन्दावन की यात्रा की । फरवरी १९९८ ई० में मैंने जगन्नाथपुरी, मदुराई सेतुबन्धरामेश्वरम्, बाला जी, कन्याकुमारी की यात्राओं का आनन्द लिया। अभी-अभी जून १९९९ ई० में मणिकरण, कुल्लू, मनाली और मनसादेवी (चण्डीगढ़) के दर्शनों का लाभ उठाया। धन्य है उनकी कृपा शक्ति ! जिसके सम्बल से मैं अनेक तीर्थों के दर्शन कर सका। मेरे शरीर की विपरीत स्थिति के बावजूद भी उन्होंने मुझे सुखपूर्वक दुर्गम से दुर्गम तीर्थ यात्राएँ करवा दीं। अतः सच है कि प्रभु कृपा से --

'पंगु चढ़इ गिरिबर गहन'।

मैं इसी भावपुष्पांजलि से पूज्य ऋषि जी को उनके **''हीरक जयन्ती समारोह''** के उपलक्ष्य में समर्पित होने वाले अभिनन्दनग्रन्थ का अभिनन्दन करता हूँ। यह अतीव स्तुत्य-कार्य है। इस के सम्पादकों और प्रकाशकों को धन्यवाद देता हूँ।

*****

साधन और साध्य

प्रो० राम माटा,
पी०ई०एस०(रिटायर्ड), पंजाब

संसार विज्ञान के अनन्य युग में से गुजर रहा हैं। विकास की आँधी ने उसे भ्रामक वेग से इतनी दूर लाकर खड़ा कर दिया है कि वह विज्ञानद्वीप का वासी बन गया है। जीवन के अनेक साधन उसे इस तेज़ी से इतने सुलभ हो गये हैं कि उनका मूल्यांकन नहीं कर सका। उपहार में मिले घोड़े के दाँत देखने को वह मूर्खता समझता है। विज्ञान की अपार शक्ति से वह नभशिखा से लेकर समुद्र थाह तक अपना शासन जमाने की धुन में पृथ्वी पर चलना भूल बैठा है। लक्ष्य दर्शक प्रकाश की दौड़ धूप में इतनी धूलि उड़ी है कि उसकी आंखें ही पथरा गई हैं। मार्ग को इतनी तन्मयता से अपनाया गया है कि दिशाभ्रम हो गया है और ध्येय की, मंजिल की सुध बिसर गई है। सच तो यह है कि विज्ञान, विकास अथवा जीवन का साधन न रह कर, विकास और जीवन ही विज्ञान का साधन बन गये हैं। विज्ञान के सहफलों (by products) के हम इतने वशीभूत हो गये है कि हम दिन-दिन अवैज्ञानिक होते जा रहे हैं। सिद्धान्त रूप से वैज्ञानिक बुद्धि विश्लेषणात्मक होती है। इसका लक्ष्य तत्त्व की खोज होता है। इसकी क्रिया विवेचनात्मक होती है। इसका निष्कर्ष कारण और फल का, क्रिया, कर्म प्रति-क्रिया का, साधन और साध्य का सम्बन्ध एवं निस्तार का, आविष्कार या परिपुष्टि होता है। असत् से सत् की ओर ले जाने वाले वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक चरम लक्ष्य से मनुष्य वह प्राप्त करता है, जो उसे प्राप्त करना चाहिए, जो उसे प्राप्त करना पड़ता है, जो प्राप्त करने को वह अत्यन्त व्याकुल होते हुए भी कई बार अपनी व्याकुलता का रहस्य खो बैठता है। विज्ञान की इस धांधली में थोड़ा सा गति-रोध लाकर क्या यह विचार करना अत्यन्त आवश्यक नहीं कि इस विश्व की विराट कल्पना का स्रोत स्वरूप 'मैं' क्या हूँ? यह तो एक अनिवार्य एवं असंदिग्ध तथ्य है कि 'मैं' सदा प्रवृत्त हूं। "जीवन", 'अथवा' मरण फिर पुनर्जीवन', एक अनवरत क्रिया के लिए हमारी सांसारिक भाषा की शब्दावली है। लेकिन इस अनिच्छा या स्वेच्छा प्रवृत्त वेग गति का साध्य क्या है, क्या हम साध्य की ओर ठीक से जा रहें हैं। क्या हमारे साधन में साध्य तक ले जाने के लिए पर्याप्त बल एवं कौशल है। विज्ञान यदि हमें इस रेखा पर प्रेरित होने को प्रेरित नहीं करता तो हमें वैज्ञानिक युग के प्राणी कहलाने का कोई अधिकार नहीं। या यूं कहिए कि हम किसी गल्प, आडम्बर, या अन्धविश्वास को विज्ञान का मिथ्या सम्मान दे रहे हैं।

क्या धन, ऐश्वर्य, मान, समाज-व्यवस्था, अधिकतम प्राणियों के नाश की शक्ति, या किसी मत सिद्धान्त के अनुयायिओं की अधिक से अधिक संख्या- इन में से कोई व्यष्टि या समष्टि रूप में हमारे (भूत विज्ञान, प्राणी विज्ञान या आत्मविज्ञान किसी दृष्टि से) अधिकतम मूल्यवान् जीवन का लक्ष्य हो सकते हैं ? या मैं इन में से कोई एक या सभी हूँ ?-जब भी हम गम्भीरता से इस विषय पर विचार करें, हमें ये प्रश्न उपहासात्मक प्रतीत होने लगेंगे। फिर मैं क्या हूँ, मेरा साध्य क्या है और उसके लिए उपयुक्त साधन क्या है ?

उषनिषदों ने यह तो बता दिया कि असत् से सत् की ओर जाना ही मानवधर्म का लक्ष्य है, इस से ही हम नश्वरता से अनश्वरता की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर जाते हैं। क्योंकि यह मार्ग हमें तमस् से ज्योति की ओर ले जाता है। असत् से सत् की ओर जाने का तथ्य समझने के लिए यह जरूरी है कि हम 'मैं' रहते हुए असत् से सत् की ओर जाने वाले 'मैं' को समझें। उस जाने वाले का दिग्दर्शन कराते हुए जब उपनिषदों ने 'तत्त्वमसि' का महामंत्र दे दिया तो हमारे लिए यह सब से बड़ी पहेली बन गई, क्योंकि इस अवाक कर देने वाले उत्तर में सब से बड़े प्रश्न निहित हैं-- वे प्रश्न जिन्हें युग युगान्तर के अन्वेषण ने अन्त में 'नेति' शस्त्र से बहिष्कृत कर दिया।

हमारी बहुत बड़ी समृद्धि यह है कि कल्प-कल्पान्तर की कल्पनाएँ, युगयुगान्तरों के अभ्यास, दिक्-दिगन्तरों के दर्शन, मनु-मन्वन्तरों की ऋषि-मुनि परम्परा, हमारी सम्पत्ति है। देश-देशान्तरों से भूत-वर्तमान से इस पथ पर पदार्पण करने वाले अनेक साधक और जिज्ञासु हमारे सहयात्री हैं। अनिर्दिष्ट शास्त्र बाहुल्य तथा विचार सामग्री असमर्थता और अराजकता के चिह्न होते हैं। इस दिशा में भी हमारे समान कोई भाग्यशाली नहीं क्योंकि पूजनीय ऋषि जी का वरद हस्त हमारा मार्ग निर्देशन कर रहा है। दातृत्व ही भगवान् का धर्म है। अपनी त्रुटियों और अपराधों की लज्जा से चाहे हम में उसके द्वार पर दस्तक देने का साहस न हो, तदपि उसका मातृत्व हमें उसके स्नेह की अपार वृष्टि से वंचित नहीं करेगा। उसकी गोदी में पहुंचने के लिये हमारे लिए द्वार खुले हुए हैं।

*****

भारत के प्राचीन ऋषियों की शिक्षा-परम्परा और ऋषि केशवानन्द

डा० कृष्ण कुमार
पूर्व-संस्कृतविभागाध्यक्ष
गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उ०प्र०)

प्राचीन भारत की शिक्षा परम्परा अति गौरवमयी थी। प्रत्येक भारतीय को उसके वर्ण, लिंग आदि के भेदभाव की अपेक्षा किए बिना शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था तथा उसके शिक्षित होने की आशा की जाती थी। प्राचीन ऋषियों ने शिक्षा के गौरवमय इतिहास का निर्माण किया था। वशिष्ठ, विश्वामित्र, कण्व, भारद्वाज, वामदेव, अगस्त्य, वाल्मीकि आदि महान ऋषियों ने विद्या को ही ब्रह्म का रूप मानकर उसकी प्राप्ति के लिए तथा लोक में उसका प्रचार-प्रसार करने के लिए अपने को सम्पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया था। उन्होंने यह परम्परा स्थापित की कि विद्याध्ययन के योग्य आयु का हो जाने पर बालक को उसके माता पिता द्वारा आचार्य की सेवा में उपस्थित किया जाए तथा आचार्य उस बालक को उपनयन संस्कार द्वारा अपना अन्तेवासी बना ले। आचार्य उस बालक को शिक्षा की अवधि तक अपने कुल में रखे और शिक्षा पूरी होने पर समावर्त्तन संस्कार करके संसार के क्षेत्र में प्रविष्ट होने की अनुमति प्रदान करे। शिक्षा की इस सम्पूर्ण अवधि में उस छात्र, अन्तःवासी के निवास, भोजन, वस्त्र, शिक्षा आदि सम्पूर्ण कार्यों और व्ययों का उत्तरदायित्व आचार्य का ही होता था। शिष्यों पर यह एक ऋषि ऋण था जो कि वे किसी भी विधि से समावर्त्तन संस्कार के समय गुरु के लिए सर्वस्व समर्पित करके भी उस ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करते थे।

भारत देश के लिए यह एक महान दुर्भाग्य का ही विषय था कि विदेशी आक्रमणों की निरन्तरता ने जहाँ एक ओर भारत को राजनीतिक दृष्टि से पराधीनता दी, वहीं उसके सांस्कृतिक गौरव का भी विनाश किया। इस विनाशलीला में भारत की शिक्षा-व्यवस्था को सर्वाधिक क्षति पहुँची । शिक्षा का प्रसार अवरुद्ध हो गया और भारतीय समाज के अनेक अंग शिक्षा से बिल्कुल वँचित हो गए। शिक्षा का प्रसार यहाँ तक अवरुद्ध हुआ कि उच्च जातियों के भी बालकों ने पढ़ना, लिखना छोड़ दिया और वे शिक्षा से वंचित रह गए। स्त्रियों और निम्न वर्ण के व्यक्तियों को तो शिक्षा से वंचित होना ही पड़ा। भारत में मुसलमानों और अंग्रेजों द्वारा की गई राज्यों की स्थापना ने तो शिक्षा के प्रसार को बहुत अधिक अवरुद्ध किया।

यह एक महान् दुःख,पश्चाताप, दुर्भाग्य और असम्भाव्यता का विषय है कि जिन भारतीय ऋषियों, मनस्वियों, वीरों और व्यापारी भारतीयों ने सम्पूर्ण विश्व में अपना धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और व्यापारिक

प्रभुत्व स्थापित किया था और जो सम्पूर्ण विश्व के गुरु और शिक्षक थे, वे ही पराधीन होकर प्रत्येक दृष्टि से विदेशियों के गुलाम हो गये। इस गुलामी के युग में भारतीय जनों के शरीर ही नहीं, मन, हृदय और चित्तवृत्तियाँ भी गुलाम हो गयीं। इनको अपनी वस्तुओं और परम्पराओं में गुण दिखाई देने बन्द हो गये और विदेशी वस्तुयें तथा परम्परायें ही अच्छी लगने लगीं।

अंग्रेजी राज्य की मध्यावधि में और अन्तिम समयों में अनेक मनीषियों ने शिक्षा के प्रसार के लिये और प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति को पुनः प्रचलित करने के लिए पग उठाये थे। अनेक साधु-महात्माओं ने भी अपने मठों और मन्दिरों में विद्यालयों की स्थापना की। शिक्षा के प्रसार को उन्होंने परम पुण्य और समाज के लिए कल्याणकारी माना। यहां विद्यार्थियों के लिये छात्रावास भी बने। इनमें छात्रों का भोजन, वस्त्र तथा निवास के साथ ही जीवन की अन्य सुविधायें भी उपलब्ध हुई। छात्रों को यहां विद्याध्ययन का पूरा अवसर मिला और अन्य सांसारिक प्रवृत्तियों तथा संघर्षों से मुक्त होकर वे विद्याध्ययन में ही सम्पूर्ण रूप से संलग्न हो गये। देश के धनी-समृद्धिशाली जनों ने इस पुण्य कार्य मे पूरा सहयोग प्रदान किया।

ये साधु-महात्मा वर्तमान युग के ऋषि ही हैं। इन ऋषियों में "ऋषि केशवानन्द" बहुत प्रसिद्ध मनीषी हैं। स्वयं भी संस्कृत जगत् के अग्रगण्य विद्वान हैं। इन्होंने हरिद्वार के खड़खड़ी स्थान पर "बाल ब्रह्मचारी मिशन" की स्थापना करके निर्धन निकेतन नामक संस्था को जन्म दिया और उस आश्रम के अन्तर्गत विविध शिक्षा संस्थाओं का संचालन कर रहे हैं। इस प्रकार शिक्षा-जगत् में हम ऋषि केशवानन्द को प्राचीन ऋषि-परम्परा और आचार्यों की श्रेणी में रख सकते हैं। ऋषि केशवानन्द की कृतियों का अवलोकन करते हुए उन प्राचीन कुछ ऋषियों और आचार्यों का एक संक्षिप्त दिग्दर्शन करना समुचित होगा --

अगस्त्य --प्राचीन भारतीय साहित्य और इतिहास में महर्षि अगस्त्य भारतीय धर्म, संस्कृति और शिक्षा के प्रचारक तथा प्रसारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। उत्तर भारत, दक्षिण भारत और उस से भी परे दक्षिण-पूर्व द्वीपों में इनका नाम आदर से लिया जाता है। विन्ध्यपर्वत की ऊँचाइयों को पार करके वे दक्षिण भारत में कुमारी अन्तरीप तक पहुँचे और वहाँ से जावा, सुमात्रा, मलेशिया आदि द्वीपों में जाकर इन्होंने भारतीय शिक्षा का प्रसार किया।

प्राचीन साहित्य में अगस्त्य के आश्रमों की स्थिति भारतवर्ष के अनेक स्थानों पर वर्णित है जो हिमालय से लेकर दक्षिणी समुद्र तक फैले हुए थे। 'रामायण' के अनुसार अगस्त्य ऋषि का विद्या केन्द्र गोदावरी

नदी के तट पर था। अपने समय में यह वेदान्त दर्शन की शिक्षा का महान् केन्द्र रहा होगा। भवभूति ने वर्णन किया है, कि वाल्मीकि के आश्रम से एक तापसी वेदान्त का अध्ययन करने के लिए अगस्त्य के आश्रम की ओर जा रही थी। महर्षि अगस्त्य धनुर्विद्या के भी महान् आचार्य थे। उन्होंने वनवास की अवधि में वनों में आने वाले राम को दिव्य आयुध दिए थे तथा उनका संचालन सिखाया था। वर्तमान समय में नासिक से १३ मील दूर अकोला ग्राम में अगस्त्य के प्राचीन आश्रम की पहचान की गई है।

कण्व -- कण्व वैदिक परम्परा के ऋषि थे। इनके आश्रम की प्रसिद्धि एक महान् विद्या केन्द्र के रूप में रही थी। कण्व को कुलपति भी कहा गया था। प्राचीन परम्पराओं के अनुसार कुलपति वह होता है जो दस हजार छात्रों के विद्याध्ययन तथा भरण-पोषण का प्रबन्ध करने में समर्थ होता है।

कण्व के आश्रम की प्रसिद्धि शकुन्तला के कारण बहुत हुई। यह कथा 'महाभारत' और 'पद्मपुराण' में विशेष रूप से लिखी है। विश्वामित्र मेनका के संयोग से उत्पन्न शकुन्तला को महर्षि कण्व ने अपनी पुत्री बना कर पाला था। महाकवि कालिदास ने दुष्यन्त-शकुन्तला की कथा द्वारा इस कहानी को अजर-अमर कर दिया।

कण्व महर्षि के विद्या केन्द्र में अनेक आचार्य रहते थे तथा अनेक विषयों का अध्ययन होता था यथा वैदिक संहितायें, वेदाङ्ग, वैदिक मन्त्रों के विभिन्न पाठ, कल्पसूत्र, शिक्षा, धनुर्विज्ञान, शब्दविज्ञान, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ब्रह्मविद्या, मोक्ष, धर्म, लोकायत, भौतिक विज्ञान, न्याय, गणित, विविध कलायें, द्रव्य, गुण, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि कण्व के आश्रम और विद्या केन्द्र की पहचान की गई है, यह वर्तमान गढ़वाल के कोटद्वार से छः मील पश्चिम में हरिद्वार-कोटद्वार मार्ग पर स्थित है।

जाबालि -- कुलपति और आचार्य के रूप में सत्यकाम जाबालि का नाम बहुत प्रसिद्ध है। प्राचीन साहित्य में इनका उल्लेख अनेक बार हुआ है। अनेक संस्कृत कवियों ने महर्षि जाबालि के आश्रम, तपोवन और विद्याकेन्द्र का वर्णन किया है। बाण ने 'कादम्बरी' कथा में विन्ध्यारण्य में स्थित जाबालि के विद्याकेन्द्र का विशद वर्णन किया है। बिज्जिका ने भी 'कौमुदी महोत्सव' नाटक में जाबालि के विद्याकेन्द्र का वर्णन किया है। इस गुरुकुल में राजकुमार भी विद्याध्ययन करने आते थे।

परशुराम -- जमदग्नि के पुत्र परशुराम धनुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य थे। इन्होंने स्वयं भगवान् शिव से धनुर्विद्या का अध्ययन किया था। इनका शिक्षा-संस्थान धनुर्विद्या का महान केन्द्र रहा था और महेन्द्र पर्वत

पर स्थित था। महाभारत में कथा प्रसिद्ध है कि गंगा ने अपने पुत्र देवव्रत (भीष्म) को धनुर्विधा की शिक्षा के लिये परशुराम के गुरुकुल में प्रविष्ट कराया था। यह भी प्रसिद्ध है कि परशुराम केवल ब्राह्मणों को ही अपने शिक्षणालय में प्रविष्ट करते थें परन्तु कर्ण ने अपने को ब्राह्मण कह कर परशुराम से धनुर्वेद का प्रशिक्षण लिया था।

वाल्मीकि -- 'रामायण' के रचयिता वाल्मीकि को संस्कृत भाषा का आदि कवि होने का गौरव प्राप्त है। इनका शिक्षा-संस्थान गंगा और तमसा नदियों के संगम पर स्थित था। यह स्थान अयोध्या से दक्षिण में जहाँ गंगा में तमसा नदी का संगम होता है, अवस्थित रहा होगा। अयोध्या से दक्षिण की ओर जाते हुए (वनवास की अवधि में) राम ने तमसा नदी के तट पर रात्रि व्यतीत की थी। वाल्मीकि जब प्रातः स्नान के लिए तमसा के तट पर गये तो एक व्याध के द्वारा मारे गये क्रौंच पक्षी को तथा उस के ऊपर क्रन्दन करती मंडराती क्रौञ्ची को देख कर उनको काव्य-लेखन की प्रेरणा प्राप्त हुई।

वाल्मीकि का शिक्षासंस्थान प्राचीन साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। राम के पुत्र लव-कुश ने यहीं पर सब विद्याओं का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। 'उत्तररामचरितम्' नाटक के अनुसार यहां बालिकायें भी विद्याध्ययन के लिए प्रविष्ट होती थी। एक तापसी यहाँ वेदान्त (निगमान्त विद्या) का अध्ययन करती थी। अध्ययन में विघ्न उत्पन्न होने पर वह अगस्त्य के आश्रम में चली गई। 'कुन्दमाला' नाटक के अनुसार वाल्मीकि अपने शिष्यों को साथ लेकर राम द्वारा आयोजित अश्वमेध यज्ञ में भाग लेने के लिए नैमिषारण्य गये थे।

भारद्वाज -- भारद्वाज ऋषि का नाम प्राचीन शिक्षाजगत् में बहुत प्रसिद्ध है वे वैदिक ऋषि हैं तथा इनकी गणना महान् कुलपतियों में की गई है। इनका आश्रम और विद्याकेन्द्र गंगा नदी के दक्षिणी तट पर उस स्थान पर था जो गंगा-यमुना का संगम स्थल हैं यह स्थान प्रयाग नाम से प्रसिद्ध है एवं अति पावन तीर्थस्थल है। भारद्वाज कुलपति थे तथा भौतिक दृष्टि से भी महान् सम्पत्तिशाली थे। 'रामायण' में वर्णन है कि राम के वनों मे चले जाने पर भरत ने उनको वापिस लाने का उद्योग किया। अयोध्या से चित्रकूट की ओर जाते हुए भरत ने गंगा को पार कर भारद्वाज के आश्रम में ही रात्रि व्यतीत की थी। भारद्वाज ने अत्यधिक राजसी ठाट-बाट से उनका आतिथ्य किया था। 'महाभारत' के अनुसार भारद्वाज ऋषि का एक शिक्षा संस्थान वर्तमान हरिद्वार के समीप भी था। इनके शिक्षा संस्थान (गुरुकुल) में अग्निवेश ने धनुर्विद्या का अध्ययन किया था। अग्निवेश ने द्रुपद और द्रोण को धनुर्विद्या का अध्ययन कराया था।

वसिष्ठ -- इक्ष्वाकुवंशियों के कुलगुरु वसिष्ठ का आश्रम और विद्या केन्द्र हिमालय की तलहटियों में था। ये वैदिक ऋषियों में गिने जाते हैं और अनेक सूक्तों के ऋषि हैं। प्राचीन साहित्य में इनके अनेक वर्णन मिलते हैं। कालिदास नें 'रघुवंश' के प्रथम सर्ग में वसिष्ठ के आश्रम और गुरुकुल का विशद वर्णन किया है! यहां अनेक छात्र अध्ययन करते थे। वे आश्रम के विविध कार्यो को सम्पन्न भी करते थे। आश्रम की कृषि की देखभाल, पशुओं का चराना और वनों से कुश-समिधाओं का लाना इनके दैनिक कार्य थे। वे यज्ञशालाओं की अग्नियों को प्रज्ज्वलित रखते थे। पुत्रप्राप्ति के उद्‌देश्य से दिलीप ने अपनी पत्नी सुदक्षिणा को साथ लेकर वसिष्ठ के आश्रम की यात्रा की।

वसिष्ठ इक्ष्वाकुवंशियों के कुलगुरु और कुलपुरोहित थे। अयोध्या में शिक्षा का प्रबन्ध करना भी इनके कर्तव्यों में था। वाल्मीकि ने 'रामायण' में अयोध्या के शिक्षा प्रबन्ध का विस्तार से वर्णन किया हैं। रामायण युग में अयोध्या शिक्षा और संस्कृति का प्रधान केन्द्र रहा था। यहाँ भगवान् राम अवतीर्ण हुए थे। महर्षि बाल्मीकि ने अयोध्या में अध्ययन की परम्परा का विस्तृत वर्णन किया है। यहाँ तैत्तिरीय, काठक, मानव आदि शाखाओं के वैदिक विद्यालय थे। ब्रह्मचारियों के संघ थे। वाल्मीकि ने इनको 'मेखलीनां महासंघाः' लिखा है। छात्रों के आवास स्थानों को आवसथ और आश्रम कहा गया था। यहाँ निरन्तर शिक्षा सम्बन्धी परिषदों, गोष्ठियों और शास्त्रार्थो का आयोजन होता रहता था।

वामदेव -- वैदिक परम्परा के ऋषियों में महर्षि वामदेव का नाम बहुत प्रसिद्ध है। अनेक वैदिक सूक्तों के वे ऋषि हैं। विन्ध्यपर्वत की मेखलाओं में जहाँ नर्मदा नदी का उद्‌गम होता है, वामदेव का आश्रम और शिक्षणालय था। उनकी गणना प्राचीन महान् यशस्वी कुलपतियों में की जाती है। दण्डी के 'दशकुमारचरित' के अनुसार कुसुमपुरी के राजा राजहंस के राजकुमार राजवाहन ने तथा अन्य नौ कुमारों ने वामदेव के गुरुकुल में ही विद्याध्ययन किया था। इस विद्याकेन्द्र में सभी प्रकार की विद्याओं की शिक्षा का प्रबन्ध था।

विश्वामित्र -- वैदिक परम्परा के ऋषियों में महर्षि विश्वामित्र का नाम बहुत प्रसिद्ध है। वे 'ऋग्वेद'के तीसरे मण्डल के ऋषि हैं। पुराण-इतिहास में प्रसिद्ध है कि विश्वामित्र पहले गाधिदेश के राजा थे और क्षत्रिय थे परन्तु महर्षि से पराजित होकर उन्होंने कठोर तप करके ब्रह्मर्षि पद को प्राप्त किया था।

विश्वामित्र का नाम महान् आचार्यो और कुलपतियों के मध्य आदर से गिना जाता है। कौशिकी (कुशी) नदी के तट पर इनका आश्रम और विद्याकेन्द्र अवस्थित था। यह नदी वर्तमान समय में कोसी के नाम से जानी

जाती है और उत्तरी बिहार में है। इसका जहाँ सरयू नदी में संगम होता है, वहीं महर्षि विश्वामित्र का आश्रम और गुरुकुल था। प्राचीन साहित्य में वर्णन है कि इनका आश्रम छात्रों के अध्ययन की ध्वनि से गुंजरित रहता था।

उपनिषदों की कथा के अनुसार राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में विश्वामित्र ने शुनःशेप के प्राणों की रक्षा की और इसको अपना शिष्य बनाया। 'रामायण' के अनुसार विश्वामित्र धनुर्विद्या के महान् आचार्य थे। इन्होंने राम-लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा का प्रबन्ध सौंपा था और विविध दिव्य आयुधों का ज्ञान प्रदान किया था। इनमें जृम्भकास्त्र बहुत प्रसिद्ध है।

व्यास -- महाभारत के रचयिता व्यास ऋषि महान् तपस्वी, लेखक और आचार्य के रूप में प्राचीन साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं। वे महर्षि पराशर और सत्यवती के पुत्र थे। अतः साहित्य में वे पाराशर तथा सत्यवतीनन्दन भी कहे गये हैं। व्यास के नाम से अनेक आश्रम प्रसिद्ध हैं, व्यास आश्रम की मुख्यतः स्थिति हस्तिनापुर के निकट गंगा के पार कल्पित की जाती है। गढ़वाल में गंगा और नयार नदियों के संगम पर व्यासघाट प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि यहां महर्षि व्यास का आश्रम और गुरुकुल था वहाँ पर व्यासगुहा और गणेशगुहा विद्यमान हैं जो कि बद्रीनाथ धाम से ऊपर माणा ग्राम में स्थित हैं। इतिहास और लोक में प्रसिद्ध है कि महर्षि व्यास ने यहीं पर 'महाभारत' का प्रणयन किया था और गणेश देवता उनके लिपिक बने थे। यही पर अट्ठारह पुराणों का संकलन किया गया था। व्यास के शिष्यों में सुमन्त, वैशम्पायन, जैमिनि और पैल अधिक प्रसिद्ध ऋषि हुये थे। अपने पुत्र शुकदेव को महर्षि व्यास ने स्वयं पढ़ाया था।

शौनक -- प्राचीन समय में नैमिषारण्य एक प्रसिद्ध शिक्षा संस्थान था। इसके कुलपति महर्षि शौनक शिक्षाविदों में बहुत प्रसिद्ध हुए। कहा जाता है कि इस संस्थान (गुरुकुल) में दस हजार विद्यार्थी विद्याध्ययन करते थे। प्राचीन इतिहास के अनुसार सूत्र-साहित्य की रचना नैमिषारण्य में महर्षि शौनक के गुरुकुल में ही हुई थी। शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य वैदिकोत्तर साहित्य में महर्षि शौनक प्रशंसित हैं तथा अनेक बार इनका उल्लेख किया गया है। उनको वेदों का व्याख्याता और सूत्र-साहित्य का रचयिता भी कहा जाता है।

सांदीपनि -- महाभारत कालीन ऋषियों और कुलपतियो में महर्षि सांदीपनि का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इनका शिक्षा संस्थान (गुरुकुल) उज्जयिनी के समीप शिप्रा नदी के तट पर था। वसुदेव ने अपने पुत्र कृष्ण को सांदीपनि के गुरुकुल में विद्याध्ययन के लिये प्रविष्ट कराया था। यहाँ सुदामा उनका सहपाठी था।

कृष्ण-सुदामा की मित्रता की कथा प्राचीन साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। साहित्य में प्रसिद्ध है कि सांदीपनि महर्षि ने कृष्ण से गुरुदक्षिणा मांगी कि वे उनके पुत्र को यमराज के लोक से वापिस लावें। कृष्ण ने गुरु की इच्छा को पूरा किया।

अन्य आचार्य -- ऊपर कुछ प्राचीन ऋषियों, कुलपतियों और शिक्षाविदों का वर्णन संक्षेप से किया गया है। इनके अतिरिक्त प्राचीन शिक्षापद्धति के इतिहास में अन्य भी अनेक आचार्यों, कुलपतियों और शिक्षाविदों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। उत्तरवैदिक काल में उपनिषदों के तथा सूत्र ग्रन्थों के युग में अनेक आचार्यों तथा ऋषियों के वर्णन किये गये हैं। इनमें कुछ महिलायें भी हैं। इनके नाम हैः- अजातशत्रु, अश्वपति कैकय, आरुणि, आसुरि, गार्गी, वाचक्नवी, जातुकर्णि, ताण्ड्य, नारद, याज्ञवल्क्य, मैत्रेय, धौम्य, सत्यकाम जाबाल, महीदास ऐतरेय इत्यादि। इन महर्षियों ने शिक्षा के प्रचार और प्रसार में महान् योगदान दिया था तथा भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति के विकास में इनका महान् योग रहा था।

वर्तमान समय में, जबकि हमारा देश पाश्चात्त्य संस्कृति से और उसी पद्धति की शिक्षापद्धति से बुरी तरह आक्रान्त है इस आक्रमण से जनसामान्य पूरी तरह से अभिभूत हो गया है। अनेक देशभक्त मनीषियों ने पाश्चात्त्य शिक्षापद्धति और अपनी प्राचीन शिक्षा पद्धति का समन्वय करने का प्रयास भी किया है। इस प्रकार उन्होंने अपनी प्राचीन परम्पराओं को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न भी किया है। इस प्रकार के प्रयास स्वामी श्रद्धानन्द, दर्शनानन्द, श्री राजाराम, श्री हीरालाल शास्त्री, श्री बुद्धदेव विद्यालंकार आदि महान् मनीषियों ने किये थे। इन्हीं की परम्परा मे **ऋषि केशवानन्द** का नाम अग्रगण्य है।

ऋषि केशवानन्द का धार्मिक कार्यों में महान् उत्साह है। हरिद्वार और फिरोजपुर के अपने "निर्धन निकेतन" आश्रमों के अतिरिक्त आप देश के विभिन्न स्थानों में धार्मिकसम्मेलन, भक्तिसम्मेलन, वैदिक सम्मेलन, संतसम्मेलन और विद्वद् गोष्ठियों का आयोजन करते रहते हैं। आपने शतचण्डी यज्ञ, सहस्रचण्डी यज्ञ और लक्षचण्डी महायज्ञों का भी आयोजन किया है। आप वर्ष में दो बार महारुद्राभिषेक का आयोजन करते हैं। देश के विभिन्न ग्रामों में, नगरों में, प्रान्तों, में, देश और विदेशों में आपका भ्रमण होता रहता है । इन स्थानों पर आप नियम से धर्म का प्रचार करते रहते हैं। कुम्भ के अवसरों पर प्रयागराज , इलाहाबाद, उज्जैन, नासिक और हरिद्वार में शिविरों का आयोजन कर आप धर्म का प्रचार करते हैं।

ऋषि केशवानन्द की अभिरुचि धार्मिक और सामाजिक कार्यों में बहुत अधिक है। अपने आश्रमों में आपने यज्ञशाला, गऊशाला, कृषिशाला, सत्संग भवन आदि का संचालन भी किया हुआ है। हरिद्वार और बहादराबाद में धर्मार्थ चिकित्सालय संचालित किये हुये हैं इनमें रोगियों की निःशुल्क जाँच होती है और बिना किसी मूल्य के औषधियाँ प्रदान की जाती हैं । आश्रम में अन्नक्षेत्र भी है। यहाँ सभी आगन्तुकों और अतिथियों को बिना किसी मूल्य के भोजन प्राप्त होता है।

इन धार्मिक और सामाजिक कार्यों के अतिरिक्त ऋषि केशवानन्द की विशेष अभिरुचि शिक्षाप्रसार की ओर है। खड़खड़ी के निर्धन-निकेतन आश्रम में आपने विविध श्रेणियों की अनेक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की हुई है। इनमें प्राथमिक शिक्षा से लेकर सर्वोच्च शिक्षा तक का प्रबन्ध है। प्राथमिक शिक्षा के लिए ऋषि बालविद्यालय है। इसमें छोटे बालकों की शिक्षा का अत्युत्तम प्रबन्ध है। ऋषि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में हाईस्कूल तक शिक्षा का प्रबन्ध है। ऋषि केशवानन्द जी का शिक्षा के सम्बन्ध में सर्वोत्कृष्ट कार्य ऋषि संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना है। इसमें प्रथमा से लेकर आचार्य उपाधि तक संस्कृत का अध्यापन होता है। इसमें सहशिक्षा का प्रब०२०४ हैं । पुस्तकालय का उत्तम प्रबन्ध है। विद्यालय के साथ छात्रावास है। इसमें छात्रों के लिये निःशुल्क भोजन आवास आदि की व्यवस्था है । इस संस्था के साथ ही ऋषि जी ने 'वैदिक अनुसंधान' की भी प्रायोजना की है।

ऋषिसंस्कृतमहाविद्यालय में प्राचीन शिक्षापद्धति का सम्पूर्ण आदर्श परिलक्षित होता है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। प्राचीन शिक्षा-पद्धति को आदर्श मानकर यहाँ गुरु और शिष्य का निरन्तर पवित्र संपर्क है। प्राचीन काल के कुलपतियों और आचार्यों के समान ऋषि केशवानन्द जी छात्रों की सभी प्रकार की उन्नति और सुविधाओं का स्वयं ध्यान रखते हैं।

हमारी कामना है कि ऋषि केशवानन्द जी दीर्घायु हों और स्वस्थ रहें और इसी प्रकार से शिक्षा ,संस्कृति, धर्म के प्रचार में संलग्न रहते हुये लोक का कल्याण करते रहें।

*****

निर्धन निकेतन-मन्दिर फिरोजपुर का निर्माण

रामप्रकाश नरूला,
सचिव, बाल ब्रह्मचारी मिशन
निर्धन निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार

श्रद्धेय सद्गुरुदेव ऋषि केशवानन्द महाराज जी ने निर्धन निकेतन आश्रम हरिद्वार की भान्ति ही पंजाब प्रान्त के फिरोजपुर जिला, धोबी मुहल्ला में श्रद्धालु भक्तों के योगदान व उनकी सच्ची-सुच्ची सेवा से निर्धन-निकेतन मन्दिर का निर्माण करवाया।

पूज्य ऋषि केशवानन्द महाराज जी के गुरुमहाराज 'तपोमूर्ति श्री बंशीधर जी' विरकां वाले पंजाब के सन्त सम्राट् थे, क्योंकि वर्ष १९२० से १९५६ तक पंजाब के प्रसिद्ध नगरों-लुधियाना, भटिण्डा, बरनाला, धूरी, फरीदकोट, मोगा, फिरोजपुर, कसूर, अमृतसर आदि में कोई सन्त आते जाते नहीं थे। श्रद्धेय श्री बंशीधर जी महाराज ही इन विभिन्न नगरों में धर्मप्रचार द्वारा जनता का मार्गदर्शन कर रहे थे। फिरोजपुर शहर पर तो उनका वरद हस्त था, यहाँ की जनता गुरुमहाराज की अनन्य भक्त थी।

सन्तशिरोमणि श्री बंशीधर महाराज जब ३ जून १९५६ को बैकुण्ठ धाम चले गये, तो सत्संगी-भक्त लोग व्याकुल रहने लगे। परन्तु जब भक्तों को यह पता चला कि गुरु महराज श्री बंशीधर विरकांवालों की स्मृति में हरिद्वार में उनके परमशिष्य ऋषि केशवानन्द जी ने सत्संगियों के योगदान से 'निर्धन निकेतन' नाम का आश्रम बनाकर गुरु महाराज की मूर्ति स्थापित कर दी है तो उन्हें धैर्य हुआ और वे पहले की तरह जैसे गुरुपूर्णिमा पर्व पर पूज्य बंशीधर जी के पास जगदीशआश्रम, खड़खड़ी, हरिद्वार में आते थे, उसी तरह पूज्य ऋषि केशवानन्द महाराज के चरणों में निर्धन निकेतन खड़खड़ी हरिद्वार में आने लगे।

इसी बीच फिरोज़पुर शहर नमकमण्डी में सनातनधर्म योगसभा द्वारा निर्मित श्री राधाकृष्ण मन्दिर में पूज्य श्री बंशीधर महाराज की कुछ शिष्याओं ने श्रीमती काहन देवी, केसरा देवी, श्रद्धा देवी, ईसरा देवी, चनन देई इत्यादि स्त्रियों ने दोपहर का सत्संग करना प्रारम्भ कर दिया। प्रत्येक मास के अन्तिम रविवार को ऋषि केशवानन्द महाराज जी का भी प्रवचन होता था। बड़ी संख्या में स्त्री पुरुष भाग लेते थे परन्तु प्रतिदिन दोपहर को माताएँ-बहनें गुरुदेव श्री बंशीधर जी की फोटो रख कर भजन कीर्तन करती थीं। देखा-देखी और महिलाओं ने

भी अपने-अपने गुरुदेव की फोटो रखना प्रारम्भ कर दिया। मन्दिर में अधिक संख्या में सन्तों की फोटो लगने लगी। सन् १९६०-१९६२ में मन्दिर में बहुत से सन्तों की फोटो लग गई, तब वहाँ के एक माननीय भक्त ने घोषणा कर दी; कि मन्दिर में भगवान की मूर्ति के सिवाय किसी भी सन्त की कोई भी फोटो नहीं लगेगी। सब फोटो उतार एक तरफ रख दी। उसमें पूज्य बंशीधर जी की भी फोटो थी। उस मास के अन्तिम रविवार जब पूज्य ऋषि जी मन्दिर में आये तो श्रीमती चनन देवी, ईश्वरा देवी, श्रद्धा देवी आदि माताओं ने सब बात ऋषि जी को बड़े दुख से सुनाई। लाला बहालीराम बजाज, जो उस समय बाल ब्रह्मचारी मिशन के सदस्य थे, कहने लगे कि ऋषि जी आप की आज्ञा हो तो फोटो को मैं सादर अपने घर में ले जाऊँ। श्री बहालीराम बजाज के हृदय में अपने गुरु महाराज के प्रति असीम प्रेम था। पूज्य ऋषि जी ने सब को आश्वासन दिया कि पिता जी की फोटो शीघ्र ही सम्मान के साथ ले जायेगें। ऋषि जी ने श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन की मीटिंग ली, उसमें इस बात पर चर्चा हुई, प्रस्ताव पारित हुआ कि शीघ्र ही फिरोज़पुर शहर में भूमि लेकर एक छोटा मन्दिर बनवाया जाये तथा पूज्य श्री बंशीधर महाराज की फोटो को नगर परिक्रमा कराते हुए लाया जाये, बाद में उनकी प्रतिमा की स्थापना की जाये। पूजा-आरती, भजन-कीर्तन एवं सन्तों के प्रवचन हों, सन्त सम्मेलनों का आयोजन हों।

वर्ष १९६५ ई० में भूमि खरीदी गई , ऋषि जी की सत्प्रेरणा से उस पर सेवाकार्य बड़े जोरों से शुरू हो गया। फिरोज़पुर शहर में कारसेवा की धूम मच गई। श्री बहालीराम बजाज के अनथक परिश्रम से श्री ज्ञानचन्द बजाज आदि अन्य गुरुभाइयों-बहिनों के सहयोग से शीघ्र ही सत्सङ्ग-हाल का निर्माण हुआ। वर्ष १९६८ सन्तसम्मेलन रखा गया। निर्धन निकेतन मन्दिर के उद्घाटन समारोह के अवसर पर हरिद्वार से मूर्धन्य विद्वान्, सन्त-महन्त, महामण्डलेश्वर स्वामी रामस्वरूप जी महाराज, स्वामी डॉ० श्यामसुन्दर जी महाराज, स्वामी प्रकाशानन्द जी महाराज आदि पधारे। प्रसिद्ध कर्मकाण्डी पंडित दीनानाथ शास्त्री तथा अन्य ब्राह्मण समुदाय उपस्थित हुआ। बड़ी धूम-धाम से सनातनधर्म योगसभा मन्दिर से पालकी में पूज्य गुरुदेव श्री १०८ बंशीधर जी की फोटो सजायी गई। शोभायात्रा सायं ४.०० बजे प्रारम्भ हुई, मुख्य बाजार में से होती हुई दिल्ली गेट से निकल कर धोबी मुहल्ला निर्धन निकेतन मन्दिर तक सायं ८.०० बजे पहुंची। रास्ते में बाजार वालों ने पूज्य श्री बंशीधर जी महाराज की शोभायात्रा के स्वागतार्थ बड़े-बड़े सुन्दर कपड़ों के गेट बनवाये, पुष्पों की वर्षा की, गुरुमहाराज के ऊपर रूपयों-पैसों की न्योछावर की। भक्त लोग साधु-संगत को जलपान जगह-जगह करवा रहे थे, लड्डू और फल आदि बाँटे जा रहे थे। पूरे शहर में उनके सत्कार का तहलका-सा मच गया था। पूज्य

ऋषि जी सन्तों-महन्तों के सहित जनता के पुनः पुनः नमन को लेते हुए आशीर्वाद देते जा रहे थे। हर कोने से आवाज आ रही थी "सद्गुरु देव महाराज की जय," "ऋषि जी महाराज की जय," "साधु-सन्तों की जय," सभी देवियाँ खूब कीर्तन-भजन करती जा रही थी। मन्दिर के आंगन मे पहुँचकर खूब नाचने-गाने लगीं। श्रीमती शान्तादेवी, श्रद्धादेवी, दुर्गादेवी, ईसरादेवी और चनन देवी, बधाई का ढोलक बजा-गा रही थीं। ज्यों ही पालकी से श्री बंशीधर जी की फोटो उतार कर सिंहासन पर रखी, त्यों ही भक्तशिरोमणि लाला बहालीराम बजाज के आनन्द का कोई ठिकाना नही रहा। जय घोष का नाद इतना बुलन्द था, कि सब आश्चर्य चकित हो गये कि कहीं लाला को कुछ हो तो नहीं गया। लाला बहालीराम उस समय लाला बहालीराम नहीं लग रहे थे, लगता था कि कोई शक्ति बोल रही है। उस समय पूज्य ऋषि केशवानन्द जी ने लाला को अपनी बगल में लिया और शान्त करवाया। उस समय में उपस्थित सभी विद्वान, ब्राह्मण, संगीताचार्य इस उत्सव की प्रशंसा करने लगे। आज भी उस शोभायात्रा के दृश्य का स्मरण आते ही रोमाँच हो जाता है, तत्पश्चात् सहस्त्रचण्डीयज्ञ पूर्ण हुआ और सन्तसम्मेलन कार्य सम्पन्न हुआ।

इस के पश्चात् प्रायः प्रतिवर्ष वार्षिक सन्तसम्मेलन होता चला आ रहा है। पहले भगवती जगदम्बा के मन्दिर का निर्माण हुआ और माँ शेरों वाली की मूर्ति की स्थापना हुई, फिर श्रीराम मन्दिर, श्रीकृष्ण मन्दिर, शिव-परिवार मन्दिर, श्री हनुमान जी का मन्दिर आदि क्रमशः बनते रहे। परन्तु गुरुदेव श्री बंशीधर महाराज की फोटो की ही पूजा होती थी। विगत वर्ष दि० ११.६.६८ को सन्तशिरोमणि श्री बंशीधर महाराज जी की संगमरमर की पालकी बनवा कर उनकी मूर्ति की स्थापना की गई। यह पालकी फरीदावाद निवासी श्री सतपाल बजाज ने बड़ी श्रद्धा से बनवाई। मूर्ति का स्थापना समारोह भी धूम-धाम से मनाया गया। देश विदेश के विद्वान पंडित, सन्त-महन्त, संगीतज्ञ पधारे थे। इस वर्ष १४, १५, १६ मई १६६६ ई० में त्रिदिवसीय ज्ञान-भक्ति सम्मेलन हुआ, कार्यक्रम की सुन्दर व्यवस्था थी। इस मन्दिर में आयोजित सम्मेलनों में फिरोजपुरवासियों का भाग्योदय हो गया। घर बैठे ज्ञान, भक्ति और सत्कर्म की त्रिवेणी में स्नान मिल गया। सन्त महापुरुषों के दर्शन-श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हो गया।

आज गुरु महाराज की अपार कृपा से निर्धन निकेतन मन्दिर में भक्तों की भीड़ लगी रहती है। प्रतिदिन प्रातः सायं आरती पूजा प्रवचन होते हैं। बृहस्पतिवार को स्त्रीसत्संग होता है। मंगलवार रात्रि को सामूहिक

रूप में खूब आनन्द से हनुमान चालीसा का पाठ होता है। जन्माष्टमी, दीपावली आदि त्यौहार बड़े उत्साह से मनाये जाते हैं। प्रसाद बंटता है। जन्माष्टमी को झाकियाँ निकाली जाती हैं। कभी कभी आये विशेष साधु सन्तों के प्रवचन भी होते हैं। इस मन्दिर के निर्माण से फिरोजपुर की स्थानीय जनता को शुभ-कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

इस मन्दिर के निर्माण में यूँ तो फिरोज़पुर वासी सभी लोगों का सहयोग रहा है परन्तु लाला बहालीराम बजाज़, उनकी धर्मपत्नी ईसरादेवी बजाज, सुपुत्र धर्मपाल बजाज, सुपुत्री श्रीमती राजरानी, दामाद श्री जनकराज मोंगा की सेवाएँ भुलायी नहीं जा सकती। वर्तमान में उनके सुपुत्र श्री रामपाल बजाज, निर्धन निकेतन मन्दिर की सारी व्यवस्था देख रहे हैं। अनथक परिश्रम एवं सूझबूझ से मन्दिर के कार्य को गति दे रहे हैं। भगवान उन्हें सत्कार्य करने का और बल दे। सत्कारयोग बाबा जीवनसिंह बेदी ''गुरु अंश'' का इस मन्दिर के निर्माण व विकास में प्रारम्भ से ही सत्परामर्श मिलता रहा है। आप निर्धन निकेतन मन्दिर के कार्यकर्ताओं का मनोबल बढ़ाते रहते हैं। सेवा करने वालों में रामभक्त श्री मनोहर लाल, श्री मोहन लाल धवन, श्री केवलकृष्ण, श्री ज्ञानचन्द बजाज, श्री दर्शनलाल जी, श्री राम स्वरूप, श्री बरकत लाल, श्री हरिराम अरोड़ा आदि भक्तों की सेवायें और सर्वश्री मती निर्मल रानी, अविनाश रानी, सुदेश रानी, ओमा देवी, स्वर्णा रानी, बिमला देवी, प्रसन्नता देवी आदि देवियों की सेवाएँ भुलायी नहीं जा सकतीं। ये सब गुरुभक्त आज भी गुरुघर की सेवा व भक्ति में संलग्न हैं। यह सब पूज्य ऋषि जी महाराज की सत्प्रेरणा का फल है। आज फिरोजपुर में बने मन्दिरों में यह 'निर्धन निकेतन मन्दिर' अपनी अलग पहचान बनाये हुए है। जनता की इस मन्दिर में पूर्ण निष्ठा है। प्रतिदिन हजारों भक्त मन्दिर में दर्शन को आते हैं।

हमारी कामना है कि निर्धन निकेतन आश्रम हरिद्वार की तरह ही ये निर्धन निकेतन मन्दिर फिरोजपुर जनता-जनार्दन की आध्यात्मिक प्रवृत्ति को बढ़ाता हुआ जनता का कल्याण-मार्ग प्रशस्त करे।

* * * * *

ऋषि, सृष्टि की मूल्यवान कड़ी है

डॉ० गिरीशचन्द्र त्रिपाठी,
सम्पादक,
“दूधाधारी-वचनामृत” पत्रिका, हरिद्वार।

मन्त्रगत ज्ञान के साथ जिसने मन्त्रों को भी समाधि की दशा में अपने निर्मल अन्तःकरण में प्राप्त किया, उसे 'ऋषि' कहा गया है। ऋषि वेदमन्त्रों के द्रष्टा तथा स्मर्ता भी है **“ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः”**। ऋषि महान् तपस्वी, सिद्धयोगी, त्रिकालदर्शी तथा भविष्य की अद्‌भुत घटनाओं के दर्शक थे। जल, वायु, अग्नि आदि प्रकृति भी उनके वशीभूत होती थी तथा वे चराचर सारे ज्ञातव्य विषयों को जानते थे। अरण्यों में पावन जीवन व्यतीत करने वाले, ईश्वर की दिव्य विभूतियों में रमण करने वाले वे ऋषि स्थितप्रज्ञ हो सदा आत्मरस में विभोर रहते थे। **'आत्मवत्सर्वभूतेषु'** के अनुसार वे सम्पूर्ण सृष्टि में अपने को तथा अपने में सारी सृष्टि को देखते थे, और यही कारण है कि वे जड़ और चेतन सभी से समान रूप से बातें तथा व्यवहार करते थे। ऋषि गोपालक व गोसम्वर्द्धक, वेदरक्षक व देवोपासक, यज्ञ-दान-तप के साधक, गोत्रप्रवर्त्तक और अध्यात्मचिन्तक, अहिंसक, अपरिग्रही तथा सत्याचरण पर दृढ़ रहते थे। वे मन, वचन और कर्म से सम्पूर्ण चराचर जगत् के पूजन, सेवन तथा आराधन को भी यज्ञ माना करते थे। वेदों तथा स्मृति ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि ऋषिगण सत्यवक्ता, धर्मात्मा, ज्ञानी तथा शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय-सदाचार और अपरिग्रह के साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। साथ ही वे ब्रह्मतेज से सम्पन्न और दीर्घकालिक समाधि द्वारा तप का अनुष्ठान किया करते थे। उनका आश्रमस्थान पुण्यसलिला नदियों का सामीप्य, शान्त-तपोवन तथा पर्वतों की उपत्यकाओं में हुआ करता था। इस प्रकार सम्पूर्ण वेदों के मन्त्र, उनके अर्थ, मानवी-संस्कृति व सभ्यता, ज्ञान-विज्ञान तथा शास्त्रों के विविध ज्ञान हमें ऋषियों से ही विरासत में प्राप्त हुए हैं, इसलिए ऋषि सृष्टि की मूल्यवान् कड़ी हैं।

'ऋषी गतौ' से **'इगु्'** प्रत्यय करने पर **'ऋषिः'** शब्द निष्पन्न होता है। यहाँ इगुपधा को कित्वात् गुण निषेध हो जाता है। ऐसी स्थिति में **'ऋषन्ति अवगच्छन्ति इति ऋषयः'** अर्थात् जो ज्ञानसम्पन्न मनुष्य है वह ऋषि है। **'ऋषी गतौ'** अर्थात् गत्यर्थक धातु है और **'गति'** के चार अर्थ कहे गये हैं -गमन, मोक्ष, इच्छा और प्राप्ति। यदि हम 'प्राप्ति' अर्थ स्वीकार करें तो इस प्रकार कहना पड़ेगा-**'ऋषन्ति प्राप्नुवन्ति तपसा वेदमन्त्रान् इति ऋषयः'** अर्थात् जो तिरोहित वेदमन्त्रों को अपनी तपस्या के द्वारा प्रकाशित करता है उसे **'ऋषि'** कहते हैं। आचार्यों तथा अनेक शास्त्रकारों ने विभिन्न प्रकार से **'ऋषि'** शब्द की व्युत्पत्ति दर्शायी है।

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा।। (महाभारत)

ऋषियों की संख्या कितनी है, इसका सटीक उत्तर देने हेतु विशेष अनुसंधान की आवश्यकता है। ऐसा कहा गया है कि मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की संख्या ४०३ है जिनमें एकाकी ऋषियों की संख्या ८८ तथा पारिवारिक ऋषियों की संख्या ३१५ है। पारिवारिक विभाजन कुल ४३ परिवारों के अन्तर्गत किया गया है। यहाँ विस्तार के भय से उनका नामोल्लेख नहीं किया जा रहा है। जिन ऋषियों ने एकाकी अपने बलबूते पर वेदमन्त्रों को प्रत्यक्ष किया और इस साधना में अन्यों से सहायता नहीं प्राप्त की, उन्हें 'एकाकी ऋषि' तथा जिन्होंने वेदमन्त्रों के आविर्भाव में एकाधिकों की सहायता प्राप्त की, उन्हें पारिवारिक 'ऋषि' कहा गया है। इन ऋषियोंकी श्रृंखला में सप्तर्षियों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है जो पारिवारिक ऋषियों की कोटि में आते हैं। उक्त ऋषियों के कौटुम्बिक ऋषिगण भी अपने पूर्वजों की भाँति वेदों के पठन-पाठन में सदा अनुरक्त रहते थे जिसके कारण उनकी गणना भी पारिवारिक ऋषियों में होती है । इन सात पारिवारिक ऋषियों में गौतम परिवार ४, भरद्वाज परिवार के ११, विश्वामित्र परिवार के ११, जमदग्नि परिवार के २, कश्यप परिवार के १०, वसिष्ठ परिवार के १३ और अत्रि परिवार के ३८ ऋषि हैं। उन ऋषियों ने अपनी तपस्या में जितना परिश्रम किया उसी के अनुपात में उन्हें वेदमन्त्रों तथा सूक्तों की उपलब्धि हुई। वे सभी मन्त्रद्रष्टा ऋषि गोत्रप्रवर्त्तक भी थे। ऋग्वेद के उपलब्ध दस मण्डलों के पृथक्-पृथक् मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। जिन मन्त्रों वा मन्त्रसमूह सूक्तों का दर्शन जिन ऋषियों ने किया है, आदरार्थ उनका नाम उन-उन सूक्तों के साथ जोड़ दिया गया है। ऋग्वेद प्रथम मण्डल व दशम मण्डल के मधुच्छन्दा, गौतम, अगस्त्य, भृगु, उशना, कुत्स, अथर्वा, त्रित तथा संयु आदि मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। इसी प्रकार द्वितीय मण्डल के गृत्समद, तृतीय के विश्वामित्र, चतुर्थ के वामदेव, पञ्चम के अत्रि, षष्ठ के भारद्वाज, सप्तम के वसिष्ठ, अष्टम के कण्व और नवम के मन्त्रद्रष्टा ऋषि अंगिरा हैं। ऋषियों की तपः साधना और वैदिक उपलब्धियों की गरिमा के अनुसार उन्हें ऋषि, महर्षि तथा परमर्षि आदि उपाधियों से भी अभिहित किया जाता हैं। शास्त्रों में लिखा है कि ऐसे ऋषि जिनकी सन्निधि में साठ हजार विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) अन्न, वस्त्र ग्रहण करते हुए गुरुकुल में विद्या अध्ययन करते थे, उन्हें 'कुलगुरु' कहा जाता था। व्यास, वसिष्ठ, सन्दीपनि वैशम्पायन आदि ऋषियों की गणना इसी कोटि में की जाती है। पुराणों के अनुसार सृष्टि की संरचना और सम्बर्द्धन में मुख्य रूप से महर्षि मरीची का विशेष योगदान रहा है। मरीची पुत्र कश्यप को दक्ष प्रजापति की कन्याओं सहित दिति, अदिति आदि तेरह कन्याएँ स्त्री के रूप में प्राप्त हुई थीं। उन्हीं के द्वारा देवता, दानव, पशु-पक्षी तथा मानव आदि चराचर जगत की

सृष्टि की गई- 'कश्यपात्तु इमाः प्रजाः' इस प्रसंङ्ग से स्पष्ट है कि हम सभी उन्हीं मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की सन्तान हैं, इसीलिये उनका कृतज्ञता-ज्ञापन करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है।

हमारे ऋषियों का मानव-जाति पर बड़ा उपकार है क्योंकि मानवधर्म, आचार-विचार, त्याग, तप, कला, ज्ञान-विज्ञान, राष्ट्र-संघटन, संस्कृति-सभ्यता तथा सामाजिक व्यवस्था आदि का सम्पूर्ण परिज्ञान हमें उन ऋषियों से ही प्राप्त हो सका था। ऋषियों का जीवन-दर्शन उनका उपदेश तथा निर्देश आज भी मानवमात्र के लिए परम कल्याणकारी है। ऋग्वेद के तमाम मन्त्रों के विश्लेषण से ऋषियों की जीवनशैली उनके विचारों-व्यवहारों तथा दर्शन का बोध होता है। इन मन्त्रों के आधार पर वे ऋषि पूजा-अर्चना को महत्त्व देते थे क्योंकि उन्हें ज्ञान था कि देवगण, तपस्वीजनों के मित्र होते हैं। यही कारण है कि अपूजक को वे पापी मानते थे। इसी प्रकार समाज की सुव्यवस्था के लिए वे परस्पर सहयोग करना आवश्यक समझते थे। उनका मानना था कि विद्वान पुरुष समाज के मस्तिष्क हुआ करते हैं। अतः उन्हें द्रव्यदान दिया जाना चाहिये। यह उन ऋषियों का अभिमत है कि दाता न कभी दरिद्र होता है, न उसे दुःख-क्लेश आदि ही सताते हैं। उसके यश की मृत्यु नहीं होती है और उसे लौकिक, पारलौकिक सभी सुख प्राप्त होते हैं। उनका निश्चय है कि धन-लक्ष्मी अस्थिर होती है अतः याचक को अवश्य ही धन देना चाहिये। ऋषियों का कहना है कि स्वार्थी व्यक्ति का अन्न-धन उत्पन्न करना सब व्यर्थ है। जो केवलादी है वह साक्षात् पापी है और वह सत्पथ में कभी नहीं जाता है। वे मानव-समाज के हितैषी पुरुषों को सम्मान देते थे, इसी कारण इन्द्र भी उनके उपास्य थे। ऋषि सदा अपनी बुद्धि को वेदज्ञान से समर्थ बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि उन्हें कानों में स्वर्णकुण्डल तथा गले में मणि धारण करने वाले वीर, उत्साही जनप्रिय, विद्याव्यसनी तथा दक्ष पुत्र प्राप्त हों। उनकी प्रबल सत्कामना होती थी कि उन्हें बलवान, सत्यवान, महायज्ञकारी तथा कुल की कीर्ति को ख्याति करने वाला, मानव-हितैषी महान पुत्र प्राप्त हो। ऋषिगण निन्दकों से कोसों दूर रहकर आलस्य से घृणा करते थे। वे गौ तथा ब्राह्मणद्वेषी और मांसभक्षक को अपना शत्रु मानते थे। दुष्कर्मियों, हिंसकों आदि से बचाव हेतु अग्निदेव की स्तुति करते थे। साथ ही यज्ञ, तप आदि करने वाले के हिंसकों को वे वध्य भी समझते थे। यज्ञों में आत्मशक्ति तथा मन्त्रशक्ति की जागृति के साथ दैवीशक्ति की भी स्फूर्ति होती है। इन्द्र देवता की प्रसन्नता से यह पृथ्वी अन्नादि से सम्पन्न हो जाती है, जिससे प्रजा का पालन-पोषण तथा सृष्टि का संचालन होता है-ऐसा मानकर ही ऋषिगण यज्ञासक्त होते थे। याज्ञिक शक्ति के उद्बुद्ध रखने के कारण ऋषियों के प्रति दैवीशक्ति तथा परमात्मशक्ति सदा जागरूक तथा अनुकूल रहती थी। इन्हीं शक्तियों के माध्यम से वे सम्पूर्ण पृथ्वी को सुख-समृद्धि से सम्पन्न रखते हुए मानवमात्र को परमतत्त्व का उपदेश देकर उनका मार्गदर्शन किया करते थे। उनका यह दर्शन

है कि हिंसक की बुद्धि निकृष्ट होती है अतः अहिंसा का पालन करना चाहिए। सत्याचरण ही हितकारी है और जो असत्य का पोषक है वही 'राक्षस' है। इस प्रकार ऋषि हमारी सृष्टि की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। जिन्होंने हमें मानवीय मूल्यों का निदर्शन करते हुए सचेत किया हैं।

ऋषियों की देन को हम भुला न सकें, हमारे अन्तस् में उनके प्रति श्रद्धा, निष्ठा और कृतज्ञता का भाव भरा रहे, ऐसा विचार कर ही हमारे आचार्यों ने सामान्य कर्मकाण्ड से लेकर महान् यज्ञों के सम्पादन में यत्र-तत्र सर्वत्र उन्हें स्मरण किया है। वेदों में विभक्त मण्डलों के नाम उन-उन मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के नाम पर रखा गया है विभिन्न मन्त्रों में ऋषियों को स्मरण किया गया है। इतना ही नहीं, ऋष्यादि न्यासों और विनियोगों में भी उन द्रष्टा ऋषियों के नामों का उल्लेख किया गया है और साथ ही यह भी चेताया गया है कि उन ऋषियों का विनियोग किये बिना जो भी कर्मकाण्ड किया जायेगा वह निष्फल हो जायेगा। ऋषियों के महत्त्व को दर्शाने के लिए ही वर्णों की पर्व-परम्परा में ब्राह्मणों के लिए श्रावणी (उपाकर्म) तथा ऋषि पूजन को सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया गया है। उन उपकारक ऋषियों ने देवों से मानवमात्र के कल्याण हेतु प्रार्थना की है कि हे देवो! आप सब मुझ मानव को सच्चरित रूप अच्छे पुण्यमय मार्ग पर चलने हेतु सावधान करें, विषयासक्ति रूप प्रमाद से पृथक् कर समुन्नत बनायें, यदि मुझ मानव से कोई पाप या अपराध बनता है तो उससे बचायें और मेरी रक्षा करें। हे देवो ! मुझे प्रशंसनीय, शोभन, पवित्र, शान्ति तथा आनन्दमय जीवन से संयुक्त करें।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः।। – अथर्ववेद ४/१३/१

भारतीय उन पौराणिक ऋषियों के जीवनदर्शन को सामने रखकर जब हम **"निर्धन निकेतन हरिद्वार"** के आश्रमाध्यक्ष **ऋषि केशवानन्द जी महाराज** के जीवनदर्शन पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें बहुत कुछ सामानता स्पष्ट झलकती है। ऋषिजी का सदा प्रसन्न व भव्य मुखमण्डल, श्वेत वस्त्र पर फहराती हुई सतोगुण की परिचायिका उज्ज्वल दाढ़ी तथा इर्द-गिर्द आत्मीयता का प्रकाश बिखेरती उनकी स्नेहसिक्त-वाणी सबको मानो **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का सन्देश देती है। वर्तमान इस करालकलि में जहाँ अशिष्टता, असभ्यता, कदाचार और हिंसा का ही बोलबाला है, ऐसी विषम परिस्थिति में भी ऋषिजी ने अपनी आर्ष-दिनचर्या को जारी रखा है, यह इनकी महनीय उपलब्धि है। जहाँ तक मैंने सन् १६८० से अब तक देखा है, उस आधार पर कह सकता हूँ कि ऋषिजी एक धर्मानुष्ठानरत, शक्ति की विशेष साधना के साधक, प्राच्य विद्या के व्रती, ऋषिकुल की परम्परा के संस्थापक

व व्यवस्थापक, पश्चिमी देशों में हिन्दू धर्म के प्रचारक-प्रसारक, हैं। वे ब्राह्मण-ब्रह्मचारियों के भोजन-आवास आदि के साथ उनकी शिक्षा-दीक्षा की उत्तम व्यवस्था, सहस्त्रचण्डी तथा लक्षचण्डी महायज्ञों का आयोजन, अपने शिष्यों एवम् भक्तमण्डली के साथ पैदल तीर्थाटन करना आदि के परम पोषक हैं। भागीरथी के पवित्र तट पर, या यों कहिये कि गंगा की निर्मलधारा पर ही निर्मित ऋषिजी का आश्रम गंगा की निर्मलता, पावनता और शीतलता को आत्मसात् किए जनहित तथा राष्ट्रहित में सतत् प्रवाहमान है। आश्रम में आगत अतिथियों, विद्वानों, साधु-ब्राह्मणों, धर्मानुयायियों तथा सद्गृहस्थों को समान रूप से भोजन, आवास आदि के द्वारा स्वागत किया जाता है। ऋषि-परम्परा के आश्रमों पर उसके अधिष्ठाता के व्यक्तित्व, उसकी जीवन शैली तथा उसकी त्याग तपस्या का स्पष्ट भाव सदा परिलक्षित होता रहा है। इस विधा को जीवित रखने वाले "ऋषि केशवानन्दजी महाराज" का कोई भी परिचित या अपरिचित व्यक्ति जब साक्षात्कार करता है तो उसे लगता है, कि उसका सम्बन्ध बहुत ही पुरातन है। ऐसी अनुभूति ऋषिजी की विमल चित्तवृत्ति, जागृत आध्यात्मिक चेतना, उदारभावना तथा निर्मल प्रेम के कारण ही होती है। जैसा कि हमने ऊपर कहा है, ऋषियों का लगाव, ईश्वरीय सृष्टिमात्र से होता है, फिर भी वे सात्विक, विद्वान्, गुणवान् तथा चरित्रवान् मनुष्यों से विशेष प्रसन्न होते हैं तथा हिंसक और वेदादि कृत्यों में विश्वास नही रखने वालों को पापी मानकर उनसे परित्राण हेतु अग्नि आदि देवों की आराधना करते हैं। यहाँ हम ऋषिजी की उदारता, सहृदयता और गुणग्राहकता के दो उदाहरण प्रस्तुत करने का लोभ-संवरण नहीं कर पा रहे हैं। घटना १९८४ अगस्त की है। उन दिनों मैं श्री राघवेन्द्र महाविद्यालय का प्राचार्य था। संस्था के संस्थापक ब्रह्मर्षि दूधाधारी बर्फानीजी महाराज का साकेतवास हो गया। आश्रम में घोर शोक तथा निस्तब्धता का वातावरण छाया हुआ था। मेरे छात्रावास में १५० छात्र निवास करते थे जो शोक की परिस्थिति में भूखे थे और उन पर किसी का ध्यान न था। पूज्य ऋषिजी महाराज अप्रत्याशित रूप से हमारे कार्यालय में पहुँच गये चूँकि उससे पूर्व ये कभी नहीं आये थे, अतः मेरा मन आश्चर्य मिश्रित श्रद्धा से भर उठा। ऋषिजी ने कहा-पण्डित जी! सभी आश्रमवासी शोकाकुल हैं किन्तु इस तरह कब तक चलेगा? ये ब्राह्मण-बालक कब तक भूखे रहेंगे ? इन सभी को आप निःसंकोच मेरे आश्रम में भोजन के लिए भेज दें क्योंकि वह भी आपका ही है। मैंने ऋषिजी का भावपूर्ण कृतज्ञता में दो बार चरण स्पर्श किया और उनकी आज्ञा को स्वीकार कर लिया, भोजन के लिए नहीं, अपितु उनके स्नेहातिशय आत्मीयता के लिए, जिससे दूर-दूर तक संकीर्णता का कहीं लेश न था। एक बार निर्धन निकेतन में सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश के संस्कृत निरीक्षकों, उपशिक्षा निदेशकों, अनेक मान्य शिक्षाविदों तथा अध्यापकों का सम्मेलन आयोजित था,

जिसमें मैं भी सम्मिलित हुआ था। सत्र समाप्त होने के बाद आगत लगभग ५०० लोगों के सामूहिक भोजन की व्यवस्था भी ऋषिजी ने ही की थी चूंकि बचपन से स्वपाककर्मी होने तथा पूर्वी ब्राह्मणों के संस्कार से जकड़े होने के कारण मैं कभी बाहर भोजन नहीं लेता हूँ। यह विषय ऋषि जी को ज्ञात है किन्तु उस दिन उनके मन में न जाने क्या हुआ और उन्होंने सत्र से निकलते हुए मुझे सैंकड़ों लोगों के मध्य महाविद्यालय-द्वार पर अपनीं दोनों बाहों से जकड़ लिया और कहा-पण्डितजी! सभी लोग हमारे यहाँ भोजन करते हैं किन्तु आप मुझे छोटा समझकर भोजन नहीं करते हैं? आज आपको भोजन करना ही होगा? मैं ऋषिजी की निरभिमानपूर्ण आत्मीयता से चकित हो उठा और हाथ जोड़कर उन से निवेदन किया-'महाराज जी'! मैं गृहस्थ हूँ, सदा आपका चरण छूकर आशीर्वाद लेता हूँ। सन्त के हाथ से प्राप्त भभूति को गृहस्थ श्रद्धापूर्वक सिर से लगाता है और उसे खा लेता है। क्या भभूति (राख) में कोई टानिक होता है? मैं आपको छोटा कैसे समझ सकता हूँ। मैंने आगे प्रार्थना की कि हम गृहस्थियों का भी कुछ नियम है जिसके कारण मैं कहीं भी सामूहिक भोजन नहीं करता हूँ। अन्त में ऋषिजी ने हमारी बात मान ली और पंडित त्रिलोकधर द्विवेदी जी के साथ फलाहार लेने को कहा जिसे मैंने स्वीकार कर लिया। यह थी ऋषिजी की आचार निष्ठा, सरलता-सहजता तथा **अमानिनः मानदः** का व्यावहारिक प्रयोग। ऋषि-आश्रम में ब्रह्मचारियों द्वारा सामूहिक सन्ध्या , सामूहिक वन्दना, सामूहिक धार्मिकग्रन्थों का निर्वचन श्रवण, सामूहिक अध्ययन, भोजन आदि की व्यवस्था भारतीय ऋषिपरम्परा को ही इंगित करती है। आश्रमीय यज्ञशाला में नित्यप्रति यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित कर होमाहुतियाँ देना, अग्निहोत्र की प्रथा को जारी रखने तथा महायज्ञों का समारोहपूर्वक आयोजन कर यज्ञदेवता को प्रसन्न करना सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण का प्रतीक है। पूज्य वयोवृद्ध सन्त ऋषिजी के प्रत्येक कृत्य स्वरूपतः, भावनात्मक तथा कर्मणा प्रत्येक दृष्टि से भारतीय ऋषियों की जीवन विधा को प्रकट करते हैं । यद्यपि इन्होंने अपनें आश्रम का नाम 'निर्धन-निकेतन' रखा है। (निर्गतं धनं यस्मात्) किन्तु मेरे संज्ञान में 'निर्धन-निकेतन' (निःशेषमशेषं धनं यत्र) ऐसा मानना चाहियें क्योंकि ऋषि तपोधन हुआ करते हैं और तपोधन के समक्ष भौतिक धन की कोई अहम्मन्यता नहीं रह जाती है, साथ ही आध्यात्मिक धन निःसीम होता हैं । यही कारण है कि ऋषिजी ने गंगा के पवित्र प्रवाह की भांति अपने आश्रम के सभी प्रकल्पों-विद्यालय, चिकित्सालय, अतिथि सेवा, गोसेवा और यज्ञ-यागादि को सुचारु रखा है। भारतीय मनीषा, संस्कृति-सभ्यता तथा प्राच्य ऋषि-परम्परा को जीवन्त रखने वाले ऋषिप्रवर स्वामी केशवानन्द जी महाराज को मेरा शत-शत नमन।

* * * * *

असञ्चय वृत्ति के पक्षधर ऋषि जी महाराज

शिवचरणदास मित्तल,
कोषाध्यक्ष, बाल ब्रह्मचारी मिशन
निर्धन निकेतन, खड़खड़ी हरिद्वार।

श्रद्धेय श्री वंशीधर जी महाराज कमाल के अपरिग्रही थे। अपने भक्तों से रुपया-पैसा किसी प्रकार की कोइ भी भेंट स्वीकार नहीं करते थे। यूँ भी उनको रुपये-पैसे की कोई आवश्यकता भी नहीं थी, वे पंजाब प्रान्त के भठिण्डा जनपद के विरक गाँव के जंगल में कुटिया में तपस्या करते थे। पूज्य ऋषि केशवानन्द जी महाराज की तरह उनका न कोई विशाल आश्रम था और न ही खर्चे के अन्य कोई कार्य होते थे। परन्तु ऋषि जी ने लोकक्ल्याण के लिए विविध शिक्षणसंस्थाएँ, धमार्थ चिकित्सालय, गोशालाएँ और यज्ञशालाएँ इत्यादि खर्च के अनेक कार्यकलाप प्रारम्भ किये हुए हैं। इसलिए वे अपने गुरु श्री बंशीधर जी की तरह अपरिग्रही तो नहीं बन सके किन्तु ऋषि जी जनता जनार्दन से उक्त कार्यों के लिए रुपये-पैसे की कभी कोई अपील भी नहीं करते हैं। हाँ, लोग आश्रम में आकर आश्रम के विविध कार्य-कलापों को विधिवत होता देख अपनी इच्छा से भण्डारे के लिए, गोशाला के लिए, चिकित्सालय के लिए, यज्ञ के लिए धन-सामग्री और दवाइयों इत्यादि का सहयोग देना चाहें तो मना नहीं करते हैं। जिस मद के लिए दान प्राप्त होता है उसी मद में ही खर्च कर दिया जाता है, फिर भी गुरुजी के अपरिग्रही नियम की पालना वह वर्ष में एक दिन के लिए करते हैं। वह दिन है गुरुपूर्णिमा का। यह सभी भक्त लोग जानते हैं कि ऋषि जी गुरु-पूर्णिमा के दिन किसी भी भक्त से कोई अनुदान-राशि अथवा भेंट स्वीकार नहीं करते हैं।

मैं लगभग ४० वर्ष से ऋषि जी के सान्निध्य में रह रहा हूँ और देख रहा हूँ कि ऋषि जी में संचय-बुद्धि की गन्ध भी नहीं है । उनका अपना कोई बैंक-बैलेंस नहीं है, कोई व्यक्तिगत खाता नहीं है। मात्र कोई भूल से ऋषि जी के नाम चैक भेज देते हैं तो वह चैक खाते में जमा हो कर "बाल ब्रह्मचारी मिशन" के खाते में जमा हो जाता है। इस निर्धन निकेतन आश्रम में प्राप्त-धन का, दान-सामग्री का सदुपयोग होता है। दान सामग्री सन्तों में, ब्राह्मणों में, असहाय व्यक्तियों में निर्धन कन्याओं के शादी-विवाह में उपयोग कर देते हैं। दोनों समय चाय-भोजन का खुला लंगर चलता है। जो दान प्राप्त होता है वह मुक्त हाथों सें बँटता है और सही पात्र को मिलता है। ऋषि जी की मानवजगत् को यह शिक्षा है कि "आज के लिए जुटाओ, कल की चिन्ता मत करों। संग्रह-बुद्धि बन्धन का कारण है, इस से अपनी आत्मा को मुक्त करो और आनन्द से जीओ हाँ, यदि लोग समझें

कि हम अपने लिए नहीं, अपने बच्चों के भविष्य के लिए धन का संग्रह कर रहे हैं तो पूज्य ऋषि जी का कहना है "कि यह सोच भी गलत है, क्योंकि

जो पूत-सपूत, तो क्यों धन संचय।
जो पूत-कपूत, तो क्यों धन संचय।।

'यदि पुत्र सुपुत्र है तो वह अपने लिए स्वयं ही पैदा कर लेगा, उसके लिए धन संचय की तो आवश्यकता ही नहीं और यदि पुत्र कुपुत्र निकलता है और वह माँ-बाप द्वारा कठिन मेहनत से कमाये हुए धन से जुआ खेलता है, शराब पीता है और अन्य दुर्व्यसनों में धन तथा समय नष्ट करता है तो उस के लिए धनसंचय करना व्यर्थ है। इस लिए सांसारिक कर्तव्य तो निभाओ परन्तु उस में इतने संलिप्त न हो जाओ कि बच्चों के भविष्य के लिए भी अच्छे-बुरे उपायों से धनसंचय करने में अपने जीवन का लक्ष्य भूल जाओ। जीवन का लक्ष्य अपनी अति अनिवार्य जरुरतों को कम से कम साधनों के उपयोग से पूरा करते हुए प्रभु-नाम की सच्ची सुच्ची कमाई करना है।"

प्रातः स्मरणीय ऋषि जी के ये अनमोल बोल स्पष्ट करते हैं कि वे असंचय-बुद्धि के पक्षधर हैं। उनका आचार-व्यवहार भी स्पष्ट करता है कि वे असंचय वृद्धि के पक्षधर हैं जब हम उन्हें जरूरतमन्द व्यक्तियों को अपने भक्तों से प्राप्त अन्न-वस्त्र-धन को प्रतिदिन बांटते देखते हैं। भक्तों द्वारा भेंट की गई वस्तुओं से सन्त-महापुरुषों, विद्वान् ब्राह्मणों, कर्मनिष्ठ अधिकारियों का सम्मान-सत्कार करते पाते हैं। किसी से कुछ न लेना बहुत बड़ा त्याग है, माया से सच्ची विरक्ति है परन्तु देने वालों से लेकर जरूरतमन्द में बाँट देना तो दोनों व्यक्तियों का ही कल्याण करना है और भी धन-सम्पत्ति ग्रहण कर अपने पास संचय न कर परोपकार के कार्यों में लगाना, यह संसारी-माया से बहुत बड़ी अनासक्ति है। ऐसे अनासक्त, असंचय-बुद्धि के धनी, पूज्य ऋषि जी महाराज! निश्चय ही अभिनन्दनीय महापुरुष हैं।

*****

'उन्नीसवीं शताब्दी के महापुरुष'

वैद्य मुक्ति नारायण झा
'नाड़ी विशेषज्ञ'
तिरूपति निदानकेन्द्र, भोपतवाला।

भगवत्-संविधानानुसार कालक्रम का वैशिष्ट्य एवं पृथकत्व निज निजारूप अथवा स्व-स्वरूपानुरूप ही दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि प्रत्येक युग की मात्र अपनी कालावधि ही नहीं होती है। अपितु उन के अपने पृथक-पृथक, प्रभाव, व्यवहार, संस्कार, गुण-धर्म, और परिणाम आदि संहिताओं एवं पुराणों में अनुवर्णित हैं। अवतारी पुरुषों, महापुरुषों और मनीषियों की भी फसल उगा करती है। एक ही समय में लगभग एक से विचारों वाले बहुत से महापुरुष संसार में अवतरित होकर जनसामान्य के आचार-विचार और व्यवहार को परिष्कृत एवं परिवर्तित करते हुये जनसमूहों के विविध दु:खों का विनाश करते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अनेक महात्माओं ने भारत भूमि को अपनी उपस्थिति से, अपने प्रभाव से आह्लादित किया। भारतीय जनता जनार्दन के साथ-साथ विश्व के जनसमुदाय को भी उन्होंने अपने आचरण और उपदेश के अमृत से धन्य किया, नव जीवन दिया, नई दिशायें दीं। 'पुरुषार्थों' की नवीन व्याख्याओं के साथ उनकी ओर जन-जन को प्रोत्साहित एवं अग्रसारित किया।

श्रीमत् रामकृष्ण परमहंस, श्रीमत् विवेकानन्द, श्रीमत् स्वामी रामतीर्थ आदि महापुरुषों की पीढ़ी जब अवसान के सान्ध्यपथ पर थी उन्हीं दिनों पंजाब और उत्तरी भारत में कई सन्त अपने दिव्य-प्रभाव-प्रभा से सर्वत्र उजास और उल्लास वितरित वितानित कर रहे थें। उन्हीं सन्तों में अप्रतिम प्रभाव, अटूट साधना-तप एवं कारुण्यौदार्यादि अनेक गुण-गणों से अलंकृत श्रीमत् वंशीधर जी महाराज भी थे। हरिद्वार के सुप्रसिद्ध संत स्वामी हीरादास जी अवधूत, श्रीमत् कमलदास जी एवं श्री स्वामी रामनाथ जी कालीकमली वाले आपके समकालीन महापुरुष थे। गरीबदासीय सन्त श्री शम्भूदेव जी से आप का बड़ा स्नेह था। उत्तर भारत में उस समय सन्त महात्माओं की तीन प्रकार की पंक्तियाँ रम रही थीं।

१. **उच्चकोटि के विद्वान्-शास्त्रज्ञ**-- जैसे श्रीमत् स्वामी गंगेशवरानन्द जी, स्वामी भगवदाचार्य जी, श्रीमत् स्वामी करपात्री जी, श्रीमत् स्वामी अनन्तपादीय विश्वकसेनाचार्य जी त्रिदण्डी, श्रीमत् पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, श्रीमत् दत्तात्रेय दामोदर सातवलेकर और अन्य बहुत से ।

२. **उच्च कोटि के सेवाभावी-समाज सुधारक सन्तगण** -- जो विभिन्न समुदायों, सम्प्रदायों और क्षेत्रों में समाज सुधार के कार्य कर रहे थे, लोकोपकारी संस्थाओं की सर्जना तथा सेवाभावी संगठनों की स्थापना भी सर्वाधिक इसी अवधि में हुई। सेवासमितियाँ, काली कमली वाले, संस्था-मारवाड़ी, रिलीफ़ सोसायटी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल, धर्म-महामंडल, धर्म-संघ, स्वर्गीय महामना मालवीय जी एवं श्री महात्मा गाँधी जी आदि महापुरुषों के द्वारा स्थापित संस्थायें--इसी कालावधि की देन हैं। सुप्रसिद्ध रामकृष्ण मिशन भी अपने पूर्ण प्रभाव में इसी समय से क्रियाशील प्रौढ़त्व को प्राप्त हुआ था।

३. **साधक-सिद्ध महात्मा अथवा निस्पृह सिद्ध सन्तगण** -- श्रीमत् कीनाराम जी, श्रीमत् काठिया बाबा, स्वामी हरिदास ज़ी, स्वामी रामकृष्ण जी, स्वामी भोलागिरि जी महाराज आदि का युग व्यतीत होकर स्वामी देवरहबा बाबा, बाँसुलिया बाबा, स्वामी श्रीमत् बलभद्राचार्य जी आदि निस्पृह सन्तों के तप से देश तेजोमय अवस्था को प्राप्त करता हुआ-स्वातन्त्रय लाभ की ओर अग्रसर हो रहा था।

श्रीमत् स्वामी वंशीघर जी महाराज इन्हीं चमत्कारिक सिद्ध तपस्वियों में अन्यतम महापुरुष थे। आपके जीवन में चमत्कारिक घटनाओं की एक श्रृंखला सी बनी रहीं। आज भी आपके भक्त घरानों में वे चमत्कार केवल सुने ही नहीं जाते, देखे भी जाते हैं। इन्हीं तपः पूत सिद्ध महापुरुष ने अपनी इच्छा शक्ति एवं दैवीय वरदान से **श्रीयुत ऋषि केशवानन्द जी महाराज** के अवतरित होने का सुयोग सुनिश्चित किया था।

श्री ऋषि जी महाराज की पूजनीया माँ श्रीमत् वंशीघर महाराज जी की सगी बहिन थी। श्री ऋषि जी का लालन-पालन, उनकी शिक्षा-दीक्षा, संस्कार-परिष्कार सब पूज्य गुरूजी श्री वंशीघर जी महाराज की सन्निधि में एवं उनकी देख-रेख में हुआ। युगानुरूप सार्वभौम चिन्तन का प्रभाव तो पड़ना ही था, **फलतः सन्तों की तीनों श्रेणियों का समन्वय श्री ऋषि जी में देखने को मिलता है। एक ओर वे पांडित्य-प्रेमी, विद्या-धनी विद्वान हैं तो दूसरी ओर सेवाधनी और समाज सुधारक भी हैं।** जप-तप का तो उनका शरीर ही है। वे विद्वान् विद्यानुरागी तप-सिद्ध ऐसे महापुरुष हैं जो लोकोपकार के लिये अपना सब कुछ होम कर देने, लुटा देने में तनिक भी संकोच नहीं करते हैं। श्री ऋषि जी महाराज के वैदूष्य, एवं सौशील्य वात्सल्यौदार्यादि महनीय गुणों का अनुभव उनके सम्पर्क में एक क्षण के लिये भी आये व्यक्ति को तुरन्त हो जाता है और वह उन्हें जीवन भर भूल नहीं पाता है

आपके द्वारा स्थापित संस्थायें, आश्रम, मन्दिर आदि को देखकर सहज ही आपके विचार, प्रयास एवं प्रभाव का ज्ञान हो जाता है। वे मूर्तिमन्त होकर आपकी तपःपूत प्रज्ञा को प्रदर्शित कर रही हैं। श्री महाराज जी के हीरक जयन्ती के अवसर पर हमारा आपको शतशः प्रणाम है।

*****

महान विभूति ऋषि केशवानन्द जी

डा० जयदेव वेदालंकार,
प्राच्यविद्यासंकायाध्यक्ष,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

यह जान कर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि स्वामी ऋषि केशवानन्द जी का अभिनन्दन किया जा रहा है और उस उपलक्ष में उन्हें "ऋषि दर्शनम्" अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जायेगा। ऋषि जी महाराज की हरिद्वार ही नहीं अपितु भारतीय आध्यात्मिक जगत् की विशिष्ट विभूतियों में गणना की जाती है। आप जहाँ एक सम्प्रदाय विशेष की पूजा पद्धति का अनुसरण करते हैं तथा वर्ष भर आप के यहाँ बृहत् यज्ञों का अनुष्ठान होता रहता हैं। आपके संस्कृत महाविद्यालय में लगभग दो सौ से अधिक छात्र अध्ययन करते हैं। ये सभी छात्र निःशुल्क अध्ययन करते हैं, इस के साथ ही इन से भोजनादि का किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता है। आप कभी भी धन की अपील भी नहीं करते हैं, केवल परमेश्वर पर अटूट विश्वास रखते हैं।

आज से लगभग १२ वर्ष पूर्व मैं आप के पास अखिल भारतीय दर्शन-परिषद् के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर आप के दर्शनार्थ पहुचाँ। बातचीत करते हुये मैंने आप से प्रार्थना करते हुये कहा कि हमारी संस्था तो आर्य समाजी है परन्तु आने वाले दर्शन के प्रतिनिधिगण तो सभी आर्यसमाजी नहीं होंगे। जिस दिन हम उन को हरिद्वार दर्शन करायेंगे, उस दिन आपके निर्धन निकेतन में उन सभी विद्वान् प्रतिनिधि गण को जो लगभग २०० की संख्या में होंगे उन्हें लायेंगे। स्वामी जी ने सहज-स्वभाव से कहा आप उन दर्शन विषय के विद्वानों को आश्रम में अवश्य लायें, बड़ी प्रसन्नता होगी। उन सभी विद्वानों के मध्याह्न भोजन की निर्धन-निकेतन में व्यवस्था रहेगी। मैं सुनकर अवाक् रह गया कि आज के युग में २०० व्यक्तियों को भोजन कराना सामान्य बात नहीं है। परन्तु उन्होंने इसी प्रकार तीन सेमीनारों में मध्याह्न का भोजन आश्रम निर्धन निकेतन में ही करवाया। सच है **"उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।"** स्वामी ऋषि केशवानन्द जी का जीवन एक महात्मा का जीवन है। उन के एक निर्धन निकेतन आश्रम में सात संस्थायें अहर्निश समाज की सेवा में लगी हुई हैं। प्राइमरी पाठशाला से लेकर 'क' वर्गीय ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, चिकित्सालय गोशाला और यज्ञशाला तथा वर्ष भर चलने वाला

अन्नक्षेत्रादि सभी संस्थायें समाज की आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक रूप में सेवा कर के हरिद्वार में ही नहीं इस समस्त क्षेत्र में प्रतिष्ठित हुई है। एक संस्कृत के नीतिकार ने महात्मा का लक्षण करते हुये कहा है–

विपदिधैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसिवाक्पटुता युधिविक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।

विपत्ति में धैर्यशाली होना, अपने अभ्युदयकाल में क्षमाशील रहना, सभा में वाक्पटु होना, युद्ध में पराक्रमी होना, ये सब गुण महात्माओं में स्वभाव सिद्ध होते हैं। मैं समझता हूँ जो भी व्यक्ति स्वामी ऋषि केशवानन्द के सम्पर्क में आया है वह भलीभांति जानता है कि महात्मा के यह लक्षण उन में साक्षात् रूप में विद्यमान हैं जब कोई भी व्यक्ति सद्गुणों का प्रचार एवं प्रसार करता है तो आसुरी वृत्ति के व्यक्ति सामने आकर खड़े हो जाते हैं। सज्जन व्यक्ति को अनेक प्रकार से हानि पहुँचाने को तत्पर हो जाते हैं। श्री ऋषि जी के विरोध में भी अनेक बार दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों ने दुष्प्रचार किया। स्वामी जी धर्मक्षेत्र की रक्षा के लिये पराक्रमी वीरपुरुष की तरह अपने कर्म पर दृढ़ एवं चट्टान की तरह स्थिर रहे। एक संस्कृत के महान् विद्वान् के ये वाक्य उन में अक्षरशः घटित होते हैं।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकारश्रेणीभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणुन् पर्वतीकृत्यनित्यं निजहृदिविकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ?

मन-वचन-कायिक पुण्य रूपी अमृत से भरे हुए, अपने उपकारों से तीनों लोकों को प्रसन्न करने वाले, दूसरों के परमाणु सदृश छोटे गुण को भी पर्वत सदृश महान् समझ कर अपने हृदय में प्रसन्न होने वाले, संसार में ऐसे कितने सन्त महापुरुष हैं ? ऐसे महापुरुष संसार में अत्यल्प ही होते हैं। उनमें ही हैं एक ब्रह्मचारी ऋषि केशवानन्द जी महाराज। वे सन्त की इस परिभाषा रूपी कसौटी पर खरे उतरते हैं।

उन के यहां कोई भी विद्वान्, संन्यासी प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। वे कभी भी किसी की निन्दा नही करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ईर्ष्या आदि दुर्गुणों से पूर्ण रूप से ऊपर उठ चुके हैं। ऋषि जी बड़े धीर व्यक्ति हैं वे किसी भी स्थिति में विचलित नहीं होते हैं। नीतिकार की निम्न उक्ति ऋषि जी के जीवन पर अक्षरशः चरितार्थ होती है।

नीति निपुण विद्वज्जन की निन्दा हो अथवा प्रशंसा हो उनके पास धन आये या चला जाये। वे आज ही मृत्यु को प्राप्त हों अथवा कालान्तर में मृत्यु को प्राप्त हों। धीर पुरुष कभी न्याय के पथ से विचलित नहीं होते हैं।

यहाँ निर्धन निकेतन में चलने वाली स्त्री-शिक्षा को लेकर स्वामी जी महाराज अपवादों, चक्रवातों में फँसें, परन्तु उनके ब्रह्मतेज के सामने सभी अपवाद निस्तेज होकर समाप्त हो गये। इस यज्ञ-पुरुष के समक्ष विरोधियों के सभी बाण निष्प्राण हो गये। बाद में चलकर वे सभी स्वामी जी के अनन्य भक्त हो गये। यह धीर एवं वीर महात्मा समस्त बुराइयों के विष को शिव की तरह कण्ठ में पीकर उस को अमृत बनाकर समाज का कल्याण करते हुए एक भारतीय संस्कृति के प्रसिद्ध प्रतिष्ठान को अपने रक्त की एक-एक बूँद से सींच रहे हैं, उनका यश चारों दिशाओं में प्रतिष्ठित हो रहा है। उनके इस पावन अभिनन्दन को मैं प्रणाम करता हूँ। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वे शतायु को प्राप्त हों तथा सदैव निरोग रहें।

*****

वैदिक ऋषि परम्परा

डा० महावीर, प्रोफ़ेसर एवं निदेशक
श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

भारत ऋषियों का देश है। यहाँ पर सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान समय तक ऋषियों की महान् परम्परा चली आ रही है। "अष्टाशीति सहस्त्राणि ऋषीणां बभूवुः" यह वचन सिद्ध करता है कि इस देश की सारी दिशायें ऋषियों की चरणरज से पवित्र थीं। इन ऋषियों के अस्तित्व से ही यह देश विश्वगुरु कहलाता था।

वेदों की चारों संहिताओं में मंत्रपाठ से पूर्व मंत्रों के ऋषि, देवता तथा छन्द का निर्देश मिलता है। सामान्यतया मंत्रों के द्रष्टा अथवा स्तुतियों के प्रयोक्ता व्यक्ति को 'ऋषि' कहा जाता है। ऋग्वेद के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न देवताओं के प्रति विविध स्तुतियों का प्रयोग करके उन्हें प्रसन्न करना तथा उनसे ऐश्वर्य, सम्पत्ति तथा संरक्षण एवं सहायता आदि प्राप्त करना इन ऋषियों की प्रमुख विशेषता रही। ये ऋषि अपनी सजीव स्तुतियों द्वारा देवताओं की अव्यक्त शक्ति को व्यक्त बनाते थे। इस दृष्टि से निम्न मन्त्रखण्ड द्रष्टव्य है-

क. ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि (१.४८.१४)
ख. स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रतिभूषति (५.७५.१)
ग. पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणाम्। (६.३४.१)
घ. ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना।
ङ इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः। (७.२२.६)

ऋषि शब्द की दो प्रधान परिभाषाएं प्राप्त होती हैं। एक है- 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः अर्थात् ऋषि वे हैं जिन्होंने समाधि की अलौकिक स्थिति में मंत्रों का दर्शन किया। 'ऋषि' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए, औममन्यव आचार्य के अनुसार कहा है कि 'ऋषि' शब्द 'दृश' धातु से निष्पन्न हुआ है क्योंकि इन ऋषियों ने स्तोमों का दर्शन किया। निरुक्त में एक और उद्धरण मिलता है जिसके अनुसार यह शब्द गत्यर्थक 'ऋष्' धातु से निष्पन्न माना गया। इसमें कहा गया है कि – 'तपस्या में रत इन ऋषियों के पास मन्त्र गये अर्थात उन्हें प्राप्त हुए

शतपथ ब्राह्मण में 'ऋषि' शब्द को 'रिष्' धातु से निष्पन्न माना गया है- 'श्रमेण तपसा अरिषन्त, तस्माद् ऋषयः'यहां 'रिष' धातु का अर्थ 'तप करना' है। 'ऋषि' शब्द को चाहे दृश धातु से निष्पन्न माना जाये

अथवा ऋष से या रिष से, प्रत्येक स्थिति में इस शब्द का यही अभिप्राय प्रतीत होता है कि ऋषि वे हैं जिन्होंने तपस्यारत होकर समाधि में मन्त्रों का साक्षात्कार किया। इस मन्त्र दर्शन को ही लौकिक स्तर पर अथवा सामान्य रूप से समझाने के लिए मन्त्र-प्रणयन अथवा मन्त्रों की रचना करना भी कह दिया जाता है।

इन प्राचीन ऋषियों की असाधारण विशेषता को स्पष्ट करते हुए यास्काचार्य कहते हैं कि ऋषियों ने धर्म का साक्षात्कार किया था- समाधि की अतिविशिष्ट दशा में दिव्य चक्षुओं द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन किया था- -'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः'। निरुक्त की इस पंक्ति की व्याख्या करते हुए स्कन्द ने अपने भाष्य में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि यहां 'धर्म' शब्द का प्रयोग वैदिक मन्त्रों के लिए किया गया है -

धर्मस्यातीन्द्रियत्वात् साक्षात्करणस्यासम्भवात् 'धर्म' शब्देनात्र तदर्थं मंत्र-ब्राह्मणम् उच्यते। तत्साक्षात्कृतो धर्मो यैस्ते साक्षात्कृतधर्माण ऋषयः'

(स्कन्द-माहेश्वर विरचिता निरुक्त भाष्य टीका भा.।, पृ.११३-१४)

निरुक्त के दूसरे प्रमुख भाष्यकार आचार्य दुर्ग ने 'ऋषि' शब्द को 'ऋष' दर्शने धातु से निष्पन्न मानते हुए कहा है कि जिन विशिष्ट व्यक्तियों ने मंत्रों का, विविध अवसरों पर विविध कार्यों में प्रयोग करके उनसे उत्पन्न होने वाले फलों का साक्षात्कार किया, वे ऋषि हैं- 'ऋषन्ति-अमुष्मात् कर्मणः-एवम् अर्थवता मन्त्रेण संयुक्ताद् अमुना प्रकारेण एवं लक्षणः फल-विपरिणामो भवति इति- पश्यन्ति त ऋषयः।

ऋषियों द्वारा मंत्रों के साक्षात्कार अथवा दर्शन करने की बात को ध्यान में रखकर ही बृहद्देवता तथा अनुक्रमणी ग्रन्थों में बार-बार -मंत्रदृक्' तथा 'अपश्यत्' जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'ऋषि' शब्द की दूसरी परिभाषा दी गई है- 'यस्य वाक्यं स ऋषिः' अर्थात् मंत्र रूप वाक्यों (वचनों, कथनों) के वक्ता ऋषि हैं। अभिप्राय यह है कि जिस-जिस ने अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए देवता की स्तुति की उस-उस को मन्त्रों का ऋषि मान लिया गया।

प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में वेदरूप अथवा परमात्मा के निःश्वासभूत मन्त्र, समाधि परिपूत महर्षियों के अन्तःकरणों में स्वयं- स्फूर्त्त होकर उनके माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं।

यह एक ऐसी अप्रतीम वाणी थी जो अनन्त, असीम से निकलकर दिव्य दृष्टि सम्पन्न एवं परमदेव से अभिन्नता को प्राप्त हुए ऋषियों की अन्तर गुहा में प्रविष्ट हुई, जो अपने को उस पवित्रतम ज्ञान को ग्रहण करने

के अधिकारी बना चुके थे। जिस प्रकार भगवती भागीरथी को अपनी जटाओं में धारण करने की क्षमता भगवान् शंकर जैसे परम योगी में थी, उसी प्रकार वैदिक ज्ञानगंगा को अपने मस्तिष्क में धारण कर जन-जन के कल्याण के लिए प्रवाहित करने की योग्यता सर्वथा विशुद्ध निर्गत-निखिल कल्मष ऋषियों में ही हो सकती थी। ऐसे ऋषियों की क्षमता अथवा अवस्था अलौकिक थी, अनिर्वचनीय थी। वेद में इन ऋषियों के लिए कहा गया है- **"पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा"**। अर्थात् ये देवहूतिजन सांसारिक लोगों से सर्वथा भिन्न ही होते हैं,अन्य व्यक्तियों के लिए असंभव कार्यों को ये करके दिखाते हैं। इन ऋषियों को कवि, स्तोता मन्त्रकृत् आदि विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है। असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा तथा निरन्तर उस सर्वशक्तिमान्, दयालु, करुणा के सागर प्रभु की उपासना से इन ऋषियों में अद्भुत शक्ति का संचार होता है। इनका प्रत्येक क्षण समाधि द्वारा ईश्वरदर्शन एवं विश्वकल्याण में सार्थक होता है। वेद कहता है- **"अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।"** ये ऋषि उस उच्चावस्था को प्राप्त होते हैं, जिसकी सामाजिक कल्पना भी नहीं कर सकते। उनका ज्ञान साधारण जनों के लिए अतीन्द्रिय एवं असवैध होता है। ये सर्वोत्तम ज्योति को प्राप्त कर चुके होते हैं। यजुर्वेद के एक मन्त्र में द्रष्टा तथा दृश्य को अभिन्न माना गया है- 'तद् अपश्यत् तद् अभवत् तद् आसीत्।

ये ऋषि सत्यवक्ता, धर्मात्मा तथा ज्ञानी होते थे और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, सदाचार एवं अपरिग्रह के मूर्तिमान् स्वरूप तथा ब्रह्मतेज से देदीप्यमान होते थे। पुण्यसलिल सरिताओं के तटों पर दिव्य-शान्त तपोवनों में, पर्वतों की उपत्यकाओं में इनके आश्रम हुआ करते थे, जहाँ सिंह आदि क्रूर प्राणी भी स्वाभविक हिंसक वृत्ति का परित्याग कर परम शान्त तथा मैत्रीभाव का आश्रय लिया करते थे। वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि ऐसे निर्जन एवं शान्त प्रदेशों में ही अध्यात्म-साधना के बीज पल्लवित-पुष्पित और फलित हुए-

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत। १६

इन ऋषियों की वाणी में अद्भुत शक्ति होती है इनके मुखारविन्द से निकला हुआ प्रत्येक शब्द सत्य होकर ही रहता है।

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां वे व्याहारास्तेषु मा संशयो भूत्।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति।।

महाकवि भवभूति ने ऐसे ऋषियों के लिए कहा है- लौकिक साधुओं की वाणी अर्थ का अनुगमन करती है किन्तु प्राचीन ऋषियों की वाणी का अनुगमन स्वयं अर्थ किया करते हैं:

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।।

ऐसे ऋषियों को आप्तपुरुष कहा जाता है। इनका प्रत्येक वचन प्रामाणिक है। प्राचीन भारत में वेदमन्त्रों एवं ईश्वर का साक्षात्कार करने वाले ऋषियों में सप्तर्षियों का विशिष्ट स्थान है। ये सप्तर्षि ऋग्वेद के नवम मण्डल के १०७ वें तथा दशम मण्डल के १३७ वें सूक्तों के द्रष्टा हैं। ये हैं- १. गौतम, २. भरद्वाज, ३. विश्वामित्र, ४. जमदग्नि, ५. कश्यप, ६. वसिष्ठ, ७. अत्रि इन ऋषियों का सुदीर्घ इतिहास हैं। इन के तथा इनके परिवारों में जन्म लेने वाले ऋषियों के नामों से प्रारम्भ गोत्रपरम्परा आज तक चली आ रही है। कौन ऐसा भारतवासी होगा जो इन देवताओं के नाम स्मरण मात्र से नतमस्तक न होता हो। महर्षि वसिष्ठ और जगद्वन्द्या अरुन्धती के आशीर्वाद से राजा दिलीप और सुदक्षिणा ने नन्दिनी की सेवा कर विश्वविजयी रघु सदृश पुत्ररत्न को प्राप्त किया। रघु को पाकर वह वंश अमर हो गया और यह वाक्य वेदमन्त्र की तरह गाया जाने लगा- **रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जाई पर वचन नजाई।"**

महर्षि वसिष्ठ की प्रेरणा से महाराजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया और राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को पुत्ररत्नों के रूप में पाकर इतिहास में अमर हो गये। श्रीराम, लक्ष्मण आदि के निर्माण में गुरु वसिष्ठ और विश्वामित्र की भूमिका को इतिहास कभी विस्मृत न कर सकेगा। विश्ववन्द्य श्रीकृष्ण के निर्माण में महर्षि सन्दीपनी की भूमिका चिरस्मरणीय है, रामायण जैसा अमर महाकाव्य लिखकर युगों तक काव्यामृत का पान कराने वाले महर्षि वाल्मीकि, महाभारत जैसे विशाल महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का पुण्य-पथ प्रदर्शित करने वाले महर्षि वेदव्यास मानवधर्म के व्याख्याता मनु, षड्दर्शनों के रचयिता गौतम, कणाद, कपिल, पतंजलि, जैमिनि को क्या इतिहास कभी भूल पायेगा? महर्षि अत्रि और माता अनुसूया, महर्षि भरद्वाज, महर्षि भृगु, महर्षि कण्व, महर्षि याज्ञवल्क्य, महर्षि अगस्त्य आदि के नाम स्मरणमात्र से हृदय में पवित्रता की गंगा प्रवाहित होती है। इन प्रातः स्मरणीय महर्षियों में से प्रत्येक महर्षि का जीवन स्वयं में अमर महाकाव्य है। इसी श्रृंखला में जगद्गुरु शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, ब्रह्मर्षि विरजानन्द, महर्षि दयानन्द आदि का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। मानव-मात्र से प्रेम करने वाले इन ऋषियों ने अपने रक्त की एक-एक बूंद और अपने जीवन का एक-एक क्षण मानवता की सेवा में अर्पित किया था इनको पाकर भारत भूमि धन्य हो गई । केवल पुरुष ऋषि ही नहीं, अपितु गार्गी, मैत्रेयी, ब्रह्मवादिनी अपाला, विश्ववारा, घोषा, सूर्या आदि ऋषिकाओं ने भी इस धरा-धाम को पवित्र किया है।

ऋषियों की यह परम्परा आज भी अक्षुण्ण है। गौतम, कणाद और कपिल के इस देश में ऋषि **केशवानन्द जी** जैसी दैवीशक्ति से परिपूर्ण विभूतियां संसार के कल्याण में अहर्निश समर्पित हैं। प्रभु-भक्ति के साथ-साथ ही दुःखियों के आँसू पोंछने वाले संस्कृत और संस्कृति की रक्षा में सर्वात्मना समर्पित, दिव्य,सौम्य एवं आध्यात्मिक आभा से देदीप्यमान मुख-मण्डल, अपने भक्तों पर अपार स्नेह एवं आशीर्वाद की वर्षा करने वाले पूज्यपाद ऋषि जी के दर्शन कर प्राचीन ऋषियों की प्रत्यक्ष अनुभूति हो जाती है। परमपूज्य महाराज जी ब्रह्ममुहूर्त में उठकर अपने परम सखा परमपिता परमात्मा की सन्निधि से दिनचर्या प्रारम्भ करते हैं, और फिर दिनभर सम्पर्क में आने वाले श्रद्धालुओं को अमृत-पान कराते हुए प्रभु दर्शन करते-करते योगनिद्रा में चले जाते हैं। ऐसे परम कृपालु सर्वभूतहितेरत महर्षि को पाकर हरिद्वार की भूमि धन्य हो गई है। ऐसे परम ज्ञानी, निरभिमानी, परदुःखकातर, अकारण दयालु, परमसन्त के चरणों में मेरा शत-शत नमन।

मेरी परमपिता परमात्मा से यही प्रार्थना है, कि परमश्रद्धेय ऋषि जी का स्नेह, आशीर्वाद हमें सुदीर्घकाल तक प्राप्त होता रहे।

* * * * *

भारत का लोकमंगलकारी ऋषि जीवन

सोमप्रकाश शाण्डिल्य
गाँधी मार्ग, कनखल, हरिद्वार

संसार के दूसरे देशों का मानना है कि हम इस दुनिया में आये हैं, तो दुनियादारी में एक अच्छे खाने पीने का, समाज में अच्छे रहन-सहन का, आज के संसार की जितनी अधिक से अधिक सुख सुविधाओं का हो सके, भरपूर जीवन हम जी सकते हैं, अच्छी मेहनत कर दिनरात कमायें और संसार का ऊँचा जीवन जीयें। इस के साथ यदि हम कुछ समय इस व्यस्तता के जीवन से निकालकर किसी और का भी कुछ भला कर सकें, तो यह हमारा एक मानवकर्त्तव्य होगा। क्योंकि हमें भगवान ने दूसरे प्राणियों से अलग रखकर एक 'विचारशक्ति' भी साथ दी है।

चिन्तन-भारत के ऋषिमुनियों का- इधर भारत की संस्कृतिसभ्यता को जन्म देने वाले हमारे ऋषिमुनि सन्त-महापुरुषों का आदिकाल से आजतक एक ही कहना संसार के सामने चला आ रहा हैं कि हम यह अनमोल मानव जीवन पाकर केवल अच्छे खाने पीने अच्छे रहन सहन और संसार के सभी सुख भोगने के लिए ही इस संसार में नहीं आये, बल्कि अपने आत्मकल्याण के साथ-साथ विश्व के प्राणीमात्र के कल्याण के लिए सत्कर्मों के चिन्तन, मनन और विचारपूर्वक अनुष्ठान करने के लिए इस दुर्लभ मानव जीवन को ईश्वरकृपा से प्राप्त कर यहाँ पृथ्वी पर आये हैं। जैसाकि हमारे नीतिकार आचार्यों का कहना हैं कि:-

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीना पशुभिः समानाः।।

यहाँ तो अपने अच्छे खान पान, रहन सहन, भोगविलास सोनेजागने आदि की सुखसुविधाओं को बेचारे निरीह पशुओं के साथ ला खड़ा किया है। एकमात्र भारत ने मानव के जिस कर्त्तव्यविशेष को 'धर्म' का नाम दिया है उस कर्त्तव्यधर्म को ही प्राणपन से निभाना मानवता का सर्वस्व 'धनसम्पत्ति' सबकुछ माना हैं । संसार के अच्छे सुखसुविधाओं वाले जीवन के नाम पर तो यह देश आदिकवि वाल्मीकि, महर्षि व्यास, वसिष्ठ, विश्वामित्र और कणाद, पिप्पलाद, जैसे ''तपत्यागमय'' ऋषिजीवन की ही आजतक भी मनबुद्धि से पूजाराधना करता आ रहा है। क्योंकि इस भारतराष्ट्र का ऋषिमुनि, सन्त-महात्मा, विद्वान् आचार्य, साहित्यकार, कथाव्यास, संसार को

आजतक एक 'अमरसन्देश' सुनाता चला आया है, कि मानव इस प्रकृति के बनाये रमणीक मनोहारी नश्वर संसार में कोई कोरा मन बहलाने वाला एक 'पर्यटकमात्र' बनकर मनोरंजनमात्र के लिए नहीं आया, उसे इस दीखने वाले अपने नश्वर शरीर और संसार के झूठे कुछ दिनों के बचपन, जवानी के खेल खेलने के लिए ही ईश्वर ने उसे यहाँ नहीं भेजा, बल्कि सामने-सामने कदम-कदम पर सब कुछ अपनी आँखों के सामने सर्वनाश होता देखते हुए ही 'बुद्धि' विचारशक्ति से इस संसार से ऊपर उठकर पहले अपना 'आत्मज्ञान' प्राप्त करे, और इस 'आत्मकल्याण' के बाद फिर यदि कुछ भगवत्कृपा हो जाये, अथवा कोई गहराई का अच्छा अनुभवी, विद्वान् गुरुदेव ऋषि-महर्षि, सन्तमहापुरुष भाग्य से कहीं मिल जाये, तो उसकी गहरी सेवा-शुश्रूषा से कृपाभाव का आशीर्वाद प्राप्त कर यहाँ बार-बार के जीवन-मरण के भयंकर असह्य दुःखों से मुक्ति पाने के लिए मानव होने के नाते कुछ "आत्मचिन्तन" करना चाहिये। इस अनमोल मानवजीवन में सत्कर्म, ईश्वराराधन, देवपूजानुष्ठान, जपतप, व्रत उपवासादि साधनों का साधनामय जीवन बनाकर स्वयं के' आत्मकल्याण' की ओर आगे बढ़ते हुए संसार के 'प्राणीमात्र के कल्याणकारी हितचिन्तन' में जीवन को भगवदर्पण कर देवें, जैसा कि भारत की संस्कृतिसभ्यता का हररोज प्रातः पूजापाठ करने वाले मानव को पहला पाठ पढ़ाया गया है, कि:-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्।।

इस प्रकार भारत की अध्यात्मप्रधान संस्कृति अपनी सामाजिक-सभ्यता में इस संसार में मानवजन्म लेकर आनेवाले मानव को पहले संसार के जीवन में केवल शरीर को सुख पहुँचाने वाले भोगवादी विलासीसाधनों से सावधान कर एक सच्चे अजर अमर परमानन्द सुख के लिए प्रेरणा देती है, जिसके लिए उसे संसार के इन नश्वर सुखसाधनों वाले भोगविलास के मीठे जहर का परित्याग कर खुली प्रकृति के जीवन में एक घोर साधनासिद्धि का तपोमय जीवन अपना कर 'आत्मकल्याण' के गहरे ऋषिमुनि सन्तमहापुरुष का जीवन अपनाते हुए एक व्रत लेना होता है, जिस जीवन में हमारी संस्कृति केवल अपने शरीर, परिवार, समाज देश से भी आगे बढ़कर संसार के प्राणीमात्र की कल्याणकामना में अहर्निश चिन्तन और बड़े बड़े लोककल्याणकारी महान् अनुष्ठानों का सिद्ध ऋषिजीवन अपनाने को कहती है। जिस में हमारा यह ऋषिमुनिजीवन अपने पराये के छोटे विचारों से ऊपर उठकर -'मानवमात्र' के शुभचिन्तन और निष्कामकर्मयोग में अपने अनमोल मानवजीवन को समाज के लिए सादर सप्रेम समर्पित कर देता है।

संस्कृत-संस्कृति को समर्पित ऋषिजीवन हमारे भारत की इसी ऋषिपरम्परा के जीवन में मैंने आरम्भ में ही कुछ अपने संसारपूजित आदिकालीन ऋषिमुनि सन्तमहापुरुषों के नाम भी लिखे हैं, जिनके परम्परागत 'विशद परिचय' इस प्रकाशन में हमारे कई विद्वान् आचार्य महापुरुषों ने दिए हैं। मैं अब उनको न दुहराते हुए इसी दिशा में अपनी भावनानुसार एक प्रभावविशेष लिए परमश्रद्धेय पूज्य **"ब्रह्मर्षि श्री केशवानन्दजी महाराज"** के तपत्यागमय सिद्ध कर्मयोगी ऋषिजीवन पर अपने हृदय की श्रद्धाभावना में कुछ कहने चला हूँ जिस में किसी भाषा काव्य विद्वत्ता, का विचार नहीं लिया जा सकता। एकमात्र भारत के जिस तपत्यागपूर्ण कर्मयोग दैवीसंस्कृति - सभ्यता पर मैंने अभी पहले यहाँ कुछ लिखा है, इस देश की उसी संस्कृत-संस्कृति सभ्यता की ऋषिपरम्परा में हमारे संसार प्रसिद्ध तीर्थधाम हरिद्वार में पूज्य ऋषिवर्य ने इस "निर्धन-निकेतन" नाम से संस्कृतिसेवीसंस्थान की स्थापना कर इस पावनक्षेत्र की गरिमा बढ़ाई है। यद्यपि इस परम पुण्यकार्य को आज के सांसारिकजीवन में युग-विपरीत घोर संघर्षों का एक सीमित समाज का एकवर्गीय दुष्कर कार्य ही कहा जा सकता है, किन्तु किसी भी सर्वसाधारण समाज को यहां आश्रमदर्शन करने वाले मानव को ऋषि-संस्कृतमहाविद्यालय की प्राचीन आश्रमपद्धति में गुरुप्रणाली की शिक्षादीक्षा छात्रावास की विद्यार्थीजीवनशैली, जपपाठपूजा आराधना में अनुशासन और वेशभूषा देख गर्व होता है और यह सहसा किसी भी मानव-मन पर जादू का असर कर बैठता है। यही कारण है कि देशप्रदेश का कहीं से कोई आने वाला प्रतिष्ठित विद्वान्, अधिकारी, राजनेता, समाज-धर्मसेवी, आचार्य महापुरुष इस 'निर्धन निकेतन' के ऋषिसंस्कृत महाविद्यालय के विशाल संस्कृत-सम्मेलनों, में, ज्योतिष-कर्मकाण्ड के प्रशिक्षणशिविरों में, ग्राम्य-विकास -जनजागरण की व्यापक राष्ट्रिय योजनाओं के आयोजनों में, व्यास-वाल्मीकि आश्रम के सदृश इस निर्धन निकेतन आश्रम में आज भी दर्शनार्थ सोत्साह भाग लेने में एक गर्व का अनुभव करता है। इस महाविद्यालय के शिक्षण-प्रशिक्षण में प्रशिक्षित विद्वान् जहां देशविदेश को भारत का पुराना पाण्डित्यभाव अपनाये देश विदेश मे जहाँ-तहाँ अपनी अलग पहचान लिए देखने को मिलेंगे, वहाँ इस महाविद्यालय के छात्र आचार्यवर्ग का एक दलविशेष अपने "साहित्य संगीत व नाट्यकला" को साथ लिए देश के विभिन्न प्रान्त-भागों में "श्री नाट्यम्" नामक संस्था के नाम से भारत के पंचमवेद कहे जाने वाले "दृश्यकाव्य" द्वारा भी सर्वसाधारणजनता को मन्त्रमुग्ध करते हुये "राष्ट्रिय-कल्याणकारी योजनाओं" में आगे रहता है। इधर "निर्धन निकेतन आश्रम के शतचण्डी, सहस्रचण्डीयज्ञों से लेकर अनेकबार आयोजित ''लक्षचण्डी महायज्ञों'' में भी इसी "संस्कृत महाविद्यालय" के सुयोग्य विद्वान् अनुभवी कर्मठजीवन आचार्य एवं छात्रगण आगे बढकर अपने पूज्यऋषिजी महाराज के लोककल्याणकारी सतसंकल्पों की पूर्ति के महानुष्ठानों मे पहला नाम कमाते

हैं। इस महाविद्यालय के छात्रों के अपने विद्यालयीय पठनपाठन में पूजाराधन में, लोकमंगलकारी यज्ञानुष्ठानों में, सामाजिक नवजागरण के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में, सोत्साह मर्यादित विद्यार्थीजीवन को देखकर कोई भी विचारक विद्वान् सगर्व कह उठता है, किः

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम् ।

भारत की आश्रमपद्धति की संस्कृतशिक्षाप्रणाली में "सादाजीवन उच्चविचार" के संस्कृतबटुक एवं विद्वान् आचार्यवर्ग के भारतीय संस्कृतशिक्षापद्धति के दर्शन आज भी "ऋषि-संस्कृत - महाविद्यालय" में किये जा सकते हैं । जिसका पूर्णश्रेय यहां के सुयोग्य विद्वान् आचार्यवर्ग के साथ ही विचारशील, सरलजीवन, सौम्यस्वभाव, विदुषी प्राचार्या सुश्री''सतीश गुलाटी जी'' को ही दिया जा सकता है ।

देववाणी संस्कृत की लोकप्रियता में "वैदिक-संस्कृतसम्मेलन" सफल नाट्य-अभिनय भारत की संस्कृत-संस्कृति की सुरक्षा एवं विकास के पुण्यकार्यों में पूज्यऋषिजी महाराजका यह पंचपुरीक्षेत्र का एक "ठोस संस्कृत-सेवाकार्य" है। जिस से आज देशविदेश को हमारी संस्कृत-संस्कृति को आश्रमपद्धति के शैक्षणिकजीवन में गहराई से अपनाने वाले सुयोग्य, समाजसेवी, कर्मठ, समर्थ विद्वान्, मिलते हैं। इधर इसी संस्कृत-संस्थान में वैदिक-शोध, अनुष्ठानादि के साथ साथ विश्वकल्याण के लिए ऐतिहासिक "लक्षचण्डी महायज्ञ" भी तीन बार यहाँ सैकड़ों विद्वान् आचार्य, होता, जापकर्ता, पाठक, याज्ञिक, आचार्यों की देखरेख व सहयोगभाव में भारी सफलता के साथ सम्पन्न हो चुके हैं ।

दूसरी ओर आज के वैज्ञानिकयुग के नित नये आविष्कारों के समाज में भारत की तन्त्र-मन्त्रविद्याओं को साथ लिए 'वैदिकपरम्परा का गरिमामय इतिहास'' समाज संसार के सामने लाने के लिए इसी "संस्कृत-महाविद्यालय" के विशाल प्रांगण में देश के काशी, अयोध्या, मथुरा, सोमनाथ, दक्षिणभारत के संसारप्रसिद्ध प्रकाण्डवैदिक विद्वानों के "संस्कृत-सम्मेलनों" में राष्ट्रीय-संस्कृत संस्थानों के सहयोगभाव साथ लिये भारत के वेदमन्त्रों में आज के ज्ञानविज्ञान के चमत्कारी प्रभावों की अनुसन्धानचर्चायें भी समाज को यहाँ सुनने को मिलती हैं। हमारे सम्मान्य संस्कृतविद्वान् यहाँ सभामंच से सर्वसाधारण के मन में बुद्धि में बैठने वाली एक वैदिक-विज्ञान की आज की खोज में पृथ्वी आकाश वायु तेज जल के आराधना-मन्त्रों की वैज्ञानिकमहिमा खुलतौर से जमकर समाज को समझाते देखे जाते हैं, जिन्हें सुनकर और जानपहचान कर समाज का हर समझदार व्यक्ति अपने भारत की प्राचीन

वैदिकज्ञानविज्ञान परम्परा पर आज के वैज्ञानिकयुग के चमत्कारों में भी वास्तव में गर्व करने लगता है। माननीय डा० आर० के शर्मा जी भूतपूर्व संस्कृतशिक्षा-परामर्शदाता भारत सरकार के सहयोग सान्निध्य में ऐसे "लोककल्याणकारी लोकप्रिय संस्कृत-आयोजन" इसी संस्थान में देखने का सुअवसर कई बार मुझे भी प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार इस पंचपुरी पावनक्षेत्र के विश्वविख्यात तीर्थधाम हरिद्वार के सुप्रसिद्ध "संस्कृतसेवी संस्थान निर्धन निकेतन आश्रम" के ऋषि-संस्कृतमहाविद्यालय के अध्यक्ष-संचालक परमश्रद्धेय संस्कृतिरक्षक, लोककल्याणकारी, आदिशक्ति माता भगवती दुर्गा के अनन्योपासक, विद्वद्वरेण्य "ब्रह्मर्षि" पूज्य ऋषि केशवानन्दजी महाराज के कर्मठ, सरल, संस्कृतसेवी जीवन के हीरकजयन्ती सुअवसर पर हृदय की आस्था निष्ठाभाव के साथ सादर अभिनन्दन में विनम्र नमनभाव लिए मैं जगज्जननी माता जगदम्बा भगवती दुर्गा से प्रार्थना करता हूँ, कि ऐसे हमारे भारत की संस्कृत-संस्कृतिरक्षक, लोककल्याणकारी, विद्वान, कर्मयोगी ऋषिजी महाराज अपने पूर्ण स्वस्थ एवं समृद्ध, सरल, सन्तजीवन में राष्ट्र की अधिक से अधिक सेवा चिरकाल तक करते चलें। जैसा कि उन्हों ने इस परमपावन तीर्थधाम पर निर्धन निकेतन संस्थान की स्थापना अपने परमश्रद्धेय योगसिद्ध गुरुवर्य ब्रह्मलीन पं० वंशीधरजी महाराज की पुण्यस्मृति में यह अमर "कीर्तिस्तम्भ" खड़ा कर उनके प्रति हृदय की वास्तविक श्रद्धाँजलि सादर समर्पित की है । जहाँ इस "संस्कृत महाविद्यालय" के साथ-साथ उन्होनें ऋषि-बाल विद्यालय, ऋषि-लोटस अकादमी, "ऋषि-उच्चतर माध्यमिक विद्यालय" आदि का भी सफलता से संचालन किया हुआ है। आश्रम में श्री गुरुदेवमन्दिर, संत्सगभवन के साथ भव्य दुर्गामन्दिर नव दुर्गामन्दिर, शिवमन्दिर, हनुमानमन्दिर, श्री राममन्दिर, राधाकृष्ण मन्दिर, विशाल यज्ञशाला, भवन, गौशाला, रमणीक फलफूलोंवाली वाटिका आदि भी भक्तों के लिए सुन्दर बनवायें है।

हरिद्वारदर्शन के लिए यहाँ पहुँचने वाला कोई भी राजकीय शिक्षाधिकारी, समाज, विद्वान् आचार्य, राजनेता, इस "निर्धन निकेतन आश्रम" में देवदर्शन गंगास्नान एवं महापुरुषों का सत्संग कर आनन्दलाभ प्राप्त करते हैं। पुनश्च श्रद्धेय, संस्कृतसेवी, लोकोपकारी, सरल सन्तजीवन, पूज्य श्री ऋषिजी महाराज के प्रति विनम्र सादर अभिनन्दन

*****

पैदल तीर्थ यात्रा

(पंजाबी भजन)

डॉ. सतीश कुमारी,
प्राचार्या,
ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार।

बदरी-केदार दर्शन पाये, पाये जी, सेहरा[1] ऋषि जी महाराज नूँ।
पैदल गये, पैदल आये, आये जी, सेहरा, ऋषि जी महाराज नूँ।

बदरी-विशाल दीयाँ कठिन चढाइयाँ,
किरपा दा हॅथ संगता सब चढ़ आइयाँ।
बच्चे-बुढ्ढे सब चढ़ आये, आये जी, सेहरा ऋषि जी महाराज नूँ।

कड़-कड़ाती धूप किते बदली दा नाँ न,
मुसलाधार वरखा-वस्से[2] छपड़ी दा था न।
गरमी-सरदी सब सह आये, आये जी, सेहरा ऋषि जी महाराज नूँ।

राह विच देखे अस्सी[3] कई प्रयाग जी,
देवप्रयाग नन्द रूद्रप्रयाग जी।
पुन्न-सनान[4] कर आये, आये जी, सेहरा ऋषि जी महाराज नूँ।

बदरी विशाल दीयॉं, सुन्दर घाटियाँ,
देवी प्रकृति दीयां, सजीव झाकियाँ।
अद्भुत आनन्द ले आये, आये जी, सेहरा ऋषि जी महाराज नूँ।

बदरी-विशाल भगवन विष्णु दा रूप ए
राजा कुबेर जिसदी[5] मस्ती च चूर ए।
दिव्य-दरश कर आये, आये जी, सेहरा ऋषि जी महाराज नूँ।

तीरथाँ नूँ[6] जान जेड़े अति बड़भागी,
तीरथ करान जेड़े[7] परम बड़भागी,
ऋषि जी दोनों ही पुन्न कमाये, कमाये जी, सेहरा ऋषि जी महाराज नूँ।

---

१. श्रेय २. वर्षा बरसे ३. हमने ४. पुण्य-स्नान ५.जिसकी ६. तीर्थो को ७. जो,

विश्ववन्द्य भारतीय संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ

कृष्णगोपाल चान्दना
सहा० प्राध्यापक (अंग्रेजी)
ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार।

भारत की पावन धरा ऋषि-मुनियों, महापुरुषों की प्रसव भूमि, क्रीड़ास्थली एवं कर्मस्थली रही है। आज के स्वार्थ परायण, अर्थ लोलुप भारत को देखकर कौन कह सकता है कि प्राचीन भारत त्याग और ज्ञान तथा मानवता की भूमि रहा होगा। आज पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वान ऋग्वेद को प्राचीनतम ग्रन्थ तथा वेदों से अनुप्राणित संस्कृति को विश्व की प्राचीनतम संस्कृति एक स्वर से स्वीकार करते हैं। इसका श्रेय प्राचीन ऋषिमुनियों को है जिन्होंने भारतीय संस्कृति के इस मन्दिर को इतना भव्य अलौकिक गरिमामय स्वरूप प्रदान किया कि इसका ज्ञानालोक अपनी रश्मियाँ सदा विकीर्ण करता रहेगा। आज हमें यह विशाल साहित्य इन ऋषियों की कृपा से प्राप्त है। इस पैतृक सम्पत्ति का ज्ञान, अध्ययन अध्यापन, संवर्धन एवं प्रचार कर हम ऋषि-ऋण से सहज ही उऋण हो सकते हैं। भारतीय संस्कृति को इन्हीं प्रकाश स्तम्भों से अनन्त प्रकाश पुञ्ज प्राप्त हुआ जिससे भारतीय संस्कृति समन्वयवाद, कर्मवाद, वर्णाश्रम व्यवस्था, यज्ञीय प्रणाली, दानवृत्ति, परलोक सिद्धान्त से समन्वित होकर एहलौकिक पारलौकिक उन्नति का सुन्दर सोपान बन सकी। भारतीय संस्कृति अपने उच्चतर जीवन मूल्यों के कारण अपना उदात्त स्वरूप आज तक बनाये हुए है।

ऋषि किसे कहते हैं ? इसका उत्तर देते हुए यास्क अपने निरुक्त में कहते हैं 'साक्षात्कृत धर्माणो ऋषयो बभूवुः' किस कर्मका किस प्रकार का फल होता है ऋषि को इसका साक्षात् ज्ञान होता है। 'ऋषयः मन्त्रदृष्टारः' का भी यही अर्थ है ऋषि शब्द की व्युत्पत्ति ऋष गतौ धातु से निष्पन्न इगुपधात् कित इति उणादि सूत्र द्वारा होती है, वायुपुराण ५६/७६ में ऋषि शब्द के गति, श्रुति सत्य तथा तपस चार अर्थ बतलाये गये हैं।

ऋषीत्येव गतौ धातुः श्रुतौसत्य तपस्यथ।
एतत संनियतस्तस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः।।

ब्रह्मा जी के द्वारा जिस व्यक्ति में उपरोक्त चारों वस्तुएं नियत कर दीं जायें वही ऋषि होता है, मनु अवबोधने धातु से उणादि सूत्र द्वारा इन् प्रत्यय से मुनि शब्द की निष्पत्ति होती है। जो व्यक्ति शून्यागार में निवास करता हो अर्थात् जिसका कोई घर न हो जहाँ तहाँ चलते-चलते हुए सायंकाल हो जाये वही घर है, 'शून्यागार निकेतः स्याद यत्र सायं गृहो मुनिः। नीलकण्ठी टीकाकार कहता है "यत्र सायंकालस्तत्रैव गृहं यस्य सः"।

बाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड में ऐसे त्यागी गात्रशय्या, सलिलाहाराः वायुभक्षाः ऋषियों की भव्य झांकी देखने को मिलती है । ऋषियों के सात प्रकार कहे गये हैं।

सप्त ब्रह्मर्षि, देवर्षि महर्षि-परमर्षयः।
काण्डर्षिश्च श्रुतर्षिश्च राजर्षिश्च क्रमावराः।।

श्रुतर्षि – पवित्र-कथादिश्रवणकर्त्ता, काण्डर्षिर्वेदानांप्रधानकाण्डस्योपदेष्टा, परमर्षिमुनिभेलेव जैसे महर्षिव्यासादयः महर्षिविश्वामित्रादयः ब्रह्मर्षिवसिष्टादयः। देवर्षि नारदादयः।

महर्षि यास्क -- यह पाणिनी से पूर्ववर्ती थे । इनके व्यक्तित्व व कृतित्व का परिचायक 'निरुक्त' है जो कि 'निघण्टु' की टीका है, ये वैदिक शब्द कोष है। वैदिक शब्दों के निर्वचन यास्क ने किये हैं 'निरुक्त' पर दुर्ग की प्रधान टीका है, वैदिक मन्त्रों में इन्द्र वृत्रासुर का वृतान्त वर्णित हैं यास्क निरुक्त में लिखते हैं तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरूक्ता 'त्वाष्टोऽसुर' इत्यैतिहासिकाः'' ऐतिहासिक लोग पुराणकार, त्वष्टापुत्र असुर को वृत्र मानते हैं। यास्क के अनुसार मेघ ही वृत्र है जल और ज्योति के मिश्रीकरण से भी वर्षा कार्य होता है इसे युद्ध का स्वरूप उपमा के लिए दिया गया है।

पाणिनी -- व्याकरण के मुनित्रय-पाणिनी, कात्यायन, पातंञ्जलि में पाणिनी व उनकी 'अष्टाध्यायी' सर्वश्रेष्ठ है । आठ अध्यायों का यह बेजोड़ ग्रन्थ रत्न है । काशिका बामन और जयादित्य इसकी टीका है। विश्व ने अभी तक पाणिनी जैसा वैयाकरण पैदा ही नहीं किया । इनके व्याकरण ने ही संस्कृत भाषा को पूर्ण भाषा (Mostperfect) के महत्त्व पूर्ण पद पर आसीन किया है। दाक्षीपुत्र दाक्षेय इन्हीं के नाम हैं। इनका जीवनवृत अनावृत है अष्टाध्यायी बड़ी ही वैज्ञानिक है। इतने लघु सूत्र में इतनी सामग्री प्रस्तुत करना अलौकिक प्रतिभा का ही द्योतक है। अष्टाध्यायी सूत्रशैली में है। पाणिनी के व्याकरण ने ही संस्कृत भाषा को पूर्णतम वैज्ञानिक भाषा पद पर आसीन किया है। सरविलियम जोन्स का कहना है --

"Sanskrit was the most scientific language and it contained words common to both Greek and Latin"

महर्षि वाल्मीकि -- महर्षि बाल्मीकि की रामायण को लौकिक संस्कृत का आदिकाव्य कहते हैं। यह २४०० श्लोकों का ग्रन्थ महाकाव्य के लक्षणों से युक्त ग्रन्थ रत्न है। बाल्मीकि राम के समकालीन थे। राम (जो कि ग्रन्थ के नायक है) के पुत्र लवकुश ने इस महाकाव्य को सर्वप्रथम राम के दरबार में गाया था। यह काव्य

गाने के मधुर, द्रुत, मध्य विलम्बित गतियों से अन्वित षड़जादि सात स्वरों के मधुर परिपाक से परिपूर्ण है। महर्षि बाल्मीकि प्रचेता (वरूण) के दशम पुत्र थे। ये बड़े सत्यवादी थे तथा इन्होंने कई वर्षों तक तपस्या की थी। वाल्मीकि रामायण में उत्तरकाण्ड में सीता की शुद्धि परीक्षा के अवसर पर ये अपना परिचय देते हुए स्वयं कहते हैं।

> ''प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रोरघुनंदनः।
> बहुवर्षसहस्त्राणि तपश्चर्यामयाकृता।।
> तस्याहं फलश्नामि अपापा मैथिली यदि।

ब्रह्मांड पुराणान्तर्गत अध्यात्म रामायण के प्रमाण्य से हम जानते हैं कि वनवास में जानेपर बाल्मीकि से राम ने रहने का उचित स्थान पूछा था और वाल्मीकि ने दण्डकवन बतलाकर अपना जीवन परिचय दिया था कि वह द्विजजाति के होकर भी डाकुवृत्ति से रहते थे। सप्तर्षियों ने उन्हें 'मरा' मन्त्र का उपदेश किया था। इस प्रकार बहुत काल तपस्या करते हुए उनके ऊपर वाल्मीक (मिट्टी) का ढेर जम गया था, वे स्वयं कहते हैं

> एवं बहुतिथे काले गते निश्चलरूपिणः।
> सर्वसङ्गविहीनस्य, वल्मीकोऽभून्ममोपरि।। (अध्यात्म रामायण सर्ग ६ पृ० ६३)

कई वर्ष बीतने पर सप्तर्षि जब पुनः आये तो वाल्मीकि बल्मीक से निकल आये जैसे कुहर से भास्कर ऐसे निकल आता है।

आद्य शंकराचार्य -- आद्य शंकराचार्य को ऋषि वर्ग में ले सकते है। इन्होंने पांचवर्ष की अवस्था में सन्यास ग्रहण कर लिया था। इनके समय बौद्ध धर्म ज़ोर पकड़ रहा था। इन्होंने गीता, ब्रह्मसूत्र, विष्णुसहस्त्रनाम्, सनत्सुजातीय दर्शनम्, ११ उपनिषदों पर विद्वतापूर्ण टीकाएँ लिखी। कुछ मौलिक ग्रन्थ विवेक चूड़ामणि आदि लिखे। ये शास्त्रीय पद्धति के दिग्गज विद्वान थे। इन्होंने मंडन आदि कई तत्कालीन विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। ये अद्वैतवाद एवं मायावादके प्रवर्त्तक दार्शनिक कहलाते हैं। यूरोपियन विद्वान डायसन की सम्मति में

"Sankara was one among three genius of the world--Sankar, Plato and Kant"

महर्षि वेदव्यास -- ये महाभारत तथा अष्टादश पुराणों के रचयिता हैं। पातञ्जल योगदर्शन के भाष्यकार भी व्यास हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत एवं पुराणों के लेखक व्यास और पांतञ्जल योगदर्शन के भाष्यकार अलग-अलग थे, विष्णु पुराण में भिन्न मन्वन्तरों में भिन्न-भिन्न वेदव्यासों का उल्लेख किया है। वेदों

का व्यास-विस्तार करने के कारण ही सभी मन्वन्तरों में होने वाले इन आचार्यों की वेदव्यास संज्ञा पड़ी थी। महाभारत एवं पुराणों के रचयिता व्यास कृष्णद्वैपायन थे। महाभारत के प्रमाण्य से हम जानते हैं कि ये पराशर व सत्यवती के पुत्र थे, पराशर विष्णु पुराण के वक्ता भी हैं। महाभारत में कहा गया है कि एक बार 'उपपरिचरवसु' नामक राजा बन के मादक वासन्तिक वातावरण में स्खलित वीर्य हो गये। अपनी पत्नी गिरिका का ऋतुकाल निकट जानकर उन्होंने श्येन को अपनी पत्नी गिरिका के पास वीर्य लें जाने को कहा। बाज वीर्य लेकर उड़ा। दैवयोग से वह वीर्य यमुना के जल में गिर पड़ा, उस वीर्य को एक अप्सरा जो ब्रह्मा जी के शाप से मछली बन गयी थी, निगल गयी। उस मछली को पकड़कर मछियारे ने उसका पेट चीरा तो एक लड़का तथा एक लड़की हुइ। लड़की सत्यवती के नाम से सुप्रसिद्ध हुई। लड़का मत्स्य राजा हुआ। सत्यवती मछली के पेट से पैदा हुई थी, अतः उसके शरीर से एक योजन तक दुर्गन्ध निकलती रहती थी। सत्यवती पिता के लिए यमुना में नाव चलाती थी। अप्सरा की पुत्री होने के कारण अतीव सुन्दरी थी, ऋषि पराशर ने उसे अपने लावण्य की क्रान्ति से उद्भासित देखा तो रूप और यौवन का मणिकांचन योग पाया तथा कामातुर होकर समागम की इच्छा अभिव्यक्त की। सत्यवती ऋषि के शाप से डरती थी, तथा दूसरी ओर पिता का भी भय था। महाभारत में वह स्वयं कहती है ''तमहं शापभीता च पितुभीता च भारत'' पराशर जी ने वही यमुना तट पर नीहारजनित अन्धकार की सृष्टि की तथा सत्यवती से समागम किया। इस प्रकार व्यास का जन्म हुआ। पराशर ने उसे वरदान देकर योजन दुर्गन्धा से योजन सुगन्धा तथा अक्षत-योनि बना दिया। ये काले श्याम वर्ण के थे तथा एक द्वीप में पैदा हुये थे अतः ये कृष्णाद्वैपायन कहलाते हैं। ब्रह्मसूत्र के रचयिता बादरायण मुनि भी इन्हें ही कहते है। कृष्णद्वैपायन अद्वितीय अलौकिक प्रतिभा, सूक्ष्म पर्यवेक्षणशक्ति से सपन्न थे। विष्णु पुराणकार ने इन्हें नारायण साक्षात् कहा है --

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।
को ह्यन्यो भुवि मैत्रेय महाभारतकृद्भवेत्।। (विष्णुपुराण चौथा अध्याय पृ० २०८)

महाभारत में आर्यों का चरित्र अपनी मानव सुलभ दुर्बलताओं के साथ वर्णित है। संस्कृति के प्रचार में भीष्म कर्ण आदि पात्र तथा महर्षियों का अपूर्व योगदान है। पश्चिमी विद्वान विण्टरानिट्स ने महाभारत को अपने आप में समग्र साहित्य (Whole literature) कहा है। इनके अष्टादश पुराण निम्न हैं। ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, भागवत्, नारदीय, मार्कण्डय आग्नेय, भविष्यत्, ब्रह्मवैवर्त, लै, वाराह, स्कन्द, वामन, कौर्म, मात्स्य, गारूड तथा ब्रह्माण्ड पुराण। पुराणों के वर्णित प्रतिपादित विषय निम्न है। जैसा कि विष्णु पुराण में कहा गया है

'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितं च यत्।।

सृष्टि, प्रलय देवताओं के वंश मन्वन्तर और भिन्न-भिन्न राजवंशों के चरित्र का वर्णन पुराणों के विषय है, भूगोल, तथा ज्योतिष तथा वर्णित देव का गुणगान भी पुराणों के वर्णित विषय हैं। देवी भागवत में रुद्राक्ष का विस्तृत विवेचन मिलता हैं। अग्निपुराण में अनेक गायत्री के प्रकारों का विवेचन, एकाक्षर शब्दों का विवेचन तथा खड्ग एवं बाणों का विवेचन, वैदिक पौराणिक मन्त्र सिद्धि की विधियाँ आदि वर्णित हैं। वेदव्यास नियोग के अर्थात् सन्तानोपत्ति की निकृष्ट विधि के आचार्य थे। इन्होंने नियोग के द्वारा अम्बा अम्बालिका से सन्तति उत्पन्न की थी। जिससे घृतराष्ट्र तथा विदुर का जन्म हुआ था।

विश्वामित्र -- निरुक्तकार यास्क ने विश्वामित्र शब्द में बहुब्रीहि समास करते हुए व्युत्पत्ति की है "विश्वाणि मित्राणि यस्य सः" अर्थात् सब का मित्र। विश्वामित्र कई वेद मन्त्रों के द्रष्टा भी हैं। महर्षि वाल्मीकि ने इन्हें अपनी तपस्या की दीप्ति से प्रज्जवलित, कठोर व्रत का पालन करने वाले तपस्वी ऋषि कहा है "ज्वलितं दीप्त्या तापसं संशितव्रतम", सर्वविदित है कि ये रामलक्ष्मण को राक्षसों के विनाश के लिये ले गये थे। वाल्मीकि रामायण के साक्ष्य से हम यह भी जानते है कि रामलक्ष्मण को इन्होंने 'बला अतिबला नाम की दो विद्याएँ दी थी जो सब प्रकार के ज्ञान की जननी थी। यह विद्याएं क्या थी ? मन्त्र ग्रामं थीं जो श्रम ज्वर रूप विपर्यय एवं राक्षसों से रक्षा करती थीं इन विद्याओं की कृपा से भूख-प्यास के कष्ट से भी निवृत्ति हो जाती थी। विश्वामित्र ने अनेक दिव्यास्त्र 'वर्षण, शोषणं संतापमादनं गार्न्धर्व पैशाचमात्रं सोमास्त्रं, शिशिरं त्वष्टामस्त्रं सुदारूणम, राम को प्रदान किये थे।

त्रिशंकु को सदेह स्वर्ग भेजने का प्रयास तथा इन्द्र के द्वारा उसे स्वर्ग से गिरा देना तथा इनका नूतन सृष्टि निर्माण का उपक्रम इनके अलौकिक कृत्य हैं । ये कुशिक के पुत्र थे । विश्वामित्र एक बार महर्षि वसिष्ठ के पास सर्वमनोरथदायिनी कामधेनु गाय प्राप्ति हेतु गये थे । वसिष्ठ जी ने इनका यथोचित पूजा सत्कार किया। विश्वामित्र ने कहा --

"अर्बुदेन गवां ब्रह्मन् मम राज्येन वा पुनः।
नंदिनीं सम्प्रयच्छव भुङक्ष्व राज्यं महामुने।।

जब किसी प्रकार से वसिष्ठ नंदिनी गाय को देने को तैयार नहीं हुए तब विश्वामित्र ने क्षत्रिय धर्म की दुहाई के साथ हठात् नन्दिनी को ले जाने का प्रयास किया। नन्दिनी वसिष्ठ जी की शरण में गयी पुनः अपनी

पूँछ से पह्लवों, थनों से द्रविड़ों-शकों, योनि से यवनों, गोबर से शबरों, पार्श्व भाग से पौण्ड्र, किरात, यवन, सिंहल, बर्बर, खसों को जन्म दिया। इन सब ने विश्वामित्र की सेना के किसी भी सैनिक का प्राण लिये बिना खदेड़ दिया, तब विश्वामित्र नानाविध बाणों की वर्षा करने लगे जिसे वसिष्ठ ने बांस की छड़ी से निवारण कर दिया। ब्रह्म तेज से तिरस्कृत होकर विश्वामित्र अपने बल को धिक्कारने लगे। उन्होंने अपने समृद्धिशाली राज्य को त्याग दिया तथा तपस्या करने लगे।

"ततान सर्वान् दीप्तौजा ब्राह्मणत्वमवाप्तवान्।
अपिवच्च ततः सोममिन्द्रेण सह कौशिकः।। (महाभारत आदिपर्व पृ० ५१५)

इनकी तपस्या से चिन्तित देवराज इन्द्र ने मेनका अप्सरा को इनका तप भंग करने के लिए भेजा। मेनका विश्वामित्र मिलन से शकुन्तला की उत्पत्ति हुई जिसका गान्धर्व विवाह राजा दुष्यन्त से हुआ। भरत की उत्पत्ति तथा आर्यव्रत का 'भरत' नाम पड़ा। यह समस्त आख्यान महाभारत के आदि पर्व के अन्तर्गत सम्भवपर्व में है। इस प्रकार मानव सुलभ दोष ईर्ष्या, अहंकार, कामादि दोषों से ऋषि भी ग्रसित हैं।

नारद -- ये बहुचर्चित प्रगल्भ देवर्षि हैं। नारद जिनके होंठ से निकला वचन कभी मिथ्या नहीं होता सर्वत्र गमन की अलौकिक सामर्थ्य से ये संपन्न हैं। क्षणमात्र में मनुष्यलोक क्षणमात्र में यमलोक, विष्णुपुरी कैलाश तथा ब्रह्मलोक में पहुँच जाते हैं। परम कौतुकी हैं। दोनों पक्षों में संघर्ष ये किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए करवातें हैं। ये ब्रह्मा के मानस पुत्र कहलाते हैं। इनके विवाह तथा विष्णु द्वारा वानर रूप की कथा अति प्रसिद्ध है। वाल्मीकि रामायण के साक्ष्य से रावण ने जो पुष्पक विमान पर आरूढ़ था महा तेजस्वी नारद को देखा

"नारदस्तु महातेजो देवर्षिमित प्रभः।
अब्रवीन्मेघपृष्ठस्थो रावणं पुष्पके स्थितम्"।।

नारद के कहने से रावण यमपुरी में पहुँचा। रावण से पूर्व नारद ने यमपुरी में पहुँचकर यमराज को सावधान किया। देव दानव मनुष्य सभी इनकी बात ध्यान से सुनते हैं। इन्हें व्यंग्य से 'घरफोड़ू' भी कहा जाता है।

महर्षि दधीचि -- महर्षि दधीचि की कथा महाभारत के वनपर्व में वर्णित है। ब्रह्मा जी के परामर्श तथा बृत्रासुर से त्रस्त होकर सरस्वती नदी के पार स्थित दधीचि ऋषि के आश्रम पर देवराज इन्द्र भगवान नारायण के साथ गये। आश्रम सामवेद के मन्त्रों की ध्वनि से निनादित तथा यज्ञ से सुवासित हो रहा था। तभी इन्द्र ने

ऋषि प्रवर से वृत्रासुर विनाश के लिए अस्थि दान की प्रार्थना की। अस्थिदान तथा वज्र निर्माण कार्य हुआ। ऋषि ने परोपकारार्थ उत्सर्ग किया था । देवों ने पुष्प वृष्टि की। वृत्रासुर का नाश हुआ। आसुरी वृत्तियों पर देवों की विजय हुई। संस्कृति तथा धर्म की पुनः स्थापना हुई।

महर्षि भृगु -- ब्रह्मा जी ने वरुण के यज्ञ में महर्षि भगवान मृगु को अग्नि से उत्पन्न किया था।

भृगुर्महर्षिभगवान् ब्रह्मणा वै स्वयम्भुवा

वरूणस्य क्रतौ जातः पावकादिति नः श्रुतम्। (महाभारत आदिपर्व पृ० ६३)

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार भृगुकी उत्पत्ति आदित्य अङ्गिरा के साथ प्रजापति के वीर्य से हुई 'गोपथब्राह्मण १(२-८)मे एकबार तपस्या में निरत ब्रह्मदेव के शरीर से कुछ पसीने की बूँदें निकलीं जिनमें अपने ही सुन्दर शरीर के प्रतिबिम्ब को देखकर ब्रह्मदेव का वीर्यस्खलन हुआ, जो दो भागो में विभक्त हो गया। एक भाग था स्निग्ध और चिक्कण, दूसरा था रूखा तथा खुरखुरा। पहले से भृगुका दूसरे से अङ्गिरा का जन्म हुआ। शतपथब्राह्मण तथा जैमिनीय उपनिषद मे वरुण के द्वारा भृगु के ज्ञानोपदेश का वर्णन मिलता है। इन्हें वारुणि-वरुण का पुत्र होने के कारण ही कहते हैं। ये एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि हैं। जिन्हें अनेक सूक्तों के द्रष्टा होने का गौरव प्राप्त है। भृगु की दो पत्नियां थी दिव्या और पौलोमी। दिव्या के पुत्र थे शुक्राचार्य पौलोमी के पुत्र थे च्यवन। शुक्राचार्य की अलौकिक शक्तियों का परिचय हमें अनेक अवसरों पर मिलता है। पौलोमी के पुत्र महर्षि च्यवन को अश्विनी कुमारों ने नवयौवन प्रदान किया था, ऐतरेयब्राह्मण का प्रमाण्य है। शर्याति का महाभिषेक च्यवन ने ही किया था। च्यवन का पुत्र प्रमति था जिसने 'घृताची' अप्सरा से विवाह कर रूरूं नामक पुत्र उत्पन्न किया था। च्यवन महर्षि की जन्म कथा महाभारत के आदि पर्व में वर्णित है। माता पुलोमा के उदर से च्युत होने के कारण ही इन्हें च्यवन कहते हैं। इनकी माता पुलोमा को एक राक्षस जिसका भी पुलोमा ही नाम था भृगुकी अनुपस्थिति में हरण करके ले जा रहा था तभी योगबल से 'आदित्यवर्चसम' ये जननी के उदर से च्युत होकर गिर पड़े। इनके तेज से राक्षस जलकर भस्म हो गया। पुलोमा नेत्रो में आसूँ बहाती हुई, पितामह ब्रह्माजी के पास गई। उसके आसूं की बूँदों से जो नदी प्रकट हुई ब्रह्मा जी ने उसका नाम वधूसरा रखा क्यों कि वह उनकी पुत्र वधु पुलोमा का अनुसरण कर रही थी। यह नदी आज भी भगवान च्यवन के आश्रम से गुजरती है। भृगु ने लौटकर संपूर्ण वृत्तान्त जानकर अग्नि को सर्वभक्षी होने का शाप दिया क्यों कि उन्होंने ही पुलोमा का परिचय राक्षस को दिया था।

वैदिक संस्कृति के प्रचार में भृगुवंशीय महर्षियों का विशेष योगदान रहा है। इन्होंने ही मध्यप्रदेश में भारत के पश्चिमी भाग में वैदिक धर्म का प्रचार किया था। अथर्ववेद के संकलन में भृगु ने सराहनीय योगदान दिया था। अथर्ववेद में इन्हीं दो महर्षियों का प्राधान्य दीख पड़ता है। इसीलिए अथर्ववेद का प्राचीन नाम 'भृम्वङ्गिरस' है। अथर्वण प्रयोगों में निष्णात होने के कारणा भृगु संजीवनी विद्या के ज्ञाता थे अपनी पुस्तक 'पुराणविमर्श में बलदेव उपाध्याय लिखते हैं -- एक बार देवासुरसंग्राम के अवसर पर इनके पुत्र शुक्राचार्य द्वारा असुरों की सहायता करने पर विष्णु रुष्ट हो गये और भृगुपत्नि को चक्र से मार डाला। भृगु ने अपनी मृत संजीवनी विद्या के बल से जीवित कर दिया था विष्णु को मनुष्य लोक में जन्म लेने का शाप इन्होंने ही दिया था। देवी भागवत में यह आख्यान वर्णित है । जमदग्नि ऋषि को भी भृगु ने मारे जाने पर जीवित किया था

भृगुगीता, भृगुस्मृति, भृगुसंहिता इनके ग्रन्थ हैं। भृगुसंहिता ज्योतिष का अमूल्य ग्रन्थ है। भृगुजी का आश्रम पश्चिम समुद्र-तट पर था जहां नर्मदा नदी समुद्रसे मिलती है। इसका प्राचीन नाम भृगुकच्छ और भडौ-च आधुनिक नाम है। 'पुराण विमर्श' पुस्तक में उपाध्याय जी लिखते हैं कि भृगुकच्छ भारत के नौ व्यापार का प्रमुख मार्ग था। पश्चिमी जगत के व्यापार का आवागमन इसी के रास्ते होता था। आज से दो हजार वर्ष पूर्व रोमन सम्राट् अगस्टस सीजर के जमाने मे भृगुकच्छ से रोमन रमणियां तथा विलास वस्तुएं जलयान द्वारा लायी जाती थीं। बाद में सूरत से यह कार्य होने पर भृगुकच्छ का प्राचीन गौरव क्षीण हो गया। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में भृगु उपस्थित थे इन्होंने अपनी दाढ़ी हिलाकर दक्ष के कथनों की पुष्टि की थी परिणामस्वरूप वीरभद्र ने दाढ़ी उखाड़कर इन्हें विद्रूप कर दिया था। परन्तु फिर शिवजी ने प्रसन्न्न हो कर इनके मुहँ पर बकरे की दाढ़ी लगा दी थी। यह एक हास्यपूर्ण घटना हुई। भृगु का यह कार्य ऋषि-कर्म के प्रतिकूल था

"भृगुबबन्ध मणिमान वीरभद्रः प्रजापतिम्।
चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीचरोऽग्रहीत।।
जुह्वतः स्त्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान भवः।
भृगोलुलुपो सदसि स्वे योऽहसच्छमश्रूः दर्शयन्।। (श्री मदभागवत ४/५)

त्रिदेवों में श्रेष्ठता के प्रश्न पर इनको ऋषियों का प्रतिनिधित्व सौपां गया था । इन्होंने सोते हुए विष्णु की छाती में लात मारदी थी लेकिन बिना क्रोध किये विष्णु ने इनके पैर पकड़ लिये और विष्णु की प्रधानता ऋषियों को मान्य बनी ।

ऋषि अगस्त्य -- "अगं स्त्यायति-स्तम्भनाति" जो पर्वत को स्थिर कर देता है। इन्होंने विन्ध्याचल पर्वत को बढ़ने से रोक दिया था ऐसा पौराणिक आख्यान महाभारत के वन पर्व में है। पर्वत के मार्ग अवरूद्ध कर देने से सूर्य की रश्मियाँ कुछ भूभाग में रूक जाने से बड़ी हानि हो रही थी अतः यह एक महान जनकल्याण का कार्य हुआ 'परोपकाराय सतां विभूतयः' हमारी संस्कृति का अंग है। अगः कुम्भः स्त्यानः संहतः इत्यगस्त्यः अर्थात कुम्भ से उत्पन्न होने के कारण भी इन्हें अगस्त्य कहते है। क्योंकि अगः का अर्थ कुम्भ भी है। इसी कारण इनको कुम्भयोनि, कुम्भजन्मा घटोद्भव और कलशयोनि भी कहते हैं। इनके जन्म के संबंध में पौराणिक आख्यान महाभारत के वन पर्व में प्रसिद्ध है। लावण्यमयी अप्सरा को देखकर इनके पिता मित्रावरुण का वीर्य स्खलित हो गया था जिसका क्रुछ भाग जल तथा कुछ कुम्भ में गिरा। इन्होंने वातापि और इलवल ब्राह्मणघाती असुरो को अपने क्रोधानल से भस्म कर दिया था इस प्रकार लोकोपकार का कार्य सम्पन्न हुआ था। असुरों के विनाश के लिए इन्होंने देव, नाग, यक्ष, किन्नरों की उपस्थिति में देवताओं की प्रार्थना पर समुद्र पान किया था। इस प्रकार सांस्कृतिक कार्य संपन्न हुआ। हर्षातिरेक से देवों ने पुष्पवृष्टि तथा गन्धर्वों ने वाद्य ध्वनि की।। वनवास की अवधि में इन्होनें राम को महेन्द्र चाप प्रदान किया था

स पूज्यमानस्त्रिदशैर्महात्मा गन्धर्वतूर्येषु नदत्सु सर्वशः।
दिव्यैश्चपुष्पैरवकीर्यमाणो महार्णवं निःसलिलं चकार।।

(महाभारत वन पर्व १०६ अध्याय)

ऋष्यशृङ्ग -- ये कश्यपनन्दन विभाण्डक के पुत्र थे जो मृगी के पेट से उत्पन्न हुए थे जो मृगी पूर्व जन्म में देवकन्या थी परन्तु ब्रह्मा के शाप से मृगी बन गयी थी। इस विषय में महाभारत में आख्यान है कि एक बार विभाण्डक मुनि का वीर्य रूपसी उर्वशी को देखकर स्खलित हो गया तथा यमुना जल में गिर गया मृगी जल के साथ इसे भी पी गयी। उसी मृगी से इनका जन्म हुआ। मृगी से जन्म लेने के कारण इनके सिर पर एक सींग था इसीलिए इन्हें ऋष्यश्रृंग कहते हैं। अङ्गदेश के राजा लोमपाद के राज्य में अकाल पड़ा एक वैश्या को भेज कर इन्हें मंगवाया गया। स्त्रियों से सर्वथा अनभिज्ञ इनको राजमहल के सुस्वादु मिष्ठान्न दिये गये, इन्होंने अभी तक तो भिलावा, आंवले करूषक (फालसा) इङ्गुद (हिंगोट) धन्वन धामिन और पीपल के फल खाये थे। लोमपाद ने अपनी बेटी शान्ता इनके साथ ब्याह दी। इन्द्र ने लोमपाद के राज्य में जमकर वर्षा की यह एक महान् लोकोपकारक कार्य सपन्न हुआ।

भारतीय वाङ्मय के विशाल वारिधि में ऋषिमुनि रूपी अनेकों मणि माणिक्य विद्यमान हैं। सभी असीम कान्ति और तपश्चर्या के अमित तेज से मंडित हैं। उनके लिये सीमा, रेखा स्थापित करना कि अमुख ऋषि को भारतीय संस्कृति का उन्नायक माना जाये और अमुक ऋषि को नहीं, बड़ा कठिन कार्य है। पश्चिम विद्वान् सी. एम. जोड. ने अपनी पुस्तक 'A dialogne on civilization में लिखा है जिस कृति या कार्य पर हम गर्वानुभूति कर सकें उस कृति को और उसके रचानाकारको हम संस्कृति उन्नायक कह सकते हैं। इसी मापदंड को अपनाते हुए कह सकते है कि व्यास, बाल्मीक़ि पातञ्जलि पाणिनी जी ने अपने अमूल्य ग्रन्थ प्रदान कर भारतीय संस्कृति के उन्नयन एवं विकास में सीधे योग दान दिया है, और ऋष्यशृ ऋषि ने ब्रह्मचर्य एवं तपश्चर्या के तेज़ से दुर्भिक्ष से जनता को त्राण दिया और प्राणरक्षा की। उनका यह परोपकारपूर्ण कृत्य भारतीय संस्कृति का उन्नायक कहा जायेगा। परोपकार हमारी संस्कृति का प्रधान गुण माना जाता है। अगस्त्य जी ने विन्ध्याचल पर्वत कों बढ़ने से रोक कर भारत के विशेष भू भाग में सूर्य की किरणों के अवरुद्ध हो जाने से होने वाली स्वास्थ्य एवं कृषिहानि को दूर किया था। भृगु जी ने भृगु स्मृति, भृगु संहिता, भृगु गीता ग्रन्थरत्न लिखकर भारतीय संस्कृति में योगदान दिया। वातापि तथा इल्वल ब्राह्मणधाती असुरों को मारकर ब्राह्मणों को असुरों के अत्याचार से मुक्ति दिलवाकर अगस्त्यजी ने संस्कृति में योगदान दिया, उनके इस कार्य की पुष्टि देवताओ ने स्तुति एवं पुष्पवृष्टि से की थी। भृगु जी ने भारत के पश्चिमी भाग में वैदिक धर्मका प्रचार तथा अथर्ववेद का संकलन कर भारतीय संस्कृति के उत्थान में महान योगदान दिया। उनके आश्रम का स्थान भृगुकच्छ उस समय भारत के नौ-व्यापार का केन्द्र था।

उपर्युक्त सभी ऋषियों के महनीय कार्यों को देखते हुए मैं कह सकता हूँ कि ये सब ऋषि विश्ववंद्य भारतीय संस्कृति के देदीप्यमान प्रकाशस्तम्भ हैं।

*****

ऋषि

(एक वैदिक चिन्तन)

डॉ० मनुदेव बन्धु,
अध्यक्ष,(वेद विभाग),
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार

ऋषि कौन है – निरुक्त के लेखक महर्षि यास्क लिखते हैं – "साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्त्सम्प्रादुः। उपदेशेन ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च।। (निरुक्त १ १)

सृष्टि के आरम्भ में ऐसे ऋषि उत्पन्न हुए थे जो साक्षात् कृतधर्मा थे अर्थात् जिन्हें परमात्मा की प्रेरणा से वेदमन्त्रों और उनके अर्थों का साक्षात्कार हुआ था । वे साक्षात्कृतधर्मा ऋषि अपने पीछे आने वाले असाक्षात्कृतधर्मा ऋषियों को जिन्हें परमात्मा द्वारा वेदमन्त्रों और उनके अर्थों का बोध नहीं हुआ था, अपने उपदेश द्वारा वेदमन्त्रों को सिखाते रहे। पश्चात् इन पीछे आने वाले ऋषियों ने वेद को समझने के लिए वेद को तथा निरुक्त और वेदाङ्गों को ग्रन्थ रूप में संगृहीत किया। इस प्रकार यास्क की सम्मति में वेद सृष्टि के आदि में ऋषियों को परमात्मा द्वारा प्रदत्त ज्ञान है। आदि ऋषियों ने वेदमन्त्रों का साक्षात्कार किया था, निर्माण नहीं। साक्षात्कार पहले से ही विद्यमान वस्तु का हुआ करता है। वेदमन्त्र परमात्मा के नित्य ज्ञान में पूर्व से विद्यमान थे, उन्हीं का साक्षात्कार ऋषियों ने किया। उन मन्त्रों को स्वयं नहीं बनाया। इसी बात को यास्क एक और स्थल पर इस प्रकार स्पष्ट करते हैं –

> **"ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान् ददर्श इत्यौपमन्यवः।**
> **तदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भुः अभ्यानर्षत्त**
> **ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते!!"** -निरुक्त २/११

अर्थात् ऋषि उसे कहते हैं, जो दर्शन करे। औपमन्यव आचार्य ने कहा है कि तप करते हुए इनको स्वयम्भु वेद प्राप्त हुआ, उससे वे ऋषि हो गये। यही ऋषियों का ऋषित्व है। **"ब्रह्म वेदः। स्वयम्भुः अपौरुषेय परमात्मनो ज्ञाने नित्यं वर्तमानः। ऋषिशब्दो दर्शनार्थाद् दृशिधातोर्गत्यर्थाद् ऋषीधातोर्वा निरुच्यते।" गतेश्च**

ज्ञानप्राप्ती इत्यप्यर्शो भवति इति प्रसिद्धमेव। ऋषि शब्द दर्शनार्थक दृश धातु से उसके दकार का लोप होकर बनता है। गति अर्थ वाली ऋष् धातु से भी यह शब्द बनता है। संस्कृत में गति के ज्ञान और प्राप्ति अर्थ भी होते हैं। वेद स्वयम्भु है। परमात्मा के ज्ञान में नित्य रहने के कारण वेद सदा से स्वयं विद्यमान है। किसी ने उसे बनाया नहीं। वे अपौरुषेय हैं। ऋषियों ने तपस्या करके वेद को केवल देखा है, प्राप्त किया है ,जाना है, वेद को देखना, प्राप्त करना, जानना ही ऋषियों का ऋषित्व है। ऋषियों ने वेदमन्त्रों को स्वयं नहीं बनाया है। परमात्मा की कृपा से उन पर ही मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित हो जाता है। इस प्रकार यास्क के मत में वेद परमात्मा का ज्ञान है। ऋषि लोग तो केवल उसके प्रचारक, प्रसारक, व्याख्याकार और भाष्यकार हैं।

परमात्मा ने वेदमन्त्रों का ज्ञान ऋषियों को किस लिए दिया, इस सम्बन्ध में यास्क कहते हैं -- "कर्मसम्पतिर्मन्त्रो वेदे" वेद में जो मन्त्र हैं वे अनेक प्रकार के कर्मों की सिद्धि करने वाले हैं। वेद सर्वथा सर्वज्ञ परमात्मा का ज्ञान होने से पूर्ण और नित्य हैं। अतएव वह असन्दिग्ध और सत्य ज्ञान के भण्डार हैं। अतः मन्त्रों में जो ज्ञान दिया गया है, वह इस प्रकार का है कि उसके द्वारा हमारे सब प्रकार के कर्मों की सिद्धि हो सकती है। वेदमन्त्रो में दिये गये ज्ञान के अनुसार चलकर हम लोक और परलोक के सब सुखों को प्राप्त कर सकते हैं। वेदज्ञान के बिना मनुष्य अपने कर्मों से यह फल प्राप्त नहीं कर सकता था। क्योंकि -

"पुरुष विद्याऽनित्यत्वात्" (निरुक्त १/२)

मनुष्य का ज्ञान तो अनित्य है। मनुष्य का अपना ज्ञान अपूर्ण और परिवर्तनशील है। अतः वह असन्दिग्ध और स्थिर नहीं हो सकता, ऐसे सन्दिग्ध ज्ञान के आधार पर किये कर्म भी इहलोक और परलोक में सच्चे सुख और शान्ति की सिद्धि नहीं करा सकते। इस कारण यास्क के मत में पूर्ण और नित्यज्ञान वाले परमात्मा द्वारा सृष्टि के आरम्भ में वेद का उपदेश दिये जाने की आवश्यकता है। यास्क के मत में वेदमन्त्र कहलाते ही इस कारण हैं, कि "मन्त्राः मननात्" (निरुक्त ७/१२) उनके मनन से नानाप्रकार का ज्ञान सीखा जाता है। यास्क के इस वाक्य पर निरुक्त के प्रसिद्ध टीकाकार दुर्गाचार्य ने लिखा है -

"तेभ्यो(मन्त्रेभ्यो)हि अध्यात्माधिदैवाधियज्ञादिमन्तारो मन्यन्ते तदेषां मन्त्रत्वम्"।(निरुक्त, दुर्गभाष्य ७/२)

मन्त्रों से आध्यात्मिक ,आधिदैविक और आधियाज्ञिक अर्थों को वेद के अध्येता लोग मनन द्वारा प्राप्त करते हैं। यही मन्त्रों का मन्त्रत्व है। इस प्रकार वेदमन्त्र आध्यात्मिक ,आधिदैविक और अन्य अनेक प्रकार का ज्ञान

देते हैं। यही वेदमन्त्रों का वैशिष्ट्य है। वेद मानव जीवन के उपयोगी सभी प्रकार का ज्ञान तो सिखाते ही हैं, परन्तु उनका अन्तिम तात्पर्य परमात्मा का ज्ञान देकर उसका साक्षात्कार कराना है। वेद में जो अग्नि, वरुण आदि विभिन्न देवताओं के वर्णन आते हैं, वे भी वस्तुतः परमात्मा का ही वर्णन करते हैं। यास्क कहते हैं-

"महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति" (निरूक्त ७/४)

परमात्मा रूप देवता में महान् ऐश्वर्य होने के कारण भिन्न-भिन्न देवताओं की स्तुति द्वारा एक आत्मा (परमात्मा) के ही अनेक अङ्ग हो जाते हैं। इस प्रकार निरुक्तकार की सम्मति में वेद का मुख्य तात्पर्य अध्यात्मविद्या का उपदेश करना है। इस प्रकार आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विषयों का ऊँचा ज्ञान देने वाले वेद का अध्ययन करने और उसको समझने का क्या उपाय है ? किस योग्यता वाला व्यक्ति वेद के रहस्यों को समझ सकता है। आचार्य यास्क लिखतें हैं -

"इत्ययं मन्त्रार्थचिन्ताऽभ्यूहोऽभ्यूथः अपि श्रुतितोऽपि तर्कतः न तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यते।।" (निरुक्त १३ /१४)

इस प्रकार यह मन्त्रों का अर्थ-चिन्तन विषय का ऊहापोह कर के दिखा दिया है। श्रुति से अर्थात् स्वयं वेद के प्रमाणों से अथवा अनेक शास्त्रों के श्रवण द्वारा प्राप्त योग्यता से और तर्क से मन्त्रों का अर्थ करना चाहिए। पृथक्-पृथक् मन्त्रों का निर्वचन नहीं करना चाहिए। प्रकरण को देखकर उनका निर्वचन करना चाहिए। जो व्यक्ति ऋषि नहीं है अथवा तपस्वी नहीं है, उसे मन्त्रों का अर्थ प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। शास्त्रों के मर्म को समझने वाले विद्वानों में जो जितनी अधिक विद्याओं को जानता है, वह उतना ही अधिक प्रशंसनीय होता है। **तर्क ऋषि**-जब ऋषियों की परम्परा उठने लगी तब मनुष्यों ने देवों से कहा, कि अब हमारे लिए कौन ऋषि होगा ? तब देवों ने मनुष्यों को यह तर्करूप ऋषि दे दिया, जो कि मन्त्रार्थ चिन्तकों द्वारा धारण किया जाता है। इसलिए वेद का स्वाध्याय करके तर्क द्वारा ऊहापोह करके जो कुछ अर्थ निश्चित होता है, वह अर्थ तर्क -ऋषि द्वारा बताया हुआ होने के कारण आर्ष अर्थ होता हैं। यास्क लिखते हैं -

"मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन्। को न ऋषिर्भविष्यतीति? तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन् मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्। तस्माद् यदेव किञ्चानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद्भवति।। (निरुक्त १३/१२)

यास्क के मत में वेदमन्त्रों का अर्थ तर्कानुमोदित, बुद्धि संगत तथा ऋषित्व से युक्त होना चाहिए। जो अर्थ तर्कानुमोदित नहीं है, वह ठीक नहीं है। वहाँ वेद का दोष नहीं है, भाष्यकार का दोष है। वेद में जो कुछ कहा गया है वह तर्कानुमोदित और बुद्धिसंगत ही कहा गया है। इसी विषय में आचार्य यास्क एक अन्य स्थल पर लिखते हैं।

"सेयं विद्या श्रुतिमती बुद्धिः।

तस्यास्तपसा पारमीप्सितव्यम्"।। (निरुक्त १३/१३)

यह वेद विद्या ऐसी है जिसका बोध या ज्ञान श्रुति अर्थात् वेद के प्रमाणों तथा अनेक शास्त्रों के श्रवण, अध्ययन और मनन द्वारा होता है। तप द्वारा उस वेदविद्या को पार करने की इच्छा करनी चाहिए। जो तपःपूत पवित्र जीवन वाला नहीं है, जो ऋषि नहीं है, वह वेद के रहस्य को नहीं समझ सकता है। ऋग्वेद के द्वितीय मन्त्र का भाष्य करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं--

"अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति।। (ऋग्वेद १/१/२)

इस मन्त्र के ऋषि विश्वामित्र, देवता अग्नि तथा छन्द गायत्री है। सायण भाष्य -अयम्=अग्निः, पूर्वेभिः=पुरातनैः, भृग्वङ्गिरःप्रभृतिमिः ऋषिभिः, ईड्यः=स्तुत्यः, नूतनैः उत=इदानीन्तनैरस्माभिरपि (स्तुत्य इत्यर्थः), सः=अग्निः (स्तुतः सन्), इह=अत्र (यज्ञे), देवान्=हविर्भुजः, आवक्षति=आवहतु। उत शब्दो यद्यपिविकल्पार्थे प्रसिद्धस्तथापि निपातत्वेनानेकार्थत्वादौचित्येनात्र समुच्चयार्थः। ऋग्वेद-सायणभाष्य-(१/१/२)

हिन्दी अनुवाद-यह अग्नि देवता प्राचीन भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषियों द्वारा स्तुति किया जाता है और अब नवीन हम विश्वामित्र आदि ऋषियों द्वारा भी स्तुति किया जाता है। वह इस यज्ञ में देवताओं को प्राप्त करावें।

ऋषि बनने की क्षमता आज भी प्राप्त हो सकती है। लोकमङ्गल की कामना से वेद का प्रचार-प्रसार तथा भाष्य होना चाहिए। मेरी दृष्टि में वे सब ऋषि हैं, जो वेद का स्वाध्याय, अध्यापन तथा प्रचार करते हैं। महर्षि दयानन्द के विचार - महर्षि दयानन्द अपने अमर ग्रन्थ "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" के वेद-विषय-विचार प्रकरण में लिखते हैं -

"यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्।

स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति"।। (निरुक्त ७/१)

दयानन्दभाष्य -- "ऋषिरीश्वरः सर्वदृग्, यत्कामो यं कामयमान इममर्थमुपदिशेयमिति स यत्कामः, यस्यां देवतायामार्थपत्यमर्थस्य स्वामित्वमुपदेष्टुमिच्छन् सन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते, तदर्थगुणकीर्त्तनं प्रयुक्तवानस्ति, स एव मन्त्रस्तद्दैवतो भवति। किञ्च यदेवार्थप्रतीतिकरणं दैवतं प्रकाश्यं येन भवति, स मन्त्रों देवताशब्दवाच्योऽस्तीति विज्ञायते"। अर्थात् ऋषि सर्वद्रष्टा ईश्वर होता है। वह जिस अर्थ की कामना करके मन्त्र निर्माण करता है वही अर्थ उस मन्त्र का देवता बन जाता है। मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय देवता होता है।

आगे दयानन्द लिखते हैं - "अतः पूर्वेभिः प्राक्तनैः प्रथमोत्पन्नैस्तर्कैः ऋषिभिस्तथा नूतनैर्वर्त्तमानस्थैश्चोतापि भविष्यद्भिश्च त्रिकालस्थैरग्निः परमेश्वर एवेड्योऽस्ति। नैवास्मद्भिन्नः कश्चित्पदार्थः कस्यापि मनुष्यस्येड्यः स्तोतव्य उपास्योऽस्तीति निश्चयः। एवमग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत इत्यस्य मन्त्रस्यार्थसंगतेनैव वेदेष्वर्वाचीनाख्यः कश्चिद् दोषो भवितुमर्हतीति"।।

अर्थात् अग्नि=परमेश्वर प्राक्तन ऋषियों, नूतन वर्तमान ऋषियों तथा भविष्य में होने वाले ऋषियों द्वारा पूज्य=स्तुत्य, ईड्य है । इस प्रकार अर्वाचीन इतिहास वेद में नहीं है ।

"प्राणा वा ऋषयो देव्यासः" (ऐतरेयब्राह्मण-२/४/३)

'पूर्वेभिः पूर्वकालावस्थास्थैः कारणस्थैः प्राणैः कार्यद्रव्यस्थैर्नूतनैश्चर्षिभिः सहैव समाधियोगेन सर्वैः विद्वद्भिरग्निः परमेश्वर एवेड्योऽस्त्यनेन श्रेयो भवतीति मन्तव्यम्"।

दयानन्द भाष्य- जगत् के कारण प्रकृति में जो प्राण है उनको प्राचीन और उसके कार्य में जो प्राण हैं उनको नवीन कहते हैं, इसलिए सब विद्वानों को उन्हीं ऋषियों के साथ योगाभ्यास से अग्निनामक परमेश्वर की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी योग्य है । (ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका - वेद-विषय-विचार)

उपसंहार- वेदमन्त्रों में स्थित ऋषि शब्द यौगिक है। उनका अर्थ निरुक्त के अनुसार करना चाहिए। ऋषि तो व्यक्ति वाचक हैं। मन्त्रार्थ का द्रष्टा है। मन्त्रनिर्माता तो परमपिता परमात्मा ही है। अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान दिया।

*****

"सन्त हृदय नवनीत समाना"

शिवशंकर प्रसाद द्विवेदी,
आध्यात्मिक प्रवक्ता,
हिन्दू कल्चरल सोसाइटी, एडमण्टन (कनाडा)।

विश्व की विनम्र मनीषा मन वचन एवं कर्म की एकता का सार्थक निर्वाह करने वाले तेज पुञ्ज को सन्त कहकर संसार में सम्बोधित करती है -

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।

जिसका समग्र जीवन लोककल्याण की सद्भावना से भावित हो तदनुसार ही सत्कर्म का अवलम्बन, उसी की प्रेरणा देने के लिए आतुर मन, जब यह तीनों दिव्य गुण किसी एक काया में अपना विस्तार पाते हैं तो जीवन मार्ग में आने वाले अवरोधों का विचार गौण और जीवन का लक्ष्य मुख्य हो जाता है। संघर्षमय जीवन से ही वाञ्छित उत्कर्ष एवं परपीड़ा का अनुभव मुखरित होता है, जो हृदय की समस्त वृत्तियों का निरोधकर निर्मल एवं विशाल भाव का सर्जन करता है। मन की निर्मलता दर्पण की भाँति अपने आराध्य के पावन स्वरूप को बसाए हुए अपने द्वन्दों से अपरिचित मानव को मानवता से जोड़ने के प्रयास में निरन्तर निरत रखती है, ऐसी अवस्था में स्वयं व परिवार की समस्याओं के लिए न सोचकर समाज व राष्ट्र के कल्याण हेतु समस्त कर्मफल व जीवन का उत्सर्ग करने की दिव्य प्रेरणा काया के कण-कण में विद्यमान रहती है। हमारे लिए यह परम गौरव की बात है कि "बहुजनहिताय-बहुजन सुखाय" का पावन उद्देश्य लिए ऐसे दिव्यकर्मा सन्त श्री १०८ ऋषि केशवानन्द जी महाराज का मुझे बचपन में ही सानिध्य व सेवा का बहुमूल्य अवसर प्राप्त हुआ, इनके आशीर्वाद का अमोघ प्रभाव जीवन के विपरीत काल में कवच सा हमारे मन को सुरक्षित रखने में सहायक सिद्ध हुआ है। आज दैवयोग से उन्हीं के पावन चरणों में कुछ वाक्य पुष्प अर्पित करने का अयाचित अवसर उपलब्ध हुआ है ।

परमपूज्य प्रातः स्मरणीय ऋषि जी महाराज लोकैषणा से विरक्त महापुरुष हैं, कदाचित् कोई अन्तेवासी इनके जीवन के स्थूल रेखांकन को "उद्बाहुरिव वामनः" बन कर रेखांकित कर भी ले परन्तु इन महामानव के आजीवन तत्त्वानुसंधानों आध्यात्मिक सिद्धान्तों, मन्तव्यों, विचारों एवं इनके जीवन की अन्तर्धाराओं पर प्रकाश डालना असम्भव नहीं तो सुदुष्कर अवश्य है। जिनका समग्र संघर्षमय जीवन दूसरों को बनाने में व्यतीत हो रहा है, न जाने कितने मुझ जैसे गुण-गण रहितों को शिक्षा व प्रेरणा से समाज व राष्ट्र के लिए समर्पित किया। ऐसी विधि एवं गुण भरे जिसमें व्यक्तिगत सुखों के स्थान पर लोकमंगल की कामना प्रधान हो ताकि आत्म-विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास के पावन कार्य बिना किसी अवरोध के जीवन में किये जा सकें।

महापुरुषों का जीवन लोक शिक्षा के लिए ही होता है। इन्होंने लौकिक आपदाओं की तीव्र तपन में तपकर अपने तपोबल में किसी प्रकार की कमी न आने दी, साधना काल में लौकिक सुखों से अपरिचित हो निरन्तर असुविधा एवं कण्टकाकीर्ण मार्गों का वरण किया। इनके इन विचित्र एवं साहसिक चरित्रों से व्यक्तिगत जीवन में यह सीखा है कि आध्यात्मिक विकास का सुगम मार्ग परपीड़ा का अनुभव किये बिना सम्भव नहीं है - भूख की पीड़ा, रोग की पीड़ा, दुकान की पीड़ा आदि पीड़ायें धनी-निर्धन, अज्ञानी-बुद्धिजीवी, आबाल-वृद्ध संसार की प्रत्येक काया को पीड़ित करती हैं, ज्ञानी पुरुष इन्हें उपेक्षात्मक माया, मोह, अज्ञान, भाग्य आदि की भाषा से अपने मन को इनसे दूर कर लेता है वही एक सहृदय सन्त उन्हीं में अपने आराध्य के अंश को दिव्य दृष्टि से निहार कर उनके दुख दूर करने में लग जाता है, वास्तव में यहीं से दृष्टि की व्यापकता का शुभारम्भ माना जा सकता है।

"वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।" *गीता*

यही व्यापक दृष्टि जीवन में सरलता व निश्छलता का निर्बाध सर्जन करती है, तभी उपकार करने वालों के प्रति भी सन्त के हृदय में कोप के स्थान पर करुणा का ही आविर्भाव होता है, और वह विश्व के रंगमंच पर उपस्थित जीवन के गुण-दोष, पाप-पुण्य का विचार न कर समस्त विश्व के कल्याण के लिए न केवल मंगल कामना करते हैं अपितु मंगल कार्य भी करते हैं। इसके ज्वलन्त उदाहरण पूज्य ऋषि जी महाराज द्वारा दो दशकों में विश्व कल्याणार्थ संम्पादित किये गये तीन "लक्षचण्डी महायज्ञ" के पावन एवं कष्टसाध्य अनुष्ठान हैं। साधनों की अनुपस्थिति में ही उद्देश्य की पावनता एवं पराम्बा के श्री चरणों में सम्पूर्ण समर्पण के सहारे इन्होंने शास्त्र प्रतिपादित ही नहीं साधु अनुभूत परम सत्य को पहचान लिया है। कृतकृत्यता को प्राप्त कर लिया है तथापि लोक संग्रह की दृष्टि से एक कर्मयोगी के समान अपने कर्तव्यों के प्रति निरन्तर सचेत हैं। इन्होंने अपने विरक्त जीवन द्वारा न केवल देश अपितु विश्व के अनेक विकासशील देशों-अमेरिका,-इंग्लैण्ड, कनाडा आदि जहाँ पर चार्वाक सिद्धान्तानुगामी-"ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्" पर चलकर दैहिक सुख की विभीषिकात्रस्त हैं वहाँ के समाज को अपने क्रियात्मक उपदेश के द्वारा, साधना व सेवा आदि के लिए प्रेरित किया ताकि प्राणी शान्तिपूर्वक सुख का सहज लाभ प्राप्त कर सकें।

अन्त में, मैं अपने इस वर्तमान जीवनदिशा के निर्माता पूज्य ऋषि जी महाराज का कोटिशः अभिवादन करता हुआ इनके अभिनन्दन समारोह हेतु यहाँ के सभी सहयोगियों के भाव-सुमन को सादर समर्पित करता हूँ।

*****

क्रान्तदर्शी ऋषि

प्रो० कैलासपति त्रिपाठी
पूर्व-साहित्यविभागाध्यक्ष,
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारतीय संस्कृति का यह मूल चिन्तन है कि समाज को अत्यन्त उन्नत ज्ञान के तेज से उद्‌भासित होना चाहिये। इस कोटि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अत्यन्त पवित्र जीवन के साथ-साथ उच्चकोटि की तपस्या आवश्यक है। जब तक जीवन पवित्र नहीं होता तब तक तपस्या की क्षमता भी प्राप्त नहीं हो सकती, और तपस्या के बिना लोकमंगल के लिए लोकोत्तर शक्तियाँ भी नहीं मिलतीं। मन में परमार्थ के निमित्त उत्तम सङ्कल्प नहीं आते। यदि सङ्कल्प आते भी हैं तो वे कार्यान्वित हुए बिना बिखर जाते हैं। इसी लिए ऋषियों ने बड़े पवित्र जीवन का आदर्श रखा। वे अकिञ्चन, अनिकेत तथा असङ्ग की तरह व्यावहारिक जीवन में दिखते थे किन्तु उनके भीतर असीम शक्ति होती थी, वे सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय की अपूर्व क्षमता रखते थे। उनकी तेजस्विता से सारी प्रकृति नियन्त्रित रहती थी। लोगों का आचरण औचित्य मण्डित होता था। आचरण में विकृति आने पर अधर्म पनपता है। लोक मंगल की प्रवृत्तियाँ घटती हैं। अनाचार बढ़ता है। प्रकृति असंतुलित होती है और सारे विश्व में अशान्ति और विपत्ति के बादल गरजने लगते हैं। इसी लिए ऋषिजीवन की आवश्यकता होती हैं। इनके कारण लोक में दिव्यज्ञान का प्रवर्तन होता है, महाभारत में उमा-महेश्वर संवाद के प्रसङ्ग में अनुशासनपर्व में ऋषि, धर्म बताया गया।

ऋषि धर्मः सदा चीर्णो योऽन्यस्तमपि मे शृणु। १२६.४७
सर्वेष्वेव धर्मेषु जेय आत्मा जितेन्द्रियः।
कामक्रोधौ ततः पश्चाज्जेतव्याविति मे मतिः।। १२६.४८

अग्निहोत्र परिस्पन्दो धर्म रात्रि समासनम्।
सोमयज्ञाभ्यनुज्ञानं पञ्चमी यज्ञदक्षिणा।। १२६.४६

नित्यं यज्ञ क्रिया धर्मः पितृदेवार्चने रतिः।
सर्वातिथ्यं च कर्तव्यमन्नेनोञ्छार्जितेन वै।। १२६.५०

निवृत्तिरूप भोगस्य गोरसानां च वै रतिः।
स्थण्डिले शयनं योगः शाक पर्ण निवेषणम्।। १२६.५१

फलमूलाशनं वायुरापः शैवलभक्षणम्।
ऋषीणां नियमा ह्येते यैर्जयन्त्यजितां गतिम्।। १२६.५२

विधूमे न्यस्तमुसले व्यौंरे भुक्त व जजने।
अतीत पात्र संचारे काले विगत भैक्षके।। १२६.५३

अतिथिं काक्षमाणो वै शेषान्नकृत भोजनः।
सत्य धर्म रतिः क्षान्तो मुनि धर्मेण भुज्यते।। १२६.५४

न स्तम्भी न च मानी यो न प्रमत्तो न विस्मितः।
मित्रामित्र समो मैत्रो यः स धर्मविदुत्तमः।। १२६.५५

तात्पर्य यह है कि ऋषि को जितेन्द्रिय तथा सभी धर्मों के प्रति जितात्मा होना चाहिये। काम क्रोध पर उसकी जीत होनी चाहिये। अग्निहोत्र करना चाहिये। सोमयज्ञ का भी उसे ज्ञान होना चाहिये। नित्य यज्ञक्रिया, पित्रों तथा देवताओं के अर्चन में रति होनी चाहिये। उञ्छ में अर्जित अन्न के द्वारा लोगों का आतिथ्य करना चाहिए। उपभोग की निवृत्ति होनी चाहिये। गोरसों में प्रवृत्ति होनी चाहिए। भूमि पर सोना चाहिये, शाक, पत्ता, फल और कन्द खाना चाहिए। वायु जल तथा शैवल का भोजन होना चाहिये। ऋषियों के ये नियम हैं।

महाभारत में जाजलि नामक ऋषि का जीवन वर्णित है उन्होंने अग्नि का परिचरण किया स्वाध्याय किया, वर्षा में खुले आकाश में शयन किया। हेमन्त में जल में वास किया, गर्मियों के दिनों में लू और धूप का सहन कीया, और असुविधा जनक भूमि में शयन किया। कभी वे बिना खाये रह जाते थे, वायु भक्षण करके रह जाते थे, काठ की तरह खड़े रहकर जीवन व्यतीत करते थे। कुछ दिनों के बाद उन्हें बोध हो गया कि वे सिद्ध हैं। **"सिद्धोस्मीतिमतिंचक्रे ततस्तमान आविशत्। २५२.३८ (शान्तिपर्व)"** इसी तरह लोमश ऋषि ने कहा है--

संचरन्नास्मि कौन्तेय, सर्वान् लोकान् यदृच्छया।
यस्त्वेतां नियतश्चर्यां ब्रह्मर्षि विहितां चरेत्।
स दहेदग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकांश्च दुर्जयान।। ८६.५ आरण्यकपर्व

लोमश ऋषि में सारे लोकों में अपनी इच्छा के अनुसार संचरण की शक्ति थी। ऋषियों के लिए विहित जो जीवन है तदनुकूल आचरण करने से सारे दोष वैसे ही जल जाते हैं जैसे अग्नि से ईंधन। इस तरह का तपस्वी अजेय लोगों को भी जीत लेता था।

मन्त्रद्रष्ट्रा के लिए ऋषि शब्द का प्रयोग होता आया है। वैखानस् और वानप्रस्थ भी ऋषि कहे जाते थे। गार्हस्थ्य जीवन के अनन्तर वन में जीवन व्यतीत करने वाले लोग भी ऋषि बन जाते थे। कुछ ऐसे लोग भी होते थे जो ब्रह्मचर्याश्रम के बाद ही कठोर तपस्या में लगकर ऋषित्व को प्राप्त कर लेते थे। ऋग्वेद ६.६६ सूक्त के द्रष्टा वैखानस हैं। ऋग्वेद १०.९९ सूक्त के द्रष्टा पभ्रनामक वैखानस ऋषि है। ऋषियों के भीतर जो शक्ति थी, उसका मूल कारण उनकी उग्र तपस्या हुआ करती थी। महर्षि च्यवन का पराक्रम सर्व विदित है। इन्होंने गंगा, यमुना के बीच बारह वर्षो तक जल में रहकर तपस्या की थी। जल में काठ की तरह सो गये। जलीय प्राणियों के प्रिय हो गये। मछलियाँ उन्हे सूंघ-सूंघ जातीं। उनकी दाढ़ी-मूंछ शैवाल और शंखों के समूह से लिपट गई। पूरा शरीर चित्र-विचित्र लगने लगा था। इसी तरह स्थल में वर्षों तक भगवती पराम्बा के ध्यान में समाधिस्थ रहे, उनके ऊपर बाल्मीक पिण्ड उदित हो गया। जो दीमक, चीटियों से घिरा हुआ और लताओं से आच्छादित था। ऋषि का शरीर मिट्टी का पिण्ड भासित हो रहा था। मात्र दो छिद्र चमकते जुगुनू की तरह चमक रहे थे। राजा शर्याति की सुकन्या खेलती-खेलती आई उसने उन चमकते छिद्रों में कांटा चुभा दिया। अन्दर से हाय की ध्वनि आई। सुकन्या डर गई जाकर अपने पिता से सब बताया राजा ने कहा -- यही मेरे राज्य में बहुत बड़ा अपराध हुआ है इसी कारण आकस्मिक मेरे मन्त्रीगण, सैनिक-लोग, प्रजाजन पीड़ा पा रहे हैं। राजा ने महर्षि से क्षमा-याचना की। महर्षि ने कहा, क्षमा यही है कि तुम अपनी पुत्री मेरी सेवा में दे दो जो मुझ अन्धे की सेवा करेगी। राजा घबराया। पुत्री ने कहा-चिन्ता न करो पिता जी ''मैं प्रसन्नचित अपने पति च्यवन ऋषि की सेवा करुँगी, जिस से इधर राज्य में सुख शान्ति हो जायेगी। उधर मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो जायेगा। सुकन्या पति की सेवा करती, जंगल में रहती। एक दिन जंगल में अश्वनीकुमारों ने सुकन्या को देखा और पूछा, तुम यहाँ कैसे विचरण कर रही हो? उसने सब वृत्तान्त सुनाया, तो अश्वनीकुमारों ने उसके पति महर्षि च्यवन को युवा और सौन्दर्य सम्पन्न बना दिया। महर्षि च्यवन ने कहा आपने मेरा इतना उपकार किया। मैं आप का क्या कल्याण कर सकता हूँ? अश्वनीकुमारों ने कहा देवराज इन्द्र हमें वैद्य होने के कारण यज्ञभाग नहीं देते हैं। महर्षि च्यवन ने कहा मैं यज्ञभाग दिलाता हूँ। राजा शर्याति से यज्ञ करवाया। अश्विनी कुमारों को यज्ञभाग दिलाया। इन्द्र ने क्रुद्ध

होकर वज्र चलाया, ऋषि च्यवन ने अपनी तपस्या से उस वज्र को बीच में ही रोक दिया और अपनी तपस्या के बल से यज्ञकुण्ड से महाकाय महाभयावह "मद" नामक राक्षस को उत्पन्न किया, जिसे देखकर इन्द्र डर गया तथा महर्षि च्यवन की शरण में आया, महर्षि मुझे राक्षस से बचाओ। मैं आज से अश्विनी कुमारों का यज्ञ भाग अवश्य दूँगा।

तात्पर्य यह है कि महर्षि च्यवन ने इन्द्र के वज्र को रोक देने की क्षमता वाले "मद" जैसे दैत्य को समेट लेने की लोकोत्तर शक्ति है किन्तु यह असीम शक्ति-वैभव उस तपस्या से मिला, जिस प्रकरण में उन्होंने बारह वर्षों तक जलवास किया है और जमीन पर भी इतनी कड़ी तपस्या की है। उनके शरीर पर बाल्मीक बन गयी। लतायें उग आयी और मिट्टी के पुञ्ज की तरह दिखने लगे। प्राचीन भारत में इस तरह के ऋषियों की बहुत बड़ी संख्या थी। कालिदास ने अभिज्ञानशकुन्तल मे कश्यप ऋषि का वर्णन किया है।

वाल्मीकाग्रनिमग्नमूर्तिरूरसा सन्दष्ट सर्पत्वचा।

कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलये नाव्यर्थसंपीडितः।।

महर्षि कश्यप की बाल्मीक पर साँप की केंचुली, जीर्ण लताओं की टहनियां और जटामण्डल, पक्षियों के घोंसले बन चुके थे। वे ठूंठे वृक्ष की तरह सूर्य की ओर मुख कर के अवस्थित रहते थे।

ऋषियों की सीमातीत तपस्या के अद्वितीय उदाहरण हैं। महर्षि विश्वामित्र तपस्या के लिए जब बाहर गये थे तो उनके परिवार का पालन पोषण त्रिशंकु के द्वारा हुआ था। महर्षि वशिष्ठ के शाप से त्रिशंकु चाण्डाल हो गये थे। तपस्या से लौटने के बाद जब महर्षि विश्वामित्र को ज्ञात हुआ कि त्रिशंकु ने उनके परिवार का बहुत उपकार किया है तो उन्होंने त्रिशंकु का मनोरथ पूर्ण करना चाहा। त्रिशंकु का मनोरथ था कि वह इसी शरीर से स्वर्ग जाय, विश्वामित्र ने त्रिशंकु को अपने तपोबल से उड़ा दिया और स्वर्ग भेज दिया।

आशय यह है कि मनुष्य में अपार शक्ति होती है। आध्यात्मिक शक्ति सर्वाधिक समुन्नत शक्ति है। देवेन्द्र देव शक्ति के प्रतीक हैं किन्तु च्यवन और विश्वामित्र के समक्ष उन्हें भी झुकना पड़ा। हमारे प्राचीन शास्त्र जिनमें मन्त्रों का महासागर उल्लसित होता है, इन दिव्य शक्तियों के साधनों से भरे पड़े हैं। आवश्यकता इस बात की है कि साधक का जीवन पवित्र हो, वह आचार में प्रतिष्ठित हो। उसके समक्ष जो भी हो उसमें प्रेम बुद्धि हो और उसमें लौकिक सुखों के प्रति वैराग्य की भावना हो, इन्द्रिय निग्रह हो, चित्तवृत्ति में स्थैर्य हो

और लक्ष्य तक पहुँचने की अजेय इच्छाशक्ति हो, तो वह ऋषित्व को प्राप्त कर सकता है। ऐसे ऋषित्व से युक्त हमारे है निर्धन निकेतन आश्रम के परमाध्यक्ष ऋषिकेशवानन्द जी महाराज!

ऋषि केशवानन्द जी महाराज ने भारतीय संस्कृति तथा संस्कृत विधाओं के उन्नयन के लिए महान कार्य किया। अपने गुरुदेव की कीर्ति को आगे बढ़ाते हुए निर्धन निकेतन जैसा एक विशाल आश्रम व्यवस्थित किया। शताधिक छात्र उनके आश्रम में प्रतिवर्ष प्रविष्ट होते हैं उनकी शिक्षा, भोजन एवं आवास आदि की सुव्यवस्था निःशुल्क होती हैं। ऋषि जी के मन मे उद्दाम लालसा देखी जाती है कि वे छात्र शास्त्रों के विद्वान बने, नियमित सन्ध्या आदि नियमों की दृढ़ता पूर्वक पालना करें, गायत्री जपें, आचारवान बने और ऋषि मुनि के आदर्शों को दुनिया के सामने रखें। उनके आश्रम में भजन-पूजन में निष्ठा रखने वाले अनेक वृद्धजन भी रहते हैं। भारतीय मर्यादा के अनुसार आचारवान बालकों के निर्माण का कार्य बहुत दिनों से यहां चल रहा है। आश्रम में निर्माण का कार्य आश्रम निर्धन-निकेतन में बहुत दिनों से चल रहा है।

आश्रम के इतने बड़े व्यय का निर्वाह गंगा की अविरल धारा की तरह निरन्तर हो रहा है किन्तु उसके स्रोत की गंगोत्री कहीं दिखायी नही पड़ती यदि वह गंगोत्री कहीं है तो ऋषि जी की अखण्ड तपस्या, माँ भगवती की अखण्ड उपासना, सप्तशती का नित्य पञ्चाधिकपाठ, सहस्त्रचण्डी तथा लक्षचण्डी यज्ञों के सविधि अनुष्ठान विराजमान हैं, ऋषि जी ने अपने पावन जीवन के कारण सात्विक वृत्तियों का प्रसार किया। कलियुग मे तामसी एवं राजसी वृत्तियों का समुल्लास सहज रूप में होता है बड़ी तपस्या से सात्विक गुणों के अंकुर उन्मीलित होते हैं। ऋषि जी ने अपने तपोमय जीवन से निर्धन निकेतन की उदात प्रयोगशाला में सात्विक तत्वों के बीज को उगाने का अजय मार्ग दिखाया है। हम उनकी इस लोकोतर शक्ति का अभिनन्दन वन्दन तथा नमन करते हैं।

निर्धन-निकेतन की संस्थाओं का विवरण

सत्या सचदेव
प्रबन्धिका
शिक्षा संस्थान, निर्धन निकेतन, हरिद्वार।

किसी समय गुरुकुल होते थे। गुरुचरणों में आश्रमों में शिष्यजन वर्षों तक गुरु की सेवा करते उनकी आज्ञानुसार आश्रम की सेवाओं मे तत्पर रहते और गुरु उन्हें जीवन यापन की कला में निपुण करते हुए मोक्ष मंज़िल तक पहुँचने का ज्ञान देते। श्री रामलक्ष्मण, श्री कृष्ण, पाण्डवों और कौरवों ने गुरु आश्रम में ही तो शिक्षा प्राप्त की थी। आज शिक्षा गुरु तो हैं। अनेकानेक विद्यालय भी हैं परन्तु उनमें आध्यात्मिकता का अभाव है। जीवन मूल्यों को वास्तविक रूप में व्यवहार में लाये जाने का अभ्यास एवं सामर्थ्य नहीं, जहाँ-जहाँ आध्यात्मिक साधना स्थलियाँ हैं भी, वहां शिक्षा का अभाव है एवं जीवन एकांगी सा हो कर रह जाता है।

इन दोनों का अद्‌भुत संगम आप को गंगा किनारे स्थित निर्धन निकेतन आश्रम में दिखाई देगा जहाँ प्रातः ४ बजे की घंटी लगते ही न केवल आश्रमवासी जाग जाते हैं बल्कि संस्कृत महाविद्यालय की गुरुमण्डली और शिष्य मण्डली स्नानादि से निवृत होकर ५ बजे वैदिक श्लोक उच्चारण से आश्रम को गुंजाय मान करते हैं। तत्पश्चात गुरुदेव जी के सत्संग हाल (दैनिक प्रार्थना भवन) में सत्संग, प्राणायाम, गीता, पूजा, आरती में सम्मिलित होते हैं।

मनोवैज्ञानिकों और शिक्षाविदों का कहना है कि किशोरावस्था में उत्तम वायुमंडल में पनपते पौधें जीवन के आँधी तूफानों को झेलने में समर्थ होते हैं। बचपन के संस्कार ही बड़े होने पर कार्यकलापों का रूप ले लेते हैं। अतः दिन का आरम्भ ''शिव संकल्पमस्तु'' के साथ आश्रम द्वारा प्रदत्त अल्पाहार के पश्चात्‌ उन्हें ऋषि संस्कृत महाविद्यालय नामक एक ऐसे विद्यालय में विद्वान गुरुजनों के पास शिक्षा हेतु जाने के लिए द्वार खोल देता है जहां गुरुजन केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नही देते, अपितु गहन विचार धारा, एवं उत्तम जीवन मूल्यों को अपनाते हुए विज्ञानमय जीवन यापन का आदर्श अपने व्यक्तित्व द्वारा प्रस्तुत करते हैं। यह श्रेष्ठ विद्यालय सर्वोत्तम परीक्षा परिणाम, उत्तम अनुशासन, उच्च शिक्षा, स्वच्छ पोशाक, गहन शास्त्र विद्या एवं नाट्य कला आदि में ही नाम नहीं रखता। बल्कि शिष्टता, विनम्रता और कर्मठता के कारण सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करता है। ऐसा हो भी क्यों न, इस महाविद्यालय के संस्थापक एवं संचालक स्वयं पूज्य ऋषि जी महाराज स्वयमेव पग-पग पर

मार्गदर्शन एवं उत्साह वर्धन करते हैं। अन्न, पुस्तकें, पोशाक, पारितोषिक, छात्रवृत्तियाँ एवं समस्त सुविधाएं प्रदान करते हैं। उनका लक्ष्य है कि छात्र सर्वोच्च विद्वत्ता को प्राप्त करके भी अंहकार रूपी बिच्छू से स्पर्शित न हों। निरन्तर आगे बढ़ते हुए कंठस्थ गीता को आचरण में भी लायें और यज्ञमय जीवन व्यतीत करें। इन आदर्शों को कार्यान्वित करने में विद्यालय की प्राचार्या महोदया डा० सुश्री सतीश गुलाटी अपना तन मन प्राण लगा रही है। सायंकाल में भागीरथी के पावन तट पर धोती चोटी में सजे विद्यार्थी आश्रमीय छटा के आभूषण से लगते हैं और सायंकाल आरती पूजा पर श्लोकोच्चारण द्वारा जन जन का मन मोह लेते हैं। समय समय पर होने वाली प्रतियोगिताओं में विद्यार्थी लगभग सभी पारितोषिक उठा लाते हैं। इस विद्यालय के छात्र जीवन-यापन और अर्थभोग हेतु ही परीक्षाएं पास नहीं करते बल्कि जीवन के उच्च मिशन वेद पुराण, गीतारामायण व चण्डी पाठ आदि अनुष्ठानों, विविध यज्ञों और कर्मकाण्डों में भी निष्णात होकर मानवमात्र की सेवा का मिशन लेकर ही बाहर निकलते हैं। यह विद्यालय देश विदेश में अपना स्थान बनाये हुए है। यह गौरव का विषय है कि श्री रमेश चन्द्र पोखरियाल निशंक उत्तरांचल विकास मन्त्री (उ०प्र०) इस विद्यालय के शिष्य रहे हैं और अनेक विद्यार्थी विदेशों में कैनेडा, डैनमार्क, आस्ट्रेलिया आदि में नाम कमा रहे हैं ।

ऋषि वैदिक अनुसंधान द्वारा किया गया कार्य एवं प्रकाशन भी सराहनीय है। एक अन्य विद्यालय है ऋषि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय कक्षा छटी से दशम श्रेणी तक है। इस विद्यालय में प्रवेश पाते ही विद्यार्थी को यह लग्न होने लगती है कि उसे कुछ करना है। पुस्तकीय ज्ञान में निपुण अध्यापिकाएँ अपनी कर्मठता की छाप तो विद्यार्थियों पर छोड़ती ही हैं, उन्हें अविरल कार्यकलापों-संगीत, नृत्य, वादन आदि विशिष्ट योग्यताओं स्काऊटिंग-गाइडिंग, खेलों, कम्प्यूटर शिक्षण आदि कार्य कलापों के माध्यम से प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं। अनुशासनबद्धता, शतप्रतिशत एवं गुणात्मक परीक्षा परिणाम तथा उच्चचरित्र इस विद्यालय के विशिष्ट गुण हैं। विद्यालय को समाज एवं विभाग से प्रशंसा प्राप्त है एवं इस विद्यालय के स्काउट्स-गाइडस राज्यपुरस्कार प्राप्त कर विद्यालय को उच्चस्तरीय बनाने में तत्पर हैं। इस विद्यालय की प्रधानाचार्य कर्तव्य निष्ठ एवं परम विदुषी डा० सुश्री सुमन अग्रवाल। विद्यालय को प्रदेश में ही नहीं देश स्तर के कार्यकलापों तक पहुंचाने में प्रयत्नशील है।

नन्हें मुन्ने तो किसी भी राष्ट्र का आधार होते हैं। बाल्यकाल में बोये हुए बीजरूपी संस्कार सुन्दर पल्लवित पुष्पित फलयुक्त बन जाते हैं। ऋषि बाल विद्यालय के पाँचवी कक्षा तक के बालक बालिकायें शतप्रतिशत

परीक्षापरिणाम तो दिखाते ही हैं। इसके साथ-साथ सुन्दर बाल क्रीड़ाओं और भगवान की रासलीलाओं नृत्य गायन आदि से किस का मन नहीं मोह लेते हैं। ऋषि लोटस एकाडमी जिसमें अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षा दी जाती है यहाँ के प्यारे प्यारे बच्चे प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं। अपने विद्यालय की गतिविधियों में बढ़चढ़कर भाग लेते हुए वे जनताजनार्दन को यह प्रत्यक्ष बता रहे हैं कि वे भरोसे योग्य राष्ट्र के होनहार भविष्य हैं। इस समस्त कार्यभार को उत्साह लग्न एवं निपुणता से संभाल रही है कर्मठ प्रधानाध्यापिका सुश्री बीना बजाज।

Lord Emersion ने कितने सुन्दर शब्दों में कहा है :-

Not Gold but only men can make,
A people great and strong.

किसी भी राष्ट्र को महान और मजबूत बनाने बाले उसके लोग होते हैं न कि धन दौलत और सोना। आज के बच्चे ही कल का राष्ट्र हैं जो सत्य और देश-सम्मान की खातिर दृढ़ता पूर्वक खड़े होकर कठिनाइयों का मुकाबला करेंगे।

भवन विशाल भी हो और सुन्दर भी परन्तु शोभनीय तो कार्यकलापों से ही है। निर्धन निकेतन की गौशाला जहां कि कपिला गाँए मानो भगवान कृष्ण गोपाल को हमारे ऋषि जी महाराज के रूप में यहां खेंच लाई हैं। इस गोशाला में गौओं को गर्मी का एहसास हो, ये हमारे गोपाल को सहन नही होता उनके लिए कूलर एवं पंखे चलते हैं। यदि किसी गाय को पहले खिला रहे हैं तो दूसरी गाएं हुंकार करती है। आओ गोपाल इधर भी आओ। कोई बेचारी पीछे रह जाने वाली गाय आंसू बहा मुंह फेर गोपाल से मनुहार करती है, जब तक प्यार से गोपाल का कोमल स्पर्श प्राप्त नहीं हो जाये। सुन्दर गोशाला, सुन्दर गाएं एवं सुन्दर गोपाल का सुन्दर प्रेम दर्शनीय है।

पूज्य गुरुदेव कहा करते थे "जैसा अन्न वैसा मन" "जैसा आहार वैसा आचार"। महान गुरु के महान शिष्य पूज्य ऋषिजी महाराज अपने गुरुवचनों का समादर करते हुए शुद्ध पवित्र भोजन न केवल आश्रम में मंदिरों में प्रतिष्ठित भगवान को भी विधिपूर्वक प्रस्तुत करते हैं बल्कि नित्यप्रति साधु मंडलियों को भी भोजन, दूध, फल आदि भोग रूप में निवेदित करते हैं। प्रातः सायं भोजन से पूर्व जब विद्यार्थी-मंडल गीतापाठ एवं श्लोकोच्चारण करता है तो गुरु वशिष्ठ के आश्रम की स्मृति हो उठती है। इस श्रमसाध्य कार्य को निभाती है देवां

दीदी, एवं चांद रानी दीदी, तृप्ता, राजबब्बर एवं अन्य सहयोगी बहिनें जो कीर्तन करते हुए पवित्र भोजन को तैयार कर प्रेम से परोसती हैं।

विशेषतया देवां दीदी जिनका चाय भंडार प्रातः व दोपहर की चाय के अतिरिक्त पूज्य महाराज जी के दर्शनार्थ आने वाली प्यारी संगत को अनवरत सेवाएं देता है।

ऋषि धमार्थ चिकित्सालय जिसमें १० बिस्तर सेवा भी उपलब्ध हैं महात्मा जन, आश्रमीय जन, विद्यार्थी वर्ग एवं जनता जनार्दन औषधालय की निःशुल्क सेवाओं का पूर्ण लाभ उठा रहे हैं। ऋषि औषधालय में प्रातः समय आयुर्वेदिक डाक्टर का एवं सायंकाल में ऐलोपैथी डाक्टर का प्रबन्ध है। औषधि एवं उपचार निःशुल्क लाभ उठाने में तत्पर लोग रोग से पीड़ित प्राणी कभी कभी तो भूल ही जाते है कि रविवार को औषधालय बन्द रहता है।

साथ ही एक प्याऊ का भी प्रबन्ध है जहाँ शीतल स्वच्छ जलसेवा उपलब्ध है। आश्रम के सभी मन्दिरों में विधि विधान से पूर्जाचन भोग विश्राम नियमितरूप से चलता है। यहां ऋषि यज्ञशाला में प्रतिदिन सायं को हवन होता है। प्रत्येक नवरात्रों में (अर्थात् वर्ष में दो बार) सहस्रचण्डी यज्ञ भी होता है। उसके बृहद् रूप के दर्शन कीजिये ऋषि बृहद यज्ञशाला में जहां १९८१, १९८६ एवं १९९६ के ऐतिहासिक लक्षचण्डी यज्ञ सम्पन्न हुए हैं जिन यज्ञों का लक्ष्य था जनताजनार्दन का कल्याण और विश्वशान्ति। इन यज्ञों में देश विदेश से आये हुए भक्तजनों ने तो आगे आकर अपने जीवन को सफल बनाया ही है बड़े-बड़े कर्मकाण्डी, महामण्डलेश्वर, शंकराचार्य, उच्चकोटि के सिद्ध महात्माओं ने भी यज्ञों के दर्शन किये हैं। समस्त वायुमण्डल ऐसा भगवतीमय हो गया था मानो भगवती अपने अनेक रूपों से इस महामानव को साक्षात हो कर जनकल्याण कर रही हो।

प्रत्येक नवागन्तुक यह सोचता है मुझे किसे मिलना होगा? क्या रहने का स्थान उपलब्ध होगा? क्या सब सुविधाजनक रहेगा? क्यों नहीं, क्या श्री शिवचरण मित्तल जी को भूल गये जो यहाँ पर आने वाले प्रत्येक दादा पोता तक से परिचित हैं एवं पूज्य महाराज जी के आदेशानुसार ठहरने के लिए हँसते हँसते समुचित स्थान देते हैं। उनके साथ श्री प्रेमप्रकाश जी प्रेमपूर्वक बिस्तर आदि का भी प्रबन्ध कर देते हैं। जाने वाले सुन्दर सुव्यवस्थित आनन्दमय वातावरण के प्रति कृतज्ञ होकर पूजनीय महाराज जी को धन्य-धन्य कहते

हैं। घर पहुँच कर यहां की व्यवस्था के विषय में प्रशंसा से ओत प्रोत पत्र लिखते हैं, ऐसे देश विदेश से आये हुए अनेकानेक पत्र मेरे पास पड़े हैं।

कभी कभी बच्चे तो बूढ़े माता-पिता को घर से निकालने की अशिष्टता कर देते हैं परन्तु पूज्य महाराज जी बूढ़ी गौओं को भी बेघर नहीं करते। उनके लिए ऋषि गोशाला एंवं कृषि फार्म बहादराबाद में है जहां बूढ़ी गौओं के रहने व चारे का समुचित प्रबन्ध है।

बहादराबाद फार्म में एक ऋषि धर्मार्थ औषधालय दि. २६-६-६६ को गुरुपूजा के अवसर पर प्रारम्भ किया गया है जिसमें बेगमपुर व अन्य समीपस्थ ग्रामों के रोगियों का निःशुल्क उपचार किया जा रहा है।

घड़ी का पुरजा बड़ा हो या छोटा प्रत्येक का सहयोग कीमती होता है अतः वह स्वतः उपलब्ध हो यह करिश्मा है पूज्य ऋषि जी महाराज के मृदु स्वभाव, दृढ़ संकल्प एवं अलौकिक व्यक्तित्व का संत हो या महामण्डलेश्वर, विद्वान हो या विभागीय अधिकारीं, बाल हो, युवा हो, या वृद्ध, निर्धन हो या अतिविशिष्ट जिसने एक बार आश्रम में पूज्य महाराज जी के दर्शन पा लिए उन्हीं का हो गया, उनकी विद्वत्ता निरहंकारिता धर्मपरायणता एवं सादगी पूर्ण आकर्षक चुम्बकीय व्यक्तित्त्व से कौन प्रभावित नहीं होता। जनसेवा एवं पञ्चयज्ञ जिसकी दिनचर्या में समाहित हैं, गीता का कर्मयोग, ज्ञानयोग भक्तियोग जिनके जीवन में समाचरित है ऐसे महायोगी का कमाल है ये। प्रभु से करबद्ध प्रार्थना है कि वे पूज्य ऋषि जी महाराज को दीर्घायु प्रदान करें जिससे उनकी छत्रछाया में हम अपना पथ प्रशस्त कर सकें।

*****

भावना के रिश्ते

सरदार गुरदीप सिंह
प्रोफैसर
माता गुजरी कालेज, सरहंद (पंजाब)

पूज्य ऋषि केशवानन्द जी महाराज एक महान विभूति हैं। सर्वकला सम्पूर्ण संत हैं। उनके व्यक्तित्व की सरलता, सहजता, सौम्यता, दया-स्नेह-सहनशीलता आदि दिव्य गुण और आध्यात्मिक विचार सभी सनातन धर्मी भक्तजनों के लिए प्रेरणा स्रोत एवं मार्गदर्शन का काम करते हैं।

काम क्रोध, लोभ से निर्लेप ऋषि जी सभी अनुयाइयों के लिए प्रकाश स्तम्भ की तरह हैं जिसके प्रकाश से मानवमात्र को धर्म, शिक्षा, एवं सांस्कृतिक ज्ञान की प्रेरणा मिलती है। मैं दुविधा में हूँ कि ऐसे सर्वगुण सम्पन्न, सहृदय, परोपकारी पर-दुख-हर्त्ता, सन्त शिरोमणि का अभिनन्दन शब्द-वाणी से कैसे किया जा सकता है। वे तो स्वयं ही अभिनंदन स्वरूप हैं। संत पुरुष के प्रति नत-मस्तक हो श्रद्धामय भावना की अभिव्यक्ति ही हो सकती है। हम अनुयायीजनों को चाहिये कि यदि सच्चे अर्थों में हम अपने गुरू का अभिनंदन करना चाहते हैं, उनका अभिनंदन समारोह मनाना चाहते हैं तो ऋषिजी महाराज की विचारधारा को अपनाएँ , उस विचार धारा का मनन करें तथा तदनुसार जीवन में सतकर्म करें तभी जीवन सफल हो सकेगा।

मेरा रिश्ता ऋषि जी से पूज्य एवं पुजारी का कम, भावना एवं जज़बात का अधिक है। इस अवसर पर पूर्व स्मृतियाँ जाग उठी हैं । आज से ४५ वर्ष पूर्व मैं एक विद्यार्थी के नाते इस महान शिक्षाविद् ऋषि जी (जोकि ऋषि, कालेज लुधियाना के संस्थापक एवं प्राचार्य थे) - के सम्पर्क में क्या आया-मेरा जीवन बदल गया। ऋषि जी द्वारा प्रदत्त शिक्षा के फलस्वरूप मैं अपनी कक्षा में पंजाबभर के लड़कों में प्रथम आया तो ऋषि जी ने गद्-गद् हो कर मुझे अपने हृदय से ही नहीं लगाया बल्कि मुझे अपने पुत्र एवं मेरी नव-विवाहिता पत्नी को पुत्र-वधू के रूप में अपना लिया। हम दोनों ऋषि जी के साथ एक-घर परिवार के रूप में सुख-दुख, हंसी खुशी बाँटते हुए रहने लगे। हमें इन की सेवा करने का भरपूर अवसर मिला और इन्होंने अपना सारा स्नेह हम पर उडेल दिया। इन्हीं की प्रेरणा से मैं शिष्य से शिक्षक बना और फिर उच्चशिक्षा प्राप्त कर माता गुजरी कालेज गुजरी सरहन्द में प्रोफैसर का पद संभाला और वहीं से सन् १९९५ में रिटायर हुआ।

उन्हीं दिनों जब हम इकट्ठे रह रहे थे और योगिराज बालब्रह्मचारी गुरुवर श्री वंशीधर विरकां वाले हमारे यहाँ आए किन्तु अचानक अस्वस्थ होने पर स्वयं इच्छा से ब्रह्मलीन होने हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया। आज उन्हीं की समाधि-स्थल पर निर्धन निकेतन जैसी महान संस्था निर्धन निकेतन आश्रम का निर्माण पूज्य ऋषि जी ने किया है।

कभी-कभी सोचता हूँ यह कैसा रिश्ता है मैं सिक्ख धर्मी था-ऋषि जी सनातनी हिन्दू। इस रिश्ते को क्या नाम दूँ-बाप-बेटे का रिश्ता, शिक्षक-शिष्य का रिश्ता या फिर भावना का रिश्ता। ४५ वर्ष बाद भी यह रिश्ता उसी शिद्दत के साथ जिंदा है। जब भी ऋषि जी मिलते हैं प्रणाम करने से पहले ही गले मिल जाते हैं। लगता है पारम्परिक पैतृक रिश्तों से भक्ति-श्रद्धा-स्नेह-आदर-भावना के रिश्ते कहीं अधिक पवित्र एवं बलवान होते हैं क्यों कि मैं जानता हूँ ऋषि जी को भी अपनों ने षड़यंत्रों एवं नफरतों से अधिक कुछ नहीं दिया लेकिन इस उदारमना महान व्यक्तित्व ने उन को माफ ही नहीं किया - गुरु जी की सारी सम्पत्ति-वैभव भी दे दिया और स्वयं गुरुजी के आशीर्वाद की सम्पत्ति के बल से निर्धन निकेतन जैसे महान आश्रम की स्थापना की-जो आश्रम आज आध्यात्मिकता और शिक्षा का प्रकाश भारत के कोने-कोने में फैला रहा है।

मेरी कामना है पूज्य ऋषि जी इसी तरह मानवमात्र का कल्याण करते रहें। उन्हें प्रेरणा देते रहें। वाहिगुरु (परमात्मा) उन की दीर्घायु करे, ताकि जो आध्यात्मिकता एवं शिक्षा की गंगा उन्होनें बहाई है उस में स्नान कर सभी पुण्य के भागी हों।

*****

गरिमामयी-गरिमा

(गरिमा लौकिकता में अलौकिकता की धनी)

नीलम बन्सल
धूरी, पंजाब

"वह सजदा क्या, रहें एहसास जिसमें सर उठाने का,
सजदा और बाकायदे होश, ये तौहीन-इ-इबादत है।"

सुन्दर सुगन्धित विकसित पुष्प किसी भी उपवन की शोभा होते हैं। उनका रूप आकार सुवास यद्यपि भिन्न होता है तथापि किसी माला में पिरो दिये जायें अथवा किसी गुलदस्ते में सजा दिये जायें एवं पुरुषोत्तम भगवान को समर्पित कर दिये जायें, तो वे धन्य हो जाते हैं।

निर्धन निकेतन आश्रम में समर्पित व्यक्तियों के जीवन पर दृष्टि डालें तो १६५६ से लेकर आज तक सभी किसी न किसी रूप में न्योछावर-भावना से सेवा में रहे हैं। यूं भी महाराजश्री की सेवा में तो यत्र तत्र सर्वत्र इस आश्रम रूपी उपवन के भीतर बाहर समर्पित पुष्प ही पुष्प हैं। लाला श्री कांशी राम, श्री भगवतशरण बंसल, माता मायावंती, श्रीमती विलासी देवी, रेशम देवी, श्रद्धा देवी, ज्ञान देवी, शान्ता देवी और शान्ति (कुब्जा) देवी श्रीमती सुदर्शन (भोली माई) देवी, कृष्णा देवी आदि इस माला के महकते पुष्प थे और वर्षों से सुश्री देवां जी, कमला माता जी, चाँद रानी जी, बहिन सतीश-सुमन-तृप्ता-बीना, भाई श्री शिवचरण मित्तल श्री प्रेमप्रकाश व अन्य आज भी आश्रम की सेवा में तन मन से तत्पर हैं परन्तु गरिमारूपी एक पुष्प ने कुछ समय के लिए इस माला में स्थान पाया और भावभीनी सेवा से आश्रम को स्थायी रूप से सुगन्धित किया।

दिनांक ३१.१२.६४ की सायं की स्मृति आती है कि जब गरिमा पूज्य महाराज जी के साथ हाथ में छोटा सा अटैची लिए पूज्य गुरुदेव के सत्संग हाल के प्रवेश द्वार में प्रवेश करती हुई और सबको हरिओम् कहती हुई दिखाई दी, अगली ही प्रातःकाल देवां दीदी के साथ चाय भंडार सेवा में जुटी हुई देखी। धीरे-धीरे गरिमा में सेवा व धर्म की भावना उद्बुद्ध होती जा रही थी। प्रातः सत्संग में आती तो प्रायः यह भजन गाती 'दस्सी मेरे मालिका कोई ऐहो जही थां जित्थे बैठ के मैं तेरा भजन करां"। परम पूज्य महाराज श्री का भगवतीप्रेम तो सभी को साक्षात है। ऋषि जी प्रत्येक शरणागत समर्पित को ऊँचा उठाने की भावना से संस्कृत पढ़ना, गीतापाठ एवं

दुर्गा सप्तशती का पाठ करना सिखा देते हैं। शीघ्र ही गरिमा धार्मिक अभिरुचि की वृद्धि को प्राप्त हुई और उसने भी दुर्गा 'सप्तशती पाठ' को शुद्ध उच्चारण से करना सीख लिया।

पुस्तकें पढ़ने का उसे शौक था ही एक दोपहरी को गुरुदेव के सत्संग हाल में भगवत भक्ति के साधन' नामक पुस्तक पढ़ रही थी, कि मैं किसी कार्यवश हाल में गई, उसके पास बैठी तो बातचीत आरम्भ हुई। मैंने पूछा, अब तो तुम हमेशा रहोगी न ? हमेशा के लिए यहाँ आने में क्या तुम्हारे माता पिता ने सुगमता से आज्ञा दे दी। उसने कहा मेरे कोई भाई न था। मेरी माता जी ने पूज्य गुरुदेव के चरणों में यहाँ मन्नत मानी थी कि मैं एक बेटी आश्रम की सेवा में दे दूँगी, तद्नुसार मेरे भाई हुआ। मेरे से पहले मेरी बहिन ने यहाँ पर कुछ समय सेवा की फिर चली गई। भाई बहुत बिमार पड़ गया सो उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा तो दी परन्तु नसीहत की कि मन चित्त लगा कर सेवा करना। पूज्य महाराज जी के प्रति हमारे सम्पूर्ण परिवार की असीम श्रद्धा है फिर भी मुझे भय था कि मुझे साथ ले जाने में कहीं इन्कार न कर दें। मैंने डरते-डरते आज्ञा माँगी। जब उन्हें विश्वास हो गया कि मैं माता पिता की आज्ञा से ही समर्पित भाव से आश्रम में सेवार्थ जाना चाहती थी तो उन्होंने कहा ''सब ते सेवक धर्म कठोरा'-और संगत की निष्काम निस्वार्थ सेवा ही उच्चतम सेवा है। यही बड़ी साधना भी है। श्रद्धा और प्रेम से की गई सेवा स्वीकृत होती है'' मैंने हाथ जोड़, चरण पकड़, प्रणाम किया और मेरे माता पिता के द्वारा मुझे उनके चरण कमलों में समर्पित कर दिया गया।

फिर एक दिन मुझे गरिमा ने दुर्गाकवच सुनाया एक दम सुन्दर उच्चारण। मैंने आश्चर्य से पूछा "तुमने पहले भी संस्कृत पढ़ी है क्या ?'' नहीं तो, यह तो मैंने सुमन दीदी से सीखी थी, अब मेरी इच्छा है मैं भी इस होने वाले लक्षचण्डी यज्ञ में पाठ पर बैठूँ। उसकी इच्छा पूर्ण हुई, लक्षचण्डी यज्ञ में लग्न उत्साह एवं द्रुतगति से प्रेमपूर्वक पाठ करती और यथासम्भव संगत की सेवा में लग जाती । कभी-कभी देखते, खाली समय में बच्चों की तरह बेहोश सो जाती। महाराज जी हँसकर पूछते तेरी नींद पूरी हो गयी। फिर हँस कर कहते, सारा दिन भागती फिरती थक जाती होगी।

विनम्रता, प्रसन्नता एवं आज्ञापालन उसके विशेष गुण थे। शिष्ट व्यवहार, गुरुदेव के सोने से पीछे सोना तथा पहले उठना उसका नियम था। कभी किसी को भी कष्ट में देखती तो भाग कर सेवा करती। मैं बीमार हुई तो उसने तत्परता से दवाई चाय आदि से सेवा की। सभी सत्संगी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं ।

किसी कवि के शब्द गरिमा पर कितने सुन्दर घटित होते है -

'मैं सोया तो पाया कि जीवन सुन्दरता का नाम है, *I Slept & found that life was beauty* और मैं जागा तो पाया जीवन कर्त्तव्य का नाम है। *I woke up & found that life was duty.*

लगभग १२ वर्ष हुए पूज्य महाराज जी नंगे पांव रहने लगे, बीमार भी हुए तो भी जूते पहनने स्वीकार नहीं किये। किसी भक्तजन ने कह दिया था - ''आपके चरणों से स्पर्शित धूलि हम कैसे प्राप्त करें'' बस जूते पहनने ही छोड़ दिये। लीला दीदी कलकत्ता से हल्की सी सुन्दर सी खड़ाऊं लाई, परन्तु ऋषि जी ने केवल स्पर्श किया और वापिस कर दी। गरिमा को सूझा, उसने जूते सदा के लिए छोड़ दिये और विनय की 'महाराज जी आप जूते पहन लें 'डाक्टर की आज्ञा है' विनम्र समर्पण - प्रार्थना स्वीकार हो गई और गंगा सागर आदि यात्राएँ गरिमा ने नंगे पाँव की। पूजा आराधना वही जो स्वीकार हो जाय। गुरु कृपा से तमस दूर हो जाता है और प्रकाशमय अलौकिकता प्राप्त होती है। गुरु कृपा की धनी गरिमा अलौकिकता की ओर निरन्तर बढ़ रही थी।

पुष्प का जीवन कितना लघु होता है। खिलता है, मुस्कराता है और अपनी सुगन्धि फैलाकर चल देता है। मेरी प्यारी गरिमा बहिन को दिनांक १०.३.९७ को गंगा मैया ने अपनी गोद में ले लिया। देवी रूप गरिमा माँ गंगादेवी रूप में समाहित हो गई। उसकी मधुर याद, खिली मुस्कान समय समय पर हृदय को झंझोड़ कर रख देती है क्योंकि छिन गई आश्रम की एक त्यागमयी मूर्ति। प्रभु उसे सदा सर्वदा परमानन्द से विभूषित करते हुए सदैव अपने चरणों में रखें।

*****

श्रद्धेय श्री १०८ वंशीधर जी महाराज "विरकां वाले"

इन्द्रपाल विज
दन्त-चिकित्सक, वाराणसी

पंजाब के भंठिण्डा जिला में विरक नामक एक प्रसिद्ध श्रद्धास्थली है, जहाँ पर महान सन्त श्री १०८ वंशीधर जी महाराज अपने माता-पिता की पुत्र प्राप्ति की इच्छा पूर्ण करते हुए लोक कल्याण हेतु प्रकट हुए। पिता श्री पंडित अमरनाथ जी, माता श्रीमती ठाकुरी देवी उच्च कोटि के सदाचारी धर्मपरायण शिव-भक्त परिवार के थे। संवत १६३० तदनुसार सन् १८७३ को जन्म लेने पर विरक निवासियों लोगों में और परिवार में अपूर्व आनन्द का वातावरण छा गया। विद्वानों ने भविष्यफल देखने पर बताया कि उन्नत मस्तक वाला उक्त बालक भाग्यशाली, परमात्मा का परम भक्त होगा। विवाह न करके ब्रह्मचारी व्रत का पालन करेगा। तीर्थो का दर्शन करने वाला, तपस्वी जीवन वाला, परोपकारी व कल्याणकारी स्वभाव का होगा। उन्नत ललाट, कमल के समान नेत्र, घुटने तक लम्बी भुजाएँ, ये सब तेजस्वी बालक के शुभ लक्षण प्रतीत होते थे।

बारह वर्ष की आयु तक घर में रहकर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। तदुपरान्त धर्मकोट के विद्वान पंडित मिलखीराम जी से संस्कृत व्याकरण-सर्वशास्त्र ज्ञान प्राप्त किया, जो भी पाठ पढ़ाया जाता, एक बार पढ़ने से ही याद कर लेते थे। शिक्षा पूर्ण करके माता के पास विरकां में इच्छा प्रकट की कि मैं तीर्थ दर्शन करने जाना चाहता हूँ। माता ने आज्ञा देते हुए कहा कि वापिस आकर आप विरकां में ही रहेंगे। माता की आज्ञा शिरोधार्य करके तीर्थों के दर्शन से वापिस आ कर विरकां में ही एक कुटिया बनाकर परमात्मा के ध्यान में लीन रहने लगे। कुटिया में शिव-भक्ति व कृष्ण-भक्ति के भजन होते रहते थे। धीरे-धीरे ख्याति बढ़ने लगी। यदा-कदा पैदल ही यात्रा करते थे। उन्होंने बद्रीनाथ आदि चारों धाम की पैदल यात्रा की। पाँव में छाले पड़ जाते थे परन्तु साहस पूर्वक चलते ही रहते। इन्हीं दिनों हरिद्वार में एक विरक्त योगी से गुरु दीक्षा भी ले ली। शरीर पर पाँव तक लम्बा चोला पहनते। बनक्षा की चाय लेते और भोजन सादा ही ग्रहण करते थे। किसी से कुछ लेते नहीं थे। फिर भी कोई कमी नहीं थी। सभी इनको पिता जी कहते थे। अपूर्व सन्त, परम त्यागी, परम तपस्वी, परम शक्ति-सम्पन्न रुहानी, दुनिया के सम्राट होते हुए भी अपने को अकिंचन मान स्वयं को निर्धन ही बताते थे। इसलिये इनकी पुण्य स्मृति में "निर्धन निकेतन" आश्रम निर्मित हुआ। पैदल यात्रा के समय सिर पर जटा, उन्नत मस्तक, लम्बा कद, भुजाएँ घुटने तक, तेजस्वी चेहरा बहुत ही आर्कषक एवं प्रभावशाली व्यक्तित्त्व, सभी के मन में सहज ही श्रद्धा उत्पन्न करता था। जो भी

भक्त अपनी अभिलाषा लेकर उनके पास आता था, उसकी इच्छा की पूर्ति अवश्य होती थी, यह आप के जीवन में देखने को मिला। पिता जी शिव-भक्त सिद्ध महात्मा थे। संस्कृत के लिये उनके हृदय में विशेष भाव थे। कहा करते थे कि बिना संस्कृत पढ़े गुरु शंकराचार्य-रामानुजाचार्य वल्लभाचार्य के उपदेशों को नहीं जाना जा सकता। इसी भाषा में हमारे वेद,पुराण, उपनिषद लिखे गये हैं। यह संस्कृत किसी एक पंथ या जाति की भाषा नहीं है। गुरुदेव ने अलग से कोई पंथ नहीं चलाया, पिताजी ने जगदम्बा की प्रेरणा से पंजाब के प्रसिद्ध तीर्थ "माइसर खाना" में विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें महिषासुर मर्दिनी माँ जगदम्बा की भव्य मूर्ति की स्थापना करायी।

गुरु जी चमत्कारी व्यक्ति थे। हमने अपनी आँखों से कई चमत्कार देखे। एक बार कुम्भ के अवसर पर प्रयाग में पूज्य पिताजी अपनी कुटिया (तम्बू) में बैठे थे कि लोगों ने घबराये हुए आकर बताया कि उस पार भीषण आग लग गई है, सुनते ही योगीराज उठे और जल लेकर उस तरफ छिड़कने लगे, लोग आश्चर्य से देख रहे थे कि इतनी दूर से पिता जी यह क्या कर रहे हैं। देखते-देखते ही आग शान्त हो गई, पूज्य पिता जी गम्भीर मुद्रा में भीतर आकर ध्यान में मग्न हो गये, सब शान्त थे। थोड़ी देर बाद "जय भोले शंकर" "भोले-भोले बाबा" का उच्चारण करने लगे। उपस्थित भक्त-जन श्रद्धा से गुरु महाराज को नतमस्तक होकर प्रणाम करके अपने को धन्य मानने लगे।

ऐसे ही एक बार एक माता ने चिन्ता में परेशान होकर पिताजी से आकर अपना दुःख बताया कि एक मात्र पुत्र है वह भी गम्भीर रूप से अस्वस्थ है। चिकित्सकों ने जवाब दे दिया है। विलाप करती माता ने कहा पिताजी अब आप का ही सहारा है। पिताजी ने गम्भीर होकर एक मन्त्र कागज पर बना कर दिया, रोगी को पहनाने के लिए और कुछ जाप बताया। कुछ ही दिनों में वही माता अपने पुत्र को लेकर आई और योगीराज के चरणों में प्रणाम करके पुत्र के दीर्घ आयु होने का आशीर्वाद माँगा और कहा आपने ही इसकी रक्षा की है। पिताजी ने "भोले शंकर" कह कर आशीर्वाद दिया।

ऐसे ही पिताजी के अनन्य भक्त श्री भगवतशरण जी के पुत्र होने पर विद्वानों ने बालक रोहित की आयु मात्र तीन वर्ष बतायी। दोनों दम्पत्ति एक बार गुरुदेव के पास हरिद्वार में परिवार सहित आये थे कि तीन वर्ष का बालक रोहित सड़क पर दुर्घटनाग्रस्त होकर अचानक अचेत हो गया। घबरा कर सब दौड़े। योगीराज व भगवत जी भी आए, पिताजी ने कहा, घबराओ नहीं जल्दी से उठाओ, भोलेनाथ रक्षक हैं। भगवत शरण जी

शंकित मन से अचेत बालक को अन्दर लाए, गुरुमहाराज ने अचेत पड़े बालक को तीन बार रोहित-रोहित-रोहित कहकर पुकारा, तीसरी बार रोहित कहते ही आँखें खोल दीं, तब पिताजी ने पूछा क्या खाओगे? बालक ने धीरे से कहा 'लीची'। पिताजी ने चोले में हाथ डालकर एक लीची निकाल कर दी कि इसे छीलकर खिलाओ और रोहित के सिर पर हाथ फेरते हुए आयु वृद्धि का आर्शीवाद दिया। यही चमत्कार है कि रोहित जी आज भी दिल्ली में सपरिवार सकुशल हैं।

पूज्य गुरुदेव का कहना था कि शुद्ध आहार, शुद्ध आचार का जीवन जीओ। एक बार ज़ीरा निवासी कुन्दन लाल नामक व्यक्ति ने जिसके जीवन में अनेक बुराइयाँ थीं, गुरुजी को अपने घर विराजने के लिए प्रार्थना की। उन्होंने यह कह कर मना कर दिया कि पहले आहार शुद्ध करो। तुम शराब पीते हो, मांस खाते हो। यह सब छोड़ दोगे तब तुम्हारे घर आऊँगा। उसने गुरुजी के चरण पकड़ लिए गुरुजी, आज के बाद कभी भी शराब न पीऊँगा, न मांस खाऊँगा, पूर्णतया शुद्ध जीवन बिताऊँगा। सभी गुरु-भक्त साक्षी हैं कि कुन्दन लाल कुन्दन ही बन गया। यह गुरु-महाराज की कृपा थी।

आपके जीवन की अनेक लीलाएँ हैं, अनेक चमत्कार हैं। अणिमा-गरिमा आदि सिद्धियाँ तो आपकी चेरी हैं, वे तो आपकी इच्छानुरूप सेवा में उपस्थित रहती हैं। आपके त्यागमय, तपमय, लोककल्याणमय जीवन के प्रति मैं नतमस्तक हूँ।

मेरी तन्द्राओं में

प्रेमसागर बंसल
धूरी (पंजाब)

पूज्य ऋषि जी का व्यक्तित्व, उनके चेहरे का नूर कुछ ऐसा है जो कि अब लिखते हुए भी मेरे को आत्मविभोर कर रहा है। बात है सन् १९९४ की जब मैं किसी पारिवारिक कार्य से बरनाला अपनी मासी के यहाँ गया था, तो दुकान पर पूज्य ऋषि जी का चित्र देखा, तो मैं देखता ही रह गया, ऐसा लगा, जैसे मेरे दिल की तार-तार झंकृत हो उठी हो, कितनी देर तक मैं देखता ही रहा और आनन्द मग्न हो गया। मैंने उनसे अनुरोध किया, कि जब भी ऋषि जी आएँ, तो मुझे अवश्य बताना, मैं उनसे मिलना चाहता हूँ। उनसे ही पता चला कि पूज्य ऋषि जी धूरी में भी आते हैं। एक रोज जब यह शुभ दिन आया तो जैसे ही हमें सूचना मिली, हम दोनों उनसे मिले, तो अपने भाव को मै शब्दों में ढाल नहीं सकता। मैं मन ही मन तो ऋषि जी का पहले ही हो चुका था, इसलिए मैने नाम लेने की इच्छा जाहिर की, तो दूसरे दिन एकादशी के शुभ अवसर पर मुझे नाम भी मिल गया और जो नाम के शब्द मुझे मिले, वो भगवान के शब्द मुझे सबसे प्रिय थे और पहले से ही चल रहे थे। इसलिए मेरा दिल मानता है कि हमारा मिलन बहुत पहले जन्मों से चला आ रहा था, यह तो एक रस्मी-मिलन था।

इन्हीं विचार तन्द्राओं से महक आ रही है कि एक और पहलू है जो कि मैं पूज्य ऋषि जी महाराज के प्रथम दर्शनों से ही उनकी ओर आकृष्ट होता चला आया कि वे भी भगवती शक्ति के अनन्य उपासक हैं और मैं भी बचपन से ही माँ शक्ति का गुणगान करता रहा हूँ और माँ के प्रति मेरी निष्ठा को लिखना मुश्किल लगता है, इसलिए मैं चाहता था कि मेरे गुरु भी ऐसे हों जिनको माँ के प्रति निष्ठा हो। हमने पूज्य ऋषि जी को अपनी भावना के सागर में खोकर गुरु तो बना लिया, लेकिन हम यह जान ही नहीं पाये कि गुरु जी की निष्ठा क्या है? कुछ ही समय बाद हम गुरुपूजा के अवसर पर हरिद्वार गए, तो गुरु जी पाठ कर रहे थे हमारे पूछने पर बहन देवां जी ने बताया कि ऋषि जी दुर्गा सप्तशती का ही नित्य पाठ करते हैं, तो हमारी खुशी की कोई सीमा न थी और हमने माँ का लाख-लाख धन्यवाद किया, जिसने हमें ऋषि जी के चरण कमलों में स्थान दिया। माँ

शक्ति के प्रति गुरु जी की निष्ठा और विश्वास कितना है। मेरी तन्द्रायें मुझे याद दिला रही है कि जब गुरुपूजा के अवसर पर माँ शक्ति का झंडा लहराते हुए ऋषि जी ने माँ की परिभाषा दी थी, माँ का दर्शन हर समय, हर पल होता है, हमारी हर क्रिया माँ के सामने और हमारे चरण हर समय माँ के किसी अंग पर होते हैं। हमारी आँखें हर पल उसी का दर्शन करती हैं। यह परिभाषा मेरे दिमाग की गहराइयों पर उतर चुकी है और मैं अपने आपको हर समय माँ के पास महसूस करता हूँ।

मेरी इन्हीं तन्दराओं में गूंजते हैं गुरु जी के परम उद्देश्य, जिनके लिए इन्होंने अपना पूरा जीवन लगा दिया है, पहला है शिक्षा और दूसरा है नित्य उपासना-कर्म। ये दोनों ही आश्रम में साथ-साथ चलते हैं तो पुराने समय के गुरुकुल की याद ताजा हो उठती है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए गुरु जी के सामने समर्पित आश्रम, आश्रम के लिए समर्पित हैं देवियाँ। इन देवियों में मातृशक्ति के सभी रूप झलक रहे हैं और अपने पृथक् -पृथक् गुणों के आधार पर इन देवियों के योगक्षेम द्वारा आश्रम के उद्देश्य पूरे हो रहे हैं। मैं तो इन सभी मातृशक्तियों का आभारी हूँ, क्योंकि इन सभी के अपने-अपने गुणों के आधार पर मुझे ज्ञान के मोती मिले हैं। पूज्य गुरु जी का शिष्य बनने के बाद मैंने जब भी अपने जीवनकाल का मूल्यांकन किया, तो मैने देखा, कि मेरी जिन्दगी का बहुत कुछ बदला है जिसे मैं पूज्य गुरु जी का सबसे महत्वपूर्ण प्रसाद समझता हूँ। शेष जीवन भी उनके आदर्शों और आचरणों के अनुरूप ढल जाये यही पूज्य गुरुदेव जी के श्री चरणों में प्रार्थना है।

*****

पूज्य गुरुदेव के सानिध्य में

उषा मेहता
न्यूयार्क, (अमेरिका)

छोटा मुँह बड़ी बात-यह तुच्छ दासी अपने विचारों को कलम और स्याही के द्वारा प्रगट करने की चेष्टा कर रही है। स्वर्गीय श्री सीताराम दत्ता और उनकी पत्नी स्वर्गीय श्रीमति कृष्णा दत्ता की ये पुत्री उषा दत्ता (अर्थात् शादी के बाद हुई उषा मेहता) आज भी श्री ऋषि केशवानन्द जी महाराज को केवल गुरु ही नहीं, बल्कि उससे बढ़कर जो भी शक्ति है, मानती है। मैं कैसे भूल सकती हूँ कि मेरा तो बचपन का बहुत बड़ा भाग महाराज जी की छत्र-छाया में बीता है। आज भी मेरी आँखो के सामने लगभग ४० वर्ष पुराने वे दृश्य आते हैं जब निर्धन निकेतन आश्रम बन रहा था। उस समय मैं बहुत छोटी थी और श्री सत्गुरुदेव महाराज ने हम बच्चों को इतनी शक्ति दी कि सभी सत्संगियों के साथ हम भी भजन-कीर्तन करते हुए, सिर पर ढेर सारी ईंटें उठा-उठा कर और भाग-भाग कर आश्रम की सेवा बड़े प्रेम से करते थे। धीरे-धीरे देखते ही देखते, आश्रम बनता गया, सभी सत्संगियों का आपसी प्रेम बढ़ता गया और श्री ऋषि जी महाराज की कृपा भी हम पर बढ़ती गई।

आश्रम का नाम "निर्धन निकेतन" रखा गया, जो हरिद्वार में हर की पौड़ी से लगभग एक मील दूर, भीमगोड़ा और पंजाब सिंध क्षेत्र के पास खड़खड़ी में गंगा तट पर स्थित है। बड़े हाल कमरे में श्री सत्गुरु देव महाराज विरकां वाले की मूर्ति स्थापित की गई और उनके दाहिने बाएं दोनों ओर श्री राधा-कृष्ण और श्री सीता-राम की मूर्ति स्थापित की गयी। गंगा किनारे माँ दुर्गा का मन्दिर, हनुमान मन्दिर व शिव मन्दिर में शिव-परिवार की प्रतिमाएँ स्थापित की गई। वर्ष बीतते गए, निर्धन निकेतन आश्रम बनता गया और आज तो इतना विशाल बन गया है कि हजारो सत्संगी एक साथ इसमें रह सकते हैं, बड़े बड़े यज्ञ किए जाते हैं तो भी छोटा नहीं पड़ता। ये भी उनकी एक लीला है जो वे ही जाने।

सांसारिक जीवन में सुख-दुख, अच्छा-बुरा समय तो सब पर ही आता है। हर प्रकार का समय सहने में श्री ऋषि जी महाराज ने हम पर बड़ी कृपा की। मैं तो कहूँगी कि प्रभु हर मनुष्य की परीक्षा लेता है, यह देखने के लिए कि मनुष्य उसमें कितना सफल होता है ? शायद यही जीवन है। अपने अनुभव से कह रही हूँ-कई बार कष्ट के समय में श्री ऋषि जी महाराज की हम पर ऐसी कृपा रही कि वह कष्ट का समय कैसे बीत गया - मालूम ही नहीं हुआ। उनकी तो लीला ही न्यारी है - जिसने भी उनको जान लिया वह कभी

भी डगमगा नहीं सकता, बल्कि उसका विश्वास और भी दृढ़ हो जाता है। लगभग ३८ वर्ष पहले मुझे भी एक बार उनके साथ गंगा सागर, रामेश्वरम् और श्री जगन्नाथ पुरी तीर्थयात्रा करने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। बड़ा ही आनन्द रहा। पूरा समय भजन-कीर्तन करते हुए कैसे बीत गया मालूम ही नही चला। समय बीतता गया और हमारे परिवार का महाराज जी पर विश्वास और भी दृढ़ होता गया। विशेष रूप से मुझ पर तो उनकी बहुत ही कृपा रही, जो मेरे पतिदेव श्री अश्वनी कुमार जी को भी श्री ऋषि जी महाराज पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास है, जिस कारण मुझे हर काम में उनका पूरा सहयोग मिलता है।

जीवन में मैंने कई बार कुछ विचित्र घटनाएँ देखीं जिन्हें मैं कभी भुला नहीं सकती। मुझे आज भी याद है एक बार पूजनीय पिताजी (ऋषि जी महाराज) के साथ हमें हरिद्वार में मनसा देवी के मन्दिर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय ये ट्रालियाँ नहीं चलती थीं तथा केवल पैदल का मार्ग था। हम सभी बड़े उत्साह के साथ ऊपर चढ़ कर मन्दिर पहुँचे, मनसा देवी के दर्शन किए और वापिस चल दिए। पिताजी के साथ हम पाँच या छः बच्चे ही थे-जिनमें अमृतसर वाली दर्शना, लुधियाने वाला भीम, भीम की बहन दर्शना, मैं तथा एक दो और (जिनका नाम अब मुझे याद नहीं) थे। वापसी पर एक दम बड़ी तेज वर्षा शुरु हो गई। हम सभी बच्चे एक दम डर गए-इतनी तेज वर्षा हो रही थी और पहाड़ से नीचे उतरना-कहीं किसी का पाँव न फिसल जाए। उसी समय पूजनीय ऋषि जी महाराज का एक चमत्कार देखा। वे उछल कर एक पेड़ की टहनी जो खाई की तरफ लटक रही थी, को पकड़कर उस पर लटक गए, दो तीन बार उस पर झूले। उसी समय वर्षा एक दम थम गई और पिताजी उछलकर नीचे आ उतरे। उनका यह चमत्कार देखकर हम सभी एक दम दंग रह गए। वह उनका पेड़ पर लटक कर झूलने का दृश्य, आज भी मेरी आँखों के सामने वैसे ही आ रहा है।

वर्ष बीतते चले गए, मेरे पिता श्री सीताराम दत्ता स्वर्गवासी हो गए और मेरी माता जी (स्वर्गीय कृष्णा दत्ता) तथा उनका सारा परिवार, महाराज जी की कृपा से, अमेरिका चले गये। एक बार तो हमें लगा कि इतनी दूर जा कर सत्गुरुदेव के दर्शन दुर्लभ हो जाएगें परन्तु उनकी हम पर अमेरिका में भी बड़ी कृपा रही। हम लोग १९७९ में भारत छोड़ कर अमेरिका आ गए और हमारा प्रेम उन्हें यहाँ भी खींच लाया। पहली बार सन् १९८० में पूजयनीय ऋषि जी महाराज ने अमेरिका में आकर हमें दर्शन देने की कृपा की। अमेरिका से कैनेडा भी गए। तब से आज तक हर दो-तीन वर्ष बाद वे इसी प्रकार अमेरिका व कैनेडा आकर हमें दर्शन देने की कृपा करते हैं। इन दोनों देशों में इतने वर्षों में उनका परिवार भी बहुत बढ़ गया है। यहाँ पर एक बात हमें बहुत अच्छी लगती है कि जब वे यहाँ आते हैं तो पूरी तरह से हमारे पास होते हैं। उनका पूरा समय हमारा होता

है, सचमुच हम पर उनकी बड़ी कृपा रहती है। उनके यहाँ आने पर सभी को इच्छा होती है कि उनके घर अपने महाराज पधारें तथा घर पवित्र करें-बस इसी तरह प्रतिदिन ऋषि जी का कार्यक्रम कभी कहीं कभी कहीं चलता रहता है। मेरी भी इच्छा होती है कि उनके आने पर एक बार रामायण का अखण्ड पाठ रखवाकर उनके पवित्र चरणों से इस कुटिया को पवित्र करवाऊँ। सब इकट्ठे होते हैं, महाराज जी के साथ २४ घन्टे कैसे बीत जाते हैं मालूम ही नहीं चलता।

श्री ऋषि जी महाराज वैसे तो हमेशा यहाँ मई-जून में आते थे परन्तु १९९८ में अगस्त-सितम्बर में यहाँ आए और अक्टूबर के महीने में दिवाली से पहले भारत वापिस चले गए। हमारे सौभाग्य से उनका ७५वां जन्म दिवस १७ अगस्त १९९८ को न्यूयार्क में मेरे भाई अशोक दत्ता व अमिता दत्ता के घर मनाया गया। उससे पहले ८ अगस्त १९९८ को हमारे घर रामायण का अखण्ड पाठ रखा गया तथा ९ अगस्त १९९८ को महाराज जी के द्वारा भोग डाला गया। यह हमारा सौभाग्य था, कि ८ अगस्त को रक्षाबन्धन का पवित्र त्यौहार भी था। उसके बाद एक बार फिर सौभाग्य से हमें ९ अक्टूबर १९९८ को सत्संग कराने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। सचमुच, ऋषि जी महाराज के आने से यहाँ न्यूयार्क में बड़ा आनन्द रहता है। उस समय की कुछ सुन्दर तसवीरे हैं। जो उस सुन्दर समय की सदा याद दिलाती रहेंगी।

फरवरी १९९८ में हमारा भारत जाने का प्रोग्राम बना। अप्रैल १९९८ में कुम्भ के शुभ अवसर पर महाराज जी की कृपा से मेरे पति अश्वनी कुमार सहित मुझे हरिद्वार में कुम्भ स्नान का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। इस अवसर पर निर्धन निकेतन आश्रम में जो प्रोग्राम देखने को मिले, जो सत्संग और महाराज जी के प्रवचन सुनने को मिले, मैं तो कहूँगी कि हमारा जीवन सफल हो गया। पुराने सत्संगियों को मिलने का अवसर भी मिला। हरिद्वार का ऐसा सुन्दर दृश्य जीवन में फिर कभी देखने को नहीं मिलेगा। उस समय के आनन्द को बयान करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं।

अब मैं श्री सतुगुरू देव जी महाराज और पूज्य ऋषि जी महाराज के पवित्र चरणों में अपने परिवार सहित प्रणाम करते हुए प्रार्थना करती हूँ कि इसी प्रकार भविष्य में भी हम पर उनकी कृपा बनी रहे।

श्री सतुगुरू देव महाराज की जय, श्री ऋषि जी महाराज की जय!!

*****

गुरुदेव का विदेश आगमन

अमिता दत्ता
न्यूयार्क, (अमेरिका)

मेरा बड़ा सौभाग्य है कि मैं शादी के बाद एक ऐसे परिवार में आई जो परिवार धार्मिक प्रवृत्ति का था। मेरे सास-ससुर, मेरे पतिदेव, मेरे जेठ-जेठानी और तो और मेरे इकलौते ननद-ननदोई सभी ईश्वर में विश्वास रखते थें तथा मानवता के सच्चे पुजारी थे। इससे भी बढ़कर पंजाब के भठिण्डा जनपद के विरकां गाँव के तपस्वी, त्यागमूर्ति सन्त श्री वंशीधर जी महाराज के अनन्य शिष्य थे। पंजाब में गुरुदेव श्री बंशीधर जी का अत्याधिक प्रभाव था, बड़े करनी वाले प्रसिद्ध संत थें। पूरा परिवार उन्हीं का भक्त था। मैंने उन्हें देखा तो नहीं था, परन्तु उनके विषय में सुन रखा था। मेरी माता (सास) श्रीमती कृष्णादत्ता और पिता (ससुर) श्री सीताराम दत्ता सुबह शाम आरती-पूजा करते, घर पर बने भोजन का प्रथम भोग लगाते, तब परिवार के सदस्य भोजन करते थे। परस्पर घर में स्नेह प्यार का, छोटे बड़े के मान सम्मान का वातावरण था। मेरे पति श्री अशोक कुमार दत्ता बड़े उदारचित्त, सौम्य प्रकृति के व्यक्ति हैं। सब एक दूसरे के मनोविज्ञान को समझकर व्यवहार करते थे। सच घर क्या स्वर्ग मिल गया था। माता जी की दैनिक दिनचर्या आरती-पूजा, भजन कीर्तन जिस में मुझे भी रुचि थी। आनन्द से समय व्यतीत हो रहा था।

गुरुदेव महाराज के शिष्य ऋषि केशवानन्द जी गुरुदेव श्री वंशीधर जी के स्वर्गवास के बाद गुरुदेव जी की तरह कभी कभी माता-पिता जी के पास आते थे। मैं भी उनकी सेवा, माता जी के साथ करती थी। कुछ समय बाद हम लोग न्यूयार्क आकर रहने लगे, तब से माता जी को महसूस होने लगा, कि अब गुरुदेव ऋषि केशवानन्द महाराज जी के दर्शन नहीं हुआ करेगें। ऐसे दो तीन वर्ष बीत गये, माता जी के मन में आया कि हम ऋषि जी महाराज को न्यूयार्क बुलाये, फिर सोचतीं, पता नहीं, विदेश आना पसन्द करें या नहीं ऐसे चिन्तन में रहती थीं। एक दिन मैंने कहा आप गुरु जी को पत्र तो डालो, शायद आ ही जाये। माता जी ने पत्र में प्रार्थना की कि गुरुदेव हम आप के दर्शनों से वंचित हो गए। हम पर कृपा करो, यदि न्यूयार्क आप आने की कृपा करें तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। न्यूयार्क में अपने घर का खान-पान, रहन-सहन सब भारतीय ही है कोई दिक्कत नहीं होगी। सच बड़े दयालु हैं ऋषि जी! उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उन्होंने वर्ष १९८० में हमें न्यूयार्क में दर्शन दिए-उनके इस आगमन से न्यूयार्क में, वाशिंगटन में, न्यूजर्सी, शिकागो, क्लीवलैण्ड, एटलांटा

आदि नगरों में रहने वाले अन्य भक्तों को भी दर्शन लाभ हुआ। सभी ने १५ दिन तक ऋषि जी को अमेरिका में ही रोके रखा। फिर एडमण्टन (कनाडा) वाले भक्तों ने वीजा भेज दिया। वहाँ के भी मुख्य नगरों ट्रांटों, आटवा, बैंफ, कैलगिरि आदि बैम्फ स्थानों में गये २२ दिन तक रहे। उनके विदेश आने पर कभी कहीं सत्संग हो रहा है। किसी के घर में रामायण पाठ हो रहा है। कहीं यज्ञ हो रहा है सचमुच उनके आने से सब में सत्कार्यों के प्रति जागृति आ जाती है। हमें लगता है कि हम भारत में ही निवास कर रहे हैं। कई विदेशी लोग भी ऋषि जी के अनुयायी बन गये हैं। ऋषि जी के आने की बाट जोहते रहते हैं। भारत में बराबर सम्पर्क बनाये रखते हैं। हरिद्वार निर्धन निकेतन में भी गये हैं। वहाँ के क्रिया कलापों की सराहना करते हैं। वे तो ऋषि जी के परम भक्त ही हो गए हैं।

वर्ष १६८३ ई० में यहाँ के लोगों का प्रेम उन्हें फिर खींच लाया। तब भी बड़ा आनन्द रहा। वर्ष १६८६ ई० में माता जी श्रीमति कृष्णा दत्ता भारत लक्षचण्डी यज्ञ के लिए आयीं, भगवान को प्यारी हो गई, परन्तु पूज्य गुरुदेव जी ने हमारे पर वही कृपा बनायी रखी। उसके पश्चात भी ऋषि जी वर्ष १६८७, १६६०, १६६४, १६६६, १६६८ ई. में इग्लैंड, अमेरिका, कनाडा आये। दो-दो मास रहे परन्तु उनकी इतनी अवधि भी हमें बहुत कम लगती है क्योंकि उनके आने से कुछ शुभ कर्म हो जाते हैं। बड़ा सात्विक वातावरण होता है बच्चों पर भी भारतीय संस्कारों की कुछ छाप नज़र आने लगती है। सत्संगी बहिन-भाइयों का मिलाप हो जाता है ऐसे आनन्द का समय पता नहीं कितनी जल्दी बीत जाता है। बस ऐसी दया हम पर बनाये रखें, यही मेरी विनम्र प्रार्थना है, नहीं तो हम गृहस्थी लोगों का ऐसे कैसे कल्याण होगा। आपके ही कर्म पर निर्भर हैं हम नादान बच्चे!

माता जी १६८६ की लक्षचण्डी यज्ञ में भाग लेना चाहती थीं भारत आयी भी परन्तु उनका दिल्ली पहुँच कर ही स्वर्गवास हो गया तब से मेरी तमन्ना थी कि अब जब भी पूज्य ऋषि जी लक्षचण्डी यज्ञ करेंगें तो मैं हरिद्वार पहुँचकर उनकी इच्छा पूर्ण करूँगी इसलिए वर्ष १६६८ में हुए लक्षचण्डी यज्ञ में हमने भाग लिया और एक दिन का पूजा, पाठ, हवन, भण्डारा आदि सब उन के निमित्त किया। यह कार्य करके हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। ऐसे शुभ-कार्यो की प्रेरणा देने वाले मेरे गुरुदेव सदैव प्रेरणा देते रहे यही मनोकामना है। बारम्बार प्रणाम।

*****

निर्धन निकेतन के अविस्मरणीय व्यक्तित्व

देवां, सदस्या,
बाल ब्रह्मचारी मिशन,
निर्धन निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार।

यूँ तो निर्धन निकेतन की भावमयी स्थापना का आरम्भ उसी दिन से हो गया था जिस दिन (दिनांक ३.६.५६) बाल ब्रह्मचारी श्री वंशीधर विरकां वालों ने श्री जगदीश आश्रम खड़खड़ी हरिद्वार में अपना पंचभौतिक चोला छोड़ा था। हजारों की संख्या में उनके भक्तगण उनके शरीर को शमशान की ओर ले जा रहे थे। निर्धन निकेतन के बिल्कुल सामने अर्धमार्ग की क्रिया करने के लिए जब उनका शरीर रखा गया, तो उसी समय देहली के प्रतिष्ठित भक्त श्री पूर्णचन्द महाजन और श्री रूपचन्द महाजन सपरिवार पहुँच कर कहने लगे, कि गुरु महाराज के शरीर को यूँ ही नहीं जलाया जायेगा, हम उनकी यादगार बनायेगें। यह सुनकर हजारों भक्तों ने एक स्वर में कहा कि उनकी यादगार अवश्य बनेगी। बाद में कोई स्थान खरीदा जायेगा उस पर एक विशाल आश्रम बनाया जायेगा आश्रम के सत्सगं भवन के मध्य में उनकी अस्थियों पर उनकी समाधि बनायी जायेगी। उस समय की भक्तों के हृदय से निकली हुई उस भावना का रूप आज का विशाल निर्धन निकेतन है।

निर्धन निकेतन नामकरण का भी यही आशय है कि गुरु जी महाराज सदा ही अपने आप को निर्धन कहते थे और अपने नाम के आगे "निर्धन" लिखते भी थे। उस समय सात-आठ व्यक्तियों की कमेटी बनाई गयी जिस के दो कार्यकर्ता वस्तुतः मूल स्तम्भ ही बने। एक थे लाला काशीराम विज जो वाराणासी से आये थे, जिन्होंनें आश्रम के आरम्भ से लेकर पन्द्रह वर्ष तक अनथक परिश्रम करते हुए अनगिनत कठिनाइयों को झेलते हुए गुरु घर की सेवा की। उनके आनन्द, प्रेम तथा अथाह श्रद्धा के स्मरणमात्र से हृदय आप्लावित हो जाता है तथा आनन्द की स्तब्धता छा जाती है। धन्य हैं वे गुरुभक्त जिन्होंने अपना पंचभौतिक शरीर भी इसी आश्रम में समर्पित किया है। उनकी निष्ठा श्रद्धा तथा धैर्य वाला दूसरा व्यक्ति आज तक भी उपलब्ध नहीं हुआ।

दूसरे थे श्री भगवतशरण बरेली वाले, वे भी गुरु महाराज के अनन्य भक्त थे। श्रद्धा के साथ उनका अदम्य उत्साह तथा आश्रम के लिए अपने प्राणों को भी अति तुच्छ समझकर सब प्रकार के खतरों के

होने पर भी अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते ही गये। पंजाब का जब बहुत विरोध चल रहा था तो वे अपने सर-धड़ की बाजी लगाकर सभी खतरे वाले स्थानों में जाते तथा आश्रम की वास्तविक स्थिति लोगों को विशेष कर गुमराह होने वाले गुरुभक्तों को समझाते। कई वर्षो की उनकी घोर तपस्या और साधना के परिणाम स्वरूप लोगों की आस्था ऋषि जी महाराज में तथा निर्धन निकेतन आश्रम में बनी और बढ़ी, जिसका उज्ज्वल रूप आज संसार के तथा आप लोगों के सामने है। उन्होंने भी आजीवन गुरु घर की सेवा की। ऐसे दिग्गजों की अमर देन निर्धन निकेतन तथा प्रबन्धतन्त्र युगों तक याद रखेगा।

गुरुभक्त माला में एक उज्जवल मोती था श्री रामनारायण माटा। वे बाल ब्रह्मचारी मिशन के उपाध्यक्ष थे। उन्हें अपने गुरुदेव श्री वंशीधर के श्री चरणों में अगाध प्रेम था। पूज्य ऋषि जी में वे अपने गुरुदेव का साक्षात्कार पाते थे। राजकीय कालेज लुधियाना में प्रोफेसर, प्राचार्य आदि उत्तरदायित्व पूर्ण पदों को कुशलता से सम्भालते हुए बाल ब्रह्मचारी मिशन द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं के क्रिया-कलापों का कार्य नियमित रूप से देखते थे। आश्रमीय क्रिया कलापों में पूज्य ऋषि जी महाराज के परामर्शक रहे हैं। निर्धन उपनामधारी पूज्य गुरुदेव के सन्देशों का प्रचार-प्रसार करने वाली "निर्धन सन्देश" पत्रिका के जीवनभर सम्पादक रहे हैं। बड़ी सूझ-बूझ वाले व्यक्ति थे भाई माटा साहिब। उनकी गुरुनिष्ठा, गुरुश्रद्धा बेमिसाल है। पूज्य ऋषि जी की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करते थे और ओरों को प्रेरणा देते थे कि ऋषि जी जैसा कोई नही है। मेरे तो ऋषि जी साक्षात् प्रभु हैं। अपने प्रभु की स्मृति में ही दिनांक १.३.९६ की सायंकाल में लुधियाना घर के मन्दिर के आगे ध्यानमग्न मुद्रा में ही बैकुण्ठ धाम चले गये। धन्य है ऐसे धर्मवीर गुरुभाई।

गुरुनिष्ठा में पगी गुरुबहिनें भी कम न थी। नहरी विभाग के उच्चाधिकारी श्री बहादुर चन्द की विधवा पुत्री श्रीमती शान्ता देवी अपने पिता की सेवा के साथ विद्वानों, सन्तों की बड़ी श्रद्धा से सेवा किया करती थी। सनातन धर्म योग सभा के स्त्री सत्संग की सदस्या श्रीमती शान्ता देवी, श्रीमती काहन देवी, केसरा देवी, चनन देवी आदि बहिनों के साथ मिलकर चन्दा इकट्ठा कर सनातन धर्म योग सभा का सहयोग देती थी। उस योग सभा में प्रत्येक मास के अन्तिम रविवार को पूज्य ऋषि जी का सत्संग प्रवचन होता था। श्रीमति शान्ता देवी और उसके पिता श्री बहादुर चन्द पूज्य ऋषि जी के विचारों से प्रभावित हुए और उनके शिष्य बन गये। पिता-पुत्री दोनों धर्मात्मा

थे। जब उस के पिता का देहान्त हो गया तो श्रीमती शान्ता देवी हरिद्वार के आश्रम निर्धन निकेतन में आ कर रहने लगी। भण्डार में खूब सेवा करने लगी। उसकी सेवा से प्रसन्न हो ऋषि जी ने उसे भण्डारे की अधीक्षिका बना दिया। अन्नपूर्णा देवी की आराधना से भण्डारा बनाती, भण्डारा वितरण से पूर्व अपने गुरुदेव महाराज श्री ऋषि जी की भण्डारे में दृष्टि डलवाती थी। उसका पूर्ण विश्वास था कि अगर गुरु जी भण्डारा में चरण डालेंगे तो भण्डारा भरपूर रहेगा। सच वैसा ही रहता। कितने अतिथि अचानक आ जाते कभी कमी नहीं होती थी। बड़े प्रेम-प्यार से ब्रह्मभोज करवाती थी। साधु-मण्डलियों को भिक्षा देती थी। सब का बड़ा आदर-भाव करती थी। भण्डारी कर्मचारी लोगों से काम लेने की बड़ी कला थी उन्हें, सब से कहती भजन गाते हुए, नाम जपते हुए भोजन बनाओं, काम करो, बातें मत करों, टोकती थी परन्तु फिर भी सब उस पर प्रसन्न रहते थे। सफेद धोती पहने, ऐनक लगाये, दिव्य शरीर वाली वह शान्ता भण्डारे की शोभा थी।

गुरुपूर्णिमा पर्व पर भक्तों की सेवा के लिए और नवरात्रों में ब्राह्मणों की सेवा साधना के लिए आश्रम में टिकती थी, नहीं तो लगातार अबाधगति में पंजाब, हरियाणा, राजस्थान के प्रायः सभी शहरों और छोटे-बड़े कस्बों में सत्संगियों के घर जा-जा कर, उनको अपने गुरु महाराज जी की महिमा सुनाती, उत्साह बढ़ाती, अखण्ड -रामायण पाठों का अनुष्ठान करती, घर-घर संकीर्तन करती। पुष्प-पत्र इकठ्ठे करके आश्रम में पहुँचाती थी। सत्संगियों में इतनी लोकप्रिय हो गयी थी कि आज तक भी सभी सत्संगी उसे बहुत याद करते हैं। भण्डारा आज भी चल रहा है, पहले से बड़े पैमाने पर चल रहा है, सेवादार अपनी अच्छी सेवाएं प्रदान कर रहें हैं, परन्तु शान्ता, शान्ता ही थी उसकी कमी आज भी खल रही है। ३ जून १९८३ ई० को शान्ता जी ने निर्धन निकेतन में ही परमगति को प्राप्त किया। धन्य है शान्ता देवी जिस ने अपने जीवन का पल-पल परमार्थ में लगा कर अपना अनमोल जीवन सफल बना लिया। पूज्य ऋषि जी महाराज उसकी गुरु-निष्ठा की, गुरुभक्ति की मिसाल दूसरों को देते हैं। धन्य है वह शिष्या शान्ता जिस ने गुरु-हृदय में स्थान पाया।

मोगा निवासी सेठ श्री शिवचरणदास मित्तल की धर्म पत्नी श्रीमति सुदर्शन मित्तल सहृदय, कर्मठ, धर्मपारायण, समाज में प्रतिष्ठित महिला थी। उन्हें वेदान्त पुराण आदि ग्रन्थों के अध्ययन का शौंक था। साधु-सन्तों की सेवा और सत्संग संकीर्तन में बड़ी रुचि थी। मोगा में श्री भगवन्तराय भण्डारी के घर पूज्य ऋषि जी का

सत्संग प्रवचन हुआ करता था। श्रीमति सुदर्शन मित्तल वहां आया करती थी। श्री भगवन्तराय भण्डारी तथा पुष्पा भण्डारी सारी संगत की सेवा प्रेम से करते थे। सत्संग का प्रवाह दिन प्रति दिन बढ़ रहा था परन्तु दैवयोग से श्री भगवन्तराय भण्डारी की मृत्यु हो गयी तो मोगा-सत्संग की स्थिति डावाँडोल होने लगी। उस समय श्रीमती सुदर्शन मित्तल ने अपने पतिदेव श्री शिवचरणदास मित्तल की अनुमति लेकर सत्संग की स्थिति को सम्भाला और पूर्ण सहयोग देकर शहर में सत्संग की लहर चला दी। उस का घर सत्संग घर ही बन गया था। बाहर से आने वाली संगत बिना किसी संकोच अपना ही समझ कर पूज्य ऋषि जी के दर्शन करने मोगा श्रीमती सुदर्शन मित्तल के घर आती और उस का प्यार पाकर प्रसन्न हो जाया करती थी। श्रीमती सुदर्शन मित्तल के सरल स्वभाव से प्रसन्न हो ऋषि जी उसे भोलीमाई कहा करते थे धीरे-धीरे उसका भोलीमाई नाम प्रसिद्ध हो गया। आज लोग उसे भोलीमाई के नाम से जानते हैं।

उधर श्रद्धेय गुरुदेव श्री वंशीधर जी महाराज के स्मारक-स्थल "निर्धन निकेतन आश्रम" हरिद्वार के निर्माण कार्य में पर्याप्त प्रगति हुई तो भोलीमाई अपने पति देव श्री शिवचरणदास मित्तल के साथ आश्रम की सेवा के लिए पूज्य ऋषि जी के चरणों में समर्पण भाव से रहने लगी। श्री शिवचरणदास मित्तल बाल ब्रह्मचारी मिशन के कोषाध्यक्ष बन गये। वे आज भी इस उत्तरदायित्व को बड़ी तत्परता से निभा रहे हैं। फिरोज़पुर शहर से अपने माता पिता की अनुमति से आई हुई सतीश, तृप्ता, वीना और श्री भगवतशरण की बेटी सुमन के प्रति भोलीमाई का हृदय वात्सल्य पूर्ण था। वे सब को अपनी बच्चियाँ समझती थी सभी बच्चियाँ उस से मां जैसा प्यार पाती थी। सच वह ममता की मूर्ति थी भोलीमाई। माँ भगवती की सच्ची आराधिका थी। पूज्य ऋषि जी की आज्ञा से श्री दुर्गासप्तशती के पांच पाठ प्रतिदिन करती, हवन करती, आश्रम में सम्पन्न हुए तीनों लक्षचण्डी-महायज्ञों में ब्राह्मणों के साथ बैठ कर पूरे पाठ करती थी। अन्त में बड़ी अच्छी स्थिति में अपनी बेटी स्नेह को कहती "बड़े गुरु जी महाराज स्वयं मुझे लेने आये हैं। मैं जा रही हूँ, रोना नहीं, गुरुदेव की आरती बोलो" यह कहती हुई २२ अगस्त १९९६ ई० को लेने आये गुरुदेव महाराज जी के साथ गुरु-धाम को चली गई। सच्ची कमाई करने वालों का अन्त भी सुखद होता है।

ऐसे ही सम्मान योग्य माया माता जी, शान्ति माता जी आदि माताएं बड़ी निष्ठावान, धर्मपारायण गुरु-भक्ति में सनी हुई, सेवाभाव रंगी हुई थी जो पुज्य ऋषि जी को कृपा से अपना जीवन सफल बना गई है। दोनों माताएँ गुरु श्री बंशीधर की शिष्याएँ थी पूज्य ऋषि जी महाराज की गुरु बहिनें थी। पूज्य ऋषि जो के सिंहासन पर बैठते ही वे दोनों ऋषि जी को अपने गुरुदेव श्री बंशीधर की तपश्चर्या की प्रतिमूर्ति समझती हुई उनकी सेवा में अर्पित हो गयी। कड़कडाती सर्दी में भी नियमपूर्वक प्रातः ४ बजे गंगा स्नान करती थी तत्पश्चात् गुरु जी के समाधिस्थल सत्संग भवन मे जाती थी। माया माता जी तो गुरु जी की पूजा कर सभी देवी-देवताओं की आरतियाँ करती और भजन कीर्तन करती थी। ये शुभ कार्य सुबह शाम नियमित रूप से होता। सत्सङ्ग भवन में भीड़ रहती थी। शान्ति माता जिस का कुब निकला हुआ था प्रेम से महाराज जी उसे कुब्जा माता बोलते थे उसका नाम ही कुब्जा प्रसिद्ध हो गया। वह तिलक-पूजा आरती कर भण्डार की सेवा करती थीं वह सबको प्रेम से हंसते मुस्कुराते चहरे से भोजन कराती थी। अतिथि रात्रि देर तक भी आयें तो उसे भोजन कराकर ही सोने जाती थी। ऋषि का आदेश था कि कोई भी अथिति आश्रम में आये वह भूखा न सोये। ऋषि जी की हर आज्ञा को शिरोधार्य करती थीं ये माताएँ। बड़ा निष्ठामय, श्रद्धापूर्ण वातावरण था इन देवियो का! संगत आज भी इन स्नेह वात्सल्य ममता भरी इन मूर्तियों को याद करती है।

गुरुभक्ति के आदर्श रूप इन धर्मवीरों तथा धर्मवीराङ्गनाओं को देखकर मुख से बरवश निकलता है, धन्य हैं माँ की ये सन्तानें ! जिन्होंने अपना जीवन तो बनाया दूसरों के लिए भी गुरुभक्ति का प्रशस्त मार्ग प्रस्तुत किया है। अन्त में मैं अपने सच्चे सेवादार गुरुभाइयों एवं गुरु बहिनों को शतशत वन्दन करती हूँ।

*****

यात्रा संस्मरण

डिल्लीराज शर्मा
सहा०प्राध्यापक (साहित्य)
ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

भारत वर्ष साधु-संन्यासी, ज्ञानी-ध्यानी, सज्जन-विद्वज्जन से परिपूर्ण धरती है। हर साधु में कोई ने कोई विशेषता होती है, जिस से उन की पृथक छवि बनती है। ऐसे ऋषि मुनि विरले ही होते हैं, जो अपने सुकृत्यों से, मधुर स्वभाव से, अपी विद्वता से एवं अपने सामजिक योगदान द्वारा समाज का ध्यान आकर्षित करते हैं। इन्हीं विरल विभूतियों में एक विभूति हैं परम श्रद्धेय महाराज श्री १००८ ऋषि केशवानन्द जी, जिन के जीवन का लक्ष्य भारतीय संस्कृति-सम्पदा को जीवित रखना है, इसके लिए आपने संस्कृत महाविद्यालय, माध्यमिक विद्यालय, बाल विद्यालय आदि विविध शिक्षण संस्थाएं चलायी हैं। आपकी गौशालाओं में गोरक्षा एवं गोसम्वर्धन हो रहा है। यज्ञशाला में प्रतिदिन हवन किया जाता है। इस सात्विक पर्यावरण में संस्कार शुद्ध होते है। ऋषि धर्मार्थ चिकित्सालय, रोग पीड़ित लोंगो को त्राण दे रहा है। अन्न-सत्र चल रहा है। आप के परोपकारिता के इन कार्यक्रमों से कौन अपरिचित हैं। आप सच्चे समाज सेवी है।

आप में तीर्थ-निष्ठा बहुत है, स्वयं भी तीर्थ मों जाते हैं और अन्य लोंगो को भी तीर्थाटन के लिए प्रेरित करते है। सन् १९७१ की घटना है कि महाराज श्री ने मुझे कहा, 'बालक ! मेरे साथ दो-तीन दिन के लिये चलोंगे?' मैंने लक्ष्य जाने बिना स्वीकार कर लिया, यूँ लक्ष्य जानने की इच्छा भी न थी, क्योंकि महाराज श्री का सान्निध्य प्राप्त था। देव भूमि उत्तराखण्ड की ओर प्रस्थान कर गंगोत्री धाम पहुँच गये। स्थानीय पुरोहित-पूजारियों के व्यवहार एवं श्रद्धा भाव को देख कर प्रतीत हो रहा था जैसे महाराज श्री उनके पहले से ही परिचित हों, वैसे भी महाराज श्री जहां भी जाते हैं अपने मधुर व्यवहार से प्रत्येक व्यक्ति को आकर्षित कर ही लेते हैं। उस दिन महाराज श्री के दायें चरण में कष्ट था जिस से उन का अधिक चल पाना कठिन था। रात्रि विश्राम के समय महाराज श्री ने कहा कल एक तपस्वी साधु के दर्शनार्थ गंगोत्री से आगे ३ कि.मीटर जाना है। उनके पैर के प्रति मैंने चिन्ता व्यक्त की तो कहने लगे – यदि तुम्हें अपनी चिन्ता हो तो अलग बात है मैं तो पहुंच ही जाऊँगा। हुआ

भी यही कि ३ कि.मी. मार्ग शीघ्रता से तय कर लिया। अरण्य में दो वृक्षों के मध्य में एक पर्णशाला का रूप देकर नागा बाबा श्री रामानन्द जी साधना में लीन थे।

महाराज श्री ने बताया कि बाबा जी की आयु ११२ वर्ष है इतनी उम्र में भी उन का चेहरा कान्ति युक्त था। हम प्रणाम कर बाबा जी के पास बैठें। बाबा जी ने आँखे खोली तो महाराज श्री को देखकर मन्द-मन्द मुस्कुरायें। मैं उन बाबा की एवं महाराज श्री की मुस्कान के रहस्य को नहीं ममझ सका। महाराज श्री बाबा से कहते हैं कि क्या सेवा करुँ आप की। बाबा महाराज श्री से पूछते हैं कि आप की क्या सेवा करुँ? उस पल मुझे बाल्मीकि रचित रामायण का वह संवाद सजीव हो उठा जिस में रामेश्वर शब्द की व्याख्या अपने-अपने ढंग से करते है। "रामस्य ईश्वरः रामेश्वरः" रामः ईश्वरः यस्य सः रामेश्वर" महाराज श्री ने आतिथ्य सत्कार के रूप में प्रसाद समझ कर श्रद्धेय बाबा जी द्वारा प्रस्तुत किया गया काफी का प्याला ग्रहण किया तदनन्तर महाराज श्री १००८ ऋषि केशवानन्द जी ने श्रद्धेय बाबा रामानन्द जी से विनम्र भाव से आशीर्वाद मांगा कि मैं स्वस्थ रहते हुए समाज में भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत के शिक्षण संस्थाओं, यज्ञ अनुष्ठान के माध्यम से जन-जन एवं घर-घर तक पहुँचा सकूँ क्यों कि भारतीय संस्कृति का आचरण ही विश्व कल्याण का एक मात्र अवलम्ब है। दूसरी ओर श्रद्धेय बाबा जी कहते है मुझे आशीर्वाद दो मैं इस जंगल में परमपिता परमेश्वर की उपासना करते हुए मोक्ष्य प्राप्त कर सकूँ। इस संवाद से मुझे आभास हुआ कि महाराज श्री तो संसार में रहकर कर्मयोगी बन कर विश्व का कल्याण करना चाहते हैं और बाबा जी संसार से भाग कर कर्मों से विमुख हो कर जंगल में रह कर अपना-कल्याण (मोक्ष) चाहते है। मानव अपना कल्याण तो येन-केन-प्रकारेण कर सकता है परन्तु महान वही है जो समाज का कल्याण करता है।

मैंने आप का अति सामीप्य प्राप्त किया है ऐसे विभिन्न संस्मरण हैं जो आप की विशेषताओं का आभास मात्र न कराकर विश्वसनीयता की ओर ले जाते हैं। ऐसा ही एक प्रसङ्ग १९७२ का है जब मुझे महाराज श्री के साथ अमरनाथ यात्रा का सुअवसर प्राप्त हुआ। महाराज श्री की भक्त मण्डली में एक विदेशी भक्त महाराज श्री के आध्यात्मिक प्रवचन द्वारा प्रभावित हो कर यात्रा कर रहे थे। दैव योग से मार्ग में उन की शारीरिक अवस्था चिन्तनीय हो गयी। डाक्टरों की असमर्थता से हमारे मन को अनहोनी आशंकाओं ने घेर लिया, ऐसी विषमपरिस्थितीयों में महाराज श्री के मुखारबिन्द में चिन्ता का लेश मात्र संकेत न था, हमें उत्साहित कर ने हेतु

महाराज श्री ने कहा "मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्"। तदुपरान्त आँख मुद कर मां भगवती का चिन्तन करने लगे। कुछ समय बाद ही वह व्यक्ति घोड़े को त्याग कर पैदल ही लक्ष्य की ओर बढने लगा। मेरे लिए यह एक अविस्मरणीय पल था।

महाराज श्री को विश्वचिन्तन में देखा जा सकता हैं, विश्व शान्ति हेतु महाराज श्री ने तीन बार लक्षचण्डी महायज्ञ निर्विघ्नता पूर्वक सम्पन्न किये हैं। वर्ष मे दो बार माँ भगवती की आराधना हेतु सहस्रचण्डी का आयोजन करते है। ऋषि जी की नित्य हवन पाठ आदि शुभ कार्यकलापों की दैनिक दिनचर्या प्राचीन ऋषि आश्रमों की कार्यपद्धति को प्रकाशित करती हैं। आप प्रातकालीन सन्ध्या में पांच, सायंकालीन सन्ध्या में पांच कुल मिलाकर दश पाठ श्री दुर्गासप्ततशती के नियम पूर्वक प्रतिदिन करते हैं। आप मां भगवती के अनन्य उपासक है। आप में तीर्थ निष्ठा है। भक्तों को आध्यात्मिकता की ओर जाने के लिये महाराज श्री ने भक्त मण्डली के सहित उत्तराखण्ड की पद यात्रा सरलता पूर्वक सम्पन्न की। कशमीर से लेकर कन्या कुमारी तक ऐसा सिद्धपीठ कोई भी अवशेष नहीं है जिस का महाराज श्री ने भक्त मण्डली को दर्शन न कराया हो तथा समय-समय पर भारतीय ऋषि मुनियों की परम्परा का पालन करते हुए भक्तों के मानव जीवन को सार्थक न सिद्ध किया हो।

महाराज श्री स्वयं विद्वता की मूर्ति होते हुए भी प्रति वर्ष गुरु पूजा के पावन पर्व पर एक विद्वान तथा एक संत का गन्धाक्षतमाल्यार्पणपूर्वक द्रव्य एवं उत्तरीय वस्त्र के द्वारा अभिनन्दन करते हैं। आप में यह निरभिमानता का गुण आपके गुरुवर की थाती है क्योंकि वे अपने को निर्धन, अकिञ्चन कहते थे। निर्धन उपनाम धारी ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री १००८ श्री वंशीधर जी का आशीर्वाद ही है कि आज महाराज श्री भौतिक सम्पदा एवं आध्यात्मिक सम्पदा से सुसम्पन्न हैं।

*****

"सबहि मानप्रद आपु अमानि"

सुनीता गुलाटी
शिक्षिका, (आधु.)
ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित श्री रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में भगवान श्री रामचन्द्र जी भाई श्री भरतको सन्त-लक्षण बताते हुए कहते हैं कि सन्तजन सब को मान-प्रतिष्ठा देते हैं और स्वयं मान रहित होते हैं। कहा है--

"सबहि मानप्रद आपु अमानि"

इस उच्च सिद्धान्त पर जो जन खरा उतरता है वह किसी भी जाति, वर्ण व प्रान्त का क्यों न हो वह सन्त हृदय है, वह महापुरुष है। श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज इस सन्त-लक्षण के निदर्शन है। वह स्वयं भी गद्दीनसीन महापुरुष हैं परन्तु अपने मान-सम्मान का ध्यान न देते हुए दूसरों को मान-सत्कार करते हैं। अपना मान-सम्मान दूसरों की मान-प्रतिष्ठा करने में समझते हैं। वर्षों से पूज्य ऋषि जी को देख रहे हैं कि प्रतिवर्ष प्रेरक-व्यक्तित्व के धनी एक विद्धान का तथा शिवसंकल्प से ओत-प्रोत किसी एक सन्त का गुरुपूर्णिमा की पूर्व बेला में गन्धाक्षतमाल्यार्पण पूर्वक उत्तरीय ओढ़ा कर मानदराशि से सम्मान करते हैं तदनन्तर विशाल समष्टि भण्डारा का आयोजन होता है जिस में विभिन्न अखाड़ों और आश्रमों के सम्मानीय सन्त-महन्त और महामण्डलेश्वर भाग लेते हैं। सर्वविदित है कि आप विद्धानों, महापुरुषों और सन्तों के प्रिय हैं। यह मेरे संज्ञान में है कि आप ने निम्नांकित बहुत से प्रकाण्डविद्धानों और सन्त विभूतियों को सम्मानित किया हैं--

(१) ऋषि संस्कृत महाविद्यालय में आयोजित मयराष्ट्रमण्डलीय संस्कृत सम्मेलन के शुभावसर पर दिनांक ३०.११.८८ को आपने विविध शास्त्रविद्या में पारंगत, कुशल प्रशासक, उपकुलपति सं.सं.वि.वि. वाराणसी प्रो.वी. वेंकटाचलम् को गन्धाक्षतमाल्यार्पणपूर्वक उतरीय ओढ़ाकर सम्मानित किया।

(२) ऋ.सं.म.वि. की रजत जयन्ती समारोह के अवसर पर दिनांक १६.३.९० को आपने भारतीय संस्कृत-संस्कृति के सच्चे सेवक, विविध-विषयों के आचार्य, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली के कुलपति महोदय डा.मण्डलमिश्र का गन्धाचतमालयार्पणपूर्वक उत्तरीय ओढ़ाकर अभिनन्दन किया।

(३) रजत जयन्ती समारोह की समाप्ति के दिन दिनांक १८.३.८६ को आपने लौकिक वैदिक उभयविध वाड़मय के प्रौढ़-विद्वान, अनेक ग्रन्थों के रचयिता, श्री कामेश्वर सिंह दरभंगा विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डा.रामकरण शर्मा का गन्धाक्षत माल्यार्पण पूर्वक सम्मान किया।

(४) उक्त अवसर पर दिनांक १८.३.८६ को भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के संस्कृत शिक्षा सलाहकार, विविध नाटकों-काव्यों के रचयिता डा. रामकृष्ण शर्मा को माल्यापर्णपूर्वक उतरीय ओढाकर अभिनन्दन पत्र प्रदान किया।

(५) दिनांक २३.४.९० को आपने प्राच्य प्रतीच्य उभविध विद्या के धनी, डा. राजदेव मिश्र, उपकुलपति सं.सं.वि.वि.वाराणसी को अभिनन्दन समारोह में सम्मानित किया।

(६) दिनांक १५.८.९० को अनेक प्रशासनिक पदों को सुशोभित करने वाले, वैदिक-लौकिक शास्त्रों के ज्ञाता श्री सुभाषचन्द विद्यालंकार, कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, ज्वालापुर का गन्धाक्षत पूर्वक उत्तरीय ओढ़ कर अभिनन्दन किया।

(७) गुरुपूर्णिमा की पूर्ववेला दिनांक २७.७.९१ को विविध प्रशासनिक पदों को सुशोभित करने वाले संस्कृत-अंग्रज़ी-साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान पंड़ित विश्वनाथ मिश्र, निरीक्षक संस्कृत पाठशालाएं उत्तर प्रदेश की गन्धाक्षतमाल्यार्पणपूर्वक उत्तरीय ओढ़ा कर विद्वत्सभा में प्रतिष्ठा बढ़ायी।

(८) उक्त अवसर पर दिनांक २७.७.९१ को आपने सर्वदर्शन पंडित, अखिल भारतीय साधु समाज के अध्यक्ष, महामण्डलेश्वर स्वामी रामस्वरुप महाराज, अध्यक्ष गुरुमण्डल आश्रम हरिद्वार का उत्तरीय पहना कर सन्त समुदाय में हार्दिक स्वागत किया।

(९) दिनांक२७.९.९१ को आपने राजनीतिक प्रतिभा सम्पन्न, उदारचेता-शिक्षावेत्ता श्री अमरनाथ यादव, उत्तर प्रदेश पूर्व राज्य मन्त्री का निर्धन-निकेतन में समायोजित अभिनन्दन समारोह में अभिनन्दन पत्र प्रदान कर सम्मान किया।

(१०) महाविद्यालय में पधारे कर्मठ अधिकारी डा. उमाशंकर मिश्र, उपशिक्षा निदेशक (संस्कृत) इलाहाबाद उ.प्र. को विद्वत्सभा में अभिनन्दन पत्र वाचनपूर्वक भेंट कर सम्मानित किया।

(११) दिनांक ८.४.९२ को आपने सर्वधर्मसमभाव सम्पन्न, अर्द्धकुम्भ-मेला की अनुपमेय सुव्यवस्था के व्यवस्थापक, बाबा श्री हरदेव सिंह अर्द्धकुम्भ-मेलाधिकारी हरिद्वार को ऋषि संस्कृत महाविद्यालय में आयोजित विद्वत्सभा में अभिनन्दन पत्र द्वारा सम्मानित किया।

(१२) गुरुपूर्णिमा की पूर्ववेला जुलाई १९९२ ई. में आयोजित विद्वत्सभा एवं सन्त सम्मेलन के अवसर पर लब्धप्रतिष्ठ विद्वान श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति, पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ीविद्यालय हरिद्वार को गन्धाक्षतमाल्यार्पणपूर्वक उत्तरीय ओढ़ा कर सम्मानित किया।

(१३) उक्त अवसर पर निमन्त्रित महामण्डलेश्वर स्वामी गणेशानन्द पुरी जी महाराज, संस्थापक, संचालक एवं अध्यक्ष, साधना-सदन कनखल हरिद्वार का आपने माल्यार्पण पूर्वक उत्तरीय पहरा कर मानद राशि से सम्मानित किया।

(१४) वर्ष १९९३ की गुरुपूर्णिमा की पूर्व बेला पर आयोजित सन्त सम्मेलन में उत्तर प्रदेश अकादमी का शंकर वेदान्त नामक विशिष्टपुरस्कार प्राप्त करने वाले, अनेक विषयों के आचार्य एवं श्री भगवान दास केन्द्रीय संस्कृत महाविद्यालय के पूर्व-प्राचार्य पं. मनसाराम शर्मा को गन्धाक्षतमाल्यार्पण द्वारा सदक्षिणा समादरित किया।

(१५) उक्त अवसर पर सादर आमन्त्रित महामण्डलेश्वर अनन्त श्री विभूषित स्वा. विद्यानन्द गिरि जी महाराज अध्यक्ष कैलाशाश्रम ऋषिकेश को उत्तरीय ओढ़ाकर मानदराशि से सम्मानित किया।

(१६) गुरुपूर्णिमा जुलाई १९९४ ई. में समायोजित विद्वत्सभा एवं सन्त सम्मेलन के अवसर पर आपने विविध शास्त्र निष्णात पंडित श्री त्रिलोकधर द्विवेदी पूर्व प्राचार्य श्री जयभारत साधु संस्कृत महा विद्यालय हरिद्वार का उत्तरीय ओढ़ा कर सदक्षिणा अभिनन्दन किया।

(१७) उक्त अवसर पर विविध विषयों के आचार्य, अखिल भारतीय साधु समाज के महामन्त्री महा मण्डलेश्वर डा.स्वामी श्यामसुन्दर दास जी महाराज, अध्यक्ष गरीबदासीय साधु सेवाश्रम हरिद्वार का माल्यार्पण पूर्वक उत्तरीय ओढ़ा कर अभिनन्दन किया।

(१८) वर्ष १९९५ की व्यासपूर्णिमा के अवसर पर सम्मिलित सन्तों एवं विद्वानों की सभा में सामवेद पर भाष्य लिखने वाले विद्वद्वरेण्य श्री रामनाथ वेदालंकार पूर्व-आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार को उत्तरीय औढ़ा कर माल्यापर्ण द्वारा सदक्षिणा अभिनन्दित किया।

(१६) उक्त अवसर में पद्मविभूषित वीतराग स्वामी कल्याण देव जी महाराज, मुजफ्फरनगर को गन्धाक्षत एवं फूलमाला चढ़ा कर "तेन त्यक्तेन भुंजीया" इस भाव की प्रतिष्ठा बढ़ायी।

(२०) वर्ष १६६६ की गुरुपूर्णिमा की पूर्व बेला में आयोजित सन्त सम्मेलन में विद्वद्वरेण्य आचार्य श्री रामप्रसाद वेदालंकार, पूर्व उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार को उत्तरीय ओढ़ा कर सदक्षिणा आदर दिया।

(२१) उक्त उवसर पर सन्त विभूति महामण्डलेश्वर स्वामी ब्रह्महरि जी महाराज अध्यक्ष, चेतनदेव कुटिया कनखल हरिद्वार की गन्धाक्षतमल्यापर्ण द्वारा उत्तरीय ओढ़ा कर प्रतिष्ठा बढ़ायी।

(२२) गुरुपूर्णिमा १६६७ ई. में आपने श्रद्धेय महन्त श्री ज्ञानदेव सिंह, वेदान्ताचार्य, निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल को उत्तरीय ओढ़ा कर सदक्षिणा अभिनन्दित किया।

(२३) उक्त समारोह में विद्वद्वरेण्य श्री बुद्धिबल्लभ शास्त्री, पूर्व-प्राचार्य श्री जगद्देव संस्कृत महाविद्यालय को गन्धाक्षतमाल्यार्पण पूर्वक उत्तरीय पहरा कर मानदराशि से समादरित किया।

(२४) इस वर्ष ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार की प्राचार्य डा.सतीश कुमारी को उनकी २० वर्ष की सन्तोषजनक सेवा पर उत्तर प्रदेश शासन द्वारा घोषित "अध्यापक राज्य पुरस्कार १६६२" जो दिनांक २७.६.६७ को लखनऊ में माननीय शिक्षा मन्त्री श्री नेपाल सिंह द्वारा प्राप्त हुआ। इस प्रकार संस्था को गौरवान्वित करने वाली प्राचार्य डा. सतीश कुमारी को संस्थाध्यक्ष महोदय ने उत्तरीय ओढ़ा कर मानदराशि से सम्मानित किया।

(२५) वर्ष १६६८ में संस्था में गुरुपूजा पर्व पर समायोजित सन्त सम्मेलन में सन्तशिरोमणि श्रद्धेय श्री रघुवीर सिंह शास्त्री, अध्यक्ष, सन्तपुरा आश्रम कनखल को गन्धाक्षत भेंट कर सदक्षिणा सम्मान दिया।

(२६) उक्त अवसर पर समस्त सन्तों और विद्वानों की सभा में पंडित प्रवर, राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्तकर्ता श्री ज्ञानचन्द शास्त्री, पूर्व-साहित्य प्रवक्ता, श्री जयभारत साधु संस्कृत महाविद्यालय हरिद्वार को उत्तरीय भेंट कर मानदराशि से अभिनन्दित किया।

(२७) ऋषि संस्कृत महाविद्यालय के ३३ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर आपने "अध्यापक राष्ट्रपति पुरस्कार १९९६" के प्राप्तकर्त्ता डा.हरिगोपाल शास्त्री, प्राचार्य गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर को उत्तरीय औढ़ा कर मानदराशि से सम्मानित किया।

(२८) दिनांक १३.४.९६ को देश-विदेश में ख्याति प्राप्त प्रकाण्ड विद्वान सत्यव्रत शास्त्री पूर्व कुलपति, श्री जगन्नाथ केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, पुरी की विद्वानों के समुदाय में उत्तरीय ओढ़ा कर प्रतिष्ठा बढ़ायी।

(२९) वर्ष १९९६ की गुरुपूर्णिमा पर समायोजित सन्त-सम्मेलन पर महन्त श्री १०८ स्वामी शंकरानन्द जी शास्त्री वेदान्ताचार्य को गन्धाक्षतमाल्यार्पण द्वारा सम्मानित किया।

(३०) उक्त अवसर पर उ.प्र. अकादमी से कालिदास विशिष्ट पुरस्कार प्राप्त, विद्वद्वरेण्य डा.कृष्ण कुमार पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष, श्रीनगर विश्वविद्यालय को उत्तरीय औढ़ा कर मानदराशि से समादरित किया है।

उपर्युक्त विद्वानों, सन्तों और अधिकरियों के अतिरिक्त ओर भी अनेक विशिष्टजन पूजनीय ऋषिजी द्वारा सम्मानित हुए हैं, सुनती हूँ परन्तु उनके परिचय से अनभिज्ञ हूँ। खैर दूसरों को गौरवान्वित, सम्मानित एवं अभिनन्दित करने वाली आप की मनोवृत्ति निश्चित श्लाघनीय है जिस का मैं शत-शत अभिनन्दन करती हूँ।

* * * * *

नारी के प्रति उदात्तभावना

डा० सुमन अग्रवाल,
प्रधानाचार्य,
ऋषि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, हरिद्वार

नारी के प्रति समय-समय पर अनेक प्रकार की भावनायें भारत के विद्वानों, संतों एवं कवियों ने व्यक्त की हैं। कविजन तो प्रायः स्त्री को अपने सौन्दर्य से दूसरों का मनोरंजन करने वाली तथा जीवन में रमणीयता लानेवाली ही समझते रहे हैं। व्यवहार में मनुष्य जीवन की सफलता के लिए एवं पुत्रैषणा की पूर्ति के लिए स्त्री की कामना करते हैं। परन्तु साधना के क्षेत्र में कई सन्त स्त्री को मोहिनी माया मानकर तथा अच्छे-अच्छे विरक्त साधकों को अपने मोह पाश में बाँधकर अधोगति की ओर ले जाने वाली कंलकिनी ही मानते है। कहा हैं **"एषा कण्ठतटे कृता खलु शिला संसार वारान्निधौ"** नारी संसार रूपी सागर को पार करने वाले विरक्त साधक के गले में बँधी हुई शिला है। इसलिए एक संत लिखते हैः-

यह भव पारा वारिधि, उल्लंघि पार को जाए।
तिय छवि-छाया ग्राहिणी, ग्रसे बीच ही आये।।

इतना ही नहीं कबीर जैसे समाजसुधारक संत भी लिखते हैं :-

स्त्री की झांई परें, अंधा होत भुजंग,
कहे कबीर तिन का गति नित नारी के संग।

सन्तशिरोमणि तुलसीदास जी की दृष्टि में तो नारी ताड़नीय हैं। वे लिखते हैं, **"ढोर गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताडन के अधिकारी।"** कहीं-कहीं स्त्री जाति को धरातल में भी स्थान नहीं मिलता-"अधम से अधम, अधम अति नारी।"

वस्तुतः यह बात नहीं है हमारी भारतीय संस्कृति ने तो नारी को माता के रूप में उपस्थित कर इस रहस्य का उद्घाटन किया है कि वह मानव के कामोपभोग की सामग्री न हो कर उसकी वन्दनीया एवं पूजनीया है क्योंकि गर्भ-धारण से गुरुकुल भेजने के समय तक पुत्र के लालन-पालन में जैसा वह परिचय देती है, वह प्रमाणित करता है कि नारी का स्त्रीत्व मातृत्व ही है। वह स्नेह और वात्सल्य की साक्षात्मूर्ति है। इस विषय में पूज्य ऋषि जी की बड़ी उदात्त भावना है जो नारी जाति को उन्नति के शिखर पर पहुँचा देने वाली जान पड़ती है। उनकी दृष्टि में नारी शक्ति रूपा मातृ देवता हैं। वे वैदिक वाक्य "मातृदेवो भव" की ही उपासना में लगे हुए हैं। वे कहते

है कि हमारे गुरु महाराज श्री वशीधर जी विरकां वालों ने मुझे गोदी में लेकर और बहुत प्यार से कहा था "बेटा! नारी को कभी भूल से भी नारी नहीं समझना, उसको माँ के रुप में ही देखना। फिर देखना तेरी विश्वभर में ख्याति होगी"। हम देखते है पूज्य ऋषि जी के हृदय में नारी जाति के लिए अगाध श्रद्धा और पूर्ण विश्वास है।

ऋषि जी बचपन से ही दुर्गा शक्ति के वरद पुत्र रहे हैं इसलिए हर स्थान पर हर समय पर शक्ति ने किसी न किसी माँ के रूप में उनका संरक्षण एवं संवर्धन किया है। जन्मदाता माँ ने तो केवल ढाई वर्ष तक ही अपने प्यारे पुत्र का पालन किया फिर उसे गुरु महाराज के चरणों में चढ़ा दिया। यहाँ पर गुरु जी की माता व उनकी पुत्रवधु श्रीमती सन्तोषी माई ने बारह वर्ष की आयु तक ऋषि जी के वात्सल्य भाव का आनन्द लिया। उच्च शिक्षा के लिए फिरोज़पुर गये तो वहाँ किले वाली गली में लाला चिरंजीलाल के घर २-३ वर्ष रहे वहां पर माता श्रीमती बसन्ती देवी ने वात्सल्यपूर्ण हृदय से ऋषि जी कि सेवा की यद्यपि उसके चार लड़के एक लड़की थी वह ऋषिजी को अपना पांचवाँ तथा सबसे प्यारा पुत्र समझती थी। साथ ही गुरुपुत्र होने से श्रद्धा भी रखती थी और चरण भी छूती थी।

लायलपुर पढ़ने गये तो लाला रलियाराम के घर २-३ वर्ष रहे। वहां शारदा माता जिनका पुत्र श्री राम नारायण जो ब्रिगेडियर बना तथा एक लड़की कृष्णा जो कि शिकागो अमेरिका में डाक्टर है, के साथ ऋषि जी को अपना बड़ा और प्रिय पुत्र समझती थी। हमने अपनी आँखों से देखा है कि हज़ारों व्यक्तियों में बैठे हुए जब ऋषिजी सत्संग करते थे तो माता शारदा चुपचाप एक कोने में खड़ी रहती तथा सत्संग की समाप्ति के बाद पास आकर ऋषि जी का माथा चूमती और कहती कि मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ जिसका पुत्र इतने ऊँचे पद पर पहुँचा है।

शक्ति के उपासक होने के कारण पूज्य ऋषि जी महाराज समस्त नारियों को, देवियों को, माँ के ही रूप में देखते हैं और कहते है-

सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपां त्वां नमामि परमेश्वरीम्।।

साधारण रूप में भी बातें करते हुए नारी को देवी, भगवती आदि शब्दों से सम्बोधित कर नारी जाति का गौरव बढ़ाते हैं। ऋषि जी के जीवन में जो भी व्यक्ति उनके समीप पहुँचा है उसी को उन्होंने शिक्षा देकर तथा उच्च भावना भरकार ऊँचा उठाने का भरसक प्रयास किया। मैंने उन्हीं के श्रीमुख से सुना है कि एक बार उन्होंने सतीश दीदी को पत्र लिखा था, मुझे सारा तो याद नहीं, कुछ पंक्तियां इस प्रकार थी :-

मैं शक्ति तुम्हें बना दूँगा
मैं अपना आप लगा दूँगा।

कितना सुन्दर सांगरूपक बाँधा था। शक्ति का उस कविता में भाव था, शक्ति की आठ भुजायें है। तेरे भी अष्टांग योग की आठ भुजायें बनेगीं। शक्ति सिंह पर विराजमान है, तू भी अपने मन रूपी शेर पर चढ़कर अपने कामक्रोध रूप मधु कैटभ नाम के दोनों राक्षसों का वध करेंगी। इतना उत्साह व शक्ति देकर उनके मन में किसी भी प्रकार का अहंभाव नहीं आया इसीलिए तो वेदान्त की चरम सीमा तक पहुँचे हुए ऋषि जी अन्त में लिखते है:-

शक्ति को शक्ति बनाना क्या? अद्वैत का द्वैत मिटाना क्या।
मैं अपने भाव चढ़ा दूँगा, मै शक्ति तुम्हें बना दूँगा।

इस प्रकार के शिक्षाप्रद, भावपूर्ण, उत्साहवर्द्धक शब्दों तथा भावनाओं एवं प्रेरणाओं से दीदी सतीश का उज्जवल जीवन शिक्षा एवं साधना के आकाश में चन्द्रमा की चाँदनी की तरह अपनी चाँदनी से सभी के हृदयों को आह्लादित कर रहा है।

हम लोग भी कई बार उनके भावविभोर शब्दों, भावों एवं प्रेरणाओं को सुनते ही आनन्द विभोर हो उठते हैं। जब उनके शक्तिमय हृदय से शक्तिपूर्ण शब्द निकलते हैं:-

तू अम्बा तू भगवती, तू शक्ति अवतार।
केशव के इस प्रेम से, आत्म नैन उघार।।

लगता है सचमुच ही हमारे हृदय में शक्ति का संचार हो रहा है हम अपने आप को भूलकर अपनी अज्ञता को छोड़कर अपनी सीमा को लांघकर ऐसे उन्मुक्त वातावरण में पहुँचते हैं और शक्ति की उपासना के ये शब्द स्वयं अनुभूति में आने लगते हैं।

अहं देवी न चान्यास्मि, ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्
सच्चिदानन्द स्वरूपोहम्, आत्मानमिति चिन्तयेत्।

तथा उस अम्भृण नामक ऋषि की वाक् नाम्नी पुत्री का अपने में आभास होने लगता है। वह कन्या ब्रह्मविदुषी हुई थी। उसने सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा के सहित तादात्म्य अर्थात् सम्पूर्ण अभिन्नता उपलब्धि करके जो आत्म स्वरूप प्रकटित किया है वही देवी सूक्त है **"अहं रूद्रेभिर्वसुभिश्चरामि"** धन्य है ऋषि जी, धन्य है उनकी अलौकिक साधना और धन्य है नारी जगत के प्रति उनकी उदात्तभावना।

सस्ते में सुच्चा सौदा

डॉ. मोद नारायण झा
अभिभावक,
ऋषि बाल विद्यालय, हरिद्वार

''किं करोमि क्व गच्छामि को वेदान् उद्धरिष्यति''- भारतीय मनीषा की इस चिन्ता ने अनेकों ऋषि-मुनियों और मनीषियों को उद्वेलित किया है। वेदोद्धार के असंख्य प्रयास अपने-अपने स्तर पर होते रहे हैं। समय के साथ-साथ परिवर्तित, किन्चित ह्रासोन्मुख, अपनी सनातन भारतीय संस्कृति को लेकर सदा से इस देश के अग्रजन्मा महापुरुषों ने न केवल चिन्ता की है अपितु अपने-अपने कर्म से इस चिन्ता का रचनात्मक समाधान भी प्रस्तुत किया है।

ऐसे ही महापुरुषों में हैं पूज्यपाद श्री केशवानन्द जी महाराज 'सरस्वती देवयन्तो हवन्ते' की मान्यता में परम विश्वास रखने वाले श्री ऋषि जी स्वयं सरस्वतीयज्ञ के आजीवन साधक रहे हैं। ब्रह्मा तथा आचार्य भी रहे हैं। छात्रजीवन के समय से ही विद्यादान-सत्र निरन्तर चलाते रह पाना, इस सत्य के प्रति उनकी एकान्तिक निष्ठा का परिचायक है।

संस्कृत-संस्कृति शिक्षण के उद्देश्य से विभिन्न संस्थानों द्वारा चलाए जा रहे विद्यालयों को देखने समझने और अपने द्वारा संस्थापित-संचालित संस्कृत विद्यालय के अनुभव से श्री ऋषि जी ने अनुभव किया, कि इन संस्कृत विद्यालयों से आम जनता का जुड़ाव-लगाव अत्यन्त सीमित है। प्रायः लोग सत्यनारायण कथा में चढ़ाये गए सवा रुपये की भेंट-दक्षिणा देने वाली मनःस्थिति से ग्रस्त हैं। विद्यालय के नाम पर चन्दा-चिठ्ठा दे देने से तो संस्कृत या संस्कृति से उनका भावनात्मक लगाव होना भी कठिन है। रचनात्मक और क्रियात्मक लगाव की बात तो बहुत दूर है।

ऐसा न होने के कारण ही संस्कृत के साथ-साथ संस्कृति से भी लोग दूर होते जा रहें हैं। जो संस्कृत नहीं पढ़ पाते चाहे किसी कारण से हों वे छात्र भी भारतीय संस्कृति से न केवल परिचित हो अपितु उनका जीवन इस से रचा बसा हो, इसी चिन्ता और इसी विचार से ही ऋषि जी महाराज ने अपने निर्धन निकेतन आश्रम परिसर में संस्कृत महाविद्यालय के सामने ही ऋषि बाल विद्यालय का शुभारम्भ कराया था।

उन दिनों क्षेत्र में एक भी बाल विद्यालय निजी प्रयास से कहीं नहीं चल रहा था। प्राइमरी स्कूलों में शिक्षा के गिरते स्तर और वहाँ की साधनहीनतामय दुरावस्था से अभिभावक गण अपने अपने बालकों की समुचित शिक्षा के लिए बहुत परेशान थे। श्री ऋषि जी महाराज ने पब्लिक स्कूलों जैसी सुविधा और शिक्षा उपलब्ध कराने की प्रेरणा विद्यालय प्रबन्धकों और शिक्षकों को दी। साथ ही यह ध्यान रखने को कहा, कि आम जनता गरीब है अधिक पैसा सब लोग खर्च नहीं कर सकते, अतः विद्यालय की फीस कम से कम रखी जाए। नतीजा यह हुआ कि ''सस्ते में सुच्चा सौदा'' से भी दो कदम आगे बढ़कर मुफ्त में तर-माल की तरह लोगों ने हाथों-हाथ ऋषि बाल विद्यालय को ऊपर उठा लिया। आज कुकुरमुत्ते की छतों की तरह बाल विद्यालयों की फसल उगती जा रही है। फिर भी अपनी छात्र संख्या अपने सफल परीक्षा परिणाम, अपने अनुशासन और अपने कुशल प्रशिक्षित, सुशिक्षित कर्मचारी तथा शिक्षकों के कारण ऋषिबाल विद्यालय इस क्षेत्र में सर्वथा अग्रणी एवं सुप्रतिष्ठित शिक्षा संस्थान बना हुआ है।

आश्रम के सदाचारमय ऋषिकुलीय जीवन के बीच पूरा दिन व्यतीत करने से छात्रों में अनायास ही वे संस्कार समाविष्ट होते हैं जिनके लिए हमारी संस्कृति में शिक्षा आवश्यक कही गई है। साथ ही अधुनातन प्रवृत्तियों और रोजगार परक शिक्षा की आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप पठन-पाठन तथा रचनात्मक गतिविधयों के कारण इस विद्यालय के छात्रों को द्विविध लाभ प्राप्त हो रहा है। वे भारतीय सदाचारमय संस्कृति के आधार पर अपने भविष्य की अधुनातन तकनीक दृष्टि से बनी इमारत की भव्य रचना में संलग्न हैं। एतदर्थ स्थानीय जनता महापुरुष ऋषि केशवानन्द महाराज जी का कोटिक धन्यवाद करती है।

*****

परमपूज्य ऋषि केशवानन्द जी महाराज

स्वामी ज्ञानानन्द,
श्री राम निकेतन, भूपतवाला, हरिद्वार।

भारतीय प्राचीन ऋषि जैसे हवन, यज्ञ, शिक्षा "तमसो मा ज्योतिर्गमय" गोसेवा, तीर्थ-भ्रमण आदि करते थे वैसे ही पूज्य महाराज श्री ने अपनी संस्था निर्धन निकेतन में तीन बार तो विशाल लक्ष चण्डी महायज्ञ किये हैं। शिक्षा के क्षेत्र में यह संस्था अग्रणी है। महाराज श्री संस्था में स्वयं घूमकर देखते हैं कि विद्यार्थियों की कोई परेशानी तो नहीं है, विद्यार्थियों के लिए सुन्दर छात्रावास और निःशुल्क भोजन व्यवस्था संस्था में है। ऋषि परम्परा के अनुसार महाराज श्री का गोसेवा में अटूट विश्वास है। गाय माता की सच्ची सेवा के लिए महाराज श्री ने कूलर और पंखों की सुन्दर व्यवस्था कर रखी है, जिससे गर्मी में मक्खी मच्छर आदि गाय माता को परेशान न करें। अच्छे चारे के लिए सुन्दर कृषि फार्म बना रखा है वहाँ भी महाराज श्री ने बहुत अच्छी गोशाला बनाई है।

पूज्य महाराज श्री प्रकृति प्रेमी हैं और हर समय प्रकृति की गोद में रहना पसंद करते हैं। इसी लिए ऋषि परम्परा के अनुसार अपने भक्तगण, शिष्यों को साथ लेकर दो-दो मास तक धार्मिक तीर्थस्थलों का भ्रमण करते हुए प्रकृति का आनन्द अनुभव करते हैं। प्रतीकोपासना के लिए महाराज श्री ने हरिद्वार, ऋषिकेश पंजाब आदि में कई मन्दिरों का निर्माण कराया और विदेशों में भी धर्म प्रचार-प्रसार के लिए अपने शिष्य भेजे, परम श्रद्धेय महाराज श्री ने जिस सौहार्द और स्नेह के साथ मुझ जैसे मूर्खानन्द को भी प्यार किया उसके लिए मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से पूर्ण हो रहा है। महाराज श्री के जीवन के विषय में जानना और लिखना तो इस जीव की तुच्छ बुद्धि के बाहर है परन्तु महाराज श्री के चरणों में रहते हुए दो तीन वर्ष के अध्ययन काल में जो अनुभव किया उसी का अल्पांश मात्र व्यक्त किया है।

वास्तव में महाराज श्री भारतीय संस्कृति के गौरव हैं, आधुनिक मानव के आदर्श प्रतिनिधि हैं। महाराज श्री ने हमें कुछ ऐसी वस्तु दी है जो हम में अपने उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त परम्परा के प्रति एक प्रकार का स्वाभिमान जगा देती है। महाराज श्री वैदिक धर्म एवं हिन्दू संस्कृति के समस्त स्वरूपों के उज्ज्वल प्रतीक हैं। यथार्थ धर्म की शिक्षा देने के अतिरिक्त महाराज श्री ने केवल भारत में नहीं बल्कि विदेश में भी विदेशियों

को जनता जनार्दन की सेवा पूजा-भाव से करने का पाठ पढ़ाया है। सच्चे अर्थों में महाराज श्री ने हमें मानव निर्माणकारी दर्शन की शिक्षा दी है।

पूज्य महाराज श्री स्वयं अमानी होकर प्रतिवर्ष महापुरुषों, स्वतन्त्रता सेनानियों और मेधावी छात्र-छात्राओं का सम्मान करते हैं तथा भेंट स्वरूप सुन्दर उपहार देते हैं। महाराज श्री की सच्ची समाजसेवा, गहन-कर्मशीलता और महान त्याग से ही राम और भरत जैसे गुरुभक्त शिष्य मिले तथा कर्त्तव्यनिष्ठ और गुरुभक्त संस्था का शिक्षक वर्ग मिला। श्रद्धेय ऋषि जी महाराज की संस्था निर्धन निकेतन में नित्य संध्या वंदन, गायत्री जप, गीता अध्ययन, गो पूजा, यज्ञ वेदियों की शास्त्र विधि से पूजा तथा निःशुल्क औषधालय का संचालन भारतीय ऋषिपरम्परा के अनुसार होता है।

मैं महाराज श्री की संस्था तथा भक्तगण आदि की सब प्रकार से सफलता की मंगल कामना करता हूँ। भगवान से प्रार्थना है कि हमें इसी प्रकार महाराज श्री का सानिध्य मिलता रहे और हम सब अमृत-महोत्सव से भी बढ़कर महाराज श्री का शताब्दी महोत्सव मनाएँ। पूज्य महाराज श्री का वरदहस्त हमारे ऊपर बना रहे।

*****

श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द महाराज, अध्यक्ष निर्धन-निकेतन शिक्षण संस्थान हरिद्वार को, उनकी "हीरक जयन्ती" के अवसर पर समर्पित **"अभिनन्दन पत्र"**

भगवान सूर्यदेव का प्रभामण्डल किसको आनन्दित नहीं करता? समस्त चराचर को आनन्दित करता है। वैसे ही आज आपके श्री दर्शनों से ऋषि बाल विद्यालय तथा ऋषि लोट्स अकादमी परिवार अत्यन्त प्रफुल्लित हो रहा है। प्रफुल्लित हो भी क्यों न ? आप जैसे महान शिक्षावेत्ता,उदारचेत्ता के संरक्षण में हमारा जीवन गौरवान्वित हुआ है। हम सब आपका हार्दिक स्वागत एवं शत-शत अभिनन्दन करते हैं।

हे शेरे पंजाब के निदर्शन ! -- पंजाब प्रान्त की अपनी एक अलग ही महत्ता है। इसने भारत देश के राजनैतिक,सामाजिक और धार्मिक उत्थान के लिए भगतसिंह जैसे देशभक्त,गुरूनानक देव जैसे आध्यात्मिक गुरु प्रदान किये हैं। ऐसी रत्नगर्भा वसुन्धरा पंजाब की पुण्यभूमि भठिण्डा जिला, चहलांवाला गाँव में आप जैसे युगद्रष्टा ऋषि प्रकट हुए हैं। जिन्होंने परिव्राजक बनकर देश की पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण दिशाओं को अपने ज्ञान आलोक से आलोकित किया है और पंजाब प्रान्त का गौरव बढ़ाया है। शिक्षा प्रचार प्रसार की दृष्टि में-धर्म-कर्म-निर्वाह की दृष्टि में आपके अदम्य उत्साह को देख हमें आप "शेरे पंजाब के निदर्शन"भासित हो रहे हैं।

हे हार्दिक शुभचिन्तक ! -- आपकी सदा कामना रही है कि शिक्षा से कोई बच्चा वंचित न रहे, विशेषकर अभावग्रस्त निर्धन बच्चों का आप पूर्ण ध्यान रखते हैं। उन्हें पाठ्य-पुस्तकें एवं अभ्यास पुस्तकें विद्यालयीय गणवेष (यूनिफार्म) आदि की सुविधा प्रदान करते हैं। अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ बच्चों के चहुँमुखी विकास के इच्छुक आप बच्चों की सांस्कृतिक एवं क्रीड़ा प्रवृति को भी जागरूक रखते हैं । राष्ट्रीय,धार्मिक पर्वों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम में तथा विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाओं में बच्चों को निपुण करते हैं। अनुशासनप्रिय,अध्ययनशील तथा विभिन्न प्रतियोगिताओं में अग्रिम रहने वाले छात्रों को समय-समय पर आप पुरस्कृत कर उनका उत्साहवर्धन करते हैं और भी छात्रों के मनोरंजन हेतु विविध प्रकार के झूले, स्कूटर, साइकिल आदि साधनों की दौड़ो से बच्चों को सुडौल बनाने का पूर्ण प्रयास करते हैं। बच्चों का स्वास्थ्य-निरीक्षण भी सरकारी डाक्टर द्वारा वर्ष में एक बार अवश्य करवाते हैं। बच्चों की चेष्टाओं से अवगत होता है कि पिता तुल्य वात्सल्य पाकर बच्चे आपसे बहुत

प्रसन्न हैं। आप कर्मचारी वर्ग तथा अध्यापिका वर्ग के हितों का पूर्ण ध्यान देते हैं। अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण निष्ठापूर्वक करने वाले कर्मचारियों और अध्यापिकाओं को आप पुरस्कृत कर प्रोत्साहित करते रहते हैं। मेरा अनुभव है कि आप छात्रों के, कर्मचारियों के और अध्यापकों के हार्दिक शुभचिन्तक हैं।

हे सच्चे पथ-प्रदर्शक ! -- आपके कुशल निर्देशन से ये विद्यालय अल्प समय में ही विपुल ख्याति अर्जित कर रहे हैं। स्थानीय जनता का इन विद्यालयों में अत्याधिक विश्वास है। वर्तमान में लगभग ग्यारह सौ छात्र अध्ययनरत हैं। तीस अध्यापिकाओं और सात सेविकाओं द्वारा विद्यालय का शिक्षण एवं प्रशासन कार्य सुचारू रूप से चल रहा है यह आप के स्वस्थ-पथ प्रदर्शन का प्रतिफलन है।

हे भारतीय संस्कृति के प्रचारक ! -- विश्व संस्कृति में भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि भारतीय संस्कृति ही मानव को मानवता सिखा सकती है। आपने इसी उद्देश्य से विदेशों का कई बार भ्रमण किया तथा अपने देश के कोने-कोने में जाकर जनहित के लिए भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। उत्तराखण्ड के चारों धाम-बदरीनाथ-केदारनाथ-गंगोत्री-जमुनोत्री की पैदल यात्रा के समय जाते-आते जिन स्थानों पर पड़ाव पड़े आपके स्वागतार्थ उपस्थित वहाँ के लोगों को आपने शिक्षा दी कि "भारतीय संस्कृति के अनुरूप जीना ही सुखी जीवन की कला है"। ऋषि बाल विद्यालय के बच्चों को आचारवान् बनाने के लिए प्रार्थना-सभाओं में, कक्षाओं में, राष्ट्रीय पर्वों के अवसरों पर उपस्थित होकर आप अपने बच्चों को भारतीय-संस्कृति के अनुरूप नैतिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा एवं आध्यात्मिक शिक्षा देते हैं। आपका यह सुदृढ़ विचार है कि आचारवान नागरिक ही राष्ट्र का सच्चा निर्माता है। अतः शिष्ट नागरिक बनाने में आप अहर्निश प्रयासरत हैं ।

हे सच्चे कर्मयोगी ! -- धर्म ही कर्म है कर्म ही धर्म है। धर्म-कर्म में भेद न रखने वाले आप सच्चे कर्मयोगी हैं। आप समाज सुधार, राष्ट्र निर्माण के समस्त कार्यों में स्वयं जुटे हुए हैं तथा अपने शिष्य-मण्डल को जुटाए हुए हैं। साथ ही साथ पर्यावरण सुधारार्थ सहस्त्रचण्डी एवं लक्षचण्डी आदि महायज्ञों, लोकल्याणार्थ गीता-रामायण-भागवत पारायण आदि अनुष्ठानों तथा वैदिक कर्मकाण्डों को निष्काम भाव से करते हैं तथा निष्काम भाव से करने की प्रेरणा बच्चों, कर्मचारियों एवं अध्यापकों को भी देते हैं। मैं समझती हूँ आप पूर्ण कर्मयोगी हैं।

हे सौम्य व्यक्तित्व के धनी ! -- तेजोमय मुख मण्डल, सौम्याकृति, गौरवर्ण, श्वेतवेष, माधुर्य पूर्ण वाणी-आपका यह बाह्य व्यक्तित्व दर्शनीय है जो बरबस किस को आकृष्ट नहीं करता ? बुद्धि शील सदाचार औदार्य आदि गुणों से युक्त आपका यह अन्तः व्यक्तित्व अनुकरणीय है। जिससे कौन प्रभावित नही होता? शास्त्रवर्णित महान व प्रभावशाली व्यक्तित्व के पाँचों लक्षण आप मैं मूर्तरूप में दिखाई देते हैं ।

विद्यया वपुषा वाचा वेषेण विभवेन च।
वकारैः पञ्चभिर्युक्तो नरो याति वरीयताम्।।

हे सौजन्य मूर्ति ! -- धैर्य-औदार्य-दया-क्षमा आदि गुणों का समावेश एक साथ असम्भव है परन्तु आप इस उक्ति के अपवाद हैं। आपकी सुजनता से समस्त अध्यापकवृन्द, कर्मचारी वर्ग, छात्रगण एवं अभिभावक समुदाय प्रभावित है। आप मन-वचन-कर्म से परहित चिन्तन में सदा निरत रहते हैं। हे सौजन्यमूर्ति ! विद्यालय संस्थापक एवं संचालक महोदय ! हम आपके इस हीरक जयन्ती वर्ष में आपके शतायु होने की शुभ-कामना करते हैं।

आप शिक्षा प्रचारक, समाज सुधारक, राष्ट्र निर्माणकर्त्ता भारत देश के अनमोल रत्न हैं, हम ही क्या? पूरा देश आपसे गौरवान्वित है। हम सब श्रद्धावनत होते हुए भाव-पुष्पों से संयुक्त यह अभिनन्दन-पत्र आपकी हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में इन विद्यालयों के वार्षिकोत्सव के अवसर पर समर्पित करते हैं।

हम हैं आपके स्नेहाकांक्षी :

डा० बीना बजाज, प्रधान अध्यापिका
अध्यापिकावृन्द, कर्मचारी वर्ग, छात्रगण
ऋषिबाल विद्यालय एवं ऋषि लोट्स एकाडमी
निर्धन निकेतन, खड़खड़ी, हरिद्वार

अहेतुकी-कृपा

तृप्ता बजाज, लिपिका,
ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

मैंने जब होश सम्भाली, अपने घर में पाया, कि मेरी चार बहिनें, चार भाई थे। सब छोटे बड़े पढ़ने वाले बच्चे थे। पिता जी खेती-बाड़ी का काम करते थे। परिश्रम बहुत करते परन्तु हाथ कुछ न लगता। खेती के लिए ऋण उठाते, वह धन भी निष्फल हो जाता। हम सब बच्चे एक समय रोटी खाते, दूसरे समय भूखे सो जाते। माता पिता बहुत दुःखी थे। एक दिन मेरी दादी स्व. श्रीमति पार्वती देवी, मेरी माता अविनाश रानी को पूज्य ऋषि केशवानन्द जी के पास लेकर गयी, गुरुदेव तब फिरोज़पुर वकीलों के घर ठहरते थे मैं भी साथ थी, माथा टेका। ऋषि जी ने मेरी माँ से पूछा, क्यों अविनाश क्या हाल है? मेरी माता फूट फूट कर रोने लगी। दादी ने कहा महाराज जी इन पर दया करो। तरलोक चन्द प्रातः चार बजे जमीन पर निकलता है रात आठ बजे आता है। मैं भी देखती हूँ, त्रिलोक चन्द मेहनत खूब करता है, खेती होती नहीं, घाटा ही घाटा रहता है। कितना ऋण हो चुका है, रोटी के लिए भी लाचार है। मकान का किराया भी नहीं दिया जा रहा है। बड़ी दयनीय स्थिति है। रोये न तो क्या करे। कुछ कृपा करो।

पूज्य ऋषि जी बोले, अविनाश रो नहीं, धैर्य रखो। कुछ दिनों का फेर है सब ठीक हो जायेगा। मकान की परेशानी है, तो निर्धन-निकेतन मन्दिर फिरोजपुर में स्थान दे देते हैं। मन्दिरों में सेवा-पूजा भी करो और आराम से रहो। रही बात खेत के काम की, कल खेत चलेंगें, जमीन देखेंगें कैसी है? कल हुआ, मेरे पिता श्री तरलोक चन्द खेत में गये, ऋषि जी कार से वहीं पहुँच गये। ऋषि जी ने सारा खेत देखा, खेत की मिट्टी को हाथ में लिया, कुछ देर बाद उस मिट्टी का छींटा सारे खेत में दे दिया और कहा अब बौवाई करो। तब से हमारे खेत में हर फसल-क्या गेहूँ, क्या चावल खूब होने लगा। दिन फिर गए। ऋण चढ़ा था उतर गया। भर-पेट परिवार भोजन करने लगा। मेरे माता-पिता को पूजनीय ऋषि जी महाराज पर बड़ी श्रद्धा हुई।

मेरे माता-पिता ऋषि जी की आज्ञा से निर्धन निकेतन मन्दिर फिरोजपुर में रहने लगें। मन्दिर की सेवा सारा परिवार करता था परन्तु मेरी माता अविनाश रानी तो दिन भर गुरु घर की सेवा करती थी। इस तरह १२ वर्ष हम गुरुदेव के मन्दिर निर्धन निकेतन फिरोजपुर में रहे तब तक मेरी बहिनों की अच्छे घरों में शादी भी हो गई थी, दामाद-लोग बड़े सज्जन मिले। यह गुरु घर की सेवा का ही फल है। चारों भाइयों के काम अच्छे चलने लगे। भाइयों की भी शादियाँ हो गई। उन्होंने अपने-अपने मकान बना लिये, अपने अपने परिवार में सभी प्रसन्नचित्त हैं। उनकी कृपा के हम बहुत ऋणी हैं। मेरी माता जी आज भी मन्दिर निर्धन निकेतन फिरोजपुर में पूज्य श्री वंशीधर जी महाराज की पूजा आरती दोनों समय करने जाती हैं और भी जो सेवा इस घर की हो सके, बड़ी निष्ठा से करती हैं। मेरा पूरा परिवार श्रद्धेय ऋषि जी महाराज की अहेतु की कृपा को कभी भुला नहीं सकता। ऐसे दयावान को मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।

सन्त-दर्शन

चन्द्ररेखा शर्मा, अध्यापिका
ऋषिबाल विद्यालय, निर्धन निकेतन, हरिद्वार

सन्तों के साक्षात् दर्शन का अपना ही महत्त्व है। हमारे ग्रन्थों में भी सन्तदर्शन की महिमा का वर्णन अनेक स्थानों पर किया गया है। सन्तों के दर्शन को भगवत-दर्शन की संज्ञा दी गयी है। सन्तों के दर्शन की महिमा को बताने वाले अनेक प्रसंग हैं, यहाँ ऐसा ही एक प्रसंग दिया जा रहा है।

एक बार श्री गुरु नानकदेव जी भ्रमण करते हुये एक स्थान पर पहुँचे, यहाँ एक ईश्वर-भक्त रहता था जिसने एक धर्मशाला बनवा रखी थी। आते-जाते साधु सन्तों की सेवा करता था और चलते समय हर साधु से यही पूछता था कि सन्त के दर्शन और सेवा का क्या फल है? अपने-अपने विचारों से प्रत्येक उत्तर देता था, परन्तु इस भक्त को पूर्ण विश्वास नहीं होता था। श्री गुरु नानकदेव जी भी उसकी धर्मशाला में रहें। उसने गुरु नानकदेव की बहुत सेवा की, परन्तु अन्त में पूछा --

पुनि बूझन लागो तिह भाए। साधु मिले फल देहु बताएं।।
बहुतन संग प्रश्न मैं कीनो। मो को किनहुँ न उत्तर दीनो।।

गुरुदेव! आप पूर्ण आत्मदर्शी साधु प्रतीत होते हैं मुझे विश्वास करवायें जिससे कि मुझे सेवा में सन्देह न हो। गुरुदेव बोले-नगर से बाहर चला जा वहाँ एक वट वृक्ष है उसके नीचे बैठ जाना। तुम्हें उसका उत्तर मिल जाएगा। गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त कर वह जंगल में चला गया और वट वृक्ष के नीचे बैठ गया। उसने देखा कि वृक्ष पर दो कौवे बैठे हैं पर जब इस सन्तसेवी की दृष्टि उन पर पड़ी, तो उनका वर्ण बदल गया, वे काले कौवे से सफेद बगुला -बगुली बन गये, परन्तु उसे प्रत्यक्ष उत्तर नहीं मिला। कुछ समय वहीं बैठकर चला गया। वापिसआकर गुरुदेव को कहा-महाराज! मुझे कोई उत्तर नहीं मिला गुरुदेव बोले-वत्स! कल पुनः जाना।

गुरु आज्ञा से वह दूसरे दिन फिर गया, क्या देखता है कि जो बगुला-बगुली थें हंस-हंसिनी बन गये, उत्तर फिर भी नहीं मिला। पुनः गुरुदेव ने कहा कल फिर जाना। तीसरे दिन जब गया तो उसकी दृष्टि से उनका दिव्य स्वरूप हो गया। वृक्ष के नीचे उतर कर वे इस जिज्ञासु के प्रति कहने लगे-भाई! साधु सन्त के मिलने का एक मात्र यही फल है कि हम पहले कौवे थे, तुम्हारे दर्शन से बगुला-बगुली बने, पुनः दूसरे दिन तुम्हारी दृष्टि के फलस्वरूप हंस-हंसिनी बने। अब दिव्यरूप धारण कर तेरे पास बैठे हैं। सन्तों के मिलने और उनकी दिव्य-दृष्टि का बस यही फल है।

तुम करूणा पुनि भये मराला। दे दरस तुम करें निहाला।।
पुनि आयो होए नर-नारी। साध मिले फल ले हों बिचारी।।

अन्त में केवल यह कहना ही उचित है कि सन्तों के दर्शन की महिमा का कोई अन्त नहीं हैं। धन्य हैं वे लोग! जिन्हें नित्य सन्तों के दर्शन होते हैं।

गुरु कृपा

मुरलीधर अग्रवाल,
हैदराबाद।

मुझ पर हुई जो गुरु कृपाएँ, उसे कहे बिन मैं रह न सका --

एक धनी परिवार की छोटी बच्ची बहुत सी रंग बिरंगी तरह-तरह की गुड़ियों से खेल रही थी। घर आये मेहमान ने नन्हीं बालिका से पूछा, कि तुम इनमें से सर्वाधिक किस गुड़िया से प्यार करती हो। बच्ची ने मासूमियत से कहा, अंकल ! मेरा मजाक न उड़ाओ, तो बताऊँ। मेहमान ने हंसी न उड़ाने का वायदा किया, तो बालिका एक गुड़िया उठा लाई, जिसके आधे बाल झड़े थे, कपड़े फटे थे, नाक टूटा था, गाल पर खरीटें थीं। एक बाजू नहीं था तथा जूते भी फटे थे। इस गुड़िया को दिखाकर नन्हीं लड़की ने कहा, अंकल ! मैं इसे सबसे अधिक प्यार करती हूँ। मेहमान ने चकित होकर पूछा, क्यों यह तो बड़ी कुरूप व टूटी हुई है। बालिका ने भोलेपन से कहा, सुन्दर व कीमती वस्तुओं से, धनवान के बच्चों से तो सभी प्यार करते हैं किन्तु निर्धन, असहाय, अनाथ अपंगों से कोई प्रेम नहीं करता। यदि मैं भी इसे प्यार नहीं करूँगी तो इससे कोई प्यार नहीं करेगा। परम पिता परमात्मा भी तो टूटे हुए गरीब को प्यार करते हैं, जिन्हें कोई भी प्यार नहीं करता। इसी प्रकार से पूज्य ऋषि जी भी दीन-हीन, गरीबों, असहाय को प्यार करते हैं तथा इसी कारण ही इन्होंने अपने आश्रम का नाम "निर्धन निकेतन"(गरीब का घर) रखा। अगर पूज्य गुरुदेव ऋषि जी महाराज "दीनबन्धु" न होते तो आज तक आश्रम का नाम निर्धन निकेतन कायम नहीं रह पाता। इसकी झलक मैंने ऋषि जी में अप्रैल ८५ में देखी। जब पूज्य ऋषि जी सिर्फ मेरे १५ पैसे के डाक पत्र द्वारा निमंत्रण भेजने पर हैदराबाद पधारे थे और उस टाइम मेरे पास सुबह शाम दो वक्त की रोटी का भी इंतजाम नहीं था। अब गुरु महाराज की बड़ी कृपा बरस रही हैं ऐसे दीनबन्धु पूज्य ऋषि जी महाराज के चरणों में मेरा कोटि कोटि नमन।

गुरु जी की सदैव यह शिक्षा रही है कि नामजाप एवं सत्कर्म भी करें। मैं सर्वप्रथम ४ जुलाई १९८४ को पूजा पर हरिद्वार अपनी अंबाला वाली बुआ श्री के साथ आया था। उन्होंने ही मुझे ऋषि जी से मिलाया था उन्होंने ही पूज्य ऋषि जी से गुरुमंत्र की दीक्षा दिलवायी थी। मेरे गुरुमंत्र लेने के दो चार घंटे के बाद एक लड़की आयी, उसने पूज्य ऋषि जी से कहा कि गुरु जी मुझे भी नाम दे दो। तब ऋषि जी ने उससे कहा कि नाम तो मैं दे दूँगा, लेकिन नाम कमाओगी भी क्या? इस वाक्य का मेरे ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा, कि अपने को नाम कमाना चाहिए, नाम तभी कमायेगें, जब अच्छे कर्म में प्रवृत्त होंगे। उसी दिन सत्संग हाल के प्रवचन में गुरुदेव ने कहा था, कि इंसान को समाज में अपनी पहचान बनानी चाहिए। समाज में पहचान भी तभी बनेगी, जब हम अच्छे

कर्म करेंगे, किसी का भला करेंगे। किसी दीन-हीन की सहायता करेंगे। इन्हीं दो बातों की "अमिट छाप"आज तक मेरे ऊपर है और अपनी सामर्थ्य के अनुसार मैं उपर्युक्त बातों का अनुसरण करने की कोशिश करता रहता हूँ।

गुरुदेव विपदा में रक्षा करते हैं ऐसा मेरा अटूट विश्वास हैं। सन् १९९१ में जब मैं शारदीय नवरात्र में माता की सवामनी की कढ़ाई करने हरिद्वार आया था। हम हैदराबाद से दिल्ली उतरे, और कश्मीरी गेट पर बस अड्डे पर आ गये। हमारी साली जो कि हमारे साथ हैदराबाद से आयी थी, वह अपना लड़का मेरे हाथ में पकड़ा कर, बस स्टैण्ड में कुछ लेने चली गयी। अचानक लड़का भटक गया, छोटा ही था, पांच बहिनों से छोटा था, वह भी गोद का। मुझे कहीं दिखायी नहीं दे रहा था। मेरी साली ने कुछ मिनटों के बाद वापस आकर पूछा कि बालक कहाँ है ? तो मेरे होश उड़ गये। उसी समय मैने गुरूदेव को याद किया और चन्द मिनटों में ही बालक मिल गया। अगर बालक न मिलता, तो मेरे ऊपर कितना बड़ा कलंक लग जाता। मेरा अटूट विश्वास है कि सच्चे हृदय से किया गया गुरु का स्मरण तुरन्त विपदा से उबारता है जैसे उक्त विपदा से मुझे उबारा है। धन्य है गुरूदेव !

मेरा निजी अनुभव है कि गुरुकृपा से बिगड़े काम बनते हैं मेरी लड़की अपाहिज थी। बचपन में ही पोलियो हो गया था आपरेशन करके लड़की चलने फिरने लायक हो गयी थी उसकी शादी भीं १९ फरवरी ९२ को पक्की हो चुकी थी। दामाद सुन्दर नहीं था। मेरा मन तो पहले ही उसको बेटी देने का न था, लेकिन उसकी अपंगता को देखते हुए मुझको भी उस लड़के के साथ उसकी शादी तय करने के लिए मजबूर होना पड़ा था। शादी के कार्ड छप चुके थें, बाँटने की तैयारी थी। दस दिन शादी के बाकी रह गये थे, अचानक मेरे हृदय ने आवाज लगाई कि गुरुदेव अपनी कृपा से सब ठीक कर देंगे और सच्चे-साधु विधाता के विधान को भी बदल देते हैं। मैनें पुकारा, उन्होंनें प्रार्थना सुनी और हाज़िर हुए। इतना सोचने के दो घंटे के बाद घर के फोन की घंटी बजी और समाचार मिला कि जिस लड़के से शादी होने जा रही है, उसका उसकी भाभी से अवैध सम्बन्ध है। मालूम होते ही छानबीन शुरू की और सत्य पाया। उस लड़के से शादी का रिश्ता कैंसिल कर दो ही घंटे में गुरूदेव ने दूसरे दामाद का इंतजाम भी कर दिया। सभी प्रिण्टेड कार्ड फैंक कर २४ घंटे में नये कार्ड छपवाये गये और उसी मूहूर्त पर शादी की गयी और सकुशल सम्पन्न हुई। आज लड़की व दामाद सुखी है, उनके भी एक लड़का एक लड़की है। ऐसी है पूज्य ऋषि जी की कृपा। उनके चरणों में मेरा कोटि-कोटि नमन।

कभी-कभी कुछ बातें अविस्मरणीय हो जाती हैं, जैसे कि अप्रैल १९८५ में जब पूज्य ऋषि जी हैदराबाद आये थे, उस टाइम मेरे पास दो वक्त की रोटी का इंतजाम भी न था। उस टाइम पूज्य ऋषि जी ने अनायास

ही कहा था, कि मुरलीधर फिकर क्यों करता है तेरे तीन मकान होंगे। यह सोचने की बात है, कि जिसके पास दो वक्त की रोटी का इंतजाम न हो, वो मकान की आशा लगावे, व सोचे। लेकिन उनकी कृपा से सच मेरे पास आज तीन मकान हैं। गुरु का वाक्सत्य हुआ। मुझे पूज्य ऋषि जी पर अटूट विश्वास है।

मेरे ऊपर गुरुदेव की अनन्त कृपा है। सन् १६६६ में मेरे को शूगर (मधुमेह) की बीमारी बढ़ गई थी। सभी डाक्टरों ने जवाब दे दिया था सभी इनवेस्टीगेशन नार्मल लिमिट में थे, लेकिन शूगर कम होने का नाम नहीं ले रही थी। तभी एक दिन मैंने पूज्य ऋषि जी को याद कर फोन पर सूचना दी कि ऐसी बात है तथा बीमारी ठीक नहीं हो रही है, तभी पूज्य ऋषि जी ने कहा था कि अच्छे डाक्टर को दिखाओ, ठीक हो जाओगे। इसके बाद डाक्टर भी मिला, आपरेशन भी हुआ तभी से शूगर कम होती चली गयी और आज भी शुगर कंट्रोल में है। ऐसी है उनकी कृपा।

मेरे अपने जीवन में जब जब विपत्तियाँ आयीं तब-तब मैंने गुरुदेव पूज्य ऋषि केशवानन्द महाराज को स्मरण किया। गुरुदेव जी ने ही उन विपत्तियों से उबारने के लिए कभी प्रत्यक्ष रूप में कभी अप्रत्यक्ष रूप में मुझ अकिन्चन पर कृपाएँ कीं। इन्हीं की कृपा दृष्टि मेरे जीवन का आधार है।

भजन

अनिल बत्रा,
लुधियाना, पंजाब

सुख चाहने वालो नाम जपो, कहते हैं संत और सबने कहा हैं।
नाम ही केवल सार जगत, आओ रे नाम से प्रीत लगायो।
गुरु हैं सच्चे देव, कमा कर सेव, जन्म को सफल बनाओं ।
भाग्य बड़े जो ऐसा द्वार मिला है। सुख......................

दिल में लगा कर आस, रखो विश्वास, ये घट की जानन हारे!
हो जाए बेशक देर, नहीं अंधेर, ये आस पुजावन हारे
वही सुख पाए जिस पर गुरु की दया हो। सुख..................

हो जाए सदा निहाल, रहे खुशहाल, जो सच्चा नाम जपेगा।
देकर अपना प्यार, करे भव पार, जो गुरु का घ्यान धरेगा।
जिसे भी मिला है सुख, नाम से मिला है। सुख............

ऋषि कालेज के प्रिंसिपल

राम प्रकाश नरूला
फरीदाबाद

परम पूज्य ऋषि जी के दर्शन करने का पहला अवसर मुझे १९४८ में लुधियाना में मिला। दूसरी बार मुझे सौभाग्य मिला १९५१ में। मैंने पढ़ने की इच्छा प्रकट की, उन्होंने मुझे बहुत उत्साह दिया तथा प्रेरणा दी। मैं हिन्दी भूषण परीक्षा में प्रविष्ट हो गया। परीक्षा में समय कम था। ऋषि जी स्वयं मुझे पढ़ाने का कुछ समय देते थे। मैं उनकी पढ़ाने की शैली से बहुत ही प्रभावित तथा लाभान्वित भी हुआ कि मैंने एक वर्ष में तीन परीक्षाएँ पास की, हिन्दी-भूषण, अंग्रेजी एफ.ए. तथा एक बैंक की परीक्षा।

दूसरे वर्ष मुझे हिन्दी प्रभाकर तथा अंग्रेजी बी.ए. में ऋषि जी से पढ़ने का सौभाग्य मिला। पढ़ाने वाले कई विद्वान थे परन्तु ऋषि जी की पढ़ाने की शैली बड़ी ही रोचक तथा मनोवैज्ञानिक थी। उनके लेक्चर को सुनते-सुनते बहुत कुछ याद हो जाता था, विशेष कर रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास की तो इतनी उनकी मास्टरी थी कि दो-ढाई घंटों में पूरे ग्रन्थ का सार इस ढंग से समझा देते थे कि इतिहास छात्र छात्राओं की अंगुलियों पर नाचने लगता था। जिस दिन उनका इतिहास पर प्रवचन निर्धारित होता था उस दिन अन्य विद्यालयों के विद्यार्थी सुनने आते, न केवल प्रभाकर कक्षा के विद्यार्थी बल्कि एम.ए. के छात्र भी उनका लेक्चर सुनने आते थे। विद्यार्थियों से बहुत प्रेम करते थे। अपने घर बुलाकर भी शिक्षा देते थे। अनथक परिश्रम ऋषि जी की आरम्भ से और आज तक भी एक बड़ी विशेषता रही है। ऋषि जी कालेज में हिन्दी, अंग्रेजी की कितनी ही घंटियाँ स्वयं पढ़ाते थे।

कविता पढ़ाते-पढ़ाते आनन्द विभोर हो जाते थे आध्यात्मिकता में डूब जाते थे। इस तरह शास्त्रीय शिक्षा के साथ-साथ रुहानी शिक्षा का भी ज्ञान प्राप्त होता था। प्रत्येक आठवें दिन कालेज में हवन एवं सत्संग होता था। सब से बड़ी बात जो मैंने ऋषि जी में देखी वह थी, और आज भी है अपने में बडप्पन का न होना। उनकी इन विशेषताओं को देख कर तथा उनके प्रेम के प्रवाह में बह कर मैं तो अपने आपको भुलाकर तथा खोकर उनके ही समर्पित हो गया। मेरा सारा परिवार इन को समर्पित है और आजीवन समर्पित रहेगा।

पूजापाठ में इनकी बड़ी ही निष्ठा थी घर पर यदि अपना पाठ पूरा न कर सके तो समय निकाल कर कालेज में ही पूरा करते थे। आजकल तो उनकी निष्ठा और भी बढ़ गई। मैं कई बार यात्रा तथा पदयात्रा में भी उनके साथ रहा और देखा कि उनके पाठ का नियम अत्यन्त दृढ़ है वह भोजन छोड़ सकते हैं आराम छोड़ सकते हैं परन्तु पाठ-पूजा का नियम नहीं छोड़ सकते हैं। वे पूजा पाठ किसी भी विधि से करते हों परन्तु मानव धर्म उन के रोम रोम में बसा हुआ है।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, मैं ऋषि जी के अधिक से अधिक नज़दीक आता गया त्यो त्यों मेरी उन के प्रति श्रद्धा बढ़ती गई। ३ जून १९५६ में उन के गुरु श्री वंशीधर जी महाराज का अचानक हरिद्वार में स्वर्गवास हो गया। उनको अपार दुःख होना स्वाभाविक ही था परन्तु उनके ऊपर मुसीबतों की घटाएँ छा गयी, पारिवारिक विरोध अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया। गुरु महाराज श्री वंशीधर की सेवा में रहने वाला एक नौकर किशोर चन्द चोला पहन कर वंशीधर बन बैठा और सत्संगियों को ऋषि जी के प्रति भड़काने लगा। उस अवस्था में ऋषि जी के धैर्य का परीक्षण था। उस समय भी उन्होंने किसी से भी द्वेष नहीं किया बल्कि हँसते हँसते उस संकट को टाला।

परिणाम यह हुआ कि वह पागल किशोर चन्द वास्तव में ही पागल होकर गुरुजी की फोटो तथा कीमती सामान एक कुएं में डालकर पता नहीं कहाँ भाग गया। उसके उपरान्त सभी सत्संगी ऋषि जी की शरण में आने लगे, आज उनके सत्सगियों के हृदय में कितना प्रेम का सागर उमड़ रहा है, यह जनता के अपने देखने की वस्तु है।

मैं उनके प्रति श्रद्धा रखता हूँ जो आज्ञा देते हैं उसका पालन करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। यही कारण है कि वर्षों से मैं बाल ब्रहाचारी मिशन की कार्यकारिणी का सदस्य बनकर सेक्रेटरी के रूप में सेवा में लगा हूँ। करने कराने वाले ऋषि जी स्वयं हैं, नाम करते हैं अपने भक्तों का, यही तो सच्चे सन्त की परख है। "सबहि मानप्रद आपु अमानी"। मैं उनके दीर्घजीवन की भगवान से मगंलकामना करता हूँ।

*****

भजन

उषा मेहता
न्यूयार्क, (अमेरिका)

देखो जी ऽऽऽ सत्गुरु दीयाँ गल्लां न्यारियाँ। देखो जी जी जी, सत्गुरू दीयां गल्लां न्यारियॉं।
मेरे सत्गुरू दीयॉं गल्लां ,मेरे पूज्य ऋषि दीयॉं गल्लां, मेरे परम् पिता दीयॉं गल्लां न्यारियां।।

१ जो इन्हाँ दी शरणी आन्दे,
ओ भव सागर तर जान्दे,
ओ मंगियाँ मुरादां पान्दे,
मेरे सत्गुरु दीयाँ गल्ला प्यारियाँ, देखो जीऽऽऽ

२ हरिद्वार विच आश्रम बनाया,
नाम निर्धन निकेतन रखाया,
ओथे नित नित यज्ञ रचाया,
पहुँच दीयां ने संगतां सारियाँ, देखो जी ऽऽऽ

३ ओथे सब सत्संगी आन्दे,
मेरे गुरां दे दर्शन पान्दे,
ओ झोलियाँ भर ले जान्दें,
ओथे हुंदीयाँ ने मुरादाँ पूरियाँ, देखो जी ऽऽऽ

४ प्रभो! मेरी भी अरदास सुनो,
मेरे सिर ते अपना हथ धरो,
उषा दे सब अवगुण बक्शो,
गुरु चरणां तो मैं जावाँ बलिहारियाँ, देखो जी ऽऽऽ

*****

भजन

शामा देवी
एडमण्टन (कनाडा)

गुरुदेव तुझसे यह अरज है, कुछ ऐसा मेरा सुधार हो।
इस तन में तेरी तलाश हो, इस मन में तेरा ही प्यार हो।

तेरी चाह में ही चढ़ा रहूँ, तेरे द्वार पर ही पड़ा रहूँ,
तेरे कदमों पर ही अड़ा रहूँ, चाहे कष्ट मुझ पे हज़ार हो, गुरूदेव...

मेरे ध्यान में तूँ फसा रहे, रग-रग में तूँ ही बसा रहे,
अनुराग का बस नशा रहे, दिन-रात का न शुमार हो, गुरूदेव!...

तेरी याद दिल से किया करूँ, तुझे धन्यवाद दिया करूँ,
तेरा नकद नाम लिया करूँ, यह रकम न मुझ पे उधार हो, गुरूदेव!...

चले प्राण तन से जो ऊब कर, यह एहसान तूँ मुझ पे खूब कर,
तेरे प्रेम सिन्धु में डूब कर, भव सिन्धु से हमें पार हो, गुरूदेव!...

भजन

गुरूदेव की आँख की मस्ती ने,
हम सब को मस्त बना डाला, गुरुदेव...

जो सबक कोई पढ़ा न सका,
सत्गुरू ने सबक पढ़ा डाला, गुरुदेव...

जब दुनिया में यह आते हैं,
खुद मन्जिल ही बन जाते हैं, गुरुदेव...

जो बैठे इनके चरणों में,
उन्हें मन्जिलें तक पहुँचा डाला, गुरुदेव...

सद्गुरु-महिमा

विजय अग्रवाल
एडमण्टन (कनाडा)

सद्गुरु की महिमा अनन्त है। बड़े-बड़े शास्त्रकार गाते-गाते थक गये, अन्त में नेति-नेति कह उठे। भला मैं अबोध सद्गुरु की महिमा क्या कह सकती हूँ बस इतना समझती हूँ कि - "प्रथम गुरु जी को वन्दना!"

सर्वप्रथम गुरुदेव को श्रद्धापूर्वक नमन करना चाहिए "गुरु देवों के देव" गुरु सब देवताओं से भी बड़े हैं। कहा भी है -

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो मिलाय।

भगवान के दर्शन भी गुरु-कृपा से होते हैं। गुरु में सच्ची-निष्ठा होनी चाहिए। गुरु के वचनों में विश्वास रखना चाहिये, क्योंकि गुरु के वचन महामोह रूपी अन्धकार का नाश करने के लिए सूर्य किरणों के समूह हैं। उनके चरणों में ध्यान करना चाहिए। उनके ध्यान से हृदय में सच्चा प्रकाश होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है कि -

श्रीगुरु पद नख मणिगण ज्योति।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

मेरे सद्गुरु मानव के रूप में साक्षात् भगवत् रूप हैं क्योंकि उन्होंने प्रचण्ड-तप द्वारा ईश्वरीय सत्ता का साक्षात्कार किया है। मैं बहुत ही भाग्यशालिनी हूँ जिसे महान ऋषि गुरु रूप में मिले हैं। सात समुद्रपार-एडमण्टन (कनाडा) में बैठी मैं ध्यान-पूजा ही कर सकती हूँ। सच ध्यान पूजा में उपस्थित हो पूज्य गुरुदेव मुझे सुख-शान्ति प्रदान करते हैं। उनके आत्म-प्रकाश की किरणें मुझे आह्लादित करती रहती हैं।

मैं अपनी दादी देवकी देवी के साथ बचपन में ग्रीष्मावकाश के दिनों में निर्धन निकेतन आश्रम में रही। मेरी छोटी बहिन नीलम भी मेरे साथ थी। उन्हीं दिनों गुरुपूजा-पर्व पर श्री रामचरितमानस के १०८ अखण्ड पाठों का पारायण हो रहा था। मुझे और मेरी छोटी बहिन को भी पाठियों की सूची में रखा गया।

रामायण पाठ में हम पूरा-पूरा दिन व्यतीत कर देती थीं। बहुत आनन्द का समय रहा। नित्य प्रातः पूज्य गुरुदेव ऋषि जी महाराज के प्रवचन एवं सत्संग मिलता था। गुरु जी से प्रेरणा प्राप्त होती थी कि

उच्च विचारों से पवित्र जीवन व्यतीत करो। सेवाभाव से कर्तव्य पालन करो। प्राणायाम, प्रभु-ध्यान और माँ भगवती की आराधना करो। माँ की आराधना से लौकिक पारलौकिक सुख की प्राप्ति होती है। माँ अपने बच्चों का सदा कल्याण चाहती है। इस तरह श्री दुर्गासप्तशती के नित्य पाठ में हमें रुचि हो गई। आज भी मैं नित्य पाठ करती हूँ। यह गुरुदेव का कृपा प्रसाद है। मानव सेवा, सन्त सेवा, गो-सेवा, अनाथों-असहायों की सेवा भगवत सेवा है। अन्न-दान और विद्या-दान उत्तम है। ऐसे शुभ कार्य किया करो, ऐसी उत्तम शिक्षाएँ प्रेरणाएँ हमें सदैव मिलती थीं। अब भी भव्य व्यक्तित्व का प्रभाव, उनके अलौकिक स्वरूप की आभा और माँ भगवती के साक्षात्कार की झलक मुझे विगत वर्ष १६६८ में शारदीय नवरात्रों में प्राप्त हुई जब सहस्र चण्डी यज्ञ के पश्चात् जागरण हुआ। वाणी में सामर्थ्य नहीं कि उस ज्योतिस्वरूप द्वारा दिखाई गई ज्योति का बखान कर सकूँ। वर्ष १६६८ में शारदीय नवरात्र के पाठ-हवन का आयोजन हिन्दू कल्चरल सोसाइटी एडमण्टन (कनाडा) में हुआ। खूब आनन्द बरस रहा था।

मेरे विवाह के उपरान्त मेरे पतिदेव श्री रमेशचन्द्र अग्रवाल तो पूज्य ऋषि जी की कर्मनिष्ठा और जन-सेवा के कार्य कलापों से इतने प्रभावित हुए, कि महाराज जी द्वारा लक्षचण्डी यज्ञ किये जाने के संकल्प को सुनते ही प्रसन्नता से निश्चय कर लिया कि इस यज्ञ में पूर्ण निष्ठा से भाग लेगें और उन्होनें परिवार समेत कनाडा-विदेश से आकर इस यज्ञ में भाग लिया तथा इस शुभकार्य में आनन्दानुभूति की। इस तरह ऋषि जी के प्रति श्रद्धा पहले से भी द्विगुणित हो गयी।

मेरा बेटा दीपक गुरुदेव की कृपा का प्रसाद है। मेरे पहले दो लड़कियाँ थी। पुत्रैषणा से मैं परेशान थी। मालूम हुआ गुरुदेव पुत्र होने की दवाई व मन्त्र देते हैं। मैंने वह दवाई ली तथा निरन्तर मन्त्र का जाप करती रही। परन्तु अन्त में डाक्टरों ने बता दिया, लड़की है। मेरे पैरों तले जमीन निकल गई, मैंने कनाडा से गुरुदेव को फोन किया, कि डाक्टर तो लड़की बता रहे हैं, उन्होंने धैर्य बँधाते हुए कहा, कि विश्वास रखो, लड़का होगा। समय निकला, सच गुरुदेव जी का वचन पूरा हुआ, मेरे घर पुत्र-रत्न पैदा हुआ, जिसका नाम दीपक है। इस चिराग ने घर को रोशन कर दिया। किशोरावस्था का यह दीपक बड़ा सभ्य बालक है। गुरुदेव जी की इस अहेतुकी कृपा से मैं कभी उऋण नहीं हो सकती।

धन्य हैं मेरे सद्गुरुदेव। धन्य है इनकी अपार महिमा। इनका वरद-हस्त हमारे पर सदा बना रहे, इनके मार्गनिर्देश व उपदेश से यह मानवजीवन सफल हो जाये, श्री गुरु-चरणों में मेरी यही प्रार्थना है।

*****

मेरा अपना अनुभव

सतस्वरूप बजाज
एग्जेक्टिव आफिसर (रिटायर्ड, पी.डब्लू.डी)
फरीदाबाद, हरियाणा

आज यह बात शायद अटपटी लगे, परन्तु मेरे अनुभव की बात है कि श्री बंशीधर जी महाराज विरकां वाले अपनी कुटिया विरक गाँव में ही बैठे-बैठे वहाँ भण्डारा बनाने वाले लोगों को बता देते थे, कि आज इतने लोग कुटिया आने वाले हैं, उनका भी भोजन बना लेना। सच, दुपहर तक उतने ही लोग आ जाते थे। एक बार मैं अपने माता पिता और फिरोज़पुर की संगत के अन्य छः व्यक्तियों के साथ पंजाब प्रान्त के भठिण्डा जिला में विरक गाँव गुरु जी के पास कुटिया गया। सब ने प्रणाम किया, गुरु जी बोले, अरे मायावंती देख वे लोग आ गये, इन्हें पानी पिलाओ फिर खाना खिलाओ। मेरी माता जी बोली गुरु जी (जिन्हें पिता जी भी कहते थे) हम भोजन बना लेते हैं। पिता जी ने कहा भोजन तुम्हारा बना रखा है। माया माता जी बोले, पिता जी ने हमें सुबह ही बता दिया था कि नौ व्यक्ति आ रहे हैं उनका खाना बना लें। हम सुन कर दंग रह गये। सोचा सन्त जानी जान होते हैं।

हम दो दिन वहीं कुटिया में रहे। मोगा से एक परिवार आया। उस में एक महिला थी, वह औलाद के लिए आई थी। बैठी रही, कुछ कह नहीं पा रही थी। पिता जी हँस कर बोले क्यों दुर्गा? उधेड़-बुन में लगी हुई है, कहती क्यों नहीं, तुम्हें पुत्र चाहिये। वह उठकर पिता जी के चरणों में पड़ गई, पिता जी आप जानी-जान हो। मुझ पर कृपा करो। चार लड़कियाँ है परिवार वाले बहुत ताने देते हैं कि अरे यह तो नपुती है, इसके के पुत्र नहीं होना, यह कुल की समृद्धि नहीं करेगी। पिता जी बोले, अच्छा फिर अगले वर्ष आना। अगले वर्ष वह पुत्र लेकर पिता जी के चरणों में गई, अब उसके दो पुत्र चार लड़कियाँ है। उन महापुरुष का वाक्य खाली नहीं जाता था। मेरे अपने परिवार की बात है, मेरी बड़ी बहिन श्रीमति ज्ञानदेवी के घर बच्चा नहीं होता था। मेरी माता ईसरादेवी बजाज मेरी बहिन को साथ ले कर गुरुजी के पास कुटिया में गई। माता जी ने गुरुजी को ज्ञानदेवी बहिन की दुःख गाथा सुनायी। गुरुजी सहज स्वभाव से बोल पड़े "रोती क्यों है, ले कुड़िए संभाल" बस फिर लड़कों की लाईन लगने लगी। छः लड़के हुए, एक लड़की हुई। अब उनके सँभालने की परेशानी हो गयी। बच्चे ज्यादा आमदनी कम। फिर गुरु जी महाराज के पास गई। रो-रो फरियाद करने लगी। गुरु जी बोले,

बच्चे नहीं थे तब रोती थी, अब बच्चे हैं तब भी रोती हो। बहिन बोली, अब इनके पालने को भी कुछ चाहिए। हम तो संसारी व्यक्ति हैं सांसारिक वस्तुओं की ही माँग करते रहेगें। इस कीचड़ से कभी निकालोगें तो कुछ परमार्थ की सोच पायेगें अच्छा फिर रो न, बंसी वाला सब ठीक ही करेगा। अब उन्हीं बच्चों पर गुरु महाराज की बड़ी कृपा हो गई कि कई फैक्ट्रियों के मालिक हैं। भक्तों की फरियाद पर वे सुनाई करते थे बड़े दयालु थे गुरु महाराज!

मेरे पिता बहाली राम बजाज की त्यागमूर्ति श्री बंशीधर महाराज पर, और उनके परम शिष्य श्री केशवानन्द महाराज पर बड़ी श्रद्धा थी। पूज्य ऋषि जी की प्रेरणा, बल एवं उत्साह से मेरे पिता जी ने सारा दिन मज़दूरों पर खड़े रहकर, दुकान का काम काज बच्चों पर छोड़ कर फिरोज़पुर शहर में गुरु महाराज श्री बंशीधर की स्मृति में निर्धननिकेतन मन्दिर के निर्माण में जी जान से सेवा की। मेरी माता ईसरादेवी, बहिन श्री राजरानी ने संत्सग कीर्तन कर गुरु-नाम का डंका घर-घर बजाया। पिता जी के बाद भाई श्री धर्मपाल जी ने निर्धन निकेतन मन्दिर का सारा कार्य अपने कन्धों पर ले लिया। घर-घर प्रति रविवार श्री रामचरिमानस का अखण्ड पारायण कर प्राप्त दान धनराशि से मन्दिर के निर्माण कार्यों को गति दी। सारा परिवार जीवन के आखरी दम तक गुरुघर की सेवा में समर्पित रहा।

आज मेरा छोटा भाई श्री रामपाल बजाज निर्धन निकेतन मन्दिर के प्रधान पद पर रह कर जी-जान से सेवा कर रहा है। उसने पूज्य ऋषि जी की आज्ञानुसार उस मन्दिर में कई सन्त-सम्मेलनों, ज्ञान-भक्ति सम्मेलनों का सुन्दर आयोजन किया है। यह सब ऋषि जी की कृपा का बल है। गुरु घर की निष्ठा ऐसी बनी रहे यही वरदान माँगते हैं।

श्रद्धेय ऋषि जी महाराज पूज्य गुरुदेव श्री बंशीधर जी की आत्मा हैं। बाहरी स्वरूप से और अन्तः प्रकृति से दोनों एक ही हैं। मैं ध्यान करता हूँ तो मेरे अंग-संग रहते हैं, कभी ऋषि जी के रूप में धोती कुर्ता पहने टोपी धारण किये नजर आते हैं, तो कभी लम्बा चोला पहने खुले बाल ठुमक ठुमक चले नजर आते हैं।

*****

हिमालयी फूलघाटी और हेमकुंड लोकपाल

दिगम्बरदत्त थपलियाल सेवा निर्वृत्त
ए.डी.एम., सिविल सेवा, उ०प्र०

इंग्लैड के प्रसिद्ध पर्वतरोही यफ.यस. स्माइथ की पुस्तक 'फूलों की घाटी' (वैली आफ फ्लावर्स) पढ़ने के बाद मेरे लिए उसे देखना आवश्यक हो गया। कारण यह था कि अपनी विभिन्न हिमालयी यात्राओं में मैनें जिन सुन्दर फूल घाटियों को देखा और पाया था उनका परिचय पर्यटन साहित्य और मानचित्रों में नगण्य सा मिला। इसके विपरीत पर्यटन सम्बन्धी लेखों अथवा मित्रों के साथ वार्तालाप में जब भी हिमालयी फूलघाटी का उल्लेख होता तो उसका तात्पर्य भ्यूँडार फूलघाटी से होता जिसे स्थानीय बोली में 'भ्यूँडार बुग्याल' कहा जाता है अतः हर साल गर्मी और बरसात में मैं इस फूलघाटी की यात्रा के मनसूबे बनाता रहता था। इस बार यह विदित होने पर कि नगर का एक सिख परिवार फूलघाटी से लगे क्षेत्र में स्थित हेमकुण्ड लोकपाल की यात्रा में जा रहा है, मैंने भी उनके साथ यात्रा का कार्यक्रम बना लिया। अगस्त का दूसरा पखवाड़ा था जब सिख परिवार के साथ इस यात्रा के लिए मैं ऋषिकेश पहुँचा। मुझे इसके लिए केवल पाँच दिन का समय मिला था। फूलघाटी की यात्रा के लिए ऋषिकेश बदरीनाथ मोटर मार्ग पर पहला पड़ाव गोविन्द घाट पड़ता है।

गोविन्दघाट ऋषिकेश से २७० कि०मी० है। यहाँ से भ्यूँडार फूल घाटी जाने के लिए बस छोड़ देनी होती है और १५ कि०मी० पैदल मार्ग तय करना होता है। इसके आगे बदरीनाथ के लिए केवल २८ कि०मी० का मोटर मार्ग रह जाता है। ऋषिकेश से ५ बजे प्रातः की मोटर से चलकर हम लगभग ५ बजे शाम गोविन्दघाट पहुँच गये। गोविन्दघाट अलकनन्दा के तट पर लगभग ६ हजार फुट की ऊँचाई पर है। यहाँ गुरुद्वारा में यात्रियों के टिकने की अच्छी व्यवस्था है। गुरुजी के लंगर से हर यात्री को दो वक्त का चाय नाश्ता और दो वक्त का भोजन मिलता है। जब हम गुरुद्वारे पहुँचे तो लगभग हजार सिख यात्री जमा था जिनमें से कुछ हेमकुण्ड लोकपाल के दर्शन कर लौट चुके थे और बाकी अगली सुबह दर्शन हेतु जाने वाले थे।

गुरुद्वारे के एक बड़े कमरे में जहाँ लगभग २०-२५ यात्री पहिले से थे, हमें लेटने का स्थान मिल गया। सायंकाल की चाय के बाद लंगर की पंक्ति में बैठने से पूर्व मुझे रूमाल या तौलिये से सिर ढकने का आदेश हुआ और "वाहे गुरू, सत श्री अकाल" के उच्च्व नाद के साथ हमें भोजन परोसा गया। सिख परिवार

ने ओढ़ने बिछाने के लिए भंडारगृह से कम्बलें ली और मैंने अपना स्लीपिंग बैंग खोला। अगली सुबह चाय नाश्ते के बाद सिख महिलाओं के पैदल सफर के लिए घोड़ों का प्रबन्ध किया गया और बच्चे जो घोड़े पर नहीं जा सकते थे, उनके लिए कंडियाँ की गई। ये लम्बी कंडियाँ इस प्रकार बुनी जाती हैं कि बच्चा अथवा अपंगु व्यक्ति उनमें कुर्सी की तरह बैठ जाता है और मजदूर कंडी को पीठ पर लगाकर ले जाता है। सिख परिवार ने एक मज़दूर को अपना सामान ले जाने के लिए भी किया जिसके पास मैंने भी अपना स्लीपिंग बैंग और अन्य सामान दे दिया। एक बैग में नाश्ते का सामान, कैमरा, छाता, बनियान और कनटोपी लेकर मैं भी चल पड़ा।

गुरुद्वारे के बगल से बहती अलकनन्दा को झूला-पुल से पार करने के बाद हमने पैदल यात्रा प्रारम्भ की। हमारा आज का पड़ाव घाँघरिया था जिसके लिए हमें पुल से ही १५ कि०मी० की खड़ी चढ़ाई मिली। यह चढ़ाई पहाड़ के दक्षिण पनढल पर है जिसके प्रथम दो कि०मी० के बाद हमें घने जंगल से आच्छादित मार्ग मिला। मार्ग के नीचे चौलाई की फसल से ढके सीढ़ीनुमा खेतों के बीच पन्द्रह बीस पक्के मकान गाँव का रूप देते हैं। उनके सामने घना सदाबहार जंगल है। मार्ग के समानान्तर भ्यूँडार गाड (नदिका), बड़े बेग से शोर करती हुई चट्टानों और वृक्षों के बीच से कूदती फाँदती दिखाई देती है। हमारी दायीं ओर एक ऊँचे शिखर से सूरज निकल रहा था। आसमान साफ था और प्रातः काल के निर्मल शीतल वातावरण में चढ़ाई लेने में आनन्द आ रहा था।

पहाड़ों और विशेषकर हिमालय में प्रातः काल सदैव निर्मल नहाया सा मिलता है। दिन की थोड़ी बहुत धूल-गर्द रात्रि की ठंड में बैठ जाती है और पौ फटने पर शीतल वायु के झोंकों में सारा वनस्पति जगत ताजगी और स्फूर्ति से पूरित लगता है। वातावरण की नितान्त शाँत निर्मलता और हरी, भरी धरती, मन को घेरे चिन्ता, विषाद तथा तनाव को हर लेती है। सूरज की किरणें टहनियों और पत्तियों के बीच से मार्ग खोजती या भेंट करती सी लगती हैं। भ्यूँडार गाड का अपना कल-कल संगीत सारी घाटी में गूँजता हुआ रास्ते का साथी बन जाता है। चढ़ाई लेते हुए पसीने की बूदें माथे पर छलक आती हैं औरं ओंठ सूखने लगते हैं। तब तक मार्ग के हर दो किलोमीटर पर "आइये बैठिये ठंडा पीजिये, चाय नाश्ता कीजिये" का स्वर मार्ग के किनारे बैठा दुकानदार देता है जिसने घास-पात की झोपड़ी में यात्री के बैठने के लिए दरी, कालीन, चद्दर, बिछाई हुई है और गरम चाय, दूध, गर्म पकोड़ी और नमकीन तैयार रखे हैं। धनी-मानी यात्री के लिए उसके जलपान गृह में सामान्य

मूल्य के दुगने तिगुने पर कैम्पा कोला, डबल-सेवन की ठंडी बोतले और अन्नानास, सेब, सन्तरे के बंद डिब्बे भी उपलब्ध हैं।

चढ़ाई के १० कि०मी० निकलते हैं कि सामने हाथी-पर्वत के हिमश्रृंगों पर आँखें टिक जाती हैं। इन हिमशृंगों से मेरी दृष्टि उनकी जड़ पर बसी देवरारू, रई, कैल की सौ-सौ फुट से भी ऊँची विशाल वृक्षों की कतारों पर खिसक आती है जिनके बीच में चमकती, उज्ज्वल, निर्मल, उछलती कूदती हिमशिखरों की दुहिता सी एक जलधारा बहती हैं। इस जलधारा के साथ मेरी सौदर्यानुभूति भी उतरती हुई नीचे संगम पर आ जाती है जहाँ यह जलधारा भ्यूँडार गाड में समाती है

इस संगम के ऊपर भ्यूँडार गाँव बसा है। लगभग ८ हजार फुट की ऊँचाई पर स्थित यह २५-३० पक्के मकानों का समूह है। भ्यूँडार इस क्षेत्र का अन्तिम गाँव है। इस गाँव के नीचे अब तक कुकाट प्रजाति के वृक्षों के घने वन से हम गुजरे थे लेकिन अब देवदारु और रई के विशाल सुडौल वृक्षों की पंक्तियाँ देखते ही बनती है। इस गाँव के ऊपर के पर्वतों की बनावट में भी अन्तर स्पष्ट दिखता है। यदि गाँव के नीचे के पहाड़ कहीं-कहीं पर समतल और सीढ़ीदार खेत कृषि और आवास-गृह निर्माण योग्य हैं तो इस गाँव के ऊपर की खड़ी पर्वत श्रेणियाँ विशाल वृक्षों से आच्छादित जगह-जगह हिमस्खलन से खंडित दिखाई देती हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि गाँव के ऊपर के भूखंड वर्ष की अधिकांश अवधि में हिम से ढके रहते हैं और बर्फ पिघलने के साथ जगह-जगह टूटते रहते हैं। भ्यूँडार से घाँघरिया तक पाँच किलोमीटर के क्षेत्र में गिरिराज हिमालय की हजारों फुट ऊँची मेखलाओं की विशाल आकृतियाँ मार्ग को घेरे खड़ी मिलती हैं जिनके बीच से मार्ग के समानतर निर्मल और निर्वाध उन्माद लिए लक्ष्मण गंगा हिमश्रृंगो का नीर लिये हुए अत्यन्त द्रुत गति से शिलाखंडों के बीच से शोर करती हुई उतरती है। जिसे लकड़ी के काँपते पुलों से पार करने में आनन्द आता है। पवित्र हेमकुण्ड इस नदी का निर्गम स्थल है। नीचे की घाटियों में जहाँ धरती की संपन्नता, सानुकूलता और समरसता में जीवन के प्रति राग और आसक्ति है, अब धरती से लंब बनाते, हिमभार से स्खलित वृक्षविहीन, विशाल गगनचुंबी शिखरों का गांभीर्य और तटस्थ अनासक्ति, अनमनी, उदासी और विराग बन कर मन पर छा जाती है।

फूलघाटी और हेमकूंड की यात्रा से लौटते हुए पुरुष और महिलायें मिलते हैं । उनका आकर्षक अंग सौष्ठव, वर्ण और हंसते-खेलते चेहरों का दर्शन इस खड़ी चढ़ाई पर बडी परितुष्टि देता है जिनमें से अधि-

कांश के पास खटटी-मिट्टी टॉफी, मिश्री और छोटी इलायची रहती है जिसे वे चढ़ाई लेते हुए यात्री की प्यास और थकावट दूर करने के लिए बाँटने में चूकते नहीं।

भ्यूँडार के आगे २ कि०मी० की खड़ी चढ़ाई के बाद विशाल वृक्षों की झुरमुट में कुछ चौरस मार्ग पर मैं आराम की साँस लेता हूँ। नीचे की ओर दनदनाती हुई लक्ष्मण गंगा को देखने को मुड़ता हूँ कि नीचे नदी तट पर भ्यूँडार गाँव, उसके चारों ओर पर्वत शिखर के अन्तिम छोर तक फैले रई सुरई, देवरारु के सघन वन और दक्षिण पश्चिम के क्षितिज को छूती हुई हरी-भरी ऊँची-ऊँची पर्वत श्रंखलायें आँखों को तृप्त करती हैं। इसके अगले दो कि०मी० पर दो उच्च शिखरों के बीच से झाँकता हिमश्रृंग मेरे कदम रोक देता है। देवदारु वृक्षों की छाया में खड़े होकर इस अद्‌भुत दृश्य को कैमरे की सहायता से कैद कर लेना चाहता हूँ। फिर एक विशाल वृक्ष के तने पर पीठ टिका कर, देर तक इस मनहर दृश्य को देखता रहता हूँ।

गोविन्द घाट से प्रारम्भ १५ कि०मी० की चढ़ाई का अन्तिम पग, घाँघरिया (१० हजार फुट) पर ही रुकता है। सौ-सौ फुट से भी ऊँचे घने वृक्षों के बीच बसे घाँघरिया पहुँच कर बहुत आराम मिला। इस स्थान पर वन विभाग का विश्राम भवन और गुरुद्वारा के अतिरिक्त दुकानों का छोटा समूह है। दुकानों में चाय, नाश्ता, भोजन और यात्रा सबंधी छोटी-मोटी वस्तुयें भी मिलती हैं। हालाँकि यात्रा मार्गो पर स्थित सभी विश्राम भवन अब निर्धारित किराये पर पर्यटकों के लिए भी रात्रिवास के लिए सुलभ हैं लेकिन ये बहुत कम खाली मिलते हैं। अधिकारी वर्ग और पर्यटक अपनी यात्रा से पूर्व इन्हें अपने लिए आरक्षित करवा लेते हैं। अतः रात्रिवास के लिए एकमात्र उपयुक्त स्थान गुरुद्वारा ही रहता है। गढ़वाल मंडल विकास निगम द्वारा अब इस स्थान पर टिकने के लिए आधुनिक सुविधासम्पन्न कमरों और डॉरमिटरी का निर्माण किया जा चुका है।

मैं घाँघरिया लगभग ११ बजे पूर्वाह्न पहुँच गया था। सिख परिवार मुझसे करीब दो घंटे बाद पहुँचा अपराह्न तक गोविन्द घाट में टिके सभी सिख यात्री और पर्यटक घाँघरिया पहुँच चुके थे और गुरुद्वारा और दुकानों में काफी भीड़ होगयी थी। सिख परिवार भोजन और रात्रिवास के लिए गुरुद्वारे में चला गया। मै विश्राम भवन पर गया तो देखा कि दो व्यक्ति सैनिक वर्दी में विश्राम भवन की दरियाँ और फर्नीचर धूप में सूखा रहे हैं। पूछने पर विदित हुआ कि सेना के उच्च अधिकारियों के लिये पूरा विश्राम भवन चार रात्रियों के लिए आरक्षित है और वे आज सायंकाल तक पहुँच सकते हैं। मैं वापस गुरुद्वारा आया और सिख परिवार को सूचित कर गया कि

मेरे लिए भी इस भीड़ के बीच रात गुजारने के लिए छः फुट लम्बा दो फुट चौड़ा स्थान सुरक्षित करना न भूलें। मैं चाहता था कि आज अपराह्न में फूलघाटी का भ्रमण कर वापस घाँघरिया लौट जाऊँ जिससे कि अगली सुबह हेमकुंड के दर्शन कर शाम तक गोविन्द घाट लौट सकूँ। लेकिन दोपहर आसमान घिर गया और हल्की बूँदाबाँदी शुरू हो गयी। संयोग से दुकान पर बैठे दो बंगाली युवकों से मेरा परिचय हो गया। इनमें से प्रथम तो वर्णपुर के इस्कों का इन्जीनियर था तथा दूसरा वनस्पति विज्ञान का आचार्य। ये दोनों युवक मुझसे कहीं अधिक हिमालय प्रेमी निकले और अब तक वे इस आयु मे नेफा, काश्मीर और उत्तराखंड हिमालय की बीस से अधिक यात्रायें कर चुके थे। होटल की भट्टी के पास हम तीनों ने कुर्सियाँ पास-पास खींच लीं और अपने-अपने हिमालय संस्मरण सुनाने लगे। चाय और नाश्ता अँधेरे तक चलता रहा ।

भोजन के पश्चात् जब हम गुरुद्वारे पहुँचे तो अधिकाँश यात्री सो चुके थे। किसी तरह उनके बीच हम तीनों ने भी अपने-अपने स्लीपिंग बैग खोलनें भर के लिए स्थान निकाल लिया। आज सायंकाल की वर्षा के कारण ठंड बढ़ गयी थी अतः इस बड़े हॉल के सभी दरवाजे खिड़की मजबूती से बंद कर लिये गये थे। मुझे हल्की नींद आई थी कि महिला और पुरूष यात्रियों के नथूनों से निःसृत घरघराहट और विचित्र ध्वनियों से मैं जाग गया। मेरा सोना मुश्किल हो गया। मैं कमरें से बाहर आया और निपट अँधेरे में बरामदे में खड़ा हो गया। निश्चय कर दिया कि अगली रात अपना स्लीपिंग बैंग इस हॉल के बजाय अन्यत्र ले जाकर सोऊँगा।

अगली सुबह सिख परिवार हेमकुंड की यात्रा के लिए चल पड़ा। मैं और दो बंगाली युवक चाय नाश्ता कर फूलों की घाटी (४ किलोमीटर) के लिए निकले जहाँ गत रात्रि की वर्षा के बाद निर्मल नभ के नीचे स्वच्छ वायु और ओस से नहाई और फूलों से सजी वनस्पति हमारा इन्तजार कर रही थी। मेरे सुझाव पर दोनों मित्र दिन का भोजन साथ ले जाने को राजी हो गये। घाँघरिया से एक कि०मी० आगे से मार्ग फटता है। दाहिनी ओर का मार्ग ४ किलोमीटर की खड़ी चढ़ाई लेता हुआ हेमकुंड को जाता है और बाईं ओर का मार्ग कुछ दूर समतल चलकर उन दो ऊँचे पर्वतों के बीच से गुजरता है जिन्हें कल घाँघरिया के २ कि०मी० नीचे से मैनें देखा था। इन दो पर्वतों की जड़ पर फूलघाटी से आती पुष्पावती नदी बड़े वेग से गुजरती है जिसे लकड़ी के पुल से हमने पार किया। फिर डेढ़ कि०मी० चढ़ाई लेने के बाद फूलघाटी के दर्शन हुए।

यह घाटी ऊँचे पर्वत शिखरों और हिमश्रृंगों के बीच १२,००० फुट पर स्थित है। इसके दोनों छोर लगभग ४ कि०मी० समानतर चलते हुए रतावन हिमशिखर पर मिलते हैं जो पूरा हिमाच्छदित श्रृंग जड़ से लेकर

चोटी तक बिलकुल सामने दिखता है। रतावन से निकलती पुष्पावती नदी घाटी के बीच से निकलती है. जिसे चारों ओर घेरे उच्च पर्वत और हिमशिखरों से निकलते असंख्य झरने, नाले और हिमनदिकायें निरन्तर भरते रहते हैं। पूरब में हिमशिखर का उच्च भाग पर्वतों के बीच से झाँकता है और उत्तर में ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के बीच हिमशिखर और उनसे निकलते ग्लेशियर घाटी के बड़े भाग को हर वर्ष हिमखण्डों और रेत बजरी से ढकते रहते हैं। घाटी के प्रारम्भ में पुष्पावती का दायाँ तट मिलता है। हल्की ढाल का लगभग तीन कि०मी० लम्बा और २ कि०मी० चौड़ा यह घाटी का मुख्य भाग है जो हरी-भरी बुग्याली घास से लदा मैदान है और जुलाई-अगस्त के दो माह फूलों से सजा रहता है। इस बुग्याली क्षेत्र से दर्शनीय पुष्पों, सुगन्धित वनस्पति और औषधियों में काम आने वाली अनेक जड़ी बूटियों की लभग ४५०० विभिन्न प्रजातियाँ एकत्र की गई हैं। बर्फ जैसे ऐनीमोन, सुनहरी लिली, पीला मार्श, मेरीगोल्ड, एन्ड्रोसेस, सेक्सीफ्रेज, सिडम, लाल व पीला पोटन्टिला, जिरेनियम, जेन्शियन इत्यादि अनेक पुष्पों से घाटी भरी मिलती है। घाटी के शुरू में झाड़ियों के बीच सफेद व हल्का नीला बुराँस (स्थानीय नाम सिमरू) तथा विषकंडार की प्रमुखता रहती है। पुष्पावती के बायें तट से पर्वत शिखर तक पूरा क्षेत्र भोजपत्र के घने जंगल से आच्छादित है जिसमें कस्तूरी मृग, भरल, थेर और घुरल आदि हिमालयी पशु विचरते है।

घाटी के शुरु में हमें ऊँची-ऊँची झाड़ियां मिली। जैसे-जैसे हम आगें बढ़ते गये घाटी चौरस होती गई और पौधा और फूलों से लदी धरती मिलती गई। उत्तर की ओर के एक विशाल ग्लेशियर से निकलती जलधारा के पास हम बैठ गये। सामने रतावन का हिमशिखर था, पूरब में हिममंडित श्रृंग का छोटा भाग और बायें ओर उत्तर में हाथ फैलाने की दूरी विशाल चट्टानों पर लटकें ग्लेशियर दिख रहे थे। धरती हरी-भरी तरह-तरह की वनस्पति और फूलों से आच्छदित थी। इन्जीनियर मित्र ग्लेशियर की ओर पर्वतारोहण की सोचने लगा और वनस्पति विज्ञान का आचार्य अपने कैमरे के अनेक उपकरणों का उपयोग करते हुए पुष्पों के चित्र लेने तथा उनका संकलन करने में लग गया। आसमान बिलकुल साफ था, सूरज की मीठी उष्मा में हल्की ठंडी वायु बह रही थी।

मैं चारों ओर दृष्टि डालता हूँ। पीछे दूर चौरस भूमि पर एक चबूतरा तथा झंडी दिखाई देती है। मैं दोनों मित्रों को वहाँ चलने का संकेत देता हूँ। यह फूलघाटी का सबसे चौरस और खुला तथा पुष्पित भाग है। एक छोटें चबूतरे पर संगमरमर का पत्थर लगा है जिस पर अंग्रेजी लेख के नीचे उसका हिन्दी अनूदित अंश इस प्रकार है :-

"मैं अपनी पलकों को उन शिखरों की ओर उठाऊँगी जहाँ से मुझे शक्ति मिलती है"

जान मार्गरेट लेग की स्मृति में

जन्म २१ फरवरी १८६५,

देहावसान ४ जुलाई १६३६

इंग्लैंड की यह महिला इस पुष्पित घाटी से सैकड़ों पुष्प और वनस्पति की प्रजातियों का संग्रह कर अपने देश को भेजती रही। इस कार्य में व्यस्त एक दिन ग्लेशियर के पास से पैर रपट जाने के कारण लुढ़कती हुई नीचे आई और उसकी मृत्यु हो गई और सदैव के लिए यहीं लेट गई। हिमश्रृंगों और इस फूलघाटी की गुहार को उसने हजारों मील दूर अपने देश में सुना। उसका पीछा करती वह यहाँ आई और उसी की गूँज से सदैव के लिए घुल-मिल गयी।

इन धवल गिरिश्रृंगों का युग-युग से गूँजता आह्वान कैसा विलक्षण आकर्षण लिये है। आर्य ऋषियों ने इस अनुगूँज में जीवन की पहेलियाँ खोजते हुए अध्यात्म और दर्शन के अनोखे प्रसाद रच डाले। पर्वतारोही इसकी मजबूत लेकिन अदृश्य डोर से बँधे हुए प्राणों पर खेलते, हजारों फुट ऊँचे शिखरों पर चढ़ गये और हिमालय प्रेमी पर्यटक समय, धन और मौसम की ओर से बेखबर, अपने पराये से सैकड़ों मील दूर घाटी-घाटी और शिखर-शिखर पर चढ़ता रहा और चलता रहेगा।

हम तीनों ने इस महिला को मन से नमन किया। उसे पुष्प चढ़ाये और टाँफी तथा विस्कुट जो साथ लाये थे उसे आदर से उसके चबूतरे पर रखा। फिर हम फूलघाटी की चौरस खुली भूमि पर रतावन की ओर चल पड़े। लगभग १ घंटे बाद हम घाटी के समतल भाग के अन्तिम छोर पर थे। उसके आगे मुख्यतः मोरेन के रेत बजरी के विशाल समूह हैं और फिर रतावन की जड़ तक ग्लेशियर फैला हुआ है। इस भू-खण्ड में घाटी का विस्तार अधिक हो जाता है जहाँ दूर तक हरी-भरी पर्वतमालाओं, हिमश्रृंगों, ग्लेशियरों, जलधाराओं और झरनों का अद्भुत संगम मिलता है। वहीं बैठ कर हमने दिन का भोजन किया जिसे हम साथ बाँध लाये थे मैंने घड़ी देखी एक बजे अपराह्न का समय हो रहा था। मुझे विचारों का झटका लगा। आज ही हेमकुण्ड के दर्शन पर धाँधरिया लौट आना है क्योंकि कल सुबह घाँघरिया से शीघ्र गोविन्द पहुँच कर ऋषिकेश की मोटर पकड़नी है।

बंगाली मित्रों का फूलघाटी में, आज और कल दोनों दिनो, भ्रमण करने का विचार था अतः उन्हें वहीं छोड़कर मैं वापस लौटा और उस स्थान पर आया जहाँ से हेमकुंड के लिए चार कि०मी० की खड़ी चढ़ाई

शुरू होती है। ३ बजे अपराह्न हो चुका था। इस खड़ी चढ़ाई को लेते हुए मुझे सिख यात्री पर्यटक हेमकुण्ड से वापस आते मिल रहे थे। अकेला मैं ही था जो ऊपर चढ़ रहा था। वृक्षों की छाया में प्रथम तीन कि०मी० निकलते अधिक कष्ट नहीं हुआ इस पहाड़ पर मार्ग की चढ़ाई कम करने के लिए हर १०० अथवा १५० कदमों पर कहीं ५० और कहीं ६० डिग्री के कोण बनाते हुए मोड़ है। वृक्षों की छाया और शीतल वायु के झोंकों के बावजूद मेरी अन्डर शर्ट पसीने से तर हो गयी। प्यास से मुँह सूख रहा था कि अगले कि०मी० के मील के पत्थर के पास दुकान पर कैम्पा-कोला का केरेट दिखाई दिया। तिगुने दामों पर उपलब्ध उसे पीने के लिए दो तीन बार सोचा। अन्त में बोतल उठा ली। उससे बहुत आराम मिला। बैग से विस्कुट, भुनी मूंगफली निकाली और एक टॉफी मुँह में रखकर चढ़ाई पुनः आरम्भ की। जैसे-जैसे कदम आगे बढ़ते गये वृक्ष नीचे छूटते गये और चढ़ाई के अन्तिम दो कि०मी० पहाड़ के वृक्ष विहीन भाग काफी कठिन लगने लगे। पहाड़ का यह ढाल पश्चिम की ओर है जिस पर अपराह्न के सूरज की तीखी किरणें पड़ रही थी। बैग से फोल्डिंग छाता निकाला उसकी छाया ने बड़ा आराम दिया। क्षणभर रूका और पीछे मुड़ा। नीचे का दृश्य देखते ही सारी थकावट मिट गयी। मेरे ठीक ५ कि०मी० नीचे चौरस भूमि पर रई कैल के विशाल वृक्षों की छाया में घाँघरिया की दुकान का झुंड, वन विश्राम भवन और गुरुद्वारा दिखाई दिये। मेरे बाईं ओर हेमकुण्ड से निकलती और खड़े पर्वत से करीब तीन हजार फुट नीचे बड़े बेग से उतरती अनेक सुन्दर प्रपात बनाती और शोर करती हुई लक्ष्मण गंगा थी। दूर दाईं ओर उत्तर दिशा में फूलों की घाटी का हिमनीर लाती हुई पुष्पावती का निर्मल छलछलाता जल चमक रहा था। उसके ऊपर हिमशिखरों की पंक्ति और उनके नीचे का ग्लेशियर जिससे फिसल कर अंग्रेज महिला "मार्गरेट लेग" कब्र में लेट गयी थी, दिखाई दिये। पश्चिम क्षितिज पर हरियाली से भरी ऊँची पर्वतमालाएँ टंगी सी लग रही थीं। कुछ आगे चल कर हिमशिखर से लेकर मार्ग के ऊपर तक फैला ग्लेशियर मिला। इसके नीचे से बहती जलधारा को पार किया। इस चढ़ाई का जब अन्तिम १ कि०मी० रह जाता है तब एक विकल्प लेना पड़ता है, या तो एक कि०मी० की घूमदार चढाई लीजिये या दर्जनों सीढ़ियाँ चढ़कर हेमकुण्ड के दर्शन कीजिये।

४ कि०मी० की चढाई पार करने के बाद १४ हजार फुट ऊँचाई पर खड़ी सीढ़ियाँ चढ़ना भी अलग अनुभूति है। कुछ दूरी पर मुझे ब्रह्मकमल दिखाई दिए। मैनें चढ़ाई छोड़ी और उनके पास चला गया। अपने चारों ओर जहाँ तक देख सका पूरा पर्वत ब्रह्मकमल से आच्छादित था। उसकी तीखी महक वातावरण में भरी थी। जगह-जगह बौटलब्रुश की लाली छाई थी। मैं कुछ देर रूका और फोटो लेने लगा कि हिमालयी पौपी दिखााई दी। फोटो लेने

के लिए प्रकाश और समय बहुत अनुकूल थे। घड़ी देखी चार बजने को थे। तुरन्त लौटा और सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचा कि विशाल निर्मल सरोवर के दर्शन हुए।

हेमकुण्ड, पवित्र हेमकुण्ड साहिब। समुद्र तट से १४,२०० फुट की ऊँचाई पर स्थित भारत का यह तीर्थस्थल तिब्बत में स्थित मानसरोवर से ऊँचाई में कुछ कम है। तीन ओर से उच्च पर्वत शिखरों से निकलती अनेक जलधारायें इसे भरती हैं, झील से लगा हुआ विशाल गुरुद्वारा निर्माणाधीन था। उसके पास ही पूरब में लक्ष्मण जी का छोटा मन्दिर है। मेरे वहाँ पहुँचने पर चार-पाँच यात्रियों को छोड़कर, जो झील के किनारे बैठे थे, सभी वापस चले गये थे। मैं भी झील के किनारे एक चौरस पत्थर पर बैठ गया। वातावरण पूर्ण शाँत और निर्मल था। गत रात्रि की वर्षा से धुली हरी-भरी निर्मल धरती, निर्मल नभ के नीचे, अत्यन्त निर्मल वायु और जलाशय का निर्मल हिमनीर, जैसे दैवी स्वर्गिक और रनैसर्गिक लोक पूर्ण निर्मलता के उपकरणों को लेकर उतरा हो।

ऐसे परिवेश में झील से उतरती लक्ष्मण गंगा का मृदुल स्वर दूर नीचे से उठता हुआ आ रहा था। उसके साथ अपराह्न के सूरज की तिरछी किरणों का नीले जल के ऊपर मूक नृत्य-गान चल रहा था। चेतना के इस दिव्यलोक में लग रहा था जैसे दिक और काल इस अलौकिक दृश्य देखने को कुछ क्षण के लिए रुक गये हैं

हल्के फुल्के बादलों की छाया झील में तैर रही थी। बिलकुल इसी तरह मेरे मन के विशाल आयाम में मन्थर गति से विचारों की श्रृंखलायें तैरती चली आ रही थीं। स्कन्धपुराण के अनुसार आदिकाल में भगवान विष्णु ने अपने शैलदण्ड से पर्वतों को तोड़ कर इस सरोवर का निर्माण किया और कहा कि मैं हर द्वादशी और पूर्णिमा को इस सरोवर में स्नान करने आता रहूगाँ। वे लोकपालों को आदेश देते हैं कि तुम यहाँ निवास करो और इसकी पवित्रता की रक्षा करो इसलिए इस जलाशय को लोकपाल भी कहते हैं और भगवान विष्णु द्वारा पर्वतों को दण्ड से तोड़ कर इस जलाशय का निर्माण होने के कारण इसे दण्ड-पुष्करणी तीर्थ भी कहा जाता है। पौराणिक युग मे भगवान राम से आज्ञा लेकर लक्ष्मण जी ने इस स्थल पर आकर तप किया था कारण कि इसी क्षेत्र से हनुमान जी उनके लिए संजीवनी बूटी लाये थे जब वे लंका में मेघनाथ के बाणों से बिंधे हुए मृत्यु शैय्या पर पड़े हुए थे से मूर्छित पड़े थे। मध्यकालीन युग में, अपने पूर्व जन्म के गुरूगोविन्द सिंह ने मुसलमानों के अत्याचार से पीड़ित, यहाँ आकर तप किया था और पुनः जन्म लेकर सिख पंथ की स्थापना की थी। उनके अनुयायी पंजाब पर राज्य स्थापित कर, देश के इतिहास में पहली बार पठान आक्रमणकारियों को सबक सिखाने देश से बाहर

अफगानिस्तान तक गये और उनका आक्रमण सदैव के लिए समाप्त कर दिया। विचित्र नाटक में गुरूगोविन्द सिंह लिखते है :-

अब मैं अपनी कथा बखनौनी,
तप साधत जेहि विधि मोहि अनौनी।

हेमकुण्ड पर्वत है जहाँ,
सप्त शृंग सोहत हैं तहाँ,

ते हम अधिक तपस्या साधी,
महाकाल कालिका आराधी

उपरोक्त पँक्तियों के प्रकाश में सिख ग्रन्थी हिमालय में सप्त श्रृंगों के बीच स्थित हेमकुण्ड की खोज में निकले और उन्हे सात पर्वत शिखरों से घिरा यह सरोवर मिला। तब से यह पवित्र हेमकुण्ड साहिब, गुरुगोविन्द सिंह की तपस्थली यात्रियों और पर्यटकों के लिए खुल गया।

मैंने छप-छप की आवाज सुनी। मेरे पास ही एक वलिष्ठ सिख युवक स्नान कर रहा था। स्वयं विष्णु भगवान ने अपने स्नान के लिए इस सरोवर को निर्मित किया और लक्ष्मण जी और गुरूगोविन्द सिंह ने अपने तप से इस धरती को पवित्र किया। यह विचार आते ही मैंने कपड़े उतारे और नहाने को जल में उतरा। जल की ठंड इतनी क्रूर थी कि मेरे जिस अंग पर यह हिमनीर लगता तो वह अंग बिलकुल जम जैसा जाता। जलाशय से बाहर निकलते ही हवा अत्यन्त शीतल लगने लगी। मैं पत्ते की तरह काँपने लगा। जल्दी से कपड़े पहने गुरुद्वारा में शरण ली। गुरुग्रन्थ साहब के पास बैठे ग्रन्थी जी ने मेरी हालत देखी और बगल के कमरे में जाकर चाय पीने का संकेत किया। उस कमरे की भट्टी में आग धधक रही थी और बड़े-कड़े पतीलों पर चाय का पीनी खौल रहा था। सेवादार ने एक बड़े गिलास में चाय भरकर मुझे थमा दी। मैं भट्टी के पास बैठ गया। बैग से विस्कुट निकाले। पहिला गिलास, दूसरा गिलास और तीसरा गिलास। सेवादार देता गया और मैं पीता गया। चाय और भट्टी की आग के कारण मेरी कँपकँपी काबू में आई। मैं होश में आया। जीवन में इतनी अधिक चाय एक ही बार न कभी पी, न कभी पी सकूँगा। सेवादार ने बताया कि मेरा चेहरा ओर हाथ पैर सफेद हो रहे थे और काँप रहा था इसलिए उसके पास मुझे चाय के गिलास पर गिलास पिलाने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था।

मेरे आश्वस्त होने पर सेवादार पंजाबी भाषा में उलाहना दे रहा था कि मैं इतनी देर से यहाँ क्यों आया और फिर ५ बजे शाम नहाने की क्या सूझी। मेरी दृष्टि सामने रखी गुरूगोविन्द सिंह की तस्वीर पर पड़ी जिसे सेवादार ने फेन कमल और ब्रह्मकमल से सजाया हुआ था। सेवादार बताने लगा कि सरोवर के चारों ओर ब्रह्मकमल खिले हैं लेकिन फेन कमल बहुत ऊपर सप्त शृंगों पर खिलते हैं जहाँ अब जाने का समय नहीं रहा। सेवादार कहने लगाकि गुरूदारे में निर्माण कार्य चल रहा है और यहाँ रात्रिवास की सुविधा नहीं है। अतः उसने मुझे तुरन्त वापस घाँघरिया जाने को कहा।

मैं गुरुद्वारे से बाहर आया। लक्ष्मण मन्दिर में जाकर माथा टेका और झील के ऊपर चला गया जहाँ सारा क्षेत्र ब्रह्मकमल से आच्छादित था। ठंडी हवा चल रही थी। पुलोवर पहने, कनटोपा और मफलर से मुँह और गला ढक कर मैं कुछ देर खड़ा रहा और नीचे उतर आया। साढे छः बजे सायंकाल हो रहा था। एक घंटा भर अंधेरा होने को था। मैं तेज कदमों से नीचे उतरने लगा। मैं अकेला वापस जा रहा था। दुकानदार, दुकाने बन्द कर घाँघरिया चले गये थे। एक घंटे में मैं चार कि०मी० नीचे आ गया। हिमशिखरों पर सूरज अस्त होते ही एकदम अंधेरा हो गया। बैग से टार्च निकाली और संभले पग से ८.३० बजे तक घाँघरिया वापस आ गया। (हेमकुण्ड में अब विशाल गुरुद्वारा बन चुका है और नये लक्ष्मण मन्दिर का निर्माण हो चुका है)।

घाँघरिया पहुँचने पर थकावट महसूस हुई। आज दिन भर चलता ही रहा समय की कमी के कारण न तो फूल घाटी और न हेमकुण्ड लोकपाल में यथेष्ट समय तक रूक सका। जलपान गृह में भोजन किया और सिख परिवार से अपना स्लीपिंग बैग लेकर सोचने लगा कि कहाँ सोया जाये। गुरुद्वारे में भीड़ यथावत थी जिसके बीच बंगाली साथी खर्राटें ले रहे थे।

मैं स्लीपिंग बैग लेकर विश्राम भवन पर आया। आज भी सैनिक अधिकारी नहीं पहुँच पाये थे और भवन के दोनों कमरों के बाहर ताले पड़े थे। मैने स्लीपिंग बैग खोला और उसके अन्दर घुस गया। धीरे-धीरे गहरी नींद आ गयी।

सहसा मेरी नींद टूटती है। मैं हाँफ रहा हूँ। मुझे पसीना आ रहा है। बड़ा डरावना स्वप्न देखा है मैंनें। एक विशालकाय काला पुरुष मेरे पेट के ऊपर बैठा है और बार-बार कहता है। "मैं इसका गला घोटता हूँ, इसका गला घोटता हूँ।" उसकी काली मोटी बाहें मैं स्वप्न में देख रहा हूँ। मैं स्वप्न में सोच रहा हूँ कि इसकी

काली विशाल बाहें लौह निर्मित हैं। इसका एक हाथ भी मेरे गले में पड़ा तो मेरा दम घुट जावेगा। मेरे चारों ओर युवतियाँ विचित्र घाघरा-नुमा परिधान पहिने और मशालें लिए नाच रही है और कह रही हैं "चलो इसे साथ ले चलें"।

स्वप्न चल रहा है। मैं उस काले लौह पुरुष के चेहरे पर देखता हूँ। उसका सिर धुयें से पूर्णतया ढका है जिसके अन्दर से दो आखें चमक रही हैं। वह बार-बार मेरा गला पकड़ने को हाथ उठाता है लेकिन उसका हाथ आधे में ही रूक जाता है। उसकी असमर्थता देखकर मुझे उसकी आँखों पर देखने का साहस आता है। उसकी आँखें झुक जाती है और वह उठ जाता हैं। वह और मशाल लिए हुई युवतियाँ बरामदे से होकर विश्राम भवन के पीछे चली जाती हैं।

मैं बैठ जाता हूँ। अपने आधुनिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर इस स्वप्न को समझने की कोशिश करता हूँ लेकिन सहायता नहीं मिलती है। न अमेरिका के नए परा-विज्ञान के अन्वेषक डॉ० जार्जमीक की उपलब्धि से, कि जीवन सतत प्रवाहित प्रक्रिया है जिसमें मृत्यु जैसी कोई चीज नहीं है और न गीता का ज्ञान कि आत्मा अमर है और यह शरीर वस्त्र मात्र हैं मेरे इस मृत्यु भय को नही हटा पा रहे हैं।

टॉर्च से घड़ी देखता हूँ अभी १२ भी नहीं बज पाये हैं। अपनी सुरक्षा हेतु अपना मोटा डंडा दाई ओर संभालता हूँ और टॉर्च बायें हाथ में रखता हूँ। अपने पर हँसी आती है। यह किससे सुरक्षा की तैयारी कर रहा हूँ? कोई सामने आये तो उससे निपटा जाये। लेकिन कहीं वह काला लौह पुरुष आ गया! बाप रे! उसका एक लोहे का हाथ मेरा काम तमाम कर देगा।

इस निपट एकान्त अँधकार में किससे बात करूँ। मैं हूँ दिवा स्वप्नों का आदी और भोगी। आज दिन भर फूलघाटी और हेमकुण्ड में मैंने दिव्य दिवा स्वप्नों में विचरण किया था फिर उनकी यह विपरीत परिणाम क्यों? मैं सौंदर्य के दिव्य लोक में जाना चाहता था फिर ये यक्ष, किन्नर युवतियाँ, प्रेत लोक के इस काले पुरुष की सहायता से मुझे कहाँ ले जाने आई थी?

गला सूखता है बैग से टॉफी निकाल कर चूसता हूँ। सोने की कोशिश में स्लीपिंग बैंग मे पुनः घुसता हूँ। बचपन के भूत भूतनियों के किस्से आ आकर मुझे घेरते हैं। पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकों में पर्वतारोहियों

का विचित्र आत्माओं से अचानक साक्षात्कार और विचित्र ध्वनियों का उन ऊँचाईयों पर श्रवण, मैं याद करने लगता हूँ।

पुनः स्लीपिंग बैग में उठ बैठता हूँ। दूर मैदानों से पत्नी की स्मृति, बच्चों का प्यार और माता-पिता की ममता मुझे पुकारती है। अगर सचमुच वह काला लौह पुरुष मेरा गला दबा देता या इस झूठे भय से पीड़ित मेरी हृदय गति रूक जाती? अपने जीवन के प्रति मेरी ममता उमड़ आती है।

टूटी-टूटी झपकियाँ, टूटी-टूटी नींद में कुछ घंटे निकलते हैं। टार्च उठाता हूँ घड़ी देखता हूँ और सोने की कोशिश करता हूँ।

पक्षियों की चह-चहाहट से मेरे कान खड़े होते है। दूर क्षितिज पर रतावन के हिमशिखर की सफेदी, पौ फटने की सूचना देती है। लेकिन घाँघरिया अभी वृक्षों की साया के गहरे अंधकार में डूबा है।

मेरे बांई ओर विश्राम भवन के नीचे से लक्ष्मण गंगा के स्वरों के साथ हल्की ठडी हवा बहती है। मैं जल्दी से स्लीपिंग बैग लपेट कर कंधे पर लटकाता हूँ, दूसरे कंधे में बैग लेता हूँ और डंडा संभाले गाविन्दघाट की उतराई के लिए कदम उठाता हूँ। दुकानों के पास बाँधें टट्टू घोड़े हिनहिनाते हैं।

पर्वत शिखरों और क्षितिज के बीज सुफेदी फैल रही है। लेकिन मार्ग अभी अंधेरे में ही डूबा है। मै टॉर्च के प्रकाश के विश्राम भवन से बाहर निकलता हूँ। अभी सुबह के ५ नही बज पाये हैं। भ्यूँडार गाँव के पास की दुकान में चाय बिस्कुट लेकर मैं तेजी से उतार पर चलता हूँ। सुबह ९ बज रहे थे कि मैं गोविन्दघाट मोटर स्टॅाप पर था, जहाँ बदरीनाथ से चली हुई पहली बस मुझे मिल गई शाम ६ बज रहे थे कि मैं ऋषिकेश रेलवे स्टेशन पर ट्रेन की इन्तजारी कर रहा था।

(हिमालय दर्शन पुस्तक से उद्धृत)

संत मिलन सम सुख जग नाहीं

रमेश अग्रवाल,
एडमन्टन (कनाडा)

जन्म स्थान पूर्वीय अफ्रीका, केनीया में होने के कारण भारत से दूर ही बचपन व्यतीत हुआ। भाग्यवश अंग्रेजों ने भारतीय बच्चों के लिए हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था बना रखी थी। स्कूल के एक अध्यापक से मुन्शी प्रेमचन्द की कहानियाँ सुनने से हिन्दी भाषा पढ़ने में रूचि पैदा हो गई इसी लगन में पुस्तकालय का जितना भी हिन्दी साहित्य था, पढ़ डाला।

इसी साहित्य को पढ़ने से भारत देश का एक मानचित्र मन में उभरा जो कुछ इस प्रकार से था। भारत एक ऋषि-मुनियों, त्यागी-तपस्वियों का देश है। जहाँ पर विश्व के प्राचीनतम साहित्य वेदों का प्रचार एवं आचरण है। यह ऋषि मुनि बढ़े हुए केशों व जटाओं, बाले विश्व के हित का चिन्तन करते हुए विचरण करते हैं, यह चित्र मेरे मानस-पटल पर बना रहा।

सौभाग्यवश विवाह के पश्चात हरिद्वार जाने का सुअवसर मिला। कुछ सम्बन्धियों सहित निर्धन निकेतन आश्रम पहुँचे। गंगा के पावन घाट पर विचरण कर ही रहे थे, इतने में सामने से किसी दिव्य आभा से युक्त सन्त का आगमन हुआ। उन्हें देखते ही वह प्राचीन ऋषियों का चित्र जो वर्षों से मन में बना रखा था आज मानो साकार हो गया और एक अनुभवातीत सनसनी सी सारे शरीर में दौड़ गई जिसका वर्णन वाणी या किसी लेख द्वारा करना कठिन है। जिसकी खोज जन्म-जन्म से अन्तर्मन में थी वही आज साकार हो गई। दिव्य तेज सम्पन्न हमारे गुरुदेव ऋषि केशवानन्द जी महाराज सामने थे। इसी यात्रा में इनके द्वारा दीक्षा-विधि प्राप्त हुई। समय की सीमाओं से बंधे हुए हम केनिया लौट आए वहाँ से कैनेडा आकर बस गये । गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र का दस वर्षों तक लगन से जप करते रहे, परन्तु गुरु से प्रत्यक्ष संपर्क न हो पाया। दस वर्षों के पश्चात ऋषि जी महाराज कैनेडा आए तो हमारी प्रसन्नता और सुख का ठिकाना न रहा। गोस्वामी जी के शब्दों में "संत मिलन सम सुख जग नाहीं।" इस उक्ति की अनुभूति हुई। इस के पश्चात जितनी बार भी ऋषि जी महाराज से मिलन हुआ, वही अनुभव, वही सुख निरन्तर परिवर्धित होता रहा।

आज एडमंटन कई सतों का नियमित आगमन होता है। वही आनंद जो गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने जीवन में किया होगा, हमें मिल रहा है। यह सुख, आनन्द हमें निरन्तर प्राप्त होता रहे, यही अभिलाषा एवं प्रार्थना है।

* * * * *

अपर्णा

परमेश्वरी थपलियाल
सहारनपुर (यू०पी०)

जोशीमठ से २८ कि०मी० और तपोवन से १८ कि०मी० ऊपर १३००० फुट के ऊँचे पर्वत का नाम कँवारी पर्वत है क्योंकि इस पर्वत पर कँवारी पार्वती ने भगवान शिव की प्राप्ति हेतु कन्दमूल एवं पत्ते खाकर कठोर तपस्या की थी परन्तु जब पत्तों तक का भी त्याग कर दिया तो उस तपस्वी का नाम अपर्णा नाम प्रसिद्ध हुआ और इस भूखण्ड (कँवारी पर्वत) को पर्ण-खण्डा और कालान्तर में पैन-खण्डा नाम दिया गया। अक्टूबर से मार्च तक यह पर्वत बर्फ से ढका रहता है और अप्रैल से बर्फ पिघलते ही इसके ढाल वनौषधियों और हिमालयी पुष्पों से भरने लगते हैं। इसके चारों ओर की दृश्यावली अदभुत है और हिमालय के अनेक प्रमुख शिखर यहाँ से हाथ फैलाने की दूरी पर जैसे लगते हैं। यह कविता शैल-वाला पार्वती का शिव को पति के रूप में प्राप्त करने हेतु किये कठोर तप की स्मृति में प्रस्तुत है।

सघन घन मंडित अम्बर
तड़ित मेघ गर्जन
श्वेत-वात नभ कंपन
भीषण अविरल्त हिम वर्षण।
ओढ़े हिमश्वेतांबरी
श्वेतांगी
निर्जला निराहारिणी
कौमार्य शुभ्रधारिणी। (१)

प्रेमयोग निष्कंप अडिग
प्रत्यक्ष रूप आसीन।
आत्मोत्सर्ग का
प्रणय वेदी पर
अश्रुत अपूर्व बलिदान।
भोग विलास, राजसी वैभव-
त्यक्ता, उदासीन
अथक प्रेम क्वाँरी योगिनी
तपस्विनी सन्यासिनी।
उच्च उच्चतर शिखर निवासिनी
विश्व रूपसी
अनिंद्य सुन्दरी
दुराग्रही
शुष्क पर्ण उपवासिनी। (२)

युग-युग और जन्म-जन्म का
यह कैसा प्रणय सूत्र बन्धन,
सुकुमार षोड़सी काया पर
निर्मम मूक प्रदर्शन। (३)
देह-वासना निर्वसना*

*मै देहमात्र हूँ इस वासना से निर्वसना होना।

हर चिंतन पर बसा रूप,
श्वास-श्वास में रमा नाम
अस्थि चर्म समिधा से
तपः अनल में तपा काम।
आत्मकाम निःसृत प्रखर मौन
सरल सहज अभिव्यंजित
स्वात्म समपर्ण उद्दाम। (४)

प्रेम पंथ एकाकी के
उपजा तब
अंतरतम में
श्वासों में, प्रश्वासों में,
विराग का ऐसा राग,
भस्मी भूत
ममता मोह कामना अपार,
प्रशान्त हो गया
दैहिक भौतिक विकार
परिशुद्ध हृदय निर्विकार। (५)

तब समस्त सृष्टि का कण-कण
स्वयं सृजक और उसका सर्जन
चिर वियोगिन योगिनी को
कर उठा नमन
बार-बार स्तवन। (६)

उदय हुआ योगानल का उषाकाल
चमका प्रभात शुभ्र भाल
साधना की उत्कृष्ट परिणति पर
साधना की निवृत्ति पर।
शुभ्र शुद्ध आभामंडल से
हिल गया महाकाल।
शिथिल हो गये सर्जन के शीत जड़
निष्ठुर नियमन
गल गये तपः पूता
शैलसुता, शैलजा, शैलबाला के
हिम बन्धन।
धरा हुई जड़ता मुक्त
हरित ओत प्रोत
महके नव विकसित प्रसून,
बह चला वासंतिक समीर,
अगणित कुसुम राशि लिये
सज गया तपः स्नात
प्रफुल्लगात!
विराट मौन का भर गया वक्षस्थल
मधुकर के गुंजन से। (७)

तब नीले नभ की नीली चादर से आवृत
निखर आया शिवा के 'स्व' का
परम पुनीत निराकार सत्व
'शिव'
फूलों की सेज से उठाने,
अर्धांगिनी स्वारोपित करने,
पूर्णकाम अवधारण करने
सृष्टि सर्जन सार्थकता देने। (८)

*****

गुरु-तत्त्व

डा०अम्बिकेश्वर शर्मा
एडमण्टन (कनाडा)

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षातपरब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

सच तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के प्रथम गुरु तो माता पिता ही होते हैं क्योंकि उनसे ही वह अपनी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करता है। इसीलिये शास्त्रकारों ने "मातृदेवो भव," "पितृदेवो भव" का बारम्बार आदेश दिया है। वैसे प्रत्येक धर्म में माता पिता की आज्ञा पालन एवं उनको उचित आदर सम्मान देने पर जोर दिया गया है। जब बालक बड़ा होता है तब उस को अन्य विद्या गुरु भी मिलते हैं जिनसे वह बहुत कुछ सीखता है। मेरी धारणा है कि शिष्य के योग्य गुरु स्वयं उसको मिल जाता है। जैसे विद्यार्थी को अच्छे गुरु की आवश्यकता होती है वैसे ही गुरु को भी अच्छे सुयोग्य विद्यार्थी की चाह रहती है। जैनी लोगों ने चींटी और मधुमक्खी तक को गुरु माना है और पौराणिक कथाओं में कपिल मुनि की माता जी स्वयं पुत्र को गुरु का स्थान देकर उनसे ज्ञान प्राप्त करती हैं। सती मदालसा ने अपने पति को ज्ञान का उपदेश दिया था।

नौ या दस वर्ष पूर्व हमारे हितैषी मित्र रमेश अग्रवाल जी ने मुझे सपत्नीक श्री स्वामी ऋषि केशवानन्द जी का प्रवचन सुनने के लिये आमंत्रित किया। हम दोनों ही स्वामी जी की विद्वत्ता, विनम्रता एवं सौजन्य से प्रभावित हुये। ततपश्चात जब भी स्वामी जी का यहाँ पधारना होता तब हम उनके सत्संग का लाभ उठाते थे। जब पत्नी रुग्णावस्था में थी तब स्वामी जी स्वयं घर पर आकर कुशल-क्षेम पूछकर आर्शीवाद देते थे। पत्नी के देवलोक सिधारने पर स्वामी जी ने हरिद्वार से दूरभाष द्वारा मुझे सान्त्वना एवं आर्शीवाद दिया। यह उनके स्नेह और सौहार्द का द्योतक है।

रमेश जी ने बताया कि स्वामी जी खड़खड़ी (हरिद्वार) में निर्धन निकेत के संचालक एवं व्यव्रस्थापक हैं। निर्धन-निकेतन में कुछ विरोधाभास सा प्रतीत हुआ क्योंकि यदि निर्धन है तो निकेतन कैसा और यदि निकेतन है तो निर्धन क्यों। परन्तु जब ऋषि संस्कृत महाविद्यालय की रजत जयन्ती स्मारिका "ऋषि भारती" आदि पत्रिकाओं

के पढ़ने से मालूम हुआ कि वहाँ आश्रम में संस्कृत शिक्षा का उच्चत्तम विद्यालय है तथा गोशाला है तब पिलानी बिरला कालेज का स्मरण हो आया जहाँ मैं २ वर्ष तक स्नातक रहा था परन्तु पिलानी में तो बिरलाओं की प्रचुर धन सम्पत्ति का सहारा है पर यहाँ स्वामीजी के पास केवल कौपीन और दण्ड-कमंडल है। इसीलिये कहते हैं "क्रिया सिद्धिसत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।" इसी प्रकार महामना मालवीय जी ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना कर अपने दृढ़ संकल्प, अदम्य पुरुषार्थ और दूरदर्शिता का परिचय दिया। अब चौथेपन में पूज्य स्वामी जी से परिचय और स्नेह प्राप्त हुआ है। तब जी चाहता है कि कुछ दिवस इनके आश्रम में रहकर इनका सत्संग करुँ क्योंकि रामायण में बताया है कि "जब बहु काल होई सत्संगा। तब हि होइहिं संशय भंगा"। आशा है कभी यह भी इच्छा पूर्ण होगी। इति

* * * * *

भजन

रजनी

एडमण्टन, कनाडा

मेरे गुरुदेव महीफल सजाये बैठे हैं,
आते है वही जिनको सरकार बुलाते हैं।
जिन का भरी दुनिया मे कोई भी नही वाली
उनको भी मेरे गुरुदेव सीने से लगाते हैं

आते है वही, जिनको सरकार बुलाते हैं।
इस आस पर जीता हुँ।
कह दे कोई आ कर,
चल तुझ को हरिद्वार मे सरकार बुलाते हैं।

कुछ अनमोल क्षण

लक्ष्मन दास मित्तल

दिल्ली

परम पूज्य गुरु जी एक महान हस्ती थे। मेरे पिताजी उनके शिष्य थे और जब वह कुटिया में उनके दर्शन करने जाते तो मुझे भी अपने साथ ले जाया करते थे। इसी कारण मुझे उनके सत्संग का अवसर प्राप्त हुआ। तब मेरी आयु केवल सोलह या सत्तरह वर्ष की थी। गुरु जी स्वयं बाल ब्रह्मचारी थे। उनसे प्रेरणा लेकर मैंने भी निश्चय किया कि विवाह के बन्धन से मुक्त ही रहूँगा और गृहस्थ आश्रम की बजाय सीधा सन्यास आश्रम में प्रवेश करूँगा। इसी बीच में मेरी सगाई मेरे पिताजी ने मोगा की एक बहुत ही सुन्दर लड़की से तय कर दी परन्तु मैंने उनको स्पष्ट रूप से बोल दिया कि मैं शादी नहीं करूँगा। मेरे पिता जी मेरी शिकायत लेकर गुरु जी के पास गए तथा उनसे प्रार्थना की कि मुझे शादी के लिए प्रेरित करें।

गुरु जी ने मुझे कुटिया में बुलवाया और कहने लगे कि शादी से इन्कार क्यों कर रहा है और तुझे शादी करनी ही होगी। मैंने उत्तर दिया कि अगर शादी इतनी अच्छी चीज है तो आपने विवाह क्यों नहीं करवाया। उन्होंने उत्तर दिया कि मैंने शादी नहीं कराई इसलिए इस रास्ते की मुश्किलों को भली प्रकार जानता हूँ। शादी करने से आपको केवल एक स्त्री से पाला पड़ेगा परन्तु शादी न करने से हज़ारों स्त्रियों का सामना करना पड़ेगा, इसलिए अगर तुम आध्यात्मिक मार्ग पर भी चलना चाहते हो तब भी तुम्हारे लिए शादी बहुत आवश्यक है। फिर भी मैंने थोड़ी झिझक दिखाई तो उन्होंने अपने हुक्के की पाइप निकालकर कहा कि अगर तूँ ने इन्कार किया तो लाठी मार-मार कर तुम्हारी चमड़ी उधेड़ दूँगा। उनके इस आखिरी आदेश के आगे मुझे अपना सिर झुकाना पड़ा।

अपनी आखिरी यात्रा के समय अपनी कुटिया से हरिद्वार आते समय मैंने उनसे प्रार्थना की कि हमारे घर में कभी चरण डालिए तो वह कहने लगे कि चलो अभी अपनी कार का रुख अपने घर की तरफ कर लो, अभी चलते हैं। फिर पता नहीं इस तरफ कभी आना हो या न हो। बाद में ज्यों ही सूचना मिली कि गुरु जी ने हरिद्वार पहुँचते ही अपना शरीर त्याग दिया तो उनके अंतिम शब्द मेरे कानों में गूँजने लगे "पता नहीं फिर इस तरफ कभी आना हो या न हो।" उस वक्त के कुछ क्षण मेरे लिए अनमोल क्षण हो गये।

*****

मैत्री के प्रतीक-ऋषि केशवानन्द जी

रमेश चन्द्र, पूर्व-अध्यक्ष (अंग्रेजी)
डी.ए.वी. कालिज, चंडीगढ़

विधि का विधान कहिए, मेरे किसी पुण्य का प्रभाव कहिए, पचास साल से अधिक समय हो गया, आज मुझे श्री केशवानन्द जी के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तब इन के नाम से पहले ऋषि शब्द का प्रयोग नहीं होता था। ये एक विद्यार्थी थे, मैं भी एक विद्यार्थी था। संस्कृत के अध्ययन के लिए लाहौर गया था। वहीं इन से परिचय हुआ, जोकि स्वाभाविक था। हम दोनों सहपाठी थे।

कुछ समय बाद यह सम्बन्ध और घनिष्ठ हो गया जब मैं केशवानन्द जी के निमन्त्रण पर इनके कक्ष में साथ-साथ रहने लगा। हम एक दूसरे के नज़दीक आते गए और मुझे इन के व्यक्तित्त्व को देखने और समझने का मौका मिला। ये एक साधारण युवक नहीं थे। इनकी दृष्टि एक साधारण युवक की दृष्टि नहीं थी। इन्होंने अपने लिए एक मार्ग चुन लिया था, जिससे इन की दृष्टि की झलक मिलती थी। ऋषियों के पास क्या होता है? एक दृष्टि होती है। ऋषि की परिभाषा क्या है? निरुक्त शास्त्र कहता है ऋषिदर्शनात् अर्थात् ऋषि उन्हें कहा जाता है जो देख सकते हैं। वैसे तो हम सब देख सकते हैं, जिस के पास आँखें है वह देख सकता है। लेकिन ऋषि वह सब कुछ देख लेता है जिसे आँखे नही देख सकती, वह केवल वर्तमान को नहीं भविष्य को भी देख सकता है।

यद्यपि केशवानन्द जी उस समय ऋषि नहीं थें। लेकिन इन का रंग-ढ़ग, रहन-सहन, क्रिया-कलाप बाकी सब युवकों से भिन्न था। ये उन दिनों भी एक तपस्वी का जीवन बिताते थे। कोई दिन ऐसा नही होता था जब ये माँ दुर्गा के चित्र के सामने घंटों समाधि की स्थिति में नहीं बैठते थे। कम से कम छः घंटे शक्ति की उपासना में तल्लीन रहना इन का नित्य का कर्म था। प्रायः इस से अधिक समय तक बिना हिले-डुले माँ के ध्यान में मग्न रहते थे।

मैं हैरान रह जाता था इन की तपस्या देख कर। पढ़ाई की उपेक्षा तो हो सकती थी। लेकिन शक्ति की आराधना का नियम कभी भंग नहीं होता था। मैं यह नहीं कहता कि ये ऋषि थे। लेकिन इन की दृष्टि भविष्य पर टिकी थी। भावी ऋषि के आरम्भिक लक्षण इन में झलकते थे। "होनहार विरवान के होत चीकने पात" कितने बिरवान इतने होनहार होते हैं, जितने केशवानन्द जी थे ।

यद्यपि ये ऋषि नहीं थे, एक ऋषि इन का मार्ग दर्शन कर रहा था। उस ऋषि का आशीर्वाद इन की शक्ति का स्रोत था। कौन था वह ऋषि ? वे ऋषि थे, इन के सद्गुरु श्री वंशीधर विरकां वाले जिन की पावन मूर्ति निर्धन-निकेतन मन्दिर में सुशोभित है, उन से जुड़ी एक घटना के बारे में कुछ शब्द कहना चाहूँगा।

एक बार केशवानन्द जी बीमार पड़ गए। इतने बीमार कि सब चिन्तित हो उठे। डाक्टरों की समझ में कुछ नही आ रहा था। जब कोई रास्ता दिखाई नहीं देता तो गुरु की शरण में जाते हैं। शीघ्रातिशीघ्र गुरु जी को इस संकट की सूचना देने की जिम्मेदारी मुझे निभानी थी। बिना तनिक समय खोए मैं गुरु जी की कुटिया विरकां पहुँचा। रात हो चुकी थी। गुरुजी ध्यान मुद्रा में एकाकीं बैठे थे। मैंने उन्हें प्रणाम किया और कहा कि केशवानन्द जी बहुत बीमार हैं। मैं आपको यह सूचना देने के लिए आया हूँ। वे अपने आसन से उठे और कुटिया के बाहरी द्वार की ओर बढ़ने लगे मुझे अपने साथ लिए। ज्योंहि द्वार से बाहर पहुँचे तो उन्होंने आश्वासन भरे लहजे में कहा, "चिन्ता की कोई बात नहीं। केशवानन्द जल्दी ठीक हो जाएगा" यह कह कर उन्होंने अपने दाहिने बाजू को ऊपर किया। वे एक चोगा पहने हुए थे। इधर बाजू उठा, उधर के दाहिने हाथ में दस रूपये का एक नोट दिखाई पड़ा। वह नोट कहाँ से आया? कैसे आया? यह रहस्य ही रहा मेरे लिए ! नोट वाला हाथ मेरी ओर बढ़ाते हुए गुरु जी ने कहा, "ये पैसे रख ले" मैंने पैसे लेने से इन्कार कर दिया। पता नही किस मर्यादा ने मुझे ऐसा करने के लिए प्रेरित किया। गुरु जी ने तुरन्त कहा "अगर तुम केशवानन्द के दोस्त हो तो ले लो"। मैंने नतमस्तक हो कर पैसे पकड़ लिए और करबध्द प्रणाम करके उन से विदा ली। गुरु जी से मिलने के बाद मेरे मन में केशवानन्द जी की बीमारी को ले कर अब कोई चिन्ता नहीं थी। मन में आशा संचारित थी। मुझे इस बात की बहुत प्रसन्नतो थी, कि गुरु जी ने मुझे 'केशवानन्द के दोस्त' के रूप में देखा और सम्बोधित किया। मैंने उन्हें अपना कोई परिचय नहीं दिया था। लेकिन उन की आर्ष-दृष्टि से कुछ छिपा नहीं था। उन दिनों उन्हें सब 'गुरु जी' कह कर पुकारते थे। गुरु में और ऋषि में क्या अन्तर होता है, मैं इस में नहीं पड़ूँगा।

इस घटना को घटे ५० साल से अधिक समय हो गया। और इतने सालों में केशवानन्द जी से एक बार भी मिल नहीं सका, फिर विधि के विधान की बात है। कुछ महीने हुए मेरे मित्र प्रोफैसर विनोद कुमार गर्ग मुझे एक समागम में मिले, मुझे मिलने से कुछ समय पहले वे अपनी माताश्री के साथ ऋषि केशवानन्द जी महाराज का आशीर्वाद लेने निर्धन

निकेतन में आए थे। जब ऋषि जी को पता लगा कि विनोद गर्ग डी.ए.बी. कालिज, चडीगढ़ में पढ़ाते हैं, तो उन्होंने कहा, "वहाँ तो मेरे एक सहपाठी-रमेश चन्द्र भी हैं"। जब विनोद जी ने मुझे यह बताया तो मैंने निर्धन निकेतन की यात्रा करने का निर्णय कर लिया, और गुरुपूर्णिमा की पावन बेला में मैं हरिद्वार के लिए निकल पड़ा। आते-आते सोचा कि खाली हाथ जाना ठीक नहीं कुछ केले खरीद लिए । गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्तया प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

ज्योंहि ऋषि जी गुरुपूर्णिमा पर्व के उपलक्ष में सम्पन्न होने वाली हरकी पौड़ी की शोभा यात्रा से लौटें और अभी कुछ आराम भी नहीं कर पाए थे कि आश्रम के एक अधिकारी ने मुझे उन के समक्ष ला खड़ा किया। फल उन के चरणों में अर्पण करते हुए मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने मेरा परिचय जानना चाहा। मैंने अपना नाम बताया और कहा कि मैं चडीगढ़ से आया हूँ। ऋषि जी ने गद्‌गद स्वर में कहा तो आप इधर आइए मेरे पास, यह कह मुझे अपने आलिंगन में ले लिया। मेरे मन में कृष्णा-सुदामा की कहानी की याद ताजा हो गई। एक ओर मैं और दूसरी ओर स्तर-परे-सही-ऋषि केशवानन्द जी जो सहज मैत्री के प्रतीक हैं। एक आम धारणा है कि -

विद्वांसो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताचान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम् ।।

विद्वान एक दूसरे से जलते हैं। जिन के हाथ में सत्ता है वे अभिमान से दूषित होते हैं ऐसे वातावरण में देख रहा हूँ कि ऋषि केशवानन्द जैसे व्यक्ति दुर्लभ हैं, जो विद्वान होते हुए जलन जैसी दूषित मनोवृत्ति के शिकार नहीं-हैं। बड़े उदार चरित व्यक्ति हैं। ऊँचे स्तर के सन्त हैं।

ऋषि जी में दूसरी बड़ी बात हैं कृतज्ञता। कृतज्ञता मनुष्य में सब से बड़ा गुण हैं और कृतध्नता सब से बड़ा दोष, लेकिन जब कोई व्यक्ति बहुत बड़ा होता है तो कृतज्ञता को भूल जाता है और कृतध्नता का शिकार हो जाता है। शैक्सपीयर (Shekespeare) का एक प्रसिद्ध गीत है जिस में कृतध्नता की क्रूरता को हेमन्त ऋतु की काटने वाली तीक्ष्ण पवन से भी तीक्ष्ण बताया है। शैक्सपियर कहता है -

Blow, blow, thou winterwind,
Thou art not so unkind,
As man's ingratitude,

(हेमन्त पवन तू चलती चल
तू इतनी नहीं चुभती
जितनी मानव की कृतध्नता)

कृतज्ञता के अहसास के लिए मानव का आदर्शवादी होना, चरित्रवान् होना जरूरी है। महाभारत के आदर्शवादी-पात्रों में अंगराज कर्ण का बहुत ऊँचा स्थान है। जब भरी सभा में सब उस कर्ण को सूतपुत्र कह कर अपमानित कर रहे थे और केवल इस कारण उस के स्वयंबर में भाग लेने का विरोध कर रहे थे कि वह राजकुमार नहीं है तब दुर्योधन ने उसे अंगराज बनाने की घोषणा की, कर्ण उस का ऋणी हो गया, जीवन भर उस के ऋण का ब्याज चुकाता रहा और कृतज्ञता की एक मिसाल बन गया।

आज हमारे सामने ऋषि केशवानन्द जी कृतज्ञता की एक मिसाल है। मुझे तो याद नहीं कि मैंने उनके लिए कुछ किया हो। यह तो ठीक है कि हम-वे सहपाठी थे, मित्र थे, साथ-साथ रहते थे। ऐसी स्थिति में परस्पर आदान प्रदान स्वाभाविक है। उन का यह कहना कि मैंने "काव्य प्रकाश" पढ़ने में उन की सहायता की उन की उदारता दिखाता है मैंने उन पर कोई एहसान नहीं किया, मित्रता निभाने की कोशिश मात्र की। लेकिन वे खुले आम यह कह जाते हैं कि मैंने उस के लिए यह किया- वह किया। उन की कृतज्ञता के बखान में उन की मैत्री झलकती है। सच बात तो यह है कि ऋषि केशवानन्द जी महाराज सहज मैत्री के प्रतीक हैं।

*****

गंगोत्री-यमुनोत्री पदयात्रा का अनुभव

लालबहादुर मिश्र
आस्ट्रेलिया।

इस कराल कलियुग में मानव का मन इतना व्यग्र एवं अस्थिर रहता है कि उसे सत्कर्म के प्रति कभी भी इच्छा ही नहीं होती। निरन्तर द्वेष कलह एवं ईर्ष्या से अपनी शान्ति भंग किये रहता है। कभी किसी अच्छे सन्त से या पूर्व जन्म के सत्कर्म के अभ्युदय से उसे कुछ सत्कर्मों के लिए प्रेरणा मिलती है। मैं भी इसी स्थिति से गुजर रहा था। परम श्रद्धेय महाराजश्री ने गंगोत्री एवं यमुनोत्री पदयात्रा के लिये पूर्व से ही विचार कर लिया था। हजारों भक्तगण उनके साथ जाने को उत्कण्ठित थे, परन्तु मेरे अन्दर किसी भी प्रकार की भावना का प्रादुर्भाव नहीं हुआ। दिनांक १ जून १९८८ को गंगा जी के किनारे बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था कि तभी पूज्य श्री महाराज जी भी माँ के पावन तट पर आ गये। उन्होंने मुझे साथ चलने को कहा। अचानक उनकी मधुरवाणी सुनकर मेरा मन उत्कण्ठित हो गया और मैं यात्रा में चलने के लिए तैयारी में जुट गया। यद्यपि मार्ग की दुर्गमता को सुनकर हृदय काँप उठता था, लेकिन अपने साथ महाराज जी की उपस्थिति समझकर मन में शान्ति आ गई। वास्तव में संतजनों के सम्पर्क से व्यक्ति के पाप नष्ट हो जाते हैं। कभी सोचा भी न था कि मै वहाँ जाऊगाँ, लेकिन महाराज जी की अमृतवाणी ने मुझे वास्तव में अमृत पिला दिया। मार्ग में जो सुख एवं शान्ति मैंने अनुभव की उसे वाणी कहने में सक्षम नहीं हैं, तथापि कुछ अपना अनुभव सुना रहा हूँ। गंगोत्री एवं यमुनोत्री के दर्शन की ललक ने जितना मुझे बैचेन किया था, उतना ही भविष्य में पूज्यपाद ऋषि जी से विलग होने की आशंका से उत्पन्न होने वाले दुःख ने। मैंने तो यह सोचा था कि ईश्वर मुझे यह सौभाग्य प्रदान करें जिससे मैं सदैव महाराज जी के चरणों में रह सकूँ। महाराजश्री रास्ते में कभी गीता तो कभी रामायण एवं अन्य पुराणादि की कथा सुनाकर कथा के रसानन्द से सबको आप्लावित किया करते थे। उनके आचरण से कुछ ग्रहण करने का प्रयास करता था। सुबह चार बजे उठना एवं नित्य प्रति संध्या, दुर्गापाठ आदि सत्कर्मों को देखकर मेरे अन्दर भी इच्छा जागृत होती, कि मैं भी अपने को इसी रूप में परिवर्तित कर लूँ। विषयों के जञ्जाल में फँसा हुआ मन कभी-कभी क्षणिक वैराग्य के लिए उद्यत हो जाता था परन्तु वह वैराग्य शाश्वत एवं निरन्तर तभी रह सकता है जब परमात्मा और गुरु की कृपा हो। तुलसीदास जी के शब्दो में :-

"बिनु सत्संग विवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।"

वास्तव में संत्सग का बड़ा ही महत्व है। बाल्मीकि जैसे खूँखार अत्याचारी भी देवर्षि के सत्संग से भगवान के अनुपम भक्त हो गये। सत्संग का महत्व तो जितना भी कहें थोड़ा है **"सठ सुधरहि सतसंगति पाई, पारस परस कुधातु सुहाई"** इतना ही नहीं बल्कि **"विधि हरि हर कवि कोविद बानी। कहत साधु महिमासकुचानी"**

परम पूज्य श्री महाराज जी के चरणों में रहकर जो कुछ मैंने पाया, वह अपनी उम्र में कभी भुलाया नहीं जा सकता। महाराज जी का वात्सल्य ईश्वर के सानिध्य में पहुँचाने का प्रयत्न इतना अनुपम था, जिसे शब्दों की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता है। शिखरों की ऊँची नीची श्रेणियों पर कदम रखते हुये, प्रकृति के सौन्दर्य का अनुपम दृश्य देखने को मिलता है। बादल के छोटे-छोटे टुकड़े जब भी पर्वतों के शिखरों से आश्लिष्ट हो जाते थे, तो ऐसा लगता था जैसे भगवान शिव अपने बाघम्बर को पहनकर समाधि में बैंठ गए हों। कहीं कहीं सेबों के बाग गुच्छे से गुच्छे मिलाकर महाराज जी का स्वागत कर रहे थे। कभी-कभी तो बादल के झुण्ड इतने नजदीक आ जाते, कि मानों महाराजश्री के चरणों की धूलि स्पर्श करने आये हों। उन दिनों हरिद्वार में शरीर को तपा देने वाली गर्मी थी, किन्तु उत्तरकाशी से आगे शरीर को कंपा देने वाली ठंड थी और गंगा जी का मधुर कलरव सर्वत्र सुनाई देता था, मानो पूज्य ऋषि जी के आगमन पर स्वागत-गान हो रहा हो। प्रकृति ने भी अपना स्वरूप ऋषि चरण के अनुकूल ही रखा। दशरथ नन्दन श्री राघवेन्द्र जी के वनगमन के समय जिस प्रकृति ने साथ दिया था, वही प्रकृति परमपूज्य श्री ऋषिजी का अभिनन्दन कर रही थी। अधिक क्या लिखूं पदयात्रा का आनन्द तो वही कह सकता है जिसने कभी पदयात्रा की हो। हमारे पूज्य ग्रन्थों ने पदयात्रा का महत्व बताया है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी यह सिद्ध किया है कि तीर्थस्थलों में ऐसे भी तत्व पाये जाते हैं जिनके स्पर्श से बुद्धि शुद्ध हो जाती है। इन तत्त्वों का स्पर्श तो पदयात्रा के माध्यम से ही हो सकता है। इतनी शान्त एवं सुखद यात्रा भीड़ से भरी बस आदि अन्य साधनों से नहीं हो सकती। अतः स्पष्ट है कि हमारे तीर्थ स्थलों का वर्तमान में भी वही प्रभाव है जो प्राचीन काल में था। इसलिए प्रत्येक बुद्धिजीवी वर्ग को अधिक से अधिक तीर्थ यात्राएँ व सन्त महापुरुषों के बताये मार्गों का अनुकरण व अनुसरण अवश्य करना चाहिये।

*****

मोक्ष-धाम गुरु-धाम

लीला देवी धवन
कलकत्ता

मेरा सारा परिवार सद्गुरु बाल ब्रह्मचारी श्री बंशीधर महाराज विरंकावाले का अनन्य भक्त था। सद्गुरु महाराज फ़िरोज़पुर शहर में वर्ष में दो बार आते और फिरोज़पुर शहर निवासी लाला चिरंजी लाल जी के घर प्रायः महीना महीना ठहरते। उनके आने पर सारे शहर में खुशी छा जाती, शहर निवासी लोग उनके दर्शन करने, उनके भजन व प्रवचन सुनने आया करते थे। मेरी माता श्रीमती द्रोपती देवी उनकी भक्ति में इतनी रंग गयी थी कि प्रातः चार बजे उनके दर्शनों को जाती फिर लौट कर जल्दी जल्दी घर का काम-काज निपटा का प्रातः सात बजे अपने बच्चों श्री मुलखराज चौपड़ा, श्री हंसराज चोपड़ा, श्री देवराज चोपड़ा, श्रीमती स्वर्णकान्ता तथा मुझे लेकर गुरु जी के प्रवचन सुनने पहुँच जाती थी।

हमारे परिवार पर गुरु महाराज की बड़ी कृपा थी। हमारे सभी कारज वे ही सम्पूर्ण करते थे। मेरे बड़े भाई श्री हंसराज चोपड़ा की शादी उन्हों ने अपनी भक्तिनी श्रीमती दुर्गा देवी की बेटी सिलमा देवी से की थी। सिलमा देवी बड़ी निष्ठावान, सुशील एवं कुशल गृहिणी थी। जिस ने अपनी सेवा भावना से सारे परिवार और कुल के हृदय को जीत लिया था मेरे पिता का कारोबार कोई विशेष नहीं था बस निर्धनता में किसी तरह कठिनाई से समय निकल रहा था। एक दिन मेरी माँ गुरु जी के आगे रो पड़ी, कहने लगी महाराज सन्तों ने भी कहा है कि गुज़ारे लायक तो मिलना चाहिए।

"सांई इतना दीजिए, जा में कुटुम्ब समाये।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु भी भूखा न जाये"।।

गुरु महाराज सुनकर हंस पड़े और बोले "इतना मिलेगा तुम से सम्भाला नहीं जायेगा। लड़कों से कहा फिरोज़पुर छोड़कर कलकत्ता चले जायें, वहीं कोई काम कर लें, बंसरीवाला सब ठीक करेगा"। मेरी मां को गुरु महाराज के वचनों पर अटूट विश्वास था उसने अपने सभी पुत्रों को कलकत्ता जाने के लिए तैयार कर लिया। कुछ ही दिनों में कलकत्ता पहुँच गये। जाकर किराये के मकान में रहने लगे। पहिले पहल उन्हों ने होटल खोला जिसका है नाम पी.के. हिन्दू होटल, जो आज भी ७०३ डी.एच खिदर पुर में स्थित है। होटल का कार्य खूब

चला। गुरु जी कृपा से तीनों भाई मालोमाल हो गये। कलकत्ता के हेस्टिंग क्षेत्र में तीन मंजिला उनकी अपनी चोपड़ा बिल्डिंग बन गई। कितनी ही बसें, कितने ट्रक और कितनी ही ट्रालियाँ उनके नाम चलने लगी। तब मेरे भाईयों ने मुझे और मेरी बहन श्रीमति स्वर्णा रानी को भी कलकत्ता में बुला लिया मेरे पतिदेव को डायमण्ड शूज की दुकान खुलवा दी। बहुत अच्छी तरह हमारा काम चलने लगा और आज भी चल रहा है।

मेरे माता जी की बड़ी अभिलाषा थी कि गुरु महाराज जी अपने चरणधूलि से घर को पवित्र करें। एक बार कुम्भ-पर्व पर गुरुदेव इलाहाबाद आये। मेरे माता जी तथा बड़े भाई गुरु जी को कलकत्ता लाने के लिए इलाहाबाद गये। गुरुदेव जी ने कहा, बेटा, कलकत्ता अब नही जा सकते, फिकर न कर तेरे घर बहुत आयेगें। इस बात को गुरु महाराज जी अपने प्रिय शिष्य ऋषि केशवानन्द जी महाराज के रूप में पूर्ण कर रहें हैं। तब से ऋषि जी महाराज प्रति वर्ष गंगासागर स्नानार्थ संगत को साथ लेकर कलकत्ता आते हैं और घर को पवित्र कर हम सब को कृतार्थ कर रहे हैं। लगभग चालीस वर्षो से यह कृपा हमारे परिवार पर बनाये हुए हैं। प्रतिवर्ष १५-२० दिन संगत के साथ पूज्य ऋषि जी कलकत्ता ठहरते हें खूब सत्संग की लहर रहती है परिवार लोग साधु संगत की सेवा कर अपने को भाग्यशाली मानते हैं।

मेरी माता श्रीमति द्रोपती देवी के स्वर्ग सिधार जाने के बाद भी मेरे भाईयों ने सेवा में कोई कमी नहीं आने दी। सभी भाई ऋषि जी के अनन्य भक्त हैं प्रतिवर्ष ऋषि जी ३०-४० व्यक्तियों के साथ गंगासागर, श्री जगन्नाथ पुरी के दर्शनों को जाते थे तो भाई श्री मुलखराज, श्री हंसराज, श्री देवराज चोपड़ा जी कहते थे महाराज जी इस से भी अधिक संगत को साथ लाया करो। आपके सानिध्य में संगत के बीच रहना, उनकी सेवा करना हमें बहुत ही अच्छा लगता है सारा दिन भजन-कीर्तन का, आपके प्रवचन का आनन्द बरसता है। सच बड़े निष्ठावान श्रद्धालु, गुरुप्रेमी थे। मेरे दोनों भाई एक बार हरिद्वार आने से पूर्व उन्होनें अपने बच्चों से कहा कि मेरी कुछ भावनाएं हैं उनकी कैसिट भर लो, तुम्हारे काम आयेगें। उसी कैसिट में यह बात उन्होनें बड़े उत्साह और श्रद्धा से कही थी कि मेरे बाद भी गुरुभक्ति की भावना घर में कम नही होनी चाहिये बल्कि अधिकाधिक बढ़नी चाहिए। साध संगत की सेवा प्रेम से होती रहती चाहिए। दोनों भाई उस बार परिवार सहित हरिद्वार आये गुरु पूजा की, सत्संग और भण्डारा किया, वापिस कलकत्ता जाने के लिए हरिद्वार स्टेशन पर पहुँचे। लड़का इन्द्रपाल चौपड़ा गाड़ी का डिब्बा देखने गया कि पिताश्री श्रीमुलखराज चौपड़ा स्टेशन पर बनी शंकर जी की मूर्ति के सामने पद्मासन

लगा कर ध्यान करने लगे कि उस ध्यानावस्था में ही वह परम-धाम की गाड़ी चढ़ गये। पास में बैठा बड़ा भाई श्री हंसराज चौपड़ा किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। वापिस आश्रम निर्धन निकेतन आये। अन्य सम्बन्धियों को फोन किया। सभी लोग-छोटा भाई श्रीं देवराज चोपड़ा, बड़ा बेटा यशपाल चोपड़ा, शाम लाल चोपड़ा इत्यादि सभी दूसरे दिन कोई हवाई जहाज से कोई कार टैक्सी व गाड़ियों से आयें उन्होंनें उनका दाहसंस्कार किया। परिवार वालों को श्री मुलखराज चोपड़ा के देहावसान का शोक तो था ही परन्तु भाई ने हरिद्वार जैसे तीर्थ स्थान पर गुरुचरणों मे अपना चिरस्थान बना लिया, इस बात का उन्हें गौरव भी था। बड़े आश्चर्य की बात है कि ठीक एक सप्ताह बाद बड़े भाई के साथ हम लोग कलकत्ता जाने लगे तो अधिक बारिश के कारण ढोई वाला के पास लाईन खराब हो जाने से गाड़ी कैंसिल हो गयी तो वापिस आश्रम आ गये। दूसरे ही दिन बड़े भाई श्री हंसराज का ब्लैडप्रेशर बहुत कम हो गया, अस्पताल भर्ती कराये गये दो दिन अस्पताल रहे। डाक्टर ठीक बता रहे थे परन्तु विधिना को कुछ और ही मंजूर था। तीसरे दिन ऋषि जी महाराज उन्हें अस्पताल देखने गये। ऋषि जी ने आवाज दी हंसराज़ ठीक तो हो ओर हंसराज ने हाथ जोड़कर कहा हरिओम्, डाक्टर पास खड़ा था कि देखते -देखते हंसराज जी के चेहरें पर रौनक सी आई और वह पार्थिव शरीर छोड़ गुरु में तल्लीन हो गये। सच दोनों श्रद्धालुओं भाईयों को गुरुघर से बहुत प्रेम था।

उनकी इच्छा गुरुघर में ही रहने की थी वह इच्छा पूर्ण हुई। उनकी गुरुभक्ति पूर्ण हुई। गुरूचरणों में उन्होंने स्थान प्राप्त किया। परिवार इस घटना से शोकग्रस्त तो था ही परन्तु उन दोनों भाईयों के मोक्षधाम-गुरूधाम को प्राप्त कर लेने का उन्हें मनःसन्तोष था। धन्य है गुरूभक्ति और धन्य है जीवन का ऐसा अन्त ! जो युगों युगों की तपस्या से प्राप्त होता है।

इन दोनों भाईयों के बच्चों को गुरूघर से बड़ा प्यारा है। गुरूघर की सेवा तन-मन-धन से कर रहे हैं। मेरे बच्चों श्री ओमप्रकाश धवन, श्री कुलदीप धवन, और श्री संजीव धवन की पूज्य ऋषि जी महाराज में बहुत निष्ठा है। बस ऐसी कृपा गुरुदेव हम पर सदैव बनाये रक्खे यही कामना करते हैं।

*****

सिद्धपीठ भुवनेश्वरी देवी मन्दिर का जीर्णोद्धार एवं नवनिर्माण

हरिराम कुमार, पूर्व सदस्य,
नगर पालिका, हरिद्वार

हरिद्वार से २२ कि.मी. दूर ऋषिकेश, ऋषिकेश से ६ कि०मी० ऊपर गंगा के उस पार सघन आमवृक्षों की सान्द्र छाया से सेवित नीलकण्ठ महादेव का प्रसिद्ध मन्दिर है। यूँ तो यहां वर्ष भर शिवभक्त लोग भगवान शंकर की पूजार्चना व दर्शनों को आते हैं परन्तु सावन मास में शिवभक्तों का मेला लगता है।

इस नीलकण्ठ महादेव मन्दिर से डेढ किलोमीटर ऊपर मणिकूट नामक पर्वत पर स्थित भुवनेश्वरी सिद्धपीठ है। भगवती भुवनेश्वरी का यह मन्दिर पौड़ी गढ़वाल के भौन नामक गांव के निकट स्थित होने से भुवनेश्वरी देवी को भौन की देवी भी कहते हैं। वर्ष १९९७-९८ में इस मन्दिर का जीर्णेद्धार और नवनिर्माण श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द जी महाराज, अध्यक्ष, निर्धन निकेतन खड़खड़ी हरिद्वार ने करवाया पूज्य ऋषि जी को इस स्थान के प्रति बड़ी आस्था है क्योंकि उन्होंने अपने अज्ञातवास काल में इस मन्दिर के दर्शन किये और स्थान के प्रभाव का अनुभव किया कि यह एक दिव्य तपस्थली है। एक बार मैं भी ऋषि जी के साथ इस तपोभूमि में आया और देखा कि यह स्थान बड़ा शान्त, एकान्त एवं सुरम्य है और चारों ओर पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ है। मन्दिर में बैठे बैठे पूज्य ऋषि जी ने मुझ से इस मन्दिर के जीर्णोद्धार की बात कही और इसी परिपेक्ष्य में उन्होंने अपनी अज्ञातवास यात्रा का संस्मरण सुनाया।

ऋषि जी ने कहा कि वर्ष १९६२ ई० में मै अकेला ही अज्ञातवास के लिए उत्तराखण्ड की और निकल पड़ा। गंगा तट पर स्थित झोपड़ियों में अनेक सन्तों, महापुरुषों से, हिमालय गुफाओं में साधना रत अनेक तपस्वी साधकों से उनकी भेंट हुई। गंगोत्री में धुनी ताप रहे स्वामी कृष्णानन्दजी से, उत्तरकाशी में गंगाके जल में खड़े रहने वाले अवधूत श्री रामानन्द जी से, भूतनाथ की गुफाओं में रहने वाले नांगाबाबा से भेंट हुई। नांगा बाबा एक झरने के समीप गहरी गुफा में बैठें थे। मैंने जाकर उनको प्रणाम किया तो वे नांगा बाबा मुस्काया और सांप की और इशारा करके कहने लगे कि यह लकड़ी उठा कर मुझे दे दो। सांय को देख पहले मैं मन ही मन घबराया परन्तु गुरु-मुख से सुनी सन्तों की विलक्षण बातों का स्मरण आते ही मेरा मन उत्साह से भर गया और मैंने तुरन्त ही सांप को मुँह के पास से पकड़ लिया, सचमुच वह लकड़ी ही थी। नांगा बाबा ठहाका मार कर

हंस पड़े और मुझे पकड़ कर छाती से लगा लिया और कहा तुम तो गुरू के पक्के चेले हो। मेरे पास यहां रहकर कुछ दिन तप करो। मैं उनकी आज्ञा टाल न सका और कई दिन उनके पास रहा।

एक दिन नांगा बाबा मुझे नीलकण्ठ महोदव के दर्शनों के लिए नीलकण्ठ ले गये यहां भगवान शंकर शिवलिंग के रूप में समाधिस्थ हैं। मन्दिर में शिवलिंग की पूजार्चना की। इस स्थान का अलौकिक ही प्रभाव था जो आज भी अनुभव में आता है। नांगा बाबा बोले, ''केशव तुम शक्ति के उपासक हो, चलो तुम्हें एक और दिव्य स्थान दिखायें'' यह स्थान नीलकण्ठ से डेढ़ किलोमीटर ऊपर चढ़ाई पर स्थित है। यह भुवनेश्वरी देवी का प्रसिद्ध सिद्धपीठ है। भुवनेश्वरी देवी महाकाली के दश प्रधान-स्वरूपों में एक सौम्य स्वरूपा शक्ति है। रास्ते में नागां बाबा ने इस स्थान की शक्ति तथा भुवनेश्वरी की महिमा बतलानी प्रारम्भ की। बाबा ने कहा "महाभारत में कथा आती है कि जब दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ में शिव को आमन्त्रित नही किया तो सती ने यज्ञ में जाने की अनुमति मांगी। भगवान शिव ने अनुचित बताकर जाने से रोका। तब सती ने कहा मैं प्रजापति के यज्ञ में अवश्य जाऊँगी ओर वहां या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेव भगवान शंकर के लिए यज्ञभाग प्राप्त करूंगी या यज्ञ को नष्ट कर दूंगी। यह कहते ही सती के नेत्र लाल, अधर में फड़फराहट और रंग कृष्ण (काला) हो गया। क्रोधाग्नि से दग्ध शरीर महा-भयानक एवं उग्र दीखने लगा। बार-बार हुंकार और अट्टहास करती हुई सती के भयानक रूप को देख शिव जी भाग चले। भागते हुए रूद्र को दशों दिशाओं में रोकने के लिए देवी ने अपनी अंगभूता दस देवियों को प्रकट किया और शिव को घेर लिया। वे दश-देवियां -

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी
पंचमी छिन्नमस्ता च महाविद्या प्रकीतिताः।
त्रिपुराभैरवी धूमावती च बगलाम्बिका,
मातंगी कमला चैव सिद्धविद्याः प्रकीतिता।।

भगवान शिव ने सती से इन देवियों का परिचय पूछा तो सती ने कहा आपके सम्मुख कृष्णवर्णा, भीमलोचना जो देवी है वह काली है। आप के उर्ध्वभाग में श्यामवर्णा, महाकालस्वरूपिणी जो देवी है वह तारा है आप के बांयी ओर मस्तक रहित भयदायिनी जो देवी है वह छिन्नमस्ता है। आपके वामभाग में स्थित भुवनेश्वरी है। पृष्टभाग में स्थित शत्रुसंहारिणी बगलामुखी है। आप के अग्निकोण में स्थित विधवा रूप धारिणी धूमावती है नैर्ऋत्य कोण में त्रिपुरसुन्दरी, वायव्य कोण में स्थित मतंग ऋषि की कन्या मातंगी है। आपके ईशानकोण में षोडशी

और भयंकर रूपवाली भैरवी है। महाकाली के दशधा इन प्रधान रूपों को ही दशमहाविद्या कहते हैं। इन में काली, तारा, छिन्नमस्ता, बगलामुखी तथा धूमावती आदि पांच देवियाँ उग्ररूप है। तथा भुवनेश्वरी, षोड़शी (ललिता) त्रिपुरासुन्दरी, मातंगी, और कमला आदि पांच देवियाँ सौम्य रूप हैं। अतः भुवनेश्वरी देवी सौम्य स्वरूपा शक्ति है जो अपने भक्तों को अभय और सिद्धियां प्रदान करती है यह 'ह्रीं' इस बीज मन्त्र की स्वरूपा शक्ति है। शास्त्रों में कहा गया है कि इस बीज मन्त्र का भक्तिभाव से विधिवत् पुश्चरण करने वाला साधक साक्षात्पराम्बा स्वरूप हो जाता है। भुवनेश्वरी का स्वरूप निम्नांकित श्लोक में वर्णित है-

"उद्यद्दिनद्यु तिमिन्द्रकिरीटां तुंगकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मरमुखीं वरदांङ्कशपाशभीति प्रभजे भुवनेशीम्।।

जगदम्बा भुवनेश्वरी भगवान शिव के समस्त लीला विलास की सहचरी है। भगवान नीलकण्ठ महादेव नीचे उपत्यका में समाधिस्थ रहते हैं तो माँ भुवनेश्वरी ऊपर भौन मन्दिर में ध्यानमग्न रहती है।"

"मैंने (ऋषि जी ने) पहुँच कर देखा कि छोटे से मन्दिर में भुवनेश्वरी पिण्डी रूप में विराजमान है और दीवार पर अंकित समाधिस्थ मूर्ति भी है। मन्दिर के पास चमेली का पेड़ है। देखने में तो खास कुछ लगा नही परन्तु जब मैंने पूजा-अर्चना कर वहां बैठा और अपना श्री दुर्गासप्तशती का पाठ किया तो एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति हुई इस स्थान का अपना प्रभाव था कि मेरा मन उस स्थान मे रमने लगा परन्तु रात्रि वापिस नांगा बाबा के साथ आना था इसलिए कुछ घंटे वहां रुक कर नीचे नीलकण्ठ महोदव उतरकर वापिस गुफा आ गये।

उस दिन से मां भुवनेश्वरी की पुण्यस्मृति मेरे हृदय को उद्वेलित करती रही। बाद में कई बार भुवनेश्वरी देवी के दर्शनों को कभी अकेले और कभी संग के साथ जाते रहे। एक बार में हरिद्वार से शक्ति उपासना में निष्ठावान प्रसिद्ध कर्मकाण्डी पंडित दीनानाथ शास्त्री सहित ग्यारह पंडितों को सहस्त्रचण्डी यज्ञ हेतु लेकर भुवनेश्वरी देवी मन्दिर गया। भुवनेश्वरी मन्दिर इतना छोटा था कि दो तीन से अधिक व्यक्ति वहां नहीं रह सकते थे। मन्दिर के बाहर टीन की छत का बरामदा था जो धूप से तप जाता और वर्षा जल से भीग जाता था इस लिए मैं और पंडित दीनानाथ शास्त्री तथा पं० डिल्लीराज शर्मा ऊपर मन्दिर में रहे, शेष पंडितों की आवास व्यवस्था नीचे नीलकण्ठ में थी। पंडित लोगों ने प्रतिदिन तीन कि.मी. की चढ़ाई-उतराई करके धूप वर्षा सहन

करके, भूख प्यास पर नियन्त्रण रखते हुए सहस्त्रचण्डी यज्ञ सम्पन्न किया। कठिनाईयां तो बहुत रही परन्तु उक्त स्थान की महिमा से सहस्त्रचण्डी यज्ञ आनन्द से सम्पन्न किया। तभी से मेरे मन में विचार उठा कि क्यों न मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया जाये। कुछ ठहरने का स्थान बनाया जाय जिस से आने वाले साधकों को अपनी साधना में व्यवधान न हो। यह फुरणा मां भुवनेश्वरी की इच्छा ही थी जब अपने सीमित साधनों की ओर देखा तो सोचा यह गुरुतर कार्य ऐसे जलादि साधन विहिन पहाड़ी स्थल पर कैसे सम्पन्न हो सकता है परन्तु मन में यह सोच आ रही थी कि मां भुवनेश्वरी ने यह संकल्प मेरे मन में क्यों उठने दिया, अवश्य उसकी कोई लीला होगी। ऐसे विचार की उधेड़ बुन में मन था कि कैनडा निवासी, शक्ति की उपासिका श्री मती विजय अग्रवाल यज्ञ समाप्ति पर मां भुवनेश्वरी देवी मन्दिर पहुँच गयी। उसे जब ज्ञात हुआ कि पूजनीय ऋषि जी इस देवी मन्दिर का जीर्णोद्धार करना चाहते हैं तो उस ने कहा कि मंदिर का निर्माण करवाओ, जितना भी खर्च होगा वह खर्च मेरे पतिदेव श्री रमेश अग्रवाल की कमायीं से होगा। मुझे हंसी आई कि देखो महारानी का क्या कमाल है। इस बात को आज तीन वर्ष हो गये परन्तु मन्दिर का निर्माण कार्य प्रारम्भ नहीं हुआ। हरिराम जी ! आज मैं आपको अपने साथ इसलिए लाया हूं कि तुम मन्दिर को देख लो, नक्शा बनवा लो, किसी आर्किटेक्ट को बुला लो। इस मन्दिर का निर्माण कार्य तुम्हारी देख रेख में होगा।"

मैं पूज्य ऋषि जी महाराज के आदेश को शिरोधार्य कर इस कार्य में जुट गया और पूज्य ऋषि जी महाराज के निर्देशानुसार गांव सरपंच और भौन-गांव निवासियों की सहमति से, मन्दिर के पूजा स्थल की हर प्रकार की सुरक्षा करते हुए मन्दिर की पुरानी दीवारें निकाल कर 40 X 30 फुट का विशाल मन्दिर हाल बनाया गया। उस मन्दिर में पिण्डी-स्थल पर मन्दिर का नव निर्माण करवाया गया। श्रद्धेय ऋषि जी ने उस मन्दिर के लिए चार फुट ऊंची भुवनेश्वरी देवी की संगमरमर कि सुन्दर प्रतिमा जयपुर से ला कर स्थापित की। इस मन्दिर निर्माण में ऋषि केशवानन्द जी महाराज ने निर्माण कार्य को पुनः-पुनः देखने जाने आने में पैदल पहाडी चढ़ाई में अनथक परिश्रम किया है। उस मन्दिर में बिजली और पानी की स्थायी व्यवस्था करवा दी गयी है। नीलकण्ठ से मन्दिर तक के रास्ते में तीन मन्दिर द्वार बनवाये हैं। प्रथम द्वार पर जगदगुरु शंकराचार्य की मूर्ति की स्थापना भी की है और सीढ़ियों के रास्ते का निर्माण कार्य जारी है। साधना हेतु कमरों के दो सैट 'ऋषि-निवास' नाम से बनवा दिये है। माँ भुवनेश्वरी देवी में पूजनीय ऋषि जी की श्रद्धानिष्ठा देख, उनकी आराधना पद्धति देख, माँ भुवनेश्वरी देवी की उनपर कृपादृष्टि देख कर मेरा मन अत्यधिक आह्लादित है। "मां भुवनेश्वरी देवी की जय,"

तुम्हारा मार्ग निष्कंटक हो।

"तव वर्त्मनि वर्ततां शुभम्"

प्रो० दुर्गादत्त शर्मा
राजकीय महाविद्यालय, रोहतक

केशव! धुंधली सी स्मृति होती है कि सन् १९३९ को रानी वाला तालाब, फिरोज़पुर पंजाब के सनातन धर्म स्कूल में मेरा आप से साक्षात्कार हुआ था। तुम एक ग्रामीण परन्तु सफेद रेशमी कमीज और पजामा पहने हुए सम्पन्न बालक दीख रहे थे। मैं सुगठित शरीर तथा चंचल प्रवृत्ति का शहरी बालक ठहरा, जिसे मैट्रिक पास करने के बाद संस्कृत पढ़नी पड़ रही थी। मैं जीवन निर्माण के लिए अपनी योग्यता का अभिमानी बालक था। आचार्य पंडित लाहौरी राम शास्त्री द्वारा परिचय हुआ कि तुम बाल ब्रह्मचारी श्री वंशीधर जी के भानजे हो और संस्कृत पढ़ना चाहते हो। परिचय मित्रता में परिवर्तित हुआ और मित्रता धनिष्ठ होती गई।

मित्रता इतनी बढ़ी कि मैं तुम्हारे साथ बाल ब्रह्मचारी जी का भानजा बन कर रहने लगा। हम जहाँ जाते इकट्ठे जाते। स्मरण आ रहा है १९४२ का। आपके गुरु श्री बाल ब्रह्मचारी जी हरिद्वार में सेठ करोड़ीमल की धर्मशाला में ठहरे हुए थे। संयोग वश हम भी हरिद्वार पहुँच गये। वहां बाल ब्रह्मचारी जी की शिष्यमण्डली हम दोनों में भेद नहीं कर पायी। लायलपुर से पधारे गुरु जी के भक्त श्री रलियाराम रल्हन तथा उनकी धर्मपत्नी शारदा देवी "तुम्हारा दोस्त हूँ मैं" इस उस से मुझे भी उतना ही प्यार करती थी जितना तुम्हें। मेरा ध्यान उतना ही करती जितना तुम्हारा। एक-सा हमें खिलाना और एक-सा उपहार देना, यह तुम्हारी मित्रता का ही आनन्द था। हम दोनों इतने बलिष्ठ थे कि हरिद्वार से ऋषिकेश पैदल जाते-जाते एक दूसरे को पीठ पर लाद कर भागते थे। क्या सुन्दर समय था! कितना आपस में स्नेह! आज उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मित्रता में छोटे मोटे टकराव होते ही हैं ऐसे ही मुझे स्मरण आ रहा है कि जिन्ह दिनों "भारत छोड़ो आन्दोलन चल रहा था हम दोनों उस में सम्मिलित होते थे। इसी उसमें किसी बात पर मैनें तुम्हें मारने की धमकी दी थी क्या पता था कि किसी दिन तुम्ह महान व्यक्ति बनकर अनेक प्राणियों का उदार करोगें। ऐसे ही प्यार स्नेह से मैं कभी-कभी तुम्हें बुद्धू कहा करता था, क्या पता था कि एक दिन अखिल विश्व में तुम प्रतिष्ठित

विद्वान होगें। मैनें अनेक बार तुम्हारा उपहास किया होगा, क्या पता था कि तुम एक महान योगी होगें और मैं एक तुच्छ गृहस्थी!

आखिर हम बड़े हुए, हमारे मार्ग भी भिन्न-भिन्न हो गये तुम अपनी आत्म-साधाना पर आगे बढ़ते गये और मैं जीवन यापन के लिए कभी लाहौर और कभी अमृतसर पढ़ने के लिए जाता रहा। तुम मेरी विद्या प्राप्ति मैं सदैव सहायता करते रहे। तुम पाठ्यपुस्तकों का सहयोग देते थे। वास्तव में धन सम्पन्नता के साथ तुम्हारा मन भी सम्पन्न था। सम्पन्नता और निर्धनता तो सदैव व्यक्तिओं को पृथक करती रहती है परन्तु केशव तुम ने ऐसा नहीं होने दिया। यद्यपि आज तुम निर्धन निकेतन के मठाधीश हो। तब भी तुम मुझ अकिंचन को स्मरण करते हो, पूरा मान-सम्मान देते हो। तुम ने मेरी पत्नि को सदैव "भाभी जी" कह कर गले लगाया है। मुझे यही आभास होता है कि तुम्हारी मेरी मित्रता द्वारिकाधीश कृष्ण और सुदामा की मित्रता का आभास कराती है। तुम महान हो, ऐसे महान व्यक्तियों पर भारत को गर्व रहा है और रहेगा।

मैं तुम्हारी "हीरक जयन्ती" पर तुम्हें अपनी और तुम्हारी भाभी की शुभ कामनाएँ भेज रहा हूँ और प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वह तूम्हारा मार्ग प्रशस्त करे।

"शुभास्ते सन्तु पन्थानः"

दो विछुड़े दोस्तों का अनूठा मिलन

प्रो० धर्म सिंह ढिल्लों

एडवोकेट, कुरुक्षेत्र

लाहौर की बात है, आज से ५५ वर्ष पहले की, पूर्वी एवं पश्चिमी पञ्जाब की तब यह राजधानी थी। पश्चिमी "पञ्जाब विश्वविद्यालय" शिक्षा का एक प्रतिष्ठित केन्द्र रहा है। हरियाणा, पञ्जाब व यू०पी० के विद्यार्थियों का उच्च्य शिक्षा प्राप्त करने के लिये लाहौर की ओर विशेष रूझान बना हुआ था। खासतौर पर संस्कृत के ऐसे विद्यार्थी जो भारतीय वांङ्मय के साथ-साथ विदेशों के धुरन्धर संस्कृत विद्वानों के विचारों के तुलनात्मक अध्ययन में विशेष रूचि रखते रहे हैं। प्रायः वे सभी लाहौर के ओरियन्टल कॉलेज में प्रवेश प्राप्त करने का गौरव रखते थे। अध्ययन-अध्यापन की यहाँ उत्तम व्यवस्था थी। देश-विदेश के जाने-माने प्रोफेसरों की यहाँ नियुक्ति होती रही है। छात्रावास की उत्तम व्यवस्था थी। "गतानुगाति को-लोकः"- मैंने भी तब अपने साथियों का अनुसरण किया और लाहौर पँहुचा। लाहौर में भारत के प्रागैतिहासिक दर्शनीय स्थालों की भरमार है। रविवार के दिन पर्याप्त संख्या में छात्रों की टोलियां इन्हें देखने जाती थी। माल रोड़, लारैन्स गार्डन, अनारकली बाजार एवं अन्य अपनी रूचि के स्थलों पर विश्वविद्यालय के छात्र अपनी मित्र-मण्डलियों के साथ घूमने चले जाते थे। पढ़ाई भी जुट कर करते थे और सैर-सपाटा भी। खाने-पीने की चीजें भी सस्ती थी चमन के अंगूर दो पैसे के पाव, और नत्थू की दही की लस्सी, जिसमें चीनी की बजाय बढ़िया खोये की बर्फी के साथ रिड़की जाती थी, एक आने में डेढ़ बालिस्त का बुजुर्वा सतयुगी गिलास पीकर किसी और चीज के खाने की गुंजाईश नहीं रहती थी।

वहाँ पर अपने एक सहाध्यायी केशव से मैं बहुत प्रभावित था- बड़े चुस्त-दुरुस्त भव्य-आकृति, तेजोमय मुखमण्डल, मधुर भाषी, कठोर परिश्रमी, हँसमुखी, मिलनसार, अत्यन्त मेधावी और बहुत ही होनहार थे वे। इन का मुखड़ा देखते ही बनता था, जो भी इनके पास जाता वही चमन के अंगूर खाये बगैर नहीं लौटता था, अतिथि सत्कार के लिये सभी विद्यार्थी इनकी सराहना करते थे। ३ मार्च, १९४७ को डी०ए०वी० कॉलेज का एक छात्र पुलिस की गोली से मारा गया, मार्शल् लॉ लग गया, रिवजरहयात खां (तत्कालीन पञ्जाब का प्रीमियर) के जगह-जगह पुतले जलते थे हम सब कर्फ्यू मे घिरे रहते थे कुछ दिनों बाद मैं पञ्जाब मेल से भीड़ में पिसता-पिसाता पूर्वी पञ्जाब पँहुच गया, उसके बाद यहाँ रहते हुए, अर्ध-शती बीत गई, अनेकों बार केशव का चित्र स्मृति-पटल पर छा जाता, न जाने वह कहाँ होगा? लाहौर के दोस्तों में खूब दिल लगा हुआ था, भुलाये भी वे नहीं भूलते। वहाँ बेहतर पढ़ाई और मौज मस्ती भी खुब। कितने अच्छे दिन थे वे। कोई इधर गया, कोई उधर गया सब मोती से बिखर गये।

यह भी एक अजूबा देखिये! नियती दो बिछड़े दोस्तों को कैसे मिलाती है! दो वर्ष पूर्व मैं अपनी बहन, सत्या सचदेवा (प्रबन्धक, निर्धन निकेतन शिक्षा संस्थान) से मिलने इस आश्रम में आया था। उन्होंने मुझ से कहा चलो भाई साहब, आप को महाराज जी के दर्शन करा दें मैं खुशी-खुशी उन के साथ चल पड़ा, एक साधारण से तख्त पर बैठे "महाराज जी" के पास ले गई। मैंने चरण वन्दना की, ऋषि जी से मैं आश्रम की गति विधियों की जानकारी लेता रहा और साथ ही साथ उनके चेहरे को निहारता रहा। उन की बोल-चाल, हाव-भाव, मुख-भङ्गिमा, गम्भीर आकृति- ये सब देखकर मुझे ऐसा लगने लगा कि ये तो पुराने परिचित से लगते हैं। मैंने अपनी स्मृति पर जोर दिया। धूमिल सी याद आई। दुस्साहस करके कुछ सवाल पूछने लगा, स्वामी जी क्या आप कभी लाहौर रहे हैं? उत्तर मिला- हाँ। वहाँ क्या पढ़ते थे? हाँ, ओरियन्टल कॉलेज में मैं पढ़ता था। आप केशव जी तो नहीं है? बोले, आप ने खूब पहचाना। मैंने कालेज के कुछ साथियों के नाम भी लिये, उनकी युवावस्था की यादें जाग पड़ी, लाहौर के सब चित्र उनके तथा मेरे भी मस्तिष्क में धुमने लगे। मैंने मन ही मन सोचा- ये तो प्रोफेसर बनना चाहते थे और हम सोचते थे कि इन्होंने सन्यासी बनना है "मेरे मन कछु और है, विधना के कछु और।" प्रभु आदेश का तो पालन करना ही होता है। **लाहौर के साथी अपने केशव भैय्या को भुलाकर हमने श्री १०८ ऋषि प्रवर स्वामी केशवानन्द जी महाराज के चरणों में नमन किया।** मिलकर बड़ी खुशी हुई। हृदय गद्-गद् हो गया। एक कठोर साधक, तपोमूर्ति, वीतराग ऋषि जी महाराज को टकटकी नजर से निहारता रहा- एक प्रोफेसर के स्वप्न लेने वाला, बड़ी-बड़ी नौकरियों को ठुकराकर यति-सन्यासी बना और दूसरा (सामने बैठा धर्म सिंह ढिल्लों) शिक्षा विभाग में लम्बे अरसे तक प्रोफेसर एवं अन्य उच्च पदों पर रहने के बाद आज वानप्रस्थी-मात्र है।

हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ, तुलना की -हरिद्वार व ऋषिकेश में अधिकतर महात्मा कहलाने वाले गद्दी-धारी सन्त-महन्त रुपये-पैसे-टके देने वाले यात्रियों की बाट जोहते रहते हैं। समाज सेवा के कार्य से उनका कोई लेना-देना नहीं, ऋषि महाराज जी के कार्य-कलापों को जब निहारता हूँ तो हृदय में आनन्द की हिल्लोरें उठती हैं- संस्कृत विद्यालय, कन्या पाठशाला, धर्मार्थ चिकित्सालय, गोशाला, यज्ञशाला, नित्य चलनो वाला अन्य क्षेत्र आदि फलाकांक्षा को त्याग कर, भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों के आदेश का पालन करते हुए वेद उपनिषद एवं दर्शन की शिक्षा-दिक्षा के प्रति कितने समर्पित है। "ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।" भावी पीढ़ी को शिक्षित बनाने का काम-राष्ट्र की सब से बड़ी सेवा है। धन्य हो ऋषि जी महाराज!

प्रभु से हमारी कर बद्ध प्रार्थना है कि महाराज जी को और अधिक सशक्त एवं सबल बनायें- जिससे कि वे हमारे नन्हें-मुन्नो को विद्यादान के साथ-साथ आचार-विचार से दीक्षित करते हुए शतायुः सेवारत रहें। शमित्योम्

ज्ञान सागर संतरण में हो तुम्ही नाविक सफल !

पूरन चन्द्र पाण्डेय 'यशस्वी'
दरियागंज, नई दिल्ली

हे धन्य जीवन आपका, आध्यात्ममय संसार भी
ज्ञानियों के कर्णधार, तपस्वी ऋषिवर तुम्ही,
दिनकर सदृश चमके तेरी, ज्योति अलौकिक ज्ञान की
ज्ञान सागार संतरण में, हो तुम्ही नाविक सफल।।१।।

तुमने लगाया बाग है, वेदोपनिषद-पुराण का
षड़दर्शनों के वृक्ष, जिनमें भक्ति ज्ञान वैराग्य पुष्प,
धर्मार्थ काम मोक्ष के फलते सदैव अप्राप्य फल,
संसार सागर संतरण में हो तुम्ही नाविक सफल।।२।।

हे मनीषी ! आप तो माँ शारदा के वरद सुत,
विद्यालय अनेक निर्मित किये, जगत के कल्याण को
ज्ञान गंगा का निकट प्रवाह भी अविछिन्न है
संसार सागर संतरण में हो तुम्ही नाविक सफल।।३।।

जप-तप-भजन और योगमय-भक्ति सदा अविराम है
दीपक सुमेधा, तेल श्रम, बाती जलाई ज्ञान की
प्रकाशित सकल यह जग हुआ सब मिट गया अज्ञानतम
ज्ञान सागर संतरण में हो तुम्ही नाविक सफल।।४।।

नित वेद पढ़ते ब्रह्म-बटु, कर्मठ धृतव्रत संयमी
तपस्वी गुरुजन सुयोग्य ज्ञानी परम उदार धी।
फिर दयानिधि आपका आश्रय तो पूरन काम है,
संसार सागर संतरण में हो तुम्ही नाविक सफल।।५।।

*****

ऋषि-गौरव

तारादत्त अवस्थी, शास्त्री, प्रथम वर्ष
ऋषि-संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

विश्वप्रसिद्ध, हिन्दुबहुल राष्ट्र-भारत के विभिन्न प्रदेशों में विशिष्ट तीर्थ-स्थल विद्यमान हैं उनमें तीर्थराज हरिद्वार का महत्वपूर्ण स्थान है जहाँ पतित-पावनी, पुण्य-सलिला भगवती-भागीरथी लोक-कल्याण कर रही है।

भगवती-भागीरथी के रमणीय तट पर स्थित, पूर्वाभिमुख, उदीयमान-भास्कर की प्रथम-रश्मियों से उद्भासित, ऋषि-शिरोमणि ऋषि केशवानन्द महाराज द्वारा संस्थापित "निर्धन-निकेतन" नामक एक विश्वविख्यात संस्था है जो अनुकूल-साधन समन्वित है और ज्ञान-गरिमा-मण्डित अपने क्रिया-कलापों द्वारा जनमानस को प्रभावित कर रही है। यह आश्रम नाना प्रकार के पुष्पों-फलों से लदे लता-द्रमों से सुवासित है, अनेक दर्शनीय मन्दिरों से आकर्षित है, विभिन्न अतिथि-भवनों से सुसज्जित है, विविध-विद्यालयों की शिक्षा-पद्धति से व्यवस्थित है और यहाँ समय-समय पर समायोजित-धार्मिक अनुष्ठानों से गुंजायमान यह संस्था समाज के प्राकृतिक, शैक्षिक, धार्मिक और आध्यात्मिक पर्यावरण का संस्कार कर रही है। इस संस्था के अध्यक्ष परम श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द जी महाराज हैं जिन्ह के तप-त्याग का साकार रूप है यह "निर्धन-निकेतन" आश्रम।

ऋषि जी देववाणी संस्कृत और भारतीय-संस्कृति में निष्ठावान महापुरूष हैं। उन्होंने संस्कृत एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसारार्थ "ऋषि संस्कृत महाविद्यालय" हरिद्वार की स्थापना की है। इन्हीं के योग-क्षेम का प्रभुत्व है कि ऋषि-संस्कृत महाविद्यालय अपने भारत-देश में तो नाम पा रहा है विदेशों में भी इसकी ख्याति है। मैं नेपाल का नागरिक हूँ, संस्कृत भाषा व संस्कृत शास्त्रों के ज्ञान की प्राप्ति के लिए भारत आया हूँ। नेपाल को इस महाविद्यालय के अध्ययन अध्यापन तथा इसकी प्रबन्ध व्यवस्था ने प्रबल रूप से प्रभावित किया है क्योंकि इस महाविद्यालय से अध्ययन कर निकले छात्र संस्कारित-जीवन में आस्था रखने वाले होते हैं, शास्त्र-ज्ञान से प्रबुद्ध होते हैं। वे छात्र विभिन्न पदों की नियुक्ति के लिए होने वाले साक्षात्कार में मेधावी पाये जाते हैं और भी वे छात्र नेपाल में उँचे-उँचे पदो पर कार्यरत हैं। वहाँ के विद्वत्समाज में यहाँ से पढ़े नेपाली छात्रों के व्यक्तित्व की एक अलग पहचान समझी जाती है। इस पहचान का कारण मैं आज अपनी आँखों देख रहा हूँ वह है इस महाविद्यालय के छात्र का मर्यादित जीवन –

प्रत्येक छात्र को ब्रह्ममुहूर्त में उठकर, स्नानादि से निवृत्त होकर शिवमन्दिर में सामूहिक रूद्री पाठ, प्रार्थना-भवन में गीता-रामायण आदि ग्रन्थों पर प्रवचन, योगासन-प्राणायाम का अभ्यास, गुरू-वन्दन करना एवं आरती में सम्मिलित होना है। प्रातराश (चाय-नाश्ता) ग्रहण करने के बाद छात्रावास में स्व-स्थान पर स्थित हो छात्र को २ घन्टा स्वाध्याय करना होता है। एक घन्टे के सामूहिक सेवा-कार्य से छात्र प्रतिदिन अपना शारिरिक

एवं मानसिक परिष्कार पाता है। प्रातः १० बजे से सायं ५ बजे तक अपने गुरूजनों के सानिध्य में रहकर विविध-विषयों एवं शास्त्रों का ज्ञानार्जन करता है। यथा आजकल मैं आचार्य श्री ब्रह्मानन्द बिडालिया और श्री डिल्लीराज शर्मा से संस्कृत-साहित्य का प्रौढ़-ज्ञान प्राप्त कर रहा हूँ तथा श्री प्रेमशंकर शर्मा और श्री अरुण कुमार पाण्डेय से हिन्दी भाषा तथा उसके विस्तृत-साहित्य की जानकारी प्राप्त कर रहा हूँ। मध्याह्न में भोजन अन्नपूर्णा के स्मरण पूर्वक मन्त्रोच्चारण से होता है। सांयकालीन संध्या में सफेद धोती-कुर्ता गंगा घाट पर स्थित बटुक आकाश में टिमटिमाते नक्षत्रों की तरह सुशोभित होते हैं। प्रातः सायं सन्ध्योपासना, हवन-पूजन और मन्त्रोच्चारण से अनुगुंजित वातावरण में आश्रम में उत्सव का माहौल होता है। रात्रि भोजनोपरान्त 8 बजे से 10 बजे तक छात्रों को स्व-कक्ष में मौन स्थित हो स्वाध्याय करना होता है तत्पश्चात प्रभु-स्मरण पूर्वक शयन करना है। इस अनुशासित, मर्यादित एवं संस्कारित दिनचर्या के साथ शास्त्रों का अध्ययन छात्र के जीवन को एक विकसित-दिशा देता है। गौरव की बात है कि इस महाविद्यालय का नेतृत्व एक महिला प्राचार्या डा० सतीश कुमारी द्वारा किया जा रहा है। जिसके प्रशासन की प्रसिद्धि यहाँ ही नहीं नेपाल में भी है। संस्कृत के प्रति समर्पित भावना की यह भद्र महिला निष्काम कर्मयोगिनी है। महाविद्यालय की ऐसी सुन्दर व्यवस्था महाविद्यालय के अध्यक्ष श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द जी महाराज का शुभ-संकल्प है। उनकी प्रेरणा से प्रेरित व उनके निर्देशों से निर्देशित छात्र, आचार्य एवं प्रबन्धक-जन महाविद्यालय को उचित दिशा दे रहे हैं। पूज्य ऋषि जी ने अपना सारा जीवन संस्कृत एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार में ही लगा दिया है। उनकी संस्कृत भाषा और शिक्षा के प्रति अगाध-निष्ठा, उदारता और उत्साह है जो ऋृषि संस्कृत महाविद्यालय के विकास में निरन्तर सहायक है ऐसे संस्कृत-निष्ठावान महापुरूष अवश्य ही अभिनन्दनीय हैं।

पूज्य ऋषि जी अन्तः बाह्य व्यक्तित्त्व के धनी हैं। हितोपदेश में वर्णित ये विशेषताएँ ऋषि जी के जीवन में सम्यक् रूप से परिलक्षित होती हैं।

धर्मेतत्परता, मुखे मधुरता, दाने समुत्साहता,
मित्रेऽवंचकता, गुरौ विनयता, चित्तेऽतिगम्भीरता।
आचारे शुचिता, गुणे रसिकता, शास्त्रेषु विज्ञप्तृता,
रूपे सुन्दरता, निशं भजनता, त्वय्यासित वै केशव ! (हितोपदेश)

धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान में उत्साह, मित्रों में सद्-व्यवहारता, गुरू के प्रति विनम्रता, अन्तः करण में गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुणों में रसिकता, शास्त्रों में विशेषज्ञता, रूप में सुन्दरता और निरन्तर-भक्ति आदि गुण पूज्यपाद अनन्तश्री विभूषित ऋषि जी महाराज में स्वाभाविक रूप में विद्यमान हैं। उनमें अन्तर्निहित भावों एवं विचारों का पुंज ऋषि-परम्पराओं को पुष्ट करने वाला और लोक-कल्याण कारी है। जैसे पुष्प अपनी सुबास से सम्पूर्ण वातावरण को सुगन्धित बना देता है वैसे ऋषि जी ने अपने सद्भावों और सद्गुणों

से देश-देशान्तर को प्रभावित कर रखा है। "स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते" की उक्ति आप पर पूर्ण चरितार्थ होती है। आप अपनी गुण-गरिमा से विद्वत्ता से सम्पूर्ण भू-मण्डल में पूजनीय हैं। आपका दरबार सन्तों विद्वानों और पंडितों से सदा भरा रहता है क्योंकि विद्वानों और पंडितों के आप कदरदान हैं। हीरे की परख जौहरी को होती है। आप प्रतिवर्ष सन्तविभूति से विभूषित एक सन्त का तथा पांडित्य से विभूषित एक विद्वान का गुरूपूर्णिमा-पूर्व की पूर्व-वेला पर समायोजित "सन्त-सम्मेलन तथा विद्वत्सभा" में ग्रन्धाक्षतमाल्यापर्णपूर्वक उत्तरीय ओढ़ाकर सदक्षिणा सम्मान करते हैं तदनन्तर समष्टि-भण्डारा करते हैं जिसमें हरिद्वार के आखाडों, मठों, आश्रमों और मन्दिरों के महन्त, मण्डलेश्वर, सन्त एवं विद्वान् महापुरूष भाग लेते हैं। ऐसी सुन्दर परम्परा आप ही के द्वारा वर्षों से हरिद्वार में चल रही है। सब के सम्मान की रक्षा आप हदय से करते हैं।

श्रद्धेय ऋषि जी का प्रिय शास्त्र गीता है जिसमें कर्म-ज्ञान-भक्ति की त्रिवेणी बहती है। आप का उपदेश है कि-

"एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्"

इस शास्त्रानुसार आचरण करने से मनुष्य परमशान्ति को प्राप्त कर सकता है अन्य शास्त्रों के अध्ययन की कोई आवश्यकता नहीं है इसी गीता का अनुशीलन करो। इसलिए प्रतिदिन प्रातकाल सत्संग-भवन में गीता का पारायण और गीता का प्रवचन होता है। छात्रावासाध्यक्ष डा० भारतनन्दन चौबे जी द्वारा गीता छात्रों को अर्थ सहित कण्ठ करवायी जाती है। गीता कण्ठस्थ करने वाले छात्रों को पूज्य ऋषि जी द्वारा पुरस्कृत किया जाता है। सच आप उदारव्यक्तित्व के धनी हैं।

ऐसे ऋषि-मुनियों एवं तपस्वी-महापुरूषों की पावन भारतभूमि इस संसार में युग-युगान्तरों से विश्ववन्दनीय है। भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए कृतसंकल्प, परम पूज्य ऋषि जी महाराज के शतायु होने की और उनके स्वस्थ-जीवन की कामना के साथ अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

English Section

CONTENTS

1.	**Rsi-How The Puranas Look at him**	:	Dr. Satya Vrat Shastri Ex. Vice-Chancellor, Jagannath Sanskrit University, Puri	364
2.	**Life, Works & Message of Rishi Keshwanand ji Maharaj**	:	Sushri Satya Sachdeva, M.A., Manager, Educational Institutions, Nirdhan Niketan, Hardwar	368
3.	**Celestial Grandeur A Reminiscence**	:	Prof. R.N. Matta Ex-Principal, Govt. College, Rara Sahib, Ludhiana (Pb.)	375
4.	**मेरे गुरुदेव**	:	Late Shri Brahma Swarup Varma, Director of Administration, India Heritage Research Foundation, America	378
5.	**Narad Muni**	:	Prof. Gangadhar Panda Head, Purana ¼iqjk.k½ Vibhaga, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi.	382
6.	**Golden Mean**	:	Sh. Digambar Dutt Thapliyal ADM (Retd.) U.P. Civil Service. Saharanpur.	385
7.	**A Homage**	:	Prof. Savitri Matta, M.A., PGDTE. Head (Retd.) Dept of English, G.C.W. Ludhiana (Pb.)	389

8.	**In Quest of Eternal Light**	:	LateProf. R.N. Matta P.E.S.I.(Retd.) S.D. Govt. College, Ludhiana (Pb.)	393
9.	**Inspiration For Me**	:	Sh. Dev Anand, M.A. Delhi.	398
10.	**My Perception of Rishikeshwanand**	:	Mrs. Kamlesh, M.A. (Eng.) Front line Fashion Apparel, Delhi	402
11.	**The Elusive Snowman of the Himalayas**	:	Sh. Arjun Singh B.Sc., B.Ed. Edmonton (Canada).	404.
12.	**Human Happiness**	:	Prof. Sarita Matta, M.A., M.Phil., D.D. Jain College, Ludhiana.	406
13.	**Spirit Body and Money**	:	Mrs. Khushwant Kaur, M.A., B.T., Hoshiarpur (Pb.)	409
14.	**My Father Guru, Rishi Keshwa Nand Ji Maharaj**	:	Sh. Dev Raj Gorg, (Retd) Revenue Officer, Punjab.	412

RSI-HOW THE PURANAS LOOK AT HIM

Satya Vrat Shastri
Ex. Vice-Chancellor,
Jagannath Sanskrit University, Puri

Sanskrit literature is full of references to rsis who have exercised powerful influence on Indian society down the a ges. They were holy people living in hermitages in forests engaging themselves in austerities.Quite a few of them were married and had families. They would also officiate at sacrifices which the kings of their time would arrange besides acting as their advisers in matters of state. In addition to all this they would play the role of teachers imparting to their pupils knowledge of religious and secular lores which had earned some of them like Kanva,Vaśiṣṭha, Viśvāmitr and Varatantu, the exalted title of Kulapati which is appended, according to an older purāṇic text, to Viprarṣi, a Brahmin seer who teaches ten thousand hermits with provisions for their food and other necessities:

munīnāṁ daśasāhasraṁ yo ṅnadānādipoṣaṇatA
adhyāpayati viprarṣir asau kulapatiḥ smṛtaḥAA[1]

and who is the foremost among the sages, the preceptor of many a pupil and abounds in activites such as sacrifices and austerities :

ācaryo bahuśiṣyāṇāṁ munīnām agraṇis tu yaḥA
vratayajnādikarmāḍhyaḥ sa vai kulapatiḥ smṛtaḥAA[2]

The ṛṣis were divided as per their caste into viprarsis and rajarsis and as per their status into maharṣis and devarṣis.

1. Assigned to the Padmapuraṇa by M.R. Kala in his comment under Abhijñana śākuntala : Kulapater asannidhyāt, Act 1.
2. Quoted by Mallinatha under the same.

As a prelude to our discussion of the puranic concept of a rsi, it will be interesting to trace in brief the history of the meaning of the appellation. At one point of time the word signified the Veda. Dandanarayana in his Vrtti on Bhojaraja's Unadisutras[1] and Haradatta Misra in his comments in the Padamanjari on Pan. 1.8.18 clearly interpret rsi as Veda. So do the lexica the Vaijayanti and the Sasvata. It were the rsis who had first "seen" the Veda: rsayo Mantradrastarah. Being the first recipients of the divine knowledge, the Veda, they came to be indentified with it.

At another point of time rsi meant pranas, vital airs, vide the Satapatha Brahmana:

asad va idam agra asit. Tad ahuh kim va tad asad asid ity rsaya vava te 'gra 'sad asit. tad ahuh ke ta rsaya iti. Prana ya rsayas te yat pura 'smat sarvasmad idam icchantah sramena tapasa 'Visamstasmad rsayah[2], Who were those rsis ? rsis doubtless were the vital airs, in as much as before (the existence of) the universe, they desiring it, wore themselves out (r+si) with toil and austerity, therefore, they were called rsis.

Coming to the puranas, we find that they do not gererally differentiate between rsis, munis, tapasas and so on. Rsi is the term commonly used to designate hermits in general. The Brahmanda Purana derives the term ṛṣi from ṛṣ 'to go', a commonly accepted derivation of the word : gatyarthād ṛṣater dh– ator nāma nirvṛtir āditaḥ.[1]

The unmanifest was the rsi, not only that, he was prmarsi because of the great movement in him at the time of transformation. This is his rsihood. At another place in the same Purana it is said that those who excel in austerites

1. II.1.159
2. 6.1.1.1.

are rsis : Ttapahprakarsah sumahan yesam to rsyah smrtah.[2] It is the austerities which invest them with superior strength and intellect, a view echoed also by the Vaisesikas :

vide, Prasastapadabhasy.[3]

The Matsyapurana[4] does not limit ™rsis to the sense of movement, gati, only. Recounting its other meanings of knowledge, vidya; truth, satya; austerities, tapah and learning, sruti, it says that a Brahmin who is endowed with all these is rsi:

rsir himsagatau dhatur vidya satyam tapah srutamA
esam samnicaya yasmad Brahmanas tu tatas tv rsihAA

According to another view in the same Purana rsis are so called becasue they have emerged, have sprung forth, from Brahman. Not only they who are the direct progeny of Brahman, their sons too carry the same appellation, whether they are born of them or are their mental creations :

isvaranam sutas tesam manasas caurasas ca vai A
rsis tasmat paratvena bhutadir rsayas tatah AA[5]

According to the Vayu Purana those early sages who could grasp the reality in beings and who had forsaken the ego were the rsis.[1]

From all these explanations it is clear that the word rsi is derived from rs assigned the sense of movement or gati. They were the primeval beings descended from Brahman, the Ultimate Reality or their progeny who had all

1. 1.32.86-88.
2. 1.33.32-5.
3. pp. 128-9.
4. 145.81
5. 145.86

the pristine purity still intact in them. Bereft of the ego and purified by austerities they were endowed with pure knowledge which enabled them to go beyond the world : rsati jnanena samsaraparam iti rsih, vide the Siddhantakaumudi. It is they who could perceive the past and future as if it were present, the events of both, the events that had taken place and those that are yet to take place, appeared to them as if they were taking place before their very eyes, vide Bharthari atitanagatajnanam pratyaksan no visisyate[2]. "They were the first recepients of divine knowledge which they transmitted to successive generations. It is this knowledge which had enabled them to acquire this capacity by which what ever they would say would come true or in the words of Bhavabhuti facts would hasten after their speech :

rsinam punar adyanam vacam arto nudhavati.[3]

LIFE, WORKS & MESSAGE OF RISHI KESHWA NAND JI MAHARAJ

Satya Sachdeva, M.A.
Manager
Educational Institutions,
Nirdhan Niketan, Hardwar

Great men appear on earth for the salvation of mankind. They elevate human beings to great heights by leading them from darkness to light.

One such personality before us is Rishi Keshwa Nand ji Maharaj. Blooming with Divine Grace, he is crossing seventy fifth year of his life. He is a rare combination of education and spirituality; humility, intellectuality as well as selfless service and generosity. He is a deep thinker and a KaramYogi.

Born in Punjab in the village CHEHLAN WALA on 3-8-1924, Haryali Teej of Shrawan Shukla in the lap of mother Smt. Shyam Devi & father Shri Munshi Ramji Rishi, he was brought to the mighty sage Bal BrahmChari Bansi Dhar ji Maharaj VIRKAN WALE at the tender age of two yrs. The sage had practically no belongings but the wealth and might of his spirit. He was awfully loved , reverently feared and passionately desired. The problems of humanity in his presence would vanish as if by a magic wand . The poorest, the lowliest and the lost called aloud to him in their anguish. With his flowing gown he would walk barefoot with equal grace on the mountain tops and sandy planes.

In an ecstatic mood, he welcomed the child with open arms as if he was meeting his own beloved form and uttered,"O, You are my Narayana. I am your Narayna". In fact the child had been born to His sister for Him. It had so happened that his sister had come to her mother's place with the young kid. Gurudev asked

her to leave the child with him . She hesitatingly said ' Yes' to him but a day before the departure for the in-laws place she prepared to take him with her. The same night, the child raised loud cries and expired. Crying aloud, she came to her brother, the great sage who consoled her and assured her with the words,"The child has gone to play and will come back but he will have to stay with me only ." With folded hands she promised to do so . In due course of time, she gave birth to a lovely child and brought it to him . Gurudev said," Bring the child when he is of two years." Just when the two years were over, the child cried and cried incessantly. It occurred to her ,'two years are over to-day'. Immediately, the mother started getting ready to take the child to the sage. In a big decorated chariot, all the members of the family and the relatives took the child to the Guru ji who was already waiting for him. Great rejoicings took place. Sweets were distributed to all the villagers near by.

The child was named Keshwa Nand . He had a devotional aptitude at the tender age of four years . He would get up very early to take bath first and sit for prayers with his maternal uncle Sh. Munshi Ram ji. He would sit in Padma-asana and do pranayam . Once it so happened that he entered into a trance and did not move about, holding his breath for three hours. The members of the family got frightened and took him to Guru ji who brought him back to normal breathing.

Gurudev, himself gave him'Akshar Bodh'(learning alphabets) in Devnagriscript. Just at the age of seven yrs, he had learnt Gita by heart. He started by himself *DURGA SAPT SHATI PATH* when he was only eight years old.

Now he was keen to have regular schooling but Guru ji told him,' Your teacher will come here only.' It came out true. His Sanskrit teacher came to Guru ji's Kutia as all his family members, his sons and daughters and even his wife expired with in a span of two years. Rishi Kumar, the great intellect got mastery in Sanskrit grammar in a very short period and passed all grades with distinction. The strict discipline along with the

affectionate care of the sage's mother, his maternal uncle and, especially the blissful spiritual training and guidance of the great sage shaped the child's career into a brilliant student of spiritual type. He scaled heights in academics by passing VISHARDA & SHASTRI exams with flying colours. Then he did post-graduation in English followed by M.A.in Sanskrit .

The spirit of service to mankind was ordained in him by the Mighty Sage who had prepared him to dispel darkness through the spread of education. That is why, this Blessed son of Mother Goddess ventured to start Rishi College at Ludhiana . Besides imparting excellent education, this college gave practical lessons in the religion of love of man for man , which he felt was the need of the hour.

The Rishi college achieved glorious reputation by scoring top positions in University exams. The college imparted formal education to the day- students and informal education, through evening classes, to the in-service people and the dropouts.The classes were held for Board exams as well as for Hindi, Sanskrit & English up to M.A standard and also for Rattan, Bhushan & Prabhakar by qualified & devoted teachers. I, too had an opportunity to be his student of M.A. Hindi in 1955. Despite having not postgraduated in Hindi, he taught so well that I could not help requesting him to appear in M.A. Hindi exam. Hesitatingly, he acceded to this request and got very high rank in the exam. The annual functions of the college were excellent and invariably blessed by the Great Sage Gurudev Ji.

Had some thing else not been in store for him or the change of track not been ordained for him, Rishi college would have turned into a university like Vishwa Bharati of Shri Rabindra Nath Tagore.

It so happened that on 3rd June 1956, Gurudev expressed his desire to take Rishi Keshwanand Ji with him to Haridwar. Like an obedient son, he aecompanied him taking all the care on the way.

Just when they reached Har- ki- Pauri Hardwar, Guruji said ' Jai Gange, Jai

Gange'. Quickly they left for Jagdish Ashram where He often used to stay. Feeling that He was tired and totally empty stomach, half a cup of Banafsha tea was given to Him. Immediately, He asked,"Where is Maharaj ji ?" Guru ji's face became reddish with glow and in an ecstatic semi-trance position, He said,"Hari Om! Hari Om! Let us go" Putting his right hand on the right shoulder of Rishi Keshwanand ji Maharaj He started moving to the room up stairs with great difficulty. No sooner did he reach near his room than the spark of life left his mortal body. Popularly known as Pita ji, his sons and daughters could not bear the separation. Amongst wails and cries they requested Pujya Rishi Ji Maharaj to grant solace and support to the agrieved hearts and look after them like Pita ji. Rishi ji had no alternative but to accept this. When and where to assemble was the problem ? But the problem was solved when some of the devotees felt that The Pita ji- who had left his mortal body two days ago- had risen up from his astral body and told each one of them separately ,"My child, do not cry. Rishi ji is there for you. Only my worn out body is gone.I am always with you in him . Pointing out to some area he added ," This is the place where you will assemble ," So a trust was established in December 1956 named Bal BrahmChari Mission, to erect the Memorial at the place hinted by Him which would be called Nirdhan Niketan, in the name of the Holy saint. Since then Pujya Rishiji's mission has been to serve this Nirdhan Niketan, the abode of Pita ji and his Guru-Sangat and spread His name.

This splendid Ashram situated in BhimGoda , Kharkhari, one and a half kms. from Har-ki-Pauri on the banks of the Ganges is a place where congenial environment is provided to the seekers of truth . Having entered the Ashram, one finds Shankar ji's Parivar Temple. There is a big Assembly Hall with Pita ji in the centre. Lord Krishna and Lord Rama are on the right and left corner. A few steps ahead you will find Sidha Peeth JAGDAMBA TEMPLE in the centre, with HANUMANJI'S temple on her right and SHANKAR JI's temple on the left .On the beautiful Ganga Ghat GANGA MANDIR and on the first floor NAV DURGA MANDIR are for the Sadhakas.

The love for education and service to humanity of Pujya Rishi Ji Maharaj is

reflected in running four institutions in the campus. They impart education to children at different levels and cater to the all round development of their personality.

RISHI SANSKRIT MAHA VIDYALAYA provides free education in Sanskrit, including free boarding and lodging, up to Acharya (M.A) classes. Students are taught by learned teachers. Practice of Vedic sermons & Vedanta Pravachan is a daily feature. The Vidyalaya has risen to heights of glory not only in India but also in Canada, Australia and Denmark etc.

RISHI Hr. SECONDARY SCHOOL imparts education qualilatively and quantitatively with excellent results in a self-disciplined atmosphere.

RISHI BAL VIDYALAYA grooms children with healthy traits of character where as RISHI LOTUS ACADEMY educates tiny tots through English medium, preparing them for higher performance in life.

The schools with harmonious and peaceful atmosphere provide spiritual and intellectual stimulation.

RISHI VEDIC RESEARCH CENTRE has a rich library and is frequented by great Vedic scholars and researchers. Many publications are brought out from time to time.

A day before Guru Pooja Day every year one Saint, one Scholar of high order and one Teacher of excellent calibre are honoured by Rishi Ji Maharaj with cash and momentos.

SOCIAL HUMANITARIAN WORKS :-

The Ashram hums with activities of set routine from morning till evening with a sense of devotion and involvement. The saints, sadhu mandalies and the less fortunate are served food.

RISHI ANNAPURNA BHANDAR serves free meals and tea to one and all

in the Ashram both in the morning and evening. Fruit, milk and sweets are often distributed without any discrimination. Under one roof the Indians and the foreigners enjoy wonderful hospitality. Rishi Ji Maharaj himself treats all guests with courtesy and love.

RISHI GOSHALA provides loving care to more than 100 cows. Many more cows are looked after at the agriculture farm of the Ashram at Bahadrabad, Hardwar

It is difficult to find a teacher, a preacher and a yogi of the calibre of Rishi Keshwa Nand ji Maharaj in the modern materialistic world.

Busy in his daily meditations in Padmasna for at least three hours in the morning and evening, he finds time to recite Gita and give pravachans to the devotees in the morning assembly.

He has performed three LAKSHA CHANDI YAJNAS in the year 1981, 1986 and 1996 quite devotionally and systematically in the big Yajna Shala of the Ashram. A steady stream of devotees poured in from all corners of India and abroad for participating in the Yajna.

Evening Yajna is a daily feature, where as Sahastra Chandi yajna in the Navratras is a six monthly feature.

Rishiji's Pilgrimage to Shri BADRIDHAM, KEDARNATH, GANGOTRI, JAMNOTRI AND VAISHNAVI DEVI along with his devotees on foot has been a source of inspiration to one and all. His pilgrimage to Ganga Sagar and Jagan Nath Puri every alternate year, to Allahabad, Rameshwaram and other religious venues frequently shows his love for places of pilgrimage.

He is the source of inspiration for all these great activities of service to one and all, at all stages of life. The unique and exemplary life of Rishi ji Maharaj infuses purity and love of God in his devotees. His broad welcoming smile and blessed looks make one happy and free of anguish and tensions.

How the people abroad in USA and U.K. look forward to his visits, are keen to have his message and receive miraculous vibrations is a matter of pride. Almost every alternate year, Rishi Ji Maharaj pays a visit to Edmonton, Toronto and various places in America and Canada to bless the devotees with His practical training in Sadhana.

His solid messages for us to follow are-"Service of humanity is service of God" and "With renunciation comes peace,"

May God bless this Great Saint, Maharishi, the Founder & Sanchalak of the Ashram and Mission with a Long, Happy and Healthy Life!

CELESTIAL GRANDEUR A REMINISCENCE

Ram.N. Matta, M.A.

P.E.S.I. (Retd.)

'A soul-moving glimpse of Pitaji - Guruji of Rishi Keshwa Nand ji'-Ed.

A deeply moving picture after picture comes before the eyes. Memories of different occasions of the holy Darshan of the Mighty Sage are revived.Only a few days stay with him had such a deep effect that its intoxication lasted for months. Whether it was his reign of the quiet solitude in his Kutia, his spiritual leisure in Hardwar or his sojourn through different towns from one to the other, he wielded an immense sway. With only the wealth and might of his spirit and practically no belongings, he out-topped all statures of humanity- immensely loved, reverently feared and passionately desired. Once one sat beneath his feet one never liked to be away. With a great force one had to tear oneself away.

He had no problems of his own and the problems of humanity in his presence vanished as if by a magic wand. Leather or wood dare not stand between his soft, silken feet and the mother-earth; and with these holy feet he walked barefoot with equal grace on the mountain tops and the sandy plains. While his flowing locks had their dialogue with the ethereal regions, his flowing gown measured the vastness of the earth, his feet were always there wherethe poorest, the lowliest and the lost called aloud to him in their anguish.

Those who walked up the distance from the Railway Station to his forest abode, in groups, started living in his presence much earlier than they reached the Kutia. Like home-sick travellers, they yearned to meet their Father. Not infre-quently would he himself be coming half-way on the bank of the canal to welcome his children. He would hail his children from afar like a shepherd calling aloud for his flocks to get back into the cosy solace of the home. With the simple, fresh and

sincere food, the down-on-earth beds, the visitors enjoyed a bliss unmatched by any earthly luxuries.

No pre-planned and published sermons, no snubbing and snobbing, no assumptions of supernatural feats, he set everyone to a devotional performance of one's social duties while one constantly surrendered oneself to God with holy chantings and contemplations. And he took out the sting of life. Not that he experienced no joys or sorrows. The glittering smiles, the gleam in his eyes were never infrequent. And the agitated brow, the stern cold command would also occasionally appear. But all these for others; seldom for himself.

It was one such morning. With longing looks, a long column of men and women were wending their way to the Kutia. The wintry sun, though aslant, was shining with its invigorating rays. The glow of the sun, the warmth of the pacing footsteps and the feverish excitement of having a sight of Pitaji any moment, with the Kutia and the canal as the cynosure of all eyes, had created a trance.

Suddenly there came the long awaited voice which echoed through the length and breadth of the desolation. " Come on, Child!" and the gait of all those craving for the holy moment grew brisk. The chattering of tongues stopped, the limbs forgot their fatigue, the whirligig of the path and the waywardness of the restless mind all receded into the unconscious. Only one word, overwhelmed with all feeling and no thought. Without knowing what they said and without attuning to each other, all tongues cried "Pitaji!" Pat came the reply. " Come on! Come forward!" Another call from the tower of strength which like a giant magnetic crane made all rush forward. He was not in sight but the minds saw all. "Come on!' he repeated. Would that the few yards of the distance had disappeared but lo! suddenly everyone noted that the voice of the Eternal Light that ever beckoned the sailors and the ship-wrecked was choked. When it came again, it was almost subdued with agony. And it was true. Only within moments the vision, as if of Amarnath on the Kailash, was there. There was no laughter of bounty. There were

no smiles that rippled between the lips and eyes. There was a prone brow,mightily agitated. And the Hercules-like figure paced on the canal, restless, pondering, carrying, as if, the entire load of the universe on his broad shoulders.

The pilgrims almost ran up to him, lay down prostrate at his feet, voices brimful of joy swarmed round him, clasping him all round. He patted some on the head, blessed others and asked about their welfare. Yet some anxiety rattled in his own throat while he sucked that of others. At last one dared, "Pitaji! How are you?" He only threw back a silent stare gasping within. "Are you all right, Pitaji?" , the little child persisted before theAlmighty Father. "All is not well," said Pitaji, "humanity is ailing; it is seriously ailing; it is too bad; Kesavanand is suffering." In short breathless sentences the health of humanity described the woe of humanity.

In another moment, however, he restrained himself and in his normal true self of authority, he gave a calm, tacit but most cherished assurance, "There is nothing to worry. Humanity will come back to itself. Kesavanand will recover." All breathed a sigh of relief. The word that ever held good in the past, present and future made everyone normal again though the joy was some-what subdued. He waved his assuring arm around all, gave them a gesture to go to the Kutia and himself kept on agitatedly pacing on the bank of the canal.

Those who stayed there, later saw how all this was true.

They saw the throes of humanity, the grief of the assembled, the ailment of Rishiji and they saw how the word came true. Those who had seen the fond inspiring eyes riveted till humanity completely recovered to the crazy rejoicing of all, can never forget that sight.

मेरे गुरुदेव

Brahma Swarup Varma,
Director of Administration,
India Heritage Research Foundation, America.

Rigveda (ऋग्वेद) pronounces

यस्तन्न वेद किमृ च करिष्यति।
इहतद्विदुस्त इमे उपासते।।

The one who doesn't know the Ultimate Entity (परम तत्त्व), what will he do with Veda 'Richas'? Only those who have realized the Ultimate Brahma (परब्रहम) can understand the inner meaning of Vedas. They are called 'Rishis'.

Millions pray and worship God, meditate, perform stringent Yoga for years but few reach the level of realization of the Ultimate Entity (परम तत्व). Scriptures say that self-realization (आत्मज्ञान) comes not by chanting, meditation or Yoga, it comes only through God's Blessings (कृपा)।

There may not be many such saints in the world but definitely there are some. On the basis of my own personal experience, I can say, I have met one who has attained oneness with Ma Bhagwati. She describes Herself to the Gods (देवतागण) that "I am the image of Brahma (अहम् ब्रह्म स्वरूपिणी)''. The soul of the Rishi, I have come to know resonates with the Divine Mother. Doing ten or more Chandi Paath everyday for many, many years and having been the inspiration for three Laksha ChandiYagnas, he has accomplished the " Siddhi" (सिद्धि) of Mother Durga. He himself has become the embodiment of the Devi Mantras.

न प्रत्यक्षमनुषेरस्ति मन्त्रम्।

One who is not a Rishi cannot visualize the 'Mantra'

Mantra attracts Divine powers and produces desired results to the devotee.

Mantra is a powerful instrument. It can deliver good results to a person, a community, a country or the whole world. It can also damage and destroy things and people. The Guru uses his knowledge and divine intuition to prescribe a special Mantra to his disciple. He himself becomes the communicator between the Sadhaka and God. Like the engine of an aeroplane, the Mantra leads him/her to the destination (worldly objectives or Moksha according to the Sankalp of the devotee).

The Guru acts as the pilot. The passengers cannot see the engine and do not understand what the pilot is doing but they know that the plane will safely arrive at its destination. This faith is known as " Shradha".

Lord Krishna says in Gita:

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

Those who possess Shradha and have self-control over their senses gain Knowledge.

The skeptic, non-believer who is devoid of Shradha is doomed (संशयात्मा विनश्यति).

It is true that one cannot 'find' a true Guru. Only with the God's Mercy (कृपा) does one meet his/her Guru. This Law shall never change that without the Guru, no one can cross the ocean of this material world (भवसागर)

वारि मथे बरु होइ घृत, सिकताते बरु तेल।
बिनु हरिकृपा न गुरु मिलइ, यह सिद्धान्त अपेल।।

Even if one finds butter by churning the water, or gets oil out of dry sand, it is not possible to meet the Guru without "Hari Kripa'

It is unwise to compare Gurus. There are millions of sick people and thousands of doctors. If one gets relief from pain and is cured, he or she develops faith in that doctor. Similarly, faith in a Guru is absolutely based upon personal experiences. A

hundred ships could be sailing from Mumbai to London. You are not concerned about all of them. All you need to know is that the ship you are sitting in is going to your destination. That's it. The captain of your ship will take you to your destination.

Now a few words about my own Guru ji Param Pujya Maharshi Keshava Nand Ji Maharaj.

I met him almost twenty years ago. I began to like him from day one when he came to Edmonton at my friend Ramesh Aggarwal's house. I still remember how he explained the meaning and significance of inner experience of the divine bliss in very simple words. He told the audience that God is within us. External senses of our body cannot feel or experience the divine presence.

Sant Tulsidasji explains the situation when in Raja Janak's park, a maid saw Shri Ram and Laxman and ran to Sita to tell her about them. She could not describe their beauty. She said:

सो सुषमा किमि कहौ बखानी।
गिरा अनयन, नयन बिनु बानी।।

The maid said; "How do I explain their beauty ? My eyes do not have a tongue and the tongue doesn't have the eyes."

Pujya Rishiji explained to us that we must prepare our 'inner' senses to receive the divine communications. I did know every thing he said that day, but I realized its meaning for the first time in my life. I take it as the miracle of a true Guru who converts Knowledge into Realization, Seeing into Vision and Thoughts intoTatva-Darshan.

Under the influence of my ego, I did not accept him as my Guru Ji then. Sarlaji, my wife did. I liked Rishiji, loved and respected him all the time but it was not until Makar Sankranti of 1989 when, at the confluence of Ma Ganga and Gangasagar, I bowed down to him to seek his blessings and spiritual guidance. I cannot forget that

divine experience.

I have met dozens of great saints and sages. I have a sense of deep respect for them. But my Guruji is MY Guru and to me he is the greatest. There is grandeur in his smile,unique beauty in his bearded face and charm in his personality that I have not been able to find elsewhere. He is not eloquent like many others but his simple words come direct from his heart, like Ganga from the Gomukh- sparkling and purifying.

I find it interesting that the name of his Ashram is Nirdhan Niketan. Like SwamiVivekanand who exalted Hindus to worship the "Daridra-Narayan' (The poor people of India), Pujya Rishi ji has committed himself to serve the poor and under-privileged people. In spite of his old age and ill-health, he goes on extensive travels in India and abroad to ensure that the poor boarders in the Ashram are fed well and students of the Sanskrit degree college and other schools get the best education.

No words can describe Pujya Guruji. Hence, I conclude with the famous Mantra:

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

Narad Muni

Gangadhar Panda, M.A., Ph.d
Head, Purana (पुराण) Vibhaga,
Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi.

Narada is a very popular mythological figure; but some unique information about his personality is contained in the Puranas. Generally he is portrayed as a quarrel-monger or one who switches on a quarrel. According to Sk.P.(VII.2.18.4750) he was born from the quarrel of Siva and Brahma, as to their mutual superiority. Hence he was quarrel monger (Kalahaj, janma me yasmat tasman me Kalahah Priyah). About his general character there is common information that he is a sage. According to the Sk.Purana (III.2.1.78-81) which describes the appearance of Narada, he is like the blazed up fire and like the morning sun, having profuse matted locks, wearing golden ornaments and white garments. He holds the lute which is his beloved friend, has a golden sacred thread and has the black-antelope-skin on his shoulder. He also holds a staff and a pitcher. He is said to have been born when Brahma and Siva were having a prolonged discussion and immediately after birth he flew into the sky holding his lute (Vaman Puran 2.28). According to one account, Narada once saw a maiden in the Svetadvipa and asked her who she was. This was obviously his ignorance of a great power that had appeared in the form of a maiden. Immediately Narada forgot all his learning. He surrendered to the maiden, who was none less than Gayatri Savitri (according to another account wherein Narada and Gayatri figures are found). To regain his learning Narada practised penance in the Mahakalavana, where from the linga of Siva, Brahma himself is said to have come up to give back to him his learning (Sk.Pr V.2.58.6.37). Narada figures in a rather important account, wherein Daksa is called Harya'sva whom Narad taunted as a fool. Likewise another set of Daksa's sons called Sabala'sva (having variegated spotted horses; Harya'sva means having green or golden horse) were also cursed by Narada. Due to this Daksa got angry and cursed Narada to be born as a mortal (Brahmanda P.11.2.2.20-29). Siva Pu (V.31.7-15) explains that Narada is cursed and that he would have no stable residence and would

take interest in quarrels, and according to Kurma (Pu.1.18.20-22) he is said to be cursed to be without any issues. According to one account Narada is said to have become a girl named Sushila, the daughter of the King of Kasi, after he took bath at a pool on the advice of Visnu as he wanted to know the maya (magic) of Visnu (Brahma Pu. 228.46). Susila was later married to Carudharma, the son of the king of Vidarbha. After some years there ensued a war between the king of Vidarbha and the king of Kasi. Both the kings died along with many in their families. Knowing about the catastrophe Sushila and Carudharma entered fire and Sushila was born as Narada again (Ib 46-53). According to one account, Narada was a Brahmana named Sarasvata, in his former life, staying in Avanti. Due to severe penance at the holy place called Sarasvata lake and offering waters to the manes, he pleased Visnu who named him Narada, as he offered Narah (waters) to his manes (Varaha P. 3.3.23.) .According to an account from the Siva p.11.2.3,4, when once as Narada was practising penance, Indra sent the god Kama and Vasanta (the spring season) to excite him by creating obstacles. They could not get success, as the place where Narada was practising penance was the very same where Kama was burnt by Siva formerly and was brought back to life, with the condition that at that place the mischief of Kama would not work. But Narada thought that it was his own success.Kama and Vasanta went back to Indra. Narada went to Siva and boasted of his self control. But Siva asked him to keep it a secret and not to boast before anybody else. Narada, however, went to Brahma and Visnu and told of it to them. Now, Visnu decided to test Narada and to teach him a lesson. As Narada proceeded further,Visnu created a beautiful city on his way. The king of that city, Silanidhi by name came forward to receive the divine sage Narada. The King had a beautiful daughter named Srimati, whom Narada happened to see. As he saw her, Narada got infatuated. He instantly went to Vishnu and asked him to make him of beautiful form, Hari-roop, so that he could win over the heart of that girl (Incidently Hari is Sanskrit has two meanings, Vishnu as well as monkey) Vishnu obliged him. At the Svayamvara (marriage by choice) of Srimati, Narada came with this new form. Vishnu also came there. When Srimati arrived near Narad, she saw him with the body of Vishnu and the face of a monkey. She proceeded further and saw Vishnu and placed the wedding

garland round his neck. When Narada saw this he reproached Vishnu and cursed him that the latter would also bear the pangs of separation from his wife and have a monkey face. The account occurs also at the Linga Pu.11.5.52-150 with the difference that Narad and Parvata sought the girl's hand. The king Ambarisa, her father resorted to Vishnu for help and the latter changed the face of Narada to that of a monkey and Parvata's to that of a fox. When exposed, the two said that henceforth they would not marry. In yet another account Narada comes as curious character (Sk.Pu.11.7.22.18)

It is said that in the Kali-age when the sages were performing a satra (a time-bound, sacrificial session extending upto 12 years) Narada appeared. He held his penis by one hand and his tongue with the other. Laughing all the while, he began dancing. He said to the sages that his action was symbolic, one should not give freedom to the desire for sex, to indicate that he held the penis. Secondly one should control one's speech to indicate that he held his tongue by his hand.

According to an account from the Matsya (Pu.186.12), Siva wanted to destroy Tripura. So he called Narada and told that Tripura could have the power to move in the sky because of the wives of the Asura Bana and that Narada should change the minds of the wives of Tripura. So Narada went to the city of Vana. Anaupamya, the wife of Bana, paid due honour to Narada and told him that her mother-in-law Vindhyavali and father-in-law Bali did not even notice him, also that the sister-in-law cracked her finger, seeking her (Ib-41). She asked him to prescribe some vow to gain their love. Other wives also asked similarly. Narada asked them to worship him always. Thus he was succeessful in attracting their minds and bringing about the destruction of Bana and Tripura. According to the Brahmavaivarta Pu (I.12.7-45). he practised penance to gain a son and tried to pacify Siva. When the latter approached he asked Narada to leave away the devotion to Visnu. Narada declined and threatened to offer his head in the fire if Siva did not favour him with a son. Siva was pleased. Narada got a son, who was named Upabarhana. According to the Linga Pu. (II.3.4-59) Narada learnt the musical tone from the Uluka (owl) bird, also named Ganabandhu.

GOLDEN MEAN

'The middle path, Counsel for moderation in all things'-Ed

Digambar Datt Thapliyal,
ADM (Retd.)
U.P. Civil Service.

Diogenes, the cynic of Sinope lived quite modestly in an earthen tub with no possessions but a bowl for drinking water. One day he saw a slave boy drink with cupped hands and realised he could live without the bowl and threw it away. Alexander the great with ambitions of world conquest, surprisingly had admiration for this humble philospher, who had need for nothing. One day he went to see Diogenes and the following conversation ensued.

Diogenes	-	'What is your majesty's greatest desire at present?'
Alexander	-	'To subjugate Greece.'
Dio'	-	'And after you have subjugated Greece?'
Alex'	-	'I will subjugate Asia-Minor'
Dio'	-	'And then ?'
Alex'	-	'I will subjugate the world'
Dio'	-	'And then ?'
Alex'	-	'I will plan to relax and enjoy myself '
Dio'	-	'And your majesty! why not save your self of all this trouble by relaxing and enjoying yourself right now?'

Stunned for a while Alexander took leave of the philosopher who was sunning himself at that time and asked if he could do any thing for him. Diogenes said, "Yes, please step aside and allow the sun to reach me".

In between the two extremes of total abstinence and insatiable appetite for power and pelf lies the middle path-the main stream of life.

To channelise this stream, philosophy arose to raise questions pertaining to various facets of life, bring to light the order hidden in the chaos of life and allow people to choose the best for them. Contrary to the West where philosophy is merely an intellectual or reasoned conviction, ancient Indian Thought in the words of Max Muller was recommended not only for the sake of knowledge but for the highest purpose that man can strive after in this life. Thus in Indian Thought the word for philosophy is Darshan which signifies spiritual perception-a medium for not only knowing the underlying unity in diversity but actually seeing it. As such in Darshan seeing is believing. Philosophy thereby becomes a way of life and not merely a way of thought.

Outcome is Vedas, the first and the oldest treatise of mankind comprising the main text 'Samhita' followed by 'Brahmanas' and 'Aranyks' and ending in 'Upanishads' which hold all that the Rishis-seers of old-have seen and believed. Of more than 108 Upanishads the first is known as Isha and its very first hymn runs as below.

ईशावास्यमिदं सर्वं
यत्किञ्चिज् जगत्याम् जगत्
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा
मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ।

These lines unfold the ideal way of life-the middle path proclaiming that the entire creation, sensient or insensient, is immersed in Ishwar (God) as every object is evolved out of it and is ultimately dissolved in it. Hence life is to be enjoyed with the full sense that all belongs to Him and nothing to me. Thus while enjoying the richness of life never forget that one is only a custodian of all that lies around him. So life has to be enjoyed with a conscience lest one is accused and punished for mis-appropriation and breach of trust.

This is the middle path, neither to deny life nor to indulge in it in- discriminately. It runs in between a Sanyasi and a debauch or an epicure.

This command of Vedant (last word on knowledge) finds exhaustive eleboration in Bhagwat Gita. This great masterwork encompassing life in its entirety insists on following the middle path, between 'Pravritti' (action) and 'Nivrithi (renunciation) preserving the excellence of both. Karm yoga is such a mean. While providing adequate stimulii to action it preserves the spirit of renunciation. Thus Gita stands not for renunciation Of action but renunciation In action. Here yoga is yoke, the equal state between the Jeevatma (individual self) and Parmatma (Supreme self) Thus Karma Yoga, becomes the destroyer of suffering for him who is Yuktahar Vihar (युक्ताहार विहार) i.e. a moderation in diet and recreation, temperate in action and regulated in sleep and wakefulness. Hence in Gita constant struggle is not only in between the sensuous and high self of Arjun, not only in the battle of Kurukshetra (कुरुक्षेत्र) but in the deepself of every one, present before every-body, everytime.

Buddha who left behind all riches and enjoyments of his kingdom to know the why of suffering, after long searches found out the middle path between two extremes i.e. believing neither in Being nor in Non Being but in Becoming meaning neither in self-indulgence which is the harbinger of pain not in self-mortification which is pain itself. Success lies in the middle path which is comparable to a lute which emits melodies when its strings are stretched neither too loose nor too tight.

Contrary to Buddha's thinking, the Shakt philosophy holds that the entire creation is the delight in the playfulness of the divine Shakti (Power) known as Chit-Shakti or the world as power. It is in the sheer Anand of Her Becoming that his plentitude of manifestation is thrown out from the formless depth of the Eternal in her dance with the Eternal Being-her Lord Shaktiman. It is a vibrant manifestation in the ebulliance of her Anand and as such the play is real. The player is the real of the real. Only the screen on which it is enacted is unreal, hence Maya and Man too has a part

to play. Whether he will live in ignorance and be a puppet in the cosmic dance-drama or will freely participate with full knowledge as a conscious player, the choice is before each and every individual. Here also in choosing the middle path one becomes a witness (lk{kh) in the great dance-drama of the Shakti and the Shaktiman.

For Aristotle as his age advanced, there loomed the question of questions. What is the best life? What is life's supreme good ? And he found that there is a road to it which may save many detours and delays. It is the middle way -the golden mean. While following this path the qualities of character can be arranged in triads, in each of which the first and the last qualities will be extremes and the middle quality a virtue or an excellence. In between cowardice and rashness is courage, between humility and pride is modesty and so on. Thus avoid extremes-a counsel for moderation in all things.

Avoiding conversion of every luxury into a want and practising moderation (with the humblest philosopher Diogenese, and the most ambitious Emperor Alexander and the great American environmentalist Thoreau) coupled with a sober view of things, may help bring peace and solace in our day-do-day living.

A HOMAGE

Savitri Matta, M.A.
P.E.S.I. (Retd.),

The Abhinandan Granth is coming out and something must be written. But there are so many and so varied sides of Rishiji's personality that it is not possible to put it all into words. And there are people who know him better and there are others who have a greater felicity of expression . What can a poor person like me do then? I will write and write for my own satisfaction. It would be my homage, my Abhinandan at the feet of the colossus of a man; a worship(to quote from Shelley or was it Keats)

...."the worship that.

The heart lifts above and heavens reject not,
The desire of the moth for the star,
Of the night for the morrow,
The devotion to something afar,
From the sphere of our sorrow."

Like J. Krishnamurti, Rishi Keshwanandji was brought up for a specific destiny by Bal Brahmchari Bansidhar ji Maharaj of Virkan Wale. He had an access to best of both the worlds, East and West. For his schooling and study of Sanskrit language and scriptures he had an excellent tutor at home. He was sent to the prestigious Oriental college at Lahore- at that time a privilege enjoyed by a very few only- for his Bachelor degree. After partition he joined M.A. in English at Govt. College for Boys, Ludhiana. Many of us fondly recall the image of a very handsome youngman adorned in the western dress- shirt and trousers- pedalling the roads of Ludhiana on a bike. After completing his M.A., he set up in Ludhiana itself an educational institute on his own lines named Rishi College which got known within a short span of time. And he had the ambition of raising this college to the level of a University. But destiny had something else in store for him. The sudden passing away of Rev. Bansidhar ji,

popularly known as Pitaji, completely changed the path. Pitaji was everything for him, father, mother all in one. The devotees of that great saint-thousands in number-also felt orphaned. They all joined together and made fervent appeals to Rishiji to be their leader in erecting a befitting memorial to Guruji. Land was purchased on the banks of Ganges and it was decided to build an ashram where all the devotees could get together. The project Nirdhan Niketan involved Rishiji completely and thus started his unwilling journey to Maharaj hood.

Having been put into the awesome role of a Maharaj, Rishiji has managed to retain his true loving self all along without any traditional feathers. White was a colour dear to him when he was at college and so it remains today. Dhoti Kurta has always been his favourite dress and it still is. Whatever position he has held or holds, whatever he does, he is a Yogi, a स्थितप्रज्ञ in the true sense of the word. There cannot be a better model than he, of the putting into practice of the philosophy of detachment as enunciated by SriKrishna in Bhagvad Gita. He is equally at home resting and relaxing on the soft pillows of his so called princely quarters at the Ashram and the craggy bed of roadside rocks under the open sky while on his numerous Padyatras (पदयात्रा) to places as far away as Gangotri, Yamnotri, Badrinath, Kedarnath and Vaishnodevi.

Rishi Keshwanandji is highly qualified having done his post graducation in three languages English, Hindi and Sanskrit. But this is not something exceptional. Now-a-days there are a large number of Swamijis who have a long list of degrees attached to their names. What distinguishes this Rishi from others is that education is a part of his personality, the very breath of his being, the mission of his life. That there are three schools and one college being run under his patronage and guidance is something great but is no special compliment to him. Such publicity stunts are quite common in many of the Ashrams in and around Hardwar. What makes him stand out among other educationists is his deep-rooted love for education and the Indian values of life. It is quite often that we hear him expressing anguish at the fact that the majority of students in these institutions are passing the examinations with flying colours but

not imbibing the lasting values of life.

For him there are no barriers of caste, creed, wealth, sex and nationality. At many religious places in Indian Society there is hardly any significant role assigned to a woman in the running and managing of these institutions. But in Nirdhan Niketan there is no such discrimination. Here women have their due respectable place; and many of the organs of the Ashram are independently run by them. The rich with their offerings of hordes of wealth are unable to tempt him to side track the spiritual needs of life. But a prayer coming from the depth of the heart of an ordinary humble person can win him over in no time. Once he said that he made special efforts to learn Punjabi language because one of the devotees would be writing soulful letters to him in Punjabi.

Hypocricy and diplomacy are things alien to him. He has been a great lover of Sanskrit and quotes and recites profusely from Sanskrit texts. But once while addressing a gathering of Sanskrit scholars, he openly avowed that it is only the study of English literature which is capable of opening the windows of mind. Only a fearless person with the courage of conviction could dare to utter such sentiments in that gathering.

Very simple and unpretentious, he does not claim to be a special person, a messenger from God or God himself. He is no performer of miracles he says and does not claim any credit if things happen the way he says. But there are instances galore where destiny has followed his casual words. Usually people forget the source of inspiration when they attain some heights. It is just the opposite with him. As he is going higher and higher on the ladder of spirituality he remembers and quotes more and more often the words and instances from the life of Guruji. There is such a glow and aura about him when he talks of Pitaji! He looks almost in a trance then.

The members of the Trust and other devotees were very keen to present an Abhinandan Granth on his coming birthday but he was not interested. Many discus-

sions were held and fervent appeals made to him again and again to asking for his permission. He got fed up of it all but gave his consent much against his convictions. Just a summing up of how reluctant he was but had to give in at last. " I am not saying "No" but there is hardly any relevance for Abhinandan Granth or any Granth for that matter. Who has the time to read these days? And even if they read, they are not going to put into practice.....so much has been written already and so well. Where is the need to write more? What is required is the putting of it into practice. Anyway enough of it, do whatever you like to do but let me complete my routine. I am no saint. Saints are liberated from all duties. But my Gurudev has enjoined me to recite my prayers daily. Let me do that ," Any better example of humility and unpretentiousness, No, of course not. But one has to see it with one's own eyes to believe it.

'The lion of the jungle is our most coveted kill. Pray look within and in the jungle of your personality you will find the lion of egotism, who has been working havoc in your life. Kill him and establish law and order in the kingdon of God, which is within you.' - Ed.

In Quest of Eternal Light

R.N. Matta, M.A.
P.E.S.I. (Retd.), Punjab.

Since after the 'Origin of Species' and 'Das Kapital' the world has never seen so much of craze for a school of philosophy as for the late vogue of Existentialism in Europe and America. This new exposition of the Existence and Free Will of Man has penetrated into all branches of knowledge, may it be anthropology, psychology, literature, history or education. Whatever be the substance or merit of this new creed of Jean Paul Sartre, there is one thing very interesting about the determinism of man. While on the one hand the poet Iqbal wanted man to make his individual self so much evolved that before God (with Omar Khayyam's moving finger) started drawing out the lines of destiny, which no amount of piety, wit or tears can cancel or clear, He may be bound to seek his (man's) willingness. On the other, Iqbal said that even leaves move with the approval of God.

Rousseau said that Man was born free but now he is everywhere in chains. Sartre in his book 'Existentialism and Human Emotions' says that human beings are free in all respects to choose and act. They are responsible for all the actions that they perform but they are not free to choose their power of choice. Their responsibility to choose and exist is pre-determined. Man cannot help existing and choosing.

Man because of his very birth is mortal . Einstein has invaded the scientific realm of Newton, yet a minor corollary is one of the unrefuted truths of Newton. Whatever can be created is bound to be destructible. The Arabic proverb speaking in the metaphor of the fruit of a tree is simply reverberated in the harvest imagery of the Kathopanished (कठोपनिषद्)-

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवजायते पुनः।

Man ripens away like the crop and is then reborn like the crop. The existence of mortality is the very Pandora's box of all sorts of miseries-physical, psychological, intellectual and so on.

This mortality is the very keynote of man's problem as man. It is said that man is the Crown of Creation. An Urdu poet says that it is more difficult to be a man than an angel because man is born with a heart that gets fluid with the pain of the misery of a fellow-being. In spite of that, man may shut his eyes on places where eternal war is going on. The earthquake of Japan or Chile may as much go to the Valley of his Oblivion as the victims (including Dr. H.J.Bhabha) of the aircraft on the Alps, whose dead bodies could not be dug out of the mounds of snow for months. The ashes of saints and martyrs may become impenetrable under the marble memoirs built in their names. Even the memory of Victory and Peace of Jawahar Jyoti replenished by the eternal sacrifice of our 'saint of sincerity' Prime Minister Shri Lal Bahadur Shastri may wither out. With a worldly wisdom we may brush off the scars of humanity to keep ourselves calm, unruffled, poised in our life. But how can we remain poised when both our life and equilibrium are in danger?

Two lines can never make a geometrical figure. The first two propositions require no Q.E.D. because they are static facts. The crop has no problem because it is neither conscious nor aspirant of its solution. If man were only a tragic figure in a ship-wreck cut off from inland communication and rescue, waiting, not struggling for safety, for moments of bare existence, he needed no goading to think. What is of paramount importance is the fact that there is immense scope and provision for immortality, escape from mortality. Since the very dawn of thought, man has not only been conscious of the Eternal Sublime but has also striven to reach Him.

The Vedic hymns are all beacons of light exploring for the source of all Light. "Light" is the recurrent image of all Vedic literature. It is here that there is a glaring divergence of the myth of the universe in the Vedas and the Old Testament. God said,

"Let there be light and there was light." That is the Christian belief. The Vedic Seer makes a still farther adventure. Effulgence sublime existed long before this universe was created. And the Universe was, according to Rig Veda, only a phenomenon of the procreation of light from the eternal effulgence. The Earth and the other habitable globes, the Space, Luminous Bodies, the Atmosphere, the Quadrupeds and Bipeds and, in fact, Life and Light themselves were born, according to Atharv -Veda from Him, the Sovereign Lord of all, beyond the reach of Time and Death, the only independently Self-Illumined, Immutable and Absolute.

That is how it all was before " there was light" on this sphere or on the solar systems. The Upanishad emphasizes the facts of the Universe in its Eternal Continuum. What was Eternal before is going to last in its effulgence forever. It is again the metaphor of light. It is sheer poetical music but it is also a clarion call to seekers of truth and reality. It is the description of the Sublime World which is no longer a myth, because it is a standing challenge to the era of space exploration. It is not theSun or the Moon where we may hope to land. It is not the distant twinkling of stars. It is not a bonfire, yet it is the origin of all light, all vision, all knowledge.

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

An American philosopher says that the unfathomableness of the world, the being, the reality is a riddle in itself. All systems of philosophy, spiritual or physical are merely efforts of reaching the arch where - through gleams that untravelled world whose margin fades for ever and for ever when we move. It is, however, says Joseph Pieper, not a riddle that belongs to the accessible realm, wrapped in obscurity, and lacking in logical sense, self- contradictory. It is a riddle of enlightenment and illumination, admittedly of such concentration and intensity that it blinds us.

Why do we bother about this world, this source of life and light? Is it due to the same instinctive curiosity of man which we have for the Mount Everest, the Niagra Falls, the Pyramids, the Dummies or the Taj in a starlit night? If it were so, it would be desperate animality, the sin of Paradise Lost, naivety unpardonable. The knowledge of such a world is a two-fold necessity. Firstly because if such a world exists without, it must in obedience to the laws of existence, exist within too. Man is a creation in the image of God. The seers bless't generalised their physics in one phrase यत् यत् पिण्डे तत् तत् ब्रह्माण्डे। Whatever is in this body that alone is in the universe. The second section of the Mudakopanishad opens with the description of the only worthy object of contemplation and worship. It is that great being which is eternal and luminous. It evades all generalisation of science and art and is incapable of exhaustive apprehension and realisation because it stays in the hearts of all beings. " Heart" of the beings is, of course, metaphorical. "Heart" stands for the innermost recesses of being.

आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पद मत्रैत्समर्पितम्।

The discovery of such an existence that pervades the whole universe, is immortal, and is eternally present within, is the object we need to possess. If we want the satisfaction of all our needs, if we want to achieve that which is the most desired of all, we shall have to vigorously engage ourselves to attain that status of immortality. Says Guru Arjun Dev सकल मनोरथ पुर्निआ अमरापद पाई।

So that is the task that lies ahead of all of us embarked upon the Voyage of Discovery of man as man. All other investigations are the by-products of humanity and, therefore, secondary. Physics is man in relation to his environments; economics is the study of man in relation to wealth; psychology in relation to mind; even philosophy in relation to thought. This exploration of the Sublime and Self, of Parmatman and Atman, the repetition of the Infinite in the finite is the only true science of man in relation to his human self, without which he would be neither life, humanity nor animality. Enmeshed in the ribs of his self-constructed python, man has to toil to reach his goal to break up the seemingly obvious and the apparently incomprehensible.

If immortality exists and if it is entirely possible to man, then the problem is not of looking before and after and pining for what is not. It is the problem of slaying the sloth and the slumber,

Guided by the light-house that Rishiji is, let us make use of all our scriptural heritage of the heights attained by science and philosophy and to seek the reservoir of experience and insight of all those who have trodden this path. The key to all knowledge, says Rishiji in his discourse, is Faith, Shraddha. So let us aspire to devote ourselves like Satyakam at the Preceptor's feet. Let the Mother that sustains and the Father that fulfils be our Protection and Bliss.

Inspiration For Me

Dev Anand
M.A.

The object of this article is an analytical discussionof verses 62 and 63 in the II Chapter of the Bhagavad Gita. It is desirable to give the importance of the context in which these lines are placed and thus further to give the importance of this truth from the point of view of psychology and logic. A moral or an ethical code is to be considered again and again against the background of different times and places. These lines are a part of a general religious thesis, the precept that is being preached is an ethical doctrine, the method employed is psychological analysis. The lines are:

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृति विभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिर्नाशात् प्रणश्यति।।

The simple paraphrase of the lines is: "Constant engagement in the thinking of the object of senses gives birth to a man's attachment (संग) in them. From attachment is born काम, from काम is born 'क्रोध'; क्रोध developes संमोह, from संमोह the विभ्रम of memory. And from the vanishing of memory the destruction of intellect. From the destruction of intellect is caused the death of man.

The problem which is being tackled is the nucleus of the Gita.In the first verse, uttered by the Lord, he had charged Arjuna of not being a पंडित because it is not the characteristic of पंडित to brood over those who have.gone away, or otherwise. Even such scholars who do not brood as Arjuna did, are confused at the discrimination of कर्म and अकर्म. In the Gita. अकर्म has been used in two senses, " What then is the difference between कर्म and अकर्म ?" Lord Krishna or Ved Vyas has chosen to explain by the characteristic method of the Mahabharta.

To discuss a theory in the abstract is one way, to carry forward an ideal in the form of a narrative is another. This second one is the major method of Mahabharata. The eighteen पर्व s are not basically dialectic answers and questions. They are the stories of great men who stand for great ideals. Therefore in reply to the question posed the answer is the definition of a great man. The discrimination of desirable and undesirable action is possible to a man with a balanced intellect.

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा, समाधिस्थस्य केशव!
स्थितधीः किं प्रभाषेत, किमासीत, व्रजेत किम्

What is the definition of a स्थितप्रज्ञ engaged in meditation? (i) How does he speak/ (ii) How does he sit? (iii) How does he be or behave or move? Three things which the Persian sage summed up in three words which summarise the personality of a man. दसतार रफतार गुफतार turban, gait and speech. Exactly similar is the Bengali saying-when you have seen your friend sitting, walking and speaking, you can know whether he is big or small.

The definition of the स्थितप्रज्ञ starts with the well-known words:-

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।

When a man gives up all काम born in the mind. Let the word काम, which is one of the four diseases संग काम क्रोध मोह in the two verses taken for discussion here, be translated now.

The first thing that must be clear before any discussion about काम is that, according to the philosophy of the Gita and for that matter the bulk of the Indian philosophy, 'काम' is a product of the mind मनसिज or मनोज, that which is born in the mind. That is when काम is concerned, the question of Atman or intellect is ruled out. So is ruled out the काम of the body. It may relate itself to this physical factor or that, but it is not physical. the theory of carnal desires as a substitute for flesh and instinct is set aside once for all.

Then there are three interpretations possible of the word 'काम-काम' may be interpreted as (i) Sexual desire (ii) libido- the desire for procreation. (iii) काम desire of having. In fact; all desire is a desire for having. Going further, a desire, apparently, has two parts.Attraction and repulsion. Repulsion may not be treated as something different. It is either a perverted form of attraction or a negation of attraction. Or if we use a more inclusive word for both, it is desire. Desire for attraction, desire for repulsion. In this context of the two slokas under consideration and all associated meanings, dke means desire. Thus the meaning for which it is being used here is wider than in, for example, कामिहि नारी पियारि जिमी or in the Bhagavata, itself (11.5.11) where three desires are described as common to most, the desire of woman, wine and flesh eating. So a स्थितप्रज्ञ is one who gives up all desire that is born in the mind. Further it is explained that the desire takes different forms. Almost all the shapes of desire exhaustively are in view. Then the psychological link is described. This is the subject of these two verses.

All desire takes its birth in thought. All thought does not result in desire. That thought which centres round the objects of senses creates desire. It is here that the relation of the physical body comes in. The name for the thought about spiritual objects in Sanskrit terminology is उपाधि not काम because unlike काम, उपाधि does not result in a desire to have. Thought also is used in a wider sense, thinking, feeling, remembering, recalling, relishing, expecting and so on, thinking like that is becoming. Constantly thinking about sense objects gives birth to man's attachment with them. Man perceives the world though voluntraily and then unvoluntarily and then voluntarily he thinks of them. The more powerful the sense organ, the greater and quicker the possibility of attachment. Hence, according to some scholars, all attachment starts with the eyes.

Attachment, therefore, is enemy No.1 in Gita philosophy because it is the mother of all sins. Action, in itself, is neutral, Nothing is bad, only attachment makes it so, attachment which is sensory, sensuous, sensual. Now this attachment causes रजोगुण Come to Ch XIV-the qualitative division of all actions and their resultant states

of mind. Each state has a double factor-the internal nature of composition and the logical organic by-product. रजस् is born out of राग and तृष्णा and attaches man to it by action. So that is the state of काम, insatiable desire, longings, different types of them because of different sense objects and their intensity.

काम and क्रोध desire and anger are twin brothers and have been vehemently pointed out as arch enemies. काम एष क्रोध एषरजोगुणसमुद्भवः महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् । It is because desire cannot be satisfied. Unsatisfied desire infuriates man to anger. The position is clear. If the desire is unsatisfied and he can imagine an external reason for that it is simply imagination, the mind is in राग and तृष्णा. Hence it is not in order. Anger also like काम is impossible in an orderly state of mind- he pounces upon that in anger. If he finds himself helpless, he attacks his own self. Result may be physical injury or a perverse state of mind. If he is in a position to have physical satisfaction of his desire, he is infuriated with the very object of his desire. राग is never satisfied. It is either exhausted or stormy or absent altogether. So क्रोध is a necessary accompaniment.

From क्रोध to सम्मोह is compleletey a field of subtle psychology which cannot be accommodated in this article. There are three states of mind which are different from the alert consciousness. कश्मल- the state in which Arjun was in the beginning of the Gita-confusion of thought and the associated gloominess मूर्च्छा-when thinking and physical movements are at complete stand still, Swooning. सम्मोह is a stupor which is not physical. It is a semi-deadening of mental faculties with psychological rather than physical causes. Then from सम्मोह to loss of memory, from loss of memory to loss of intellect and then death-not physical but mental which is obviously more complete, more dangerous and more incurable.

❋❋ॐ❋❋

'I have one hope that they call Thee the Lord of the World, and -good or evil, great or small - I am part of the world, and thou art also my Love. My body, my mind and my soul are all at Thy altar. Love, refuse these gifts not'.

-Swami Vivekanand

MY PERCEPTIONS of Rishi Keshwanand

Kamlesh M.A.

I have seen so many so called saints with high profile and an ever fresh desire to come into lime light, using media for that purpose. But I have found Rishi Keshwanand a divine personality in human form with Godly characteristics.

Rishi Keshwanand took birth in an average middle class family; was adopted and brought up by his maternal uncle who himself was a Brahmchari and on-to religious path. Obviously Keshwanand ji was brought up in a different environment with a different mission and a purposely moulded attitude towards life.

At a very tender age when children normally play unaware of what life is, Keshwanad Ji spent most of his time in worshipping, meditation, doing meaningful analysis of his own being and thinking as to how he could help others who are really in need. He brought some children from various families who were really interested to have higher education and were talented but had a parental objection or their resources weren't that sound to sponsor higher studies. To satisfy his urge for providing good educational environment to many deserving children with poor resources, he started a Sanskrit school in the Ashram providing them free schooling, lodging and food.

All this was accompanied by a serene Bhakti environment away from all social evils.Keshwanandji himsllf got masters degrees in three languages i.e., Hindi, English and Sanskrit. He started Rishi-College in Ludhiana (Punjab). The sudden death of THE FATHER (his uncle) gave a twist and he had to close down this college and go to Hardwar for fulfilling his life-term mission. Here he concentrated his energies on setting up an Ashram of Peace and Solace.

At this prime youth, he was destined to renounce homely life and to organize a small team of dedicated followers who continue to serve mankind even till date. His

discourses are based upon BHAGVAD GITA and are often replete with the incidents from the innocent childhood of Lord Krishna. He is an ardent devotee of "MA DURGA" and invariably keeps her image in his mind. He seems to get all his energies and strength from Her.

In my case, I get all my inspiration from him and he has been the epitome of faith and trust for me. He is my mentor who has never let me down.

Whosoever comes to him with problems is listened to calmly and blessed with smile and soft touch of his hand. He is always heard saying "Have Faith in Him and everything will be alright", "whatever He does, He does it for good". FAITH in myself, my aspirations, my needs, my work is what I have learnt from him. The result is sometimes so beautiful that some people might even want to define it with a redundant word called "MIRACLE". I feel that my Guru is different from the general race of spiritual preachers who have converted religion into nothing but business.

Often he visits abroad propagating the doctrine of strong divine love as and when he is called by his devotees. The intense affection and devotion of his Bhaktas sitting abroad propels him to go overseas and meet them despite his clinically bad physical condition. He never hesitates arranging a program of his visit anywhere if he is assured that his visit would give some moral support to people going through bad patches in their lives. He is 74 years young, with verve and enthusiasm rejuvenating thousands of many dejected souls showering them with new hopes and energy based on BHAGVAD GITA doctrine.

One of the many wondrous things I observed in him is his accommodating nature and his adaptability to various kinds of situations and people. His devotees range from the monetarily low strata to the very well off. It has never been difficult for him to take shelter under the roofs of people with most meagre means. For me, he is a Divine Child, very innocent, ever smiling, omnipotent, holding my hand with his tiny soft touch making me stronger and inspiring me to go ahead.

THE ELUSIVE SNOWMAN OF THE HIMALAYAS

Arjun Singh,
B.Sc., B.Ed.
Edmonton (Canada).

The present era is hailed as the era of Science, Technology and Industry. Science and Technology have no doubt brought prosperity and affluence to many countries.

When we examine the present predicament we find that inspite of all the material progress and affluence man is not at peace with himself. There is conflict, mistrust and unrest everywhere. Child and spousal abuse, family violence, violence in communities and countries is rampant and on the rise. Countries that are impoverished, are spending millions of dollors in developing nuclear arms to annihilate one another. These countries can hardly cater to their citizen's basic needs, such as food shelter and education.

There are many organizations at the local and international levels to maintain peace. The largest is the United Nations Organization (U.N.O.). It is solely dedicated to keep peace in the world. It would be rather harsh to claim that the U.N.O. has been successful in its job so far. Whether it will be successful in the future is doubtful.

It was thought that perhaps peace could be achieved through religions. Activities in this field have increased manifold. All the major Universities of the world have religious faculties. Churches, mosques and temples are springing up everywhere. Hordes of preachers, evangelists, swamis, gurus and pundits are roaming on the earth preaching peace, love, brotherhood and harmony. Yet peace appears to remain a distant destination. It would be unfair to say that the religions are at fault.

The problem in my opinion is with the proponents of peace. It is with the

individual, political and religious leaders, the preachers, the swamis, the gurus and the pundits. They very effectively and cleverly regurgitate the words of the scriptures. They can talk, preach and discuss for hours. At the end nothing changes, everything is the same as before.

These leaders have failed dismally, because they DO NOT PRACTISE WHAT THEY PREACH. Many of them have been exposed badly (eg. Mr. Bill Clinton President of U.S.A.). Many religious leaders such as priests and swamis have been found to be morally corrupt and complete frauds, preying on the simple and unsuspecting. Some have been involved in criminal activities such as murders.

There are some genuine leaders religious and political. These are hard to find. I have been very fortunate. I found my Guru. I asked him about the solution to all the problems. His explanation was very simple. Seek within the root cause of all the EVILS, understand it, overcome it and you shall find Peace and Bliss. The root cause of all evils is kamah (desires). Desire is well seated in the senses, the mind and the intellect.

Unless one conquers this great foe in the form of desires which resides within every individual, real peace and happiness shall remain as ELUSIVE AS THE Snowman of the Himalayas.

Human Happiness

Sarita Matta,
M.A. M.Phil.

"If there is righteousness in the heart,
there will be beauty in the character.
If there be beauty in the character,
there will be harmony in the family home.
If there is harmony in the family home,
there will be order in the nation,
When there is order in the nation,
there will be peace in the world."

Today it has become a practice to trace every human uneasiness to the material causes. Right from the influences that shape a country's policy down to the individual's social activities, material causes are considered to be of great importance. There is no denying the fact that much of human misery and unhappiness is due to the absence of material necessities and comforts, more especially in poor countries. We cannot reasonably expect from a labourer groaning under the harrowing conditions of a factory to behave as a splendid creative citizen of our dreams. Thus material necessities have vitally affected our ethical values. The conceptions of love, affection and sincerity appear hollow in the context of the existing circumstances. Love can be sold and sincerity pawned.

An appreciation of the material causes is important but to trace every human activity to their influences alone is not true. Much of the dissatisfaction, anxiety and worry that has made an individual's life worthless is more due to the petty jealousies of our next door neighbour than the international catastrophies born of material causes. If it were the material inhibitions that stand in the way of individual's progress and happiness then the absence of these inhibitions should automatically mean the absence

of unhappiness or, in other words, we equate material affluence with spiritual happiness and the conclusion is seemingly absurd. Who has not seen that the rich who are surfeit with material comforts and luxuries suffer from a perpetual ennui. The courts and castles of the kings and lords have frequently been the hot beds of intrigues and mean jealousies. It can, therefore, be construed safely that what is important is not the material world but our attitude that we develop towards it.

Greater obsession with the material things of life is bound to create a sense of unhappiness in the event of their loss by the individual. In his effort to secure peace of mind an individual moves frantically from object to object. But the struggle does not end, nor is the peace of mind achieved. The insatiable thirst for possession continues and the acquisition of one object is followed by the desire to attain the other. The individual willynilly becomes a prey to the unending material desires till his wings are tired and he falls down.

A rescue from this ceaseless struggle in the vicious circle of "karma" can be achieved through contentment. Contentment does not mean complacency nor does it imply a state of stupid satisfaction. It is erroneous to believe, as certain philosophers have argued, that the Indian concept of contentment means in-activity. On the contrary, contentment is a positive and dynamic concept. It means, in simple words, to possess and still not be possessed by the object. Lord Krishna says the individual's mission in life should be work and not worry for its reward.

But is it possible to achieve contentment in the present day world? The question brings us to the heart of the problem. Can a state of contentment be brought by merely reciting the scriptures continuously or by offering prayers in the temples and mosques. No doubt, the individual who goes to the church for prayer on Sunday morning does get some sort of peace of mind as long as he is within the precincts of the church. It may be because he is temporarily influenced by the sermon of the priest or is over-awed by the surrounding environments. The fact remains, however, that the effect is temporary. How to achieve enduring contentment or, in other words, a relief

from the perpetual tension of our minds? The solution lies with us, and we know it. The need is to practise it. We have to revert back to our own selves. The moment we realise the vast potentialities that lie hidden within us we come to appreciate the worth of not ourselves alone, but every individual who inhabits the world. We then realise that every individual is as important as we are and capable of giving expression to the greatest things of life. Thus there shall arise in each individual a sense of respect and accommodation for the other. We shall feel that the requiremnents for the others are as genuine as our own. That the other individual has as much a right on us as we do claim on him. It is in the inculcation of this attitude towards life in each individual that contentment is possible. And it is contentment alone that shall lead to human happiness.

Life should be a pleasure to all of us and it should infuse enthusiasm for more and more hard work as there is no finality to anything. Our aim should be to do something good for others and to act together and to solve the problems for the good of the community. That is the best way to help each individual. According to Bertrand Russel " Creative impulses in man are to be satisfied and rendering public service in any form by one who is fit to perform it according to his ability is in reality the greatest achievement of man"

As love and hatred, war and peace are engendered in the minds of men, the varied institutions for progress and destruction can be no more than the mere machinery which expresses a condition of mind. Since wars begin in the minds of men, it is in the minds of men that seeds of peace must be laid so that this world may be made a place worth living with equal dignity for all human beings as children of the same God. For this tolerance, understanding and compassion exercised through the institutions of family, the community, the educational institutions and finally through the nation are the factors that can orient individuals for better understanding.

In this way we can achieve human happiness and that will pave the way towards the maintenance of world peace.

Spirit, Body And Money

Khushwant Kaur
M.A.B.T

Philosophers, reformers and saints have, one after the other, all stressed the part of the soul in life. In all these is a difference of degree as far as the force of the stress is concerned, but it is difficult to conceive of a saint or a prophet who is either an epicurean or is wedded to the gospel of Mammon. There are the founders or advocates of asceticism who have pursued the elimination of the body and advised others to do so. Body has always been, according to them a curse. It is an impediment in our way of God. It is a breach in the road. That is why Mahavira is all out for penance. Jainism like Islam deems those who penance and put the body to rigours as fortunate. If someone dies while observing a fast or a roza, he is blessed. He gets salvation or reaches the seat of Allah. Saint Kabir compares the soul to a bird imprisoned in a cage. The soul flutters because it is eager to go to the open fields where its paramour lives. It dashes against the iron bars of bones and flesh, says he, in his songs. One day this cage is broken ,as it is bound to be, and there the consort meets her Love face to face, There is the Union with the Divine. Hence the sooner the body sheds this carcase, that is evil, the better, it is said.

There is the other way when our moral innovators or guides show complete indifference to our endowment of flesh. We are the soul. If this "Consciousness" of ours is enveloped by a deadened matter let it be. It is ephemeral and therefore bound to leave us. We need be no sorry to leave nor happy to have it, but there is one thing undeniable and that is that the 'I' the 'Self' is no body. Guru Nanak, who invariably, gives a thrill of experience whenever he makes us sojourn through the realm of the Divine, may not have been contemptuous about the body because he was not contemptuous of anything but contempt, hypocrisy, orthodoxy and oppression. Yet he too, has no soft corner for body for which he himself seldom cared. It is at the most

our dress, our garments, our apparel, says Lord Krishna. As soon as our dress grows old, shabby and dirty, we change over to a new one, a cleaner one. Like apparel, like body. There have been numerous works on this simile of Bhagwad Gita. I am thinking of other side of it today. Like apparel, like body. But does not the apparel oft proclaim the man? Does not body oft proclaim the soul?

Body is a temple of God. It does not mean, however, that one who has beautiful looks is necessarily the holier soul. It does mean that if we worship God, we should not throw stones over the temple.Also we should never start worshipping the temple in place of God, the body in place of the soul. Yet we dare not neglect the body. It is the only instrument to make us realise God, make us feel what we are and pine for what we are not. The body does stand in our way- we have to feed it, clothe it, clean it and make it healthy, but it is the way of feeding, clothing, cleaning and living that makes us moral or therwise. An Urdu poet says that it is easier to be an angel than to be a man. Man was created on earth so that he can live a life of sympathy and reason with men, otherwise there was no dearth of angels to worship God. What is necessary is that we should take better care of this horse so that we can have a quicker and a safer ride to our destination.

Our body is surrounded by a world of bodies. We are all social animals. Asceticism is undesirable and epicureanism is unsocial. We, as human beings, have to keep our contacts with the world. The main symbol of contact is money. And money is always considered to be the enemy of God. Maya and Ram are two poles of existence. Man runs after money, is busy with getting and spending. That is why he cannot get either Ram or Maya. There cannot be any controversy about the statement of Guru Nanak if we have a faith in God and Spirit. Yet the fact is that as long as we live on this earth we live in body with money. To think that body and money are valuable because they are indispensable, would be the height of foolishness, but we need our prophets and saints to guide us about their uses. We need our guides to tell us how to keep our bodies sacred, worthy of becoming the shrines of God. Our sole

instrument of spirituality should be ulilised to the best advantage possible. We need be told how best can money serve us in achieving ends which are not as short lived as money. Shall we not, for example, purchase it? In short we need detailed scientific and planned commandments about our physical self and economic self and the commandments should come from those who are well versed in persuits which are above physical and monetary selves. If they are already there in our holy scriptures like the Vedas, the Holy Granth or gospel of other religions, we should be helped to dig them out.

I am sure there's a magical force behind the happiness that so many derive from this abundant source which never seems to perish. I hope everyone's desire to worship him is not just centred around the "Oh, Lord, I hope I had this - I hope I had that" selfish concept. Or there would not be a greater failure of religion.

- Sumit Kumar.

MY FATHER GURU-RISHI KESHWANAND MAHARAJ

Dev Raj Garg
Retd. Revenue Officer
Punjab

My Pita-Guru-Param Pujya Rishi Keshwanand ji was born on August 17, 1924 in village Chellanwala in Distt. Mansa, Punjab. A student of precocious talents and ingenuity, he showed eminence in doing M.A. in English, Hindi and Sanskrit and soon after opened a postgraduate college for education in English at Ludhiana and ran it successfully for years together. But divinity had a much higher mission for him in life as he had been brought up by the great sage, siddha and learned Brahmachari of his time, Shri Bansi Dhar ji. This holy saint, with the bare minimum needs, had such an intense and single minded devotion to God that once when a rich person came to him with the request to run a free kitchen in his Ashram, the ascetic in him refused the offer twice saying that he can serve only one God in his life and if he accepted running the free kitchen then he shall be approaching the rich person time and again to fulfil the needs of the kitchen in cash and kind and thus there shall be another God for him to serve in the form of the Sahukar which he would never accept in life.

Sant Bansidhar ji spent every breath of his life in the service of God but equally so were his efforts to relieve the distress and sufferings of all the tormented souls who had the fortune to approach him. The influence of the saint was so strong on Sri Keshwanand ji that the latter resigned himself completely at his feet and after the demise of the Brahmachari left home and its worldly attachments to tread the path of his Guru by giving himself entirely to the service of God and humanity.

To accomplish this mission of life Sri Keshwanand ji started an Ashram at Kharkhari - Haridwar with 2.5 acre of land in the name of Nirdhan Niketan. Soon

people started flocking to him from different places. With his untiring efforts, Guru's blessings and true sense of service to humanity, the Ashram is to-day hubbing with religious activities, educational activities, medical facilities, charity, free food (Langar) and service to the needy and poor in the following forms:

1. Sanskrit Mahavidyalaya upto Acharya standard and free hostel.
2. Higher secondary school upto XI class.
3. English medium school upto V standard.
4. Hindi medium School upto V Standard.
5. Charitable hospital, both at the Ashram and at Bahadrabad Farm House.
6. Go-shala.
7. Temples of Lord Shiva, Mother Goddess and Hanumanji etc.
8. Free residential accommodation and food for students of Sanskrit Vidyalaya and for the Bhaktas and the seekers of God.

Verily all these services and accomplishments have conferred on him the worthy noble title of Rishi-hood- the seer and saint of the highest order of all times.

It has been my great fortune that since the very inception of this Ashram, with the blessings of Guru Rishi Keshwanandji, I have been contributing my humble mite in building this monument of service to God and humanity.

गुरु पूर्णिमा-पर्व रसम
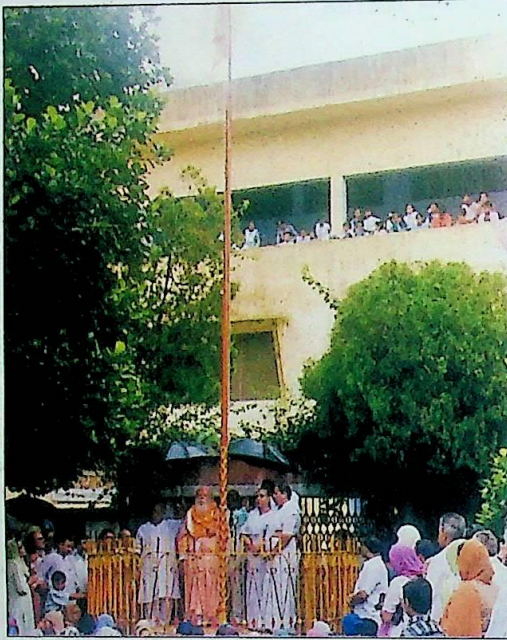
धर्मध्वजारोहण
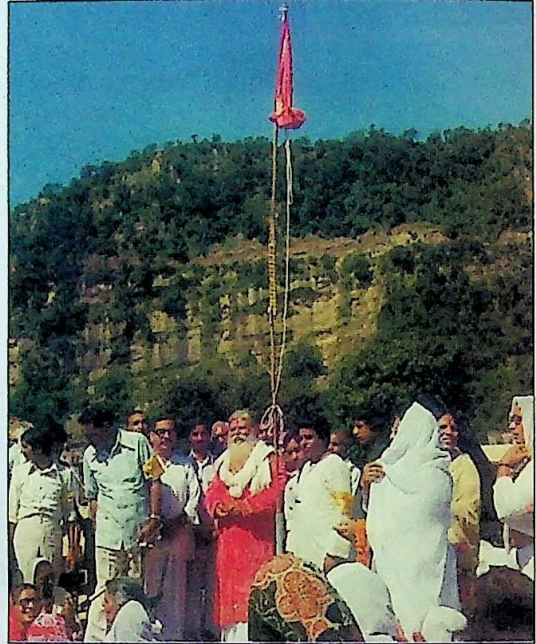
शक्तिध्वजारोहण
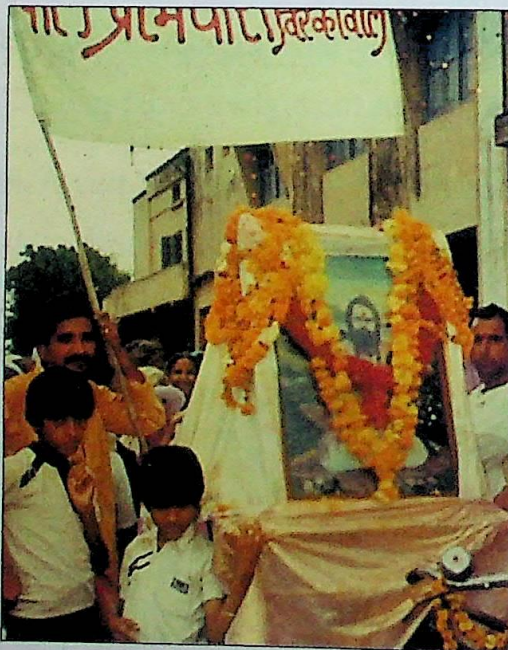
गंगा पूजनार्थ शोभा यात्रा

शोभा यात्रा में सेवारत 'ऋषि-दल'

गुरुपूर्णिमा की पूर्व-वेला पर पूज्य ऋषि जी द्वारा अभिनन्दित महापुरुषों की कुछ चित्रावली
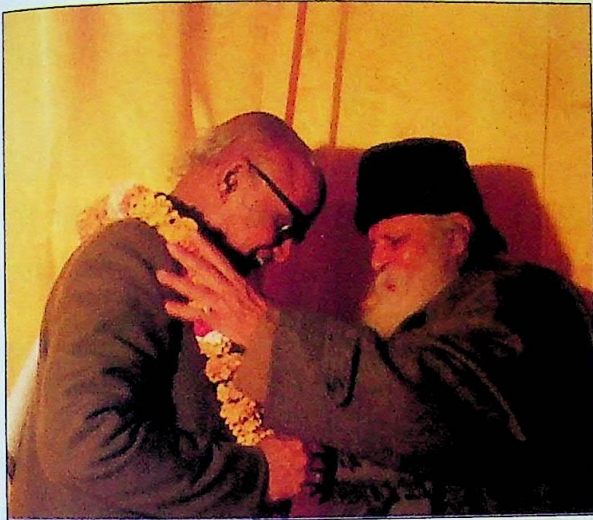
सम्माननीय प्रो. वि. वेंकटाचलम् पूर्व-कुलपति, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी
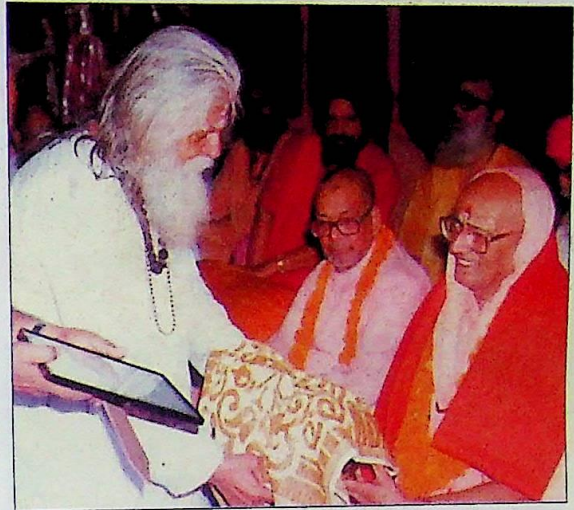
पूजनीय महामण्डलेश्वर स्वामी रामस्वरूप जी महाराज, अध्यक्ष, गुरुमण्डल आश्रम हरिद्वार
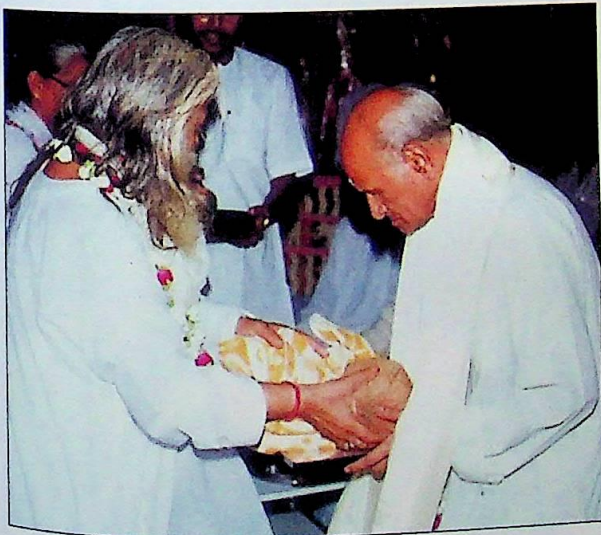
सम्मानीय पं० विश्वनाथ मिश्र, पूर्व-निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएँ, उत्तर प्रदेश
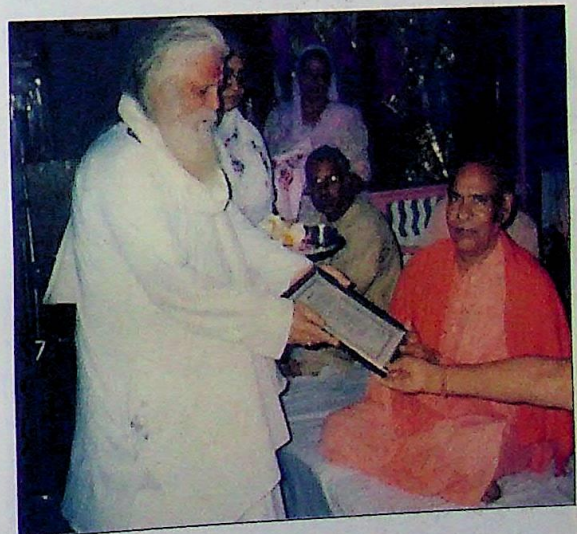
पूजनीय महामण्डलेश्वर स्वामी डा० श्यामसुन्दरदास जी महाराज अध्यक्ष, श्री गरीबदासीय साधु - सेवाश्रम हरिद्वार

सम्माननीय श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति, पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, ज्वालापुर

पूजनीय महामण्डलेश्वर स्वामी गणेशानन्द पुरी जी महाराज अध्यक्ष, साधना सदन, कनखल, हरिद्वार
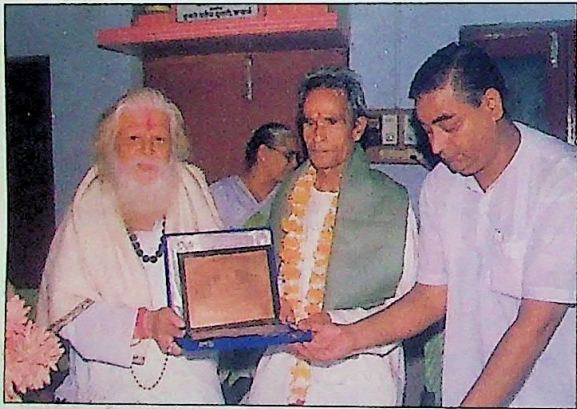
सम्माननीय पं० मनसाराम शर्मा, पूर्व प्राचार्य, श्री भगवानदास केन्द्रीय संस्कृत महाविद्यालय, ज्वालापुर।

पूजनीय महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज अध्यक्ष, श्री कैलाश आश्रम, ऋषिकेश उ.प्र.
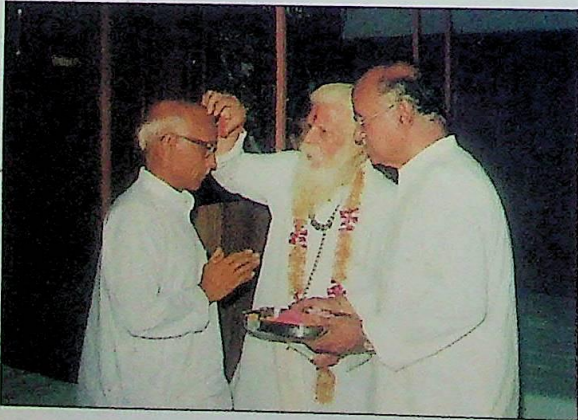
सम्माननीय विद्वद्वरेण्य श्री बुद्धिवल्लभ शास्त्री पूर्व- प्राचार्य श्री जगद्देव सिंह संस्कृत महाविद्यालय, सप्तर्षि हरिद्वार

पूजनीय महन्त श्री ज्ञानदेव सिंह, निर्मल पंचायती अखाड़ा कनखल, हरिद्वार।
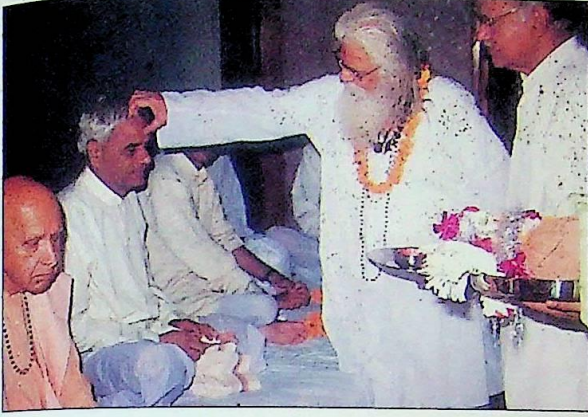
राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित श्री ज्ञानचन्द्र शास्त्री, पूर्व-साहित्यप्राध्यापक, श्री जयभारत साधु संस्कृत महाविद्यालय
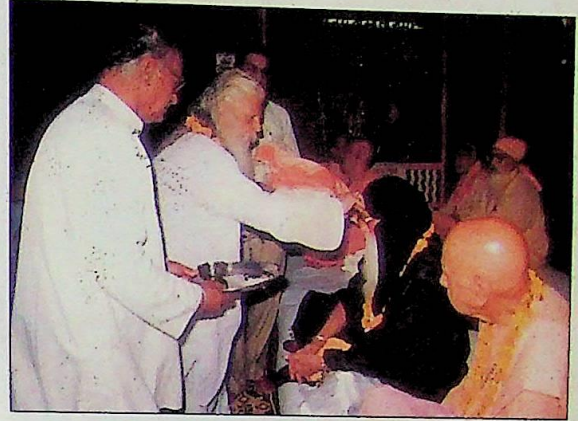
पूजनीय सन्त श्री रघुवीर सिंह शास्त्री, अध्यक्ष, निर्मल सन्त पुरा, कनखल।

सम्माननीय स्वतन्त्रता सेनानी श्री कोहली जी

सम्माननीय डा० सत्यव्रत शास्त्री, पूर्वकुलपति श्री जगननाथ केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ पुरी उड़िसा

माननीय श्री हरदेव सिंह बाबा, कुम्भ मेलाधिकारी, हरिद्वार
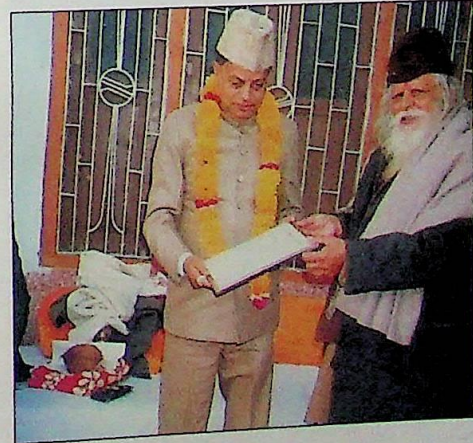
सम्मानीय डा० उमाशंकर मिश्र, उपशिक्षा निदेशक (संस्कृत) इलाहाबाद

सम्मानीय श्री अम्बरीश भाई, विधायक, हरिद्वार।

पूजनीय महन्त स्वा. शंकरानन्द शास्त्री, अध्यक्ष श्री शंकराश्रम हरिद्वार
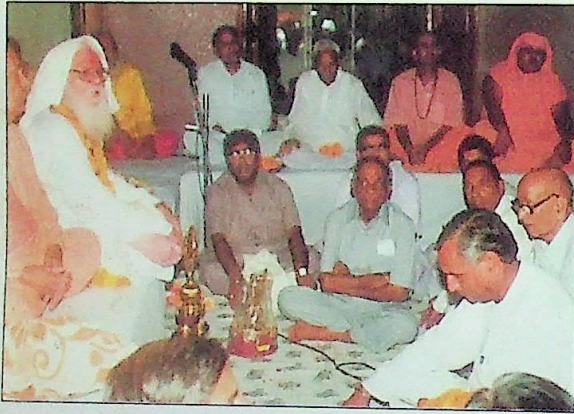
सन्त सम्मेलन एवं विद्वत्सभा में समुपस्थित श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द जी महाराज।

सम्माननीय सरदार हरबंस सिंह, पूर्व-मुख्यन्यायाधीश, पंजाब

मयराष्ट्रमण्डलीय संस्कृत सम्मेलन में समपुस्थित विद्वानों के मध्य में पूज्य ऋषि जी

मयराष्ट्रमण्डलीय संस्कृत सम्मेलन में समुपस्थित सन्त-महापुरुषों, कुलपति -महानुभावों, प्रतिष्ठित-विद्वानों और अभ्यागत-सामाजिकों को धन्यवाद देते हुए ऋषि जी

निर्धन-निकेतन की संस्थाएँ

ऋषि संस्कृत महाविद्यालय

ऋषि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
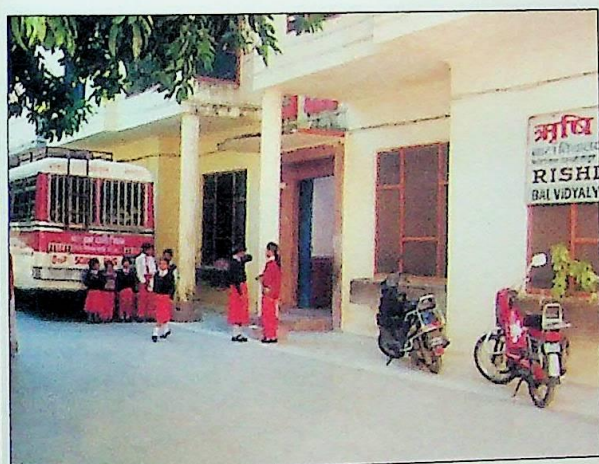
ऋषि बाल विद्यालय
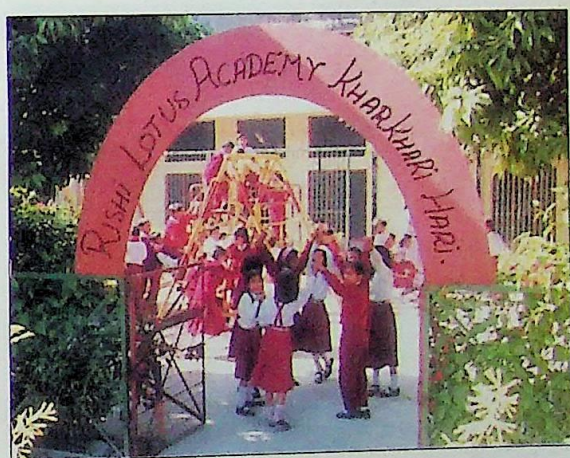
ऋषि लोट्स अकादमी
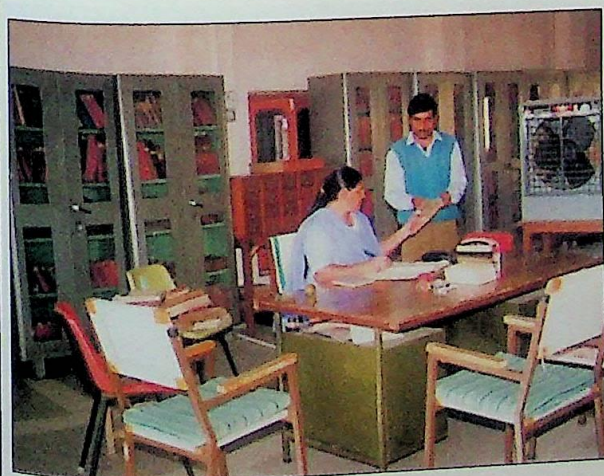
ऋषि पुस्तकालय

ऋषि वैदिक अनुसन्धान

निर्धन-निकेतन की संस्थाएँ एवं कार्यशालाएँ
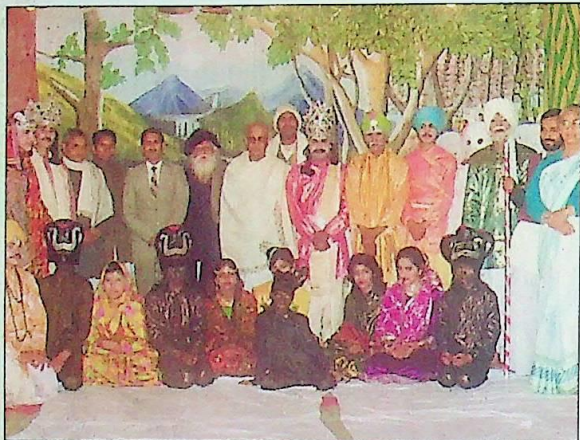
ऋषि नाट्यम

ऋषि विद्या मन्दिर जू.हा. स्कूल, बहादराबाद, हरिद्वार
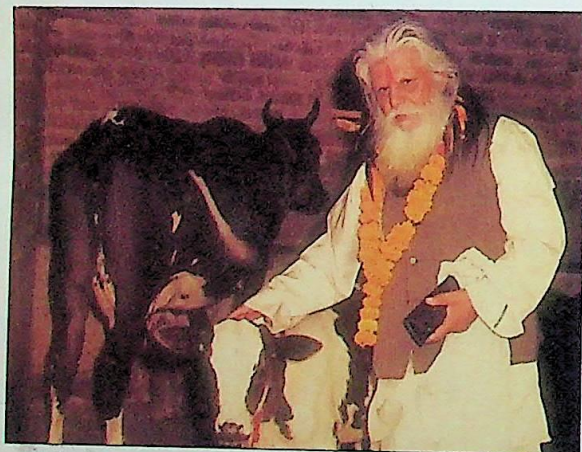
ऋषि गोशाला, हरिद्वार
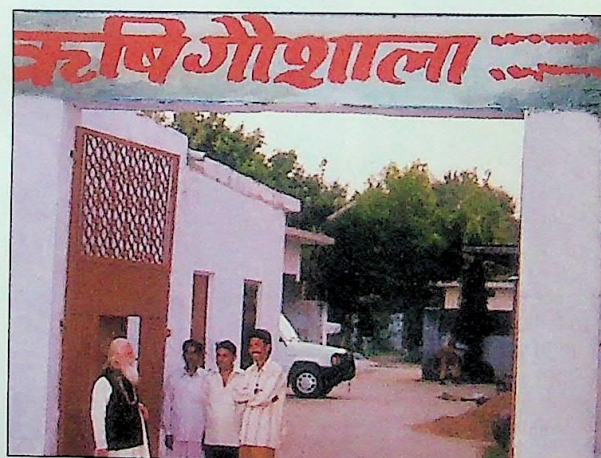
ऋषि गोशाला, बहादराबाद
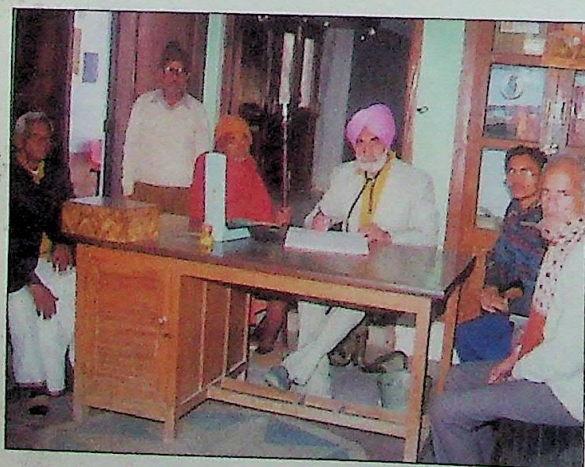
ऋषि धर्मार्थ चिकित्सालय, निर्धन-निकेतन, हरिद्वार

ऋषि धर्मार्थ चिकित्सालय, बहादराबाद

निर्धन-निकेतन की कार्यशालाएँ

ऋषि नित्य यज्ञशाला
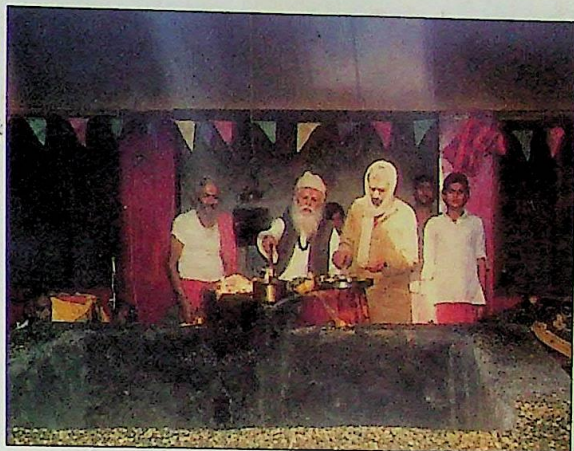
ऋषि लक्षचण्डी यज्ञशाला
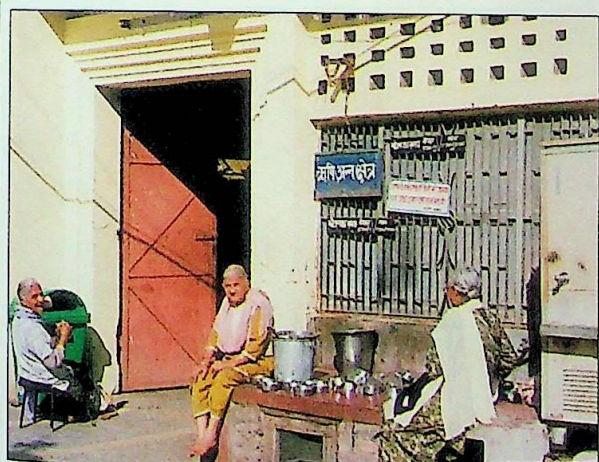
ऋषि अन्न क्षेत्र
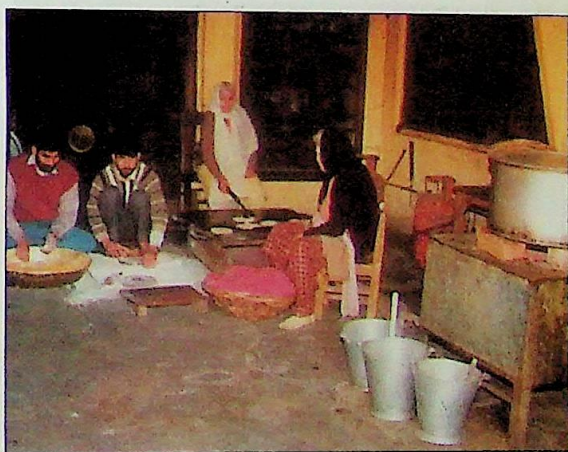
भोजन बना रहे भक्त लोग
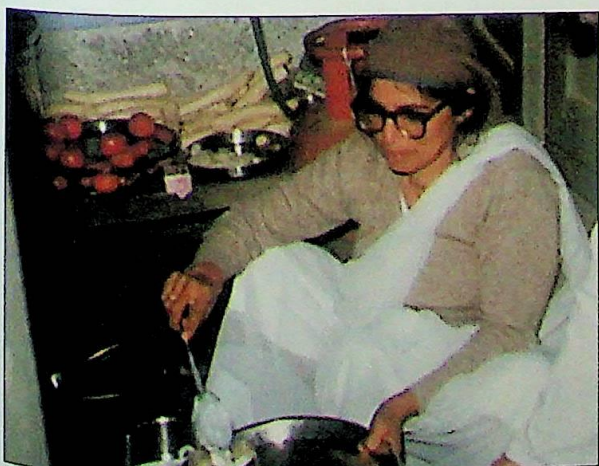
अन्नपूर्णा देवां माता जी
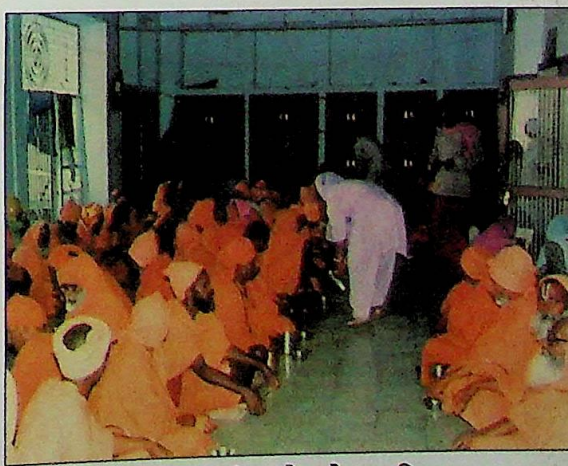
'सन्त-मण्डली' को भोजन-वितरण

विदेश में पूज्य ऋषि जी
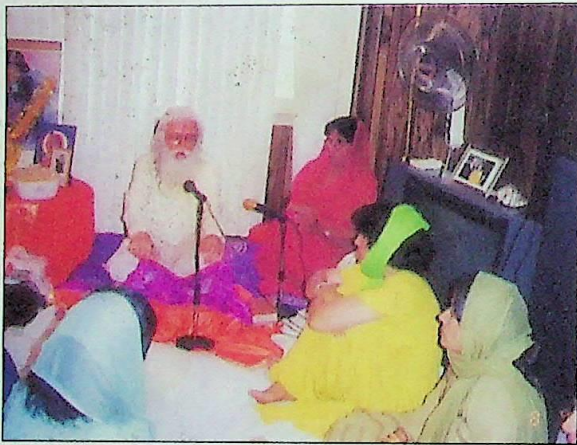
न्यूयार्क में प्रवचन करते हुए ऋषि जी

एडमण्टन में सहस्रचण्डी यज्ञ की पूर्णाहुति
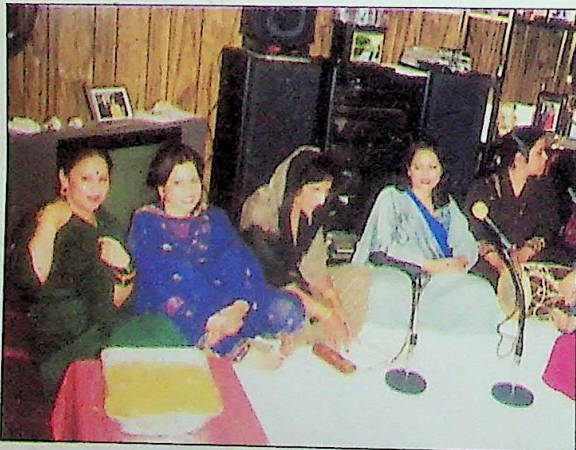
न्यूयार्क में संकीर्तन करती हुई महिलाएँ
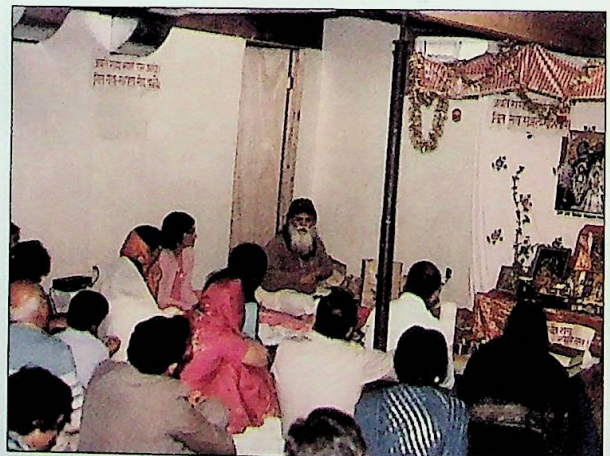
एडमण्टन में प्रवचन करते हुए पूज्य ऋषि जी

न्यूयार्क एयरपोर्ट पर भक्तों के संग पूज्य ऋषि जी

एडमण्टन एयरपोर्ट पर भक्तों के मध्य में पूज्य ऋषि जी

श्री बद्रीनाथ की पैदल तीर्थ-यात्रा की झलकियाँ

पैदल तीर्थ यात्रा के लिये प्रस्थान कर रहें ऋषि जी

रास्ते में विश्राम के क्षण
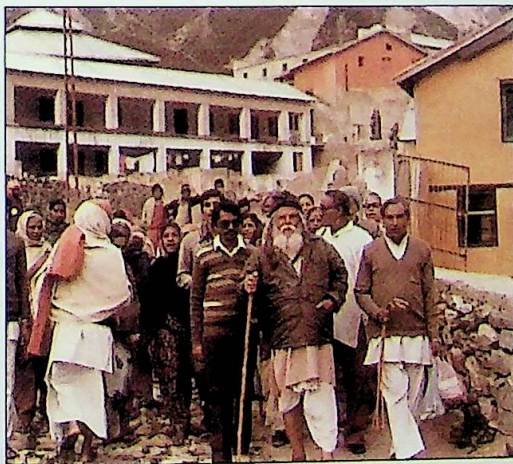
श्री बद्रीनाथ के दर्शन कर लौट रहे पूज्य ऋषि जी
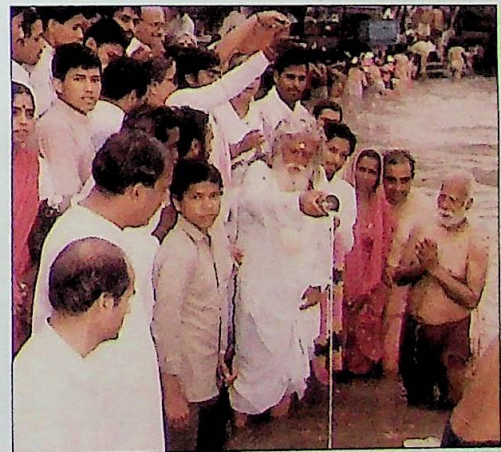
हरिद्वार पहुँच कर गंगा पूजन करते हुए पूज्य ऋषि जी
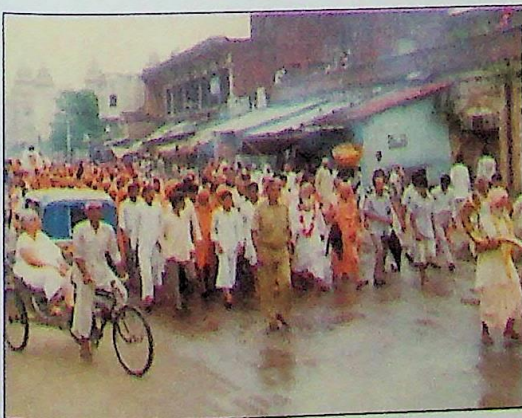
सन्तों-महन्तों विद्वानों और भक्तों द्वारा भव्य स्वागत

नाचते-गाते भक्तों से घिरे हुए ऋषि जी

श्री गंगोत्री-यमुनोत्री की पैदल तीर्थ-यात्रा की झलकियाँ
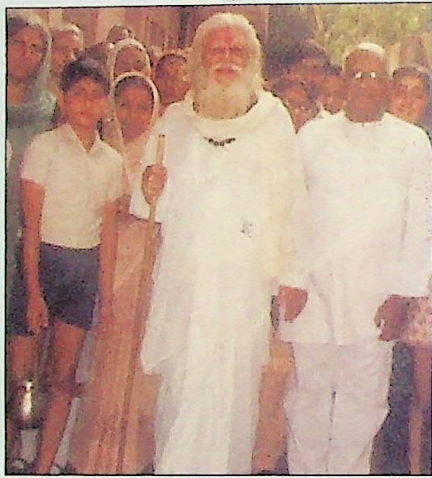
प्रथम पड़ाव 'दुधाधारी आश्रम' से बढ़ रहे
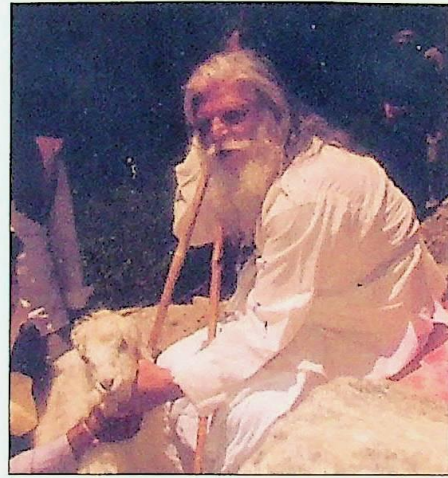
थकान के बावजूद भी प्रसन्नमुद्रा
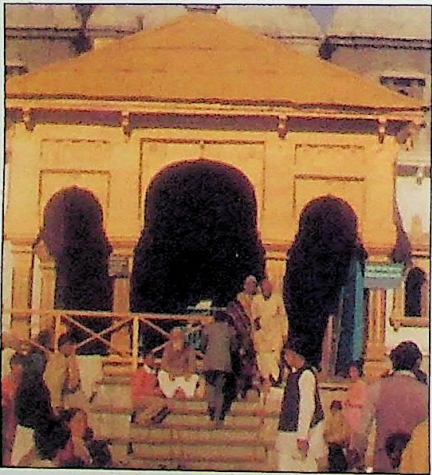
गंगोत्री मन्दिर द्वार पर
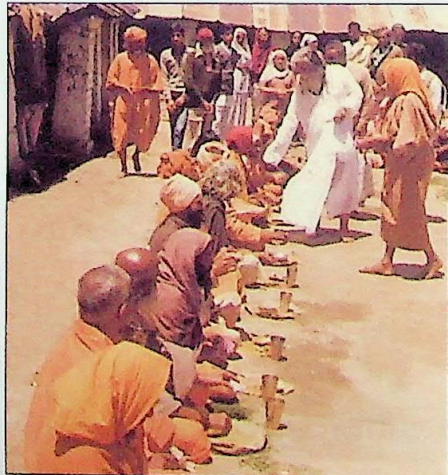
सन्त-मण्डली को सदक्षिणा भण्डारा

हरिद्वार पँहुचने पर भव्य स्वागत
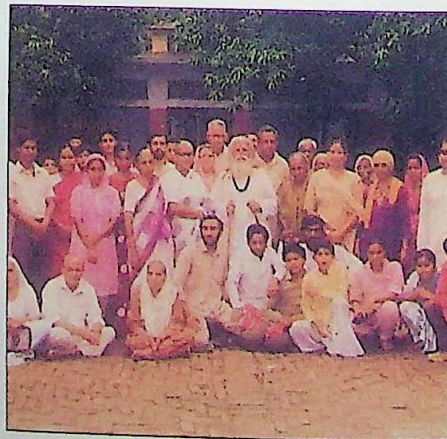
गंगोत्री-यमुनोत्री तीर्थ यात्री दल

श्री केदारनाथ धाम की पैदल तीर्थ-यात्रा की झलकियाँ
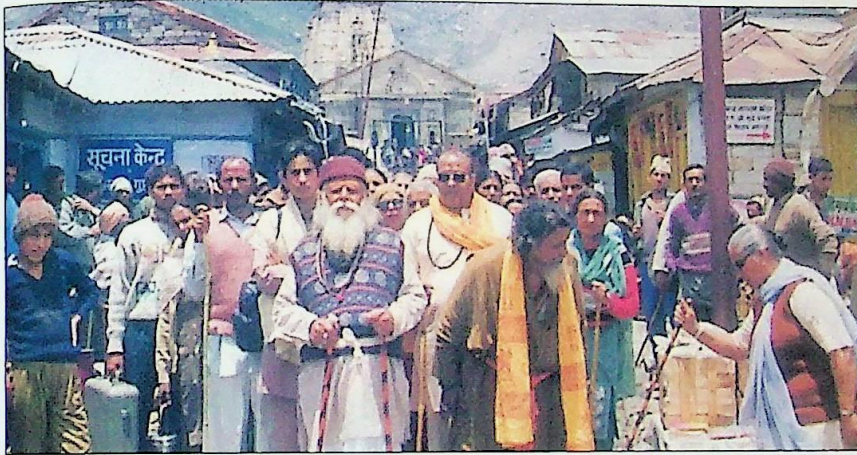
श्री केदारनाथ भगवान की पूजा करके वापिस हुए, मन्दिर के समीप, भक्तों के संग पूज्य ऋषि जी

केदार पर्वत के ग्लेसियर पर खड़े प्रकृति का आनन्द ले रहे पूज्य ऋषि जी महाराज

पैदल तीर्थ यात्रियों तथा बूढ़ाकेदार गांववासियों के संग पूज्य ऋषि जी

श्री रामेश्वर और श्री द्वारिकाधीश तीर्थयात्रा की झलकियाँ

श्री रामेश्वर भगवान के पूजनार्थ जा रहे पूज्य ऋषि जी

श्री द्वारिकाधीश की पूजा के उपरान्त, प्रसाद रूप में प्राप्त द्वारिकाधीश के पीताम्बर को शिरोधार्य किये हुए पूज्य ऋषि जी
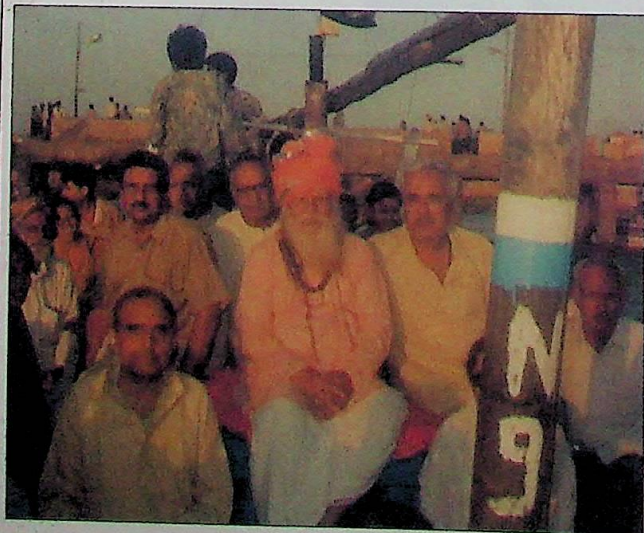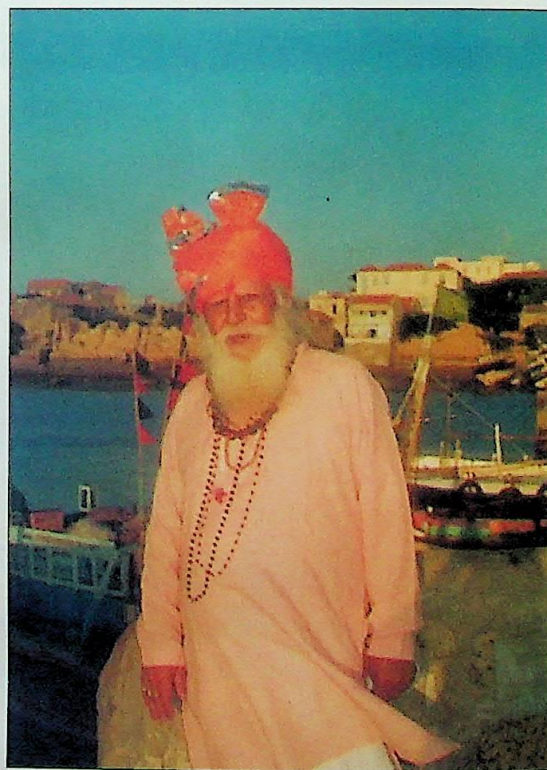
बेहट द्वारिका से द्वारिका लौट रहे, समुद्री जहाज में भक्तों के संग विराजमान पूज्य ऋषि जी महाराज।

तृतीय लक्षचण्डी महायज्ञ की झलकियाँ
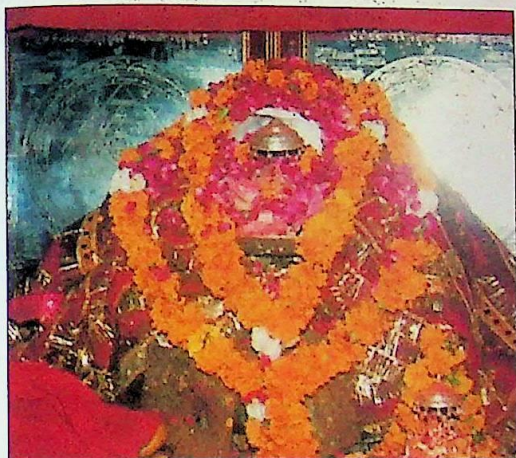
लक्षचण्डी शक्ति पीठ
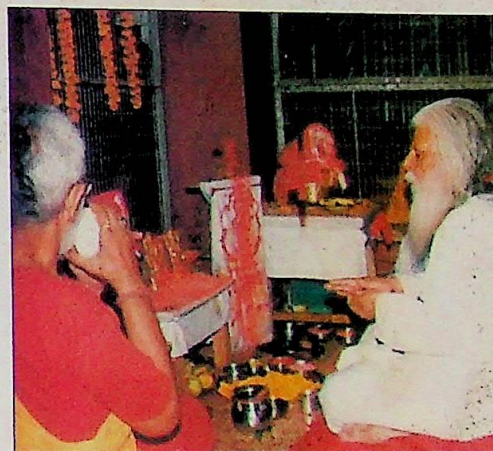
पूजास्थल
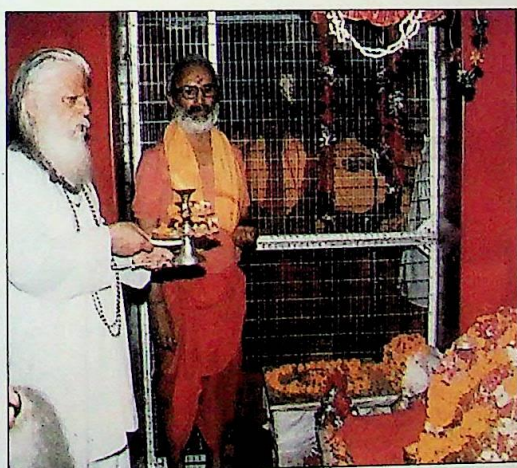
पूजा उपरान्त आरती करते हुए पूज्य ऋषि जी
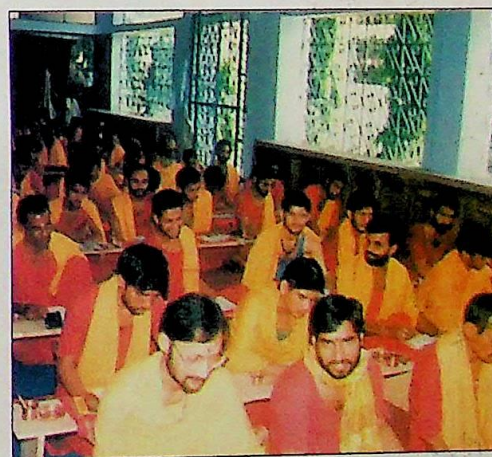
श्रीदुर्गासप्तशती का पाठ करता हुआ ब्राह्मण समुदाय
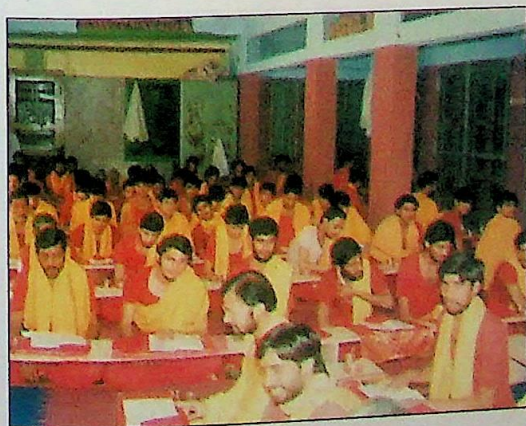
श्रीदुर्गासप्तशती का पाठ करता हुआ ब्राह्मण समुदाय
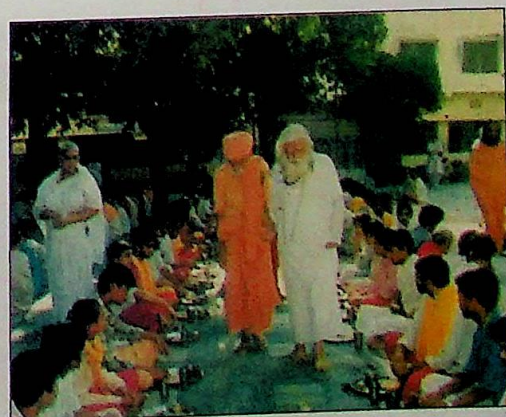
"ब्रह्मभोज"

पूर्णाहुति पर समुपस्थित सन्त-समुदाय, विद्वत्समाज एवं भक्त परिवार
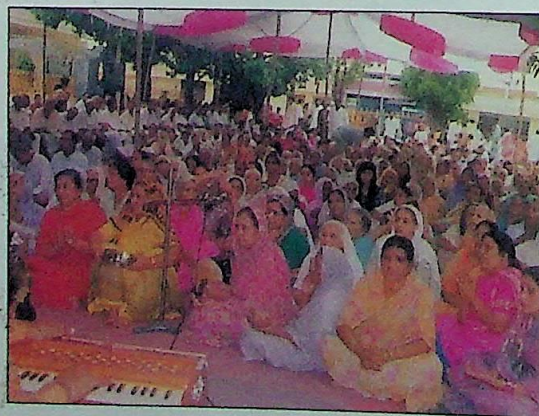
पूर्णाहुति उपरान्त अवभृथ स्नानार्थ हरकी पौड़ी के लिए शोभा यात्रा
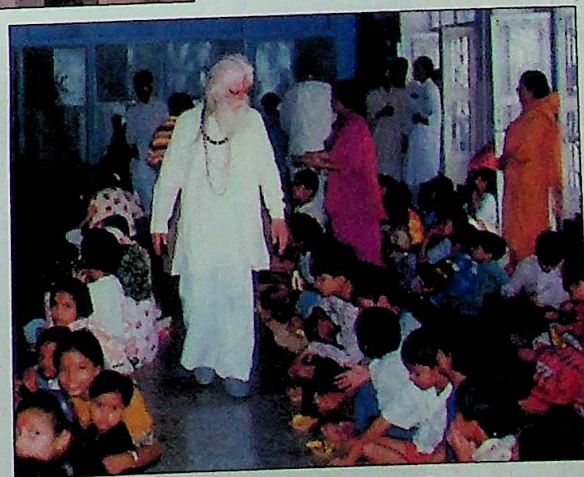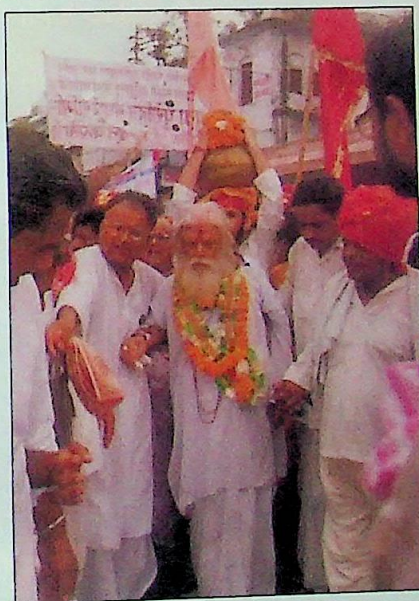
यज्ञ समाप्ति के उपरान्त कुमारी पूजन

सिद्धपीठ भुवनेश्वरी देवी मन्दिर के नवनिर्माण की चित्रावली

माता भुवनेश्वरी द्वार का उद्धघाटन
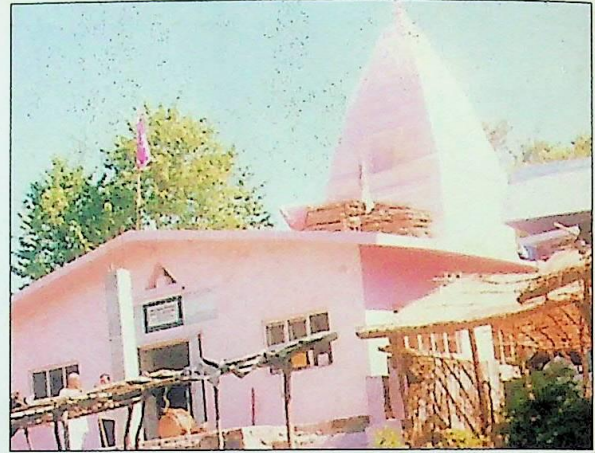
नवनिर्मित भुवनेश्वरी मन्दिर
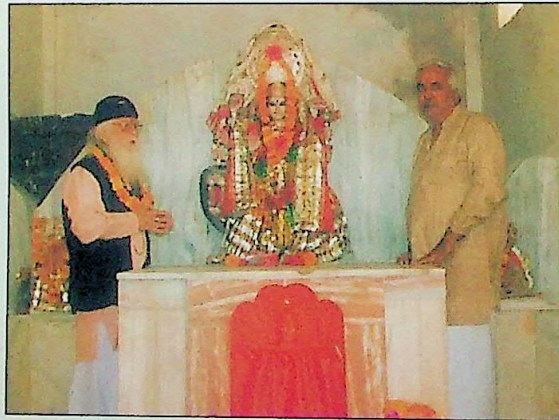
भुवनेश्वरी देवी-प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा के उपरान्त आराधना करते हुए पूज्य ऋषि जी महाराज सानिध्य में उपस्थित, मन्दिर निर्माण में जी-जान से सेवा करने वाले श्री एच. कुमार जी

कुमारी पूजन करते हुए पूज्य ऋषि जी महाराज

श्रीभुवनेश्वरी मन्दिर निर्माण में महत्वपूर्ण सहयोगी, कनाडा निवासी श्री रमेशचन्द्र अग्रवाल एवं श्रीमती विजय अग्रवाल

निर्धन-निकेतन एक देवालय-स्थली
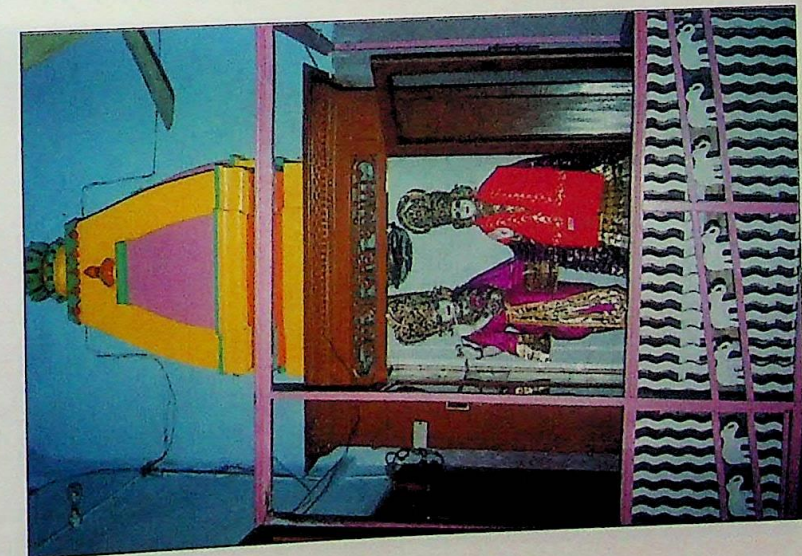
श्री राधाकृष्णाभ्यां नमः

श्री गुरवे नमः
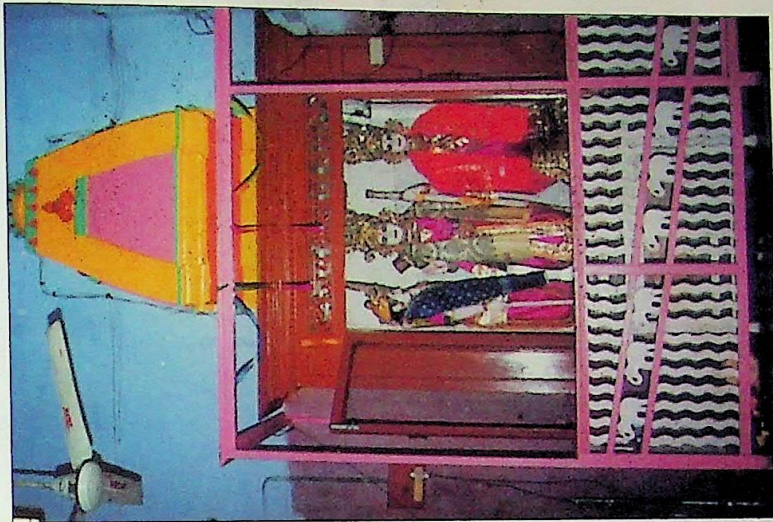
श्री सीतारामलक्ष्मणेभ्यो नमः

श्री सत्यनारायणाय नमः

श्री गायत्रीदेव्यै नमः
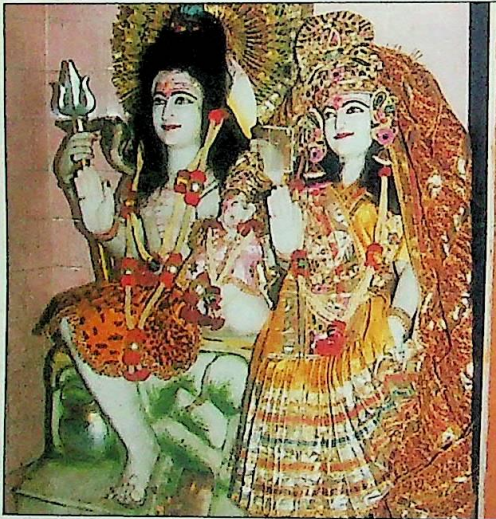
श्री उमापतये नमः
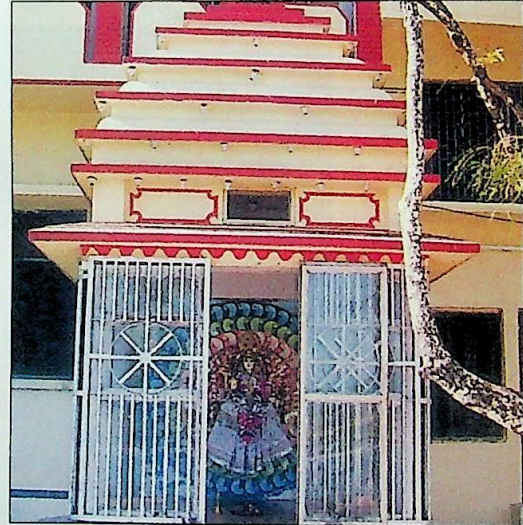
श्री गंगादेव्यै नमः
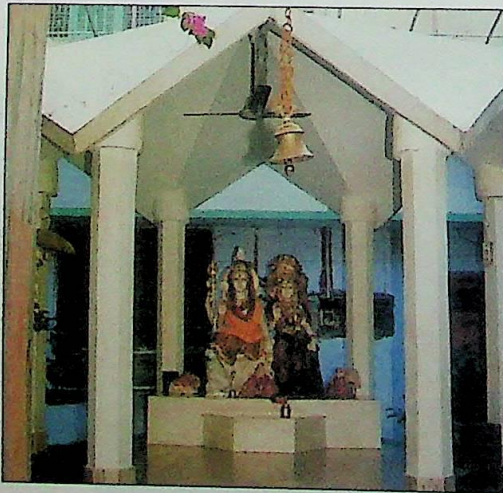
इस शिव मन्दिर का निर्माण दिल्ली निवासी श्रीमती सरला अग्रवाल के सौजन्य से हुआ

निर्धन-निकेतन एक देवालय-स्थली
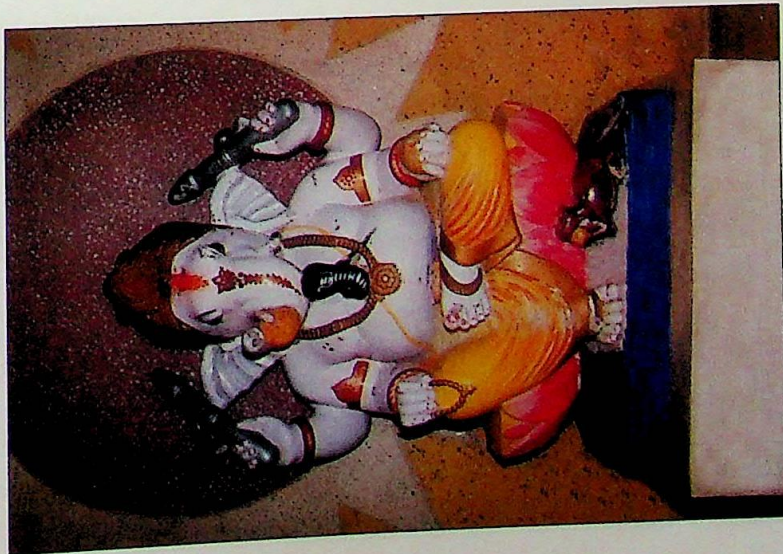
श्री गणेशाय नमः

श्री लक्ष्मीदेव्यै नमः
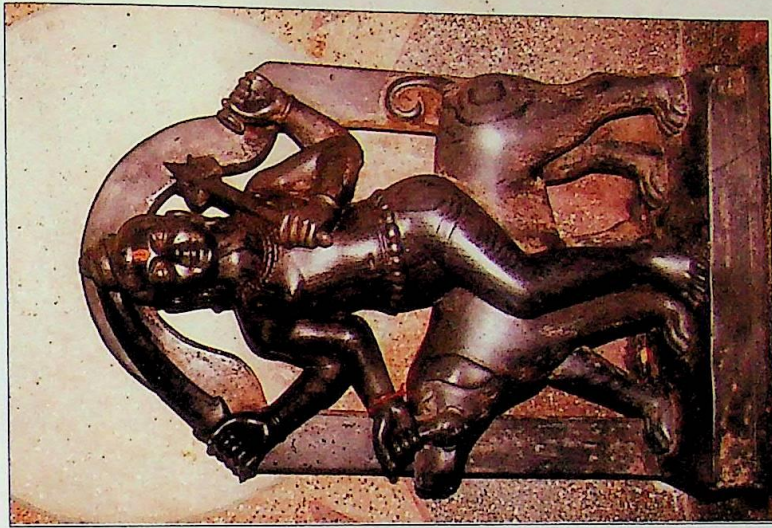
श्री भैरवाय नमः

श्री नवदुर्गा मन्दिर

श्री महाकालीदेव्यै नमः

श्री ब्रह्माणीदेव्यै नमः

श्री माहेश्वरीदेव्यै नमः

श्री ऐन्द्रीदेव्यै नमः

श्री दुर्गादेव्यै नमः
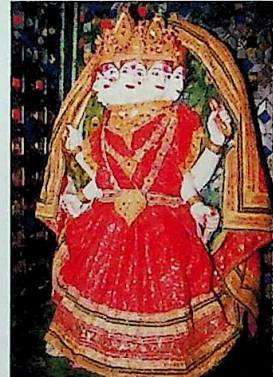
श्री कौमारीदेव्यै नमः

श्री बाराहीदेव्यै नमः

श्री नारसिंहीदेव्यै नमः

श्री वैष्णवीदेव्यै नमः

निर्धन-निकेतन एक देवालय-स्थली

श्री हनुमते नमः

श्री दुर्गादेव्यै नमः
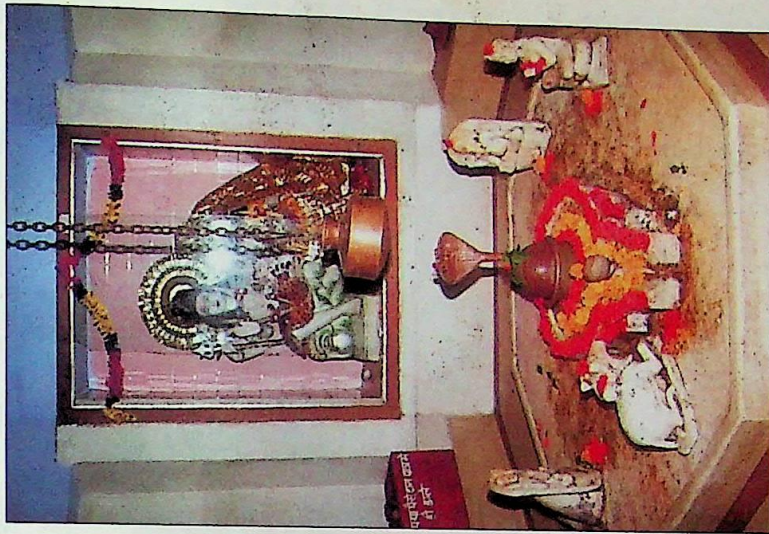
श्री सपरिवाराय शिवाय नमः

पूज्य ऋषि केशवानन्द जी महाराज का अमृत महोत्सव पर अभिनन्दन

श्रद्धेय ऋषि जी महाराज को आशीर्वाद देते हुए सन्त शिरोमणि, वीतराग, स्वा० कल्याण देव जी महाराज
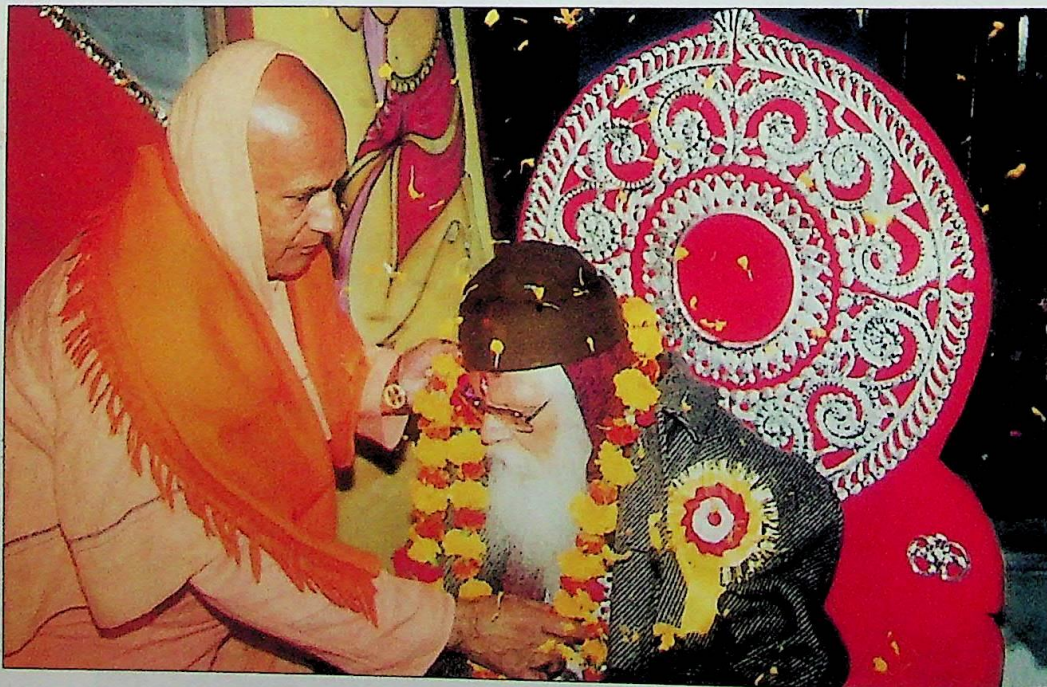
प्रातः स्मरणीय ऋषि जी महाराज की मंगल कामनाएँ करते हुए
महामण्डलेश्वर स्वामी डा० श्याम सुन्दरदास जी महाराज।

पूज्य ऋषि केशवानन्द जी महाराज का अमृत महोत्सव पर अभिनन्दन
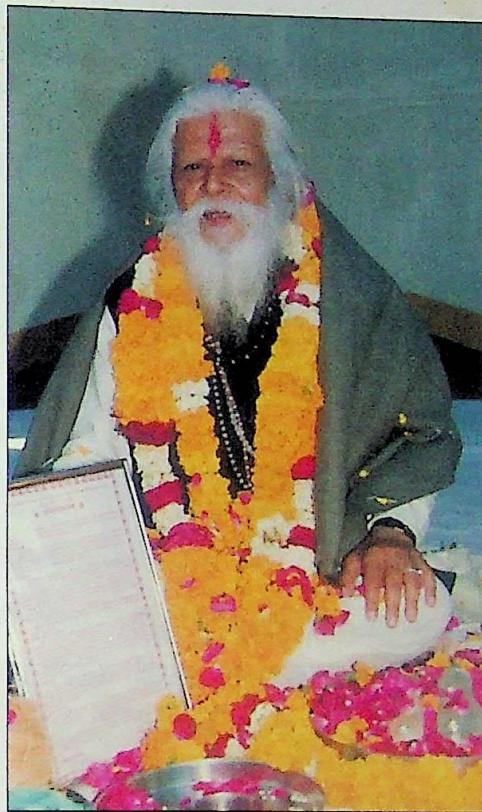
अमृत महोत्सव पर समर्पित अभिनन्दन पत्र

भक्तों द्वारा समर्पित रजत-चरण पादुका

पूज्य ऋषि जी के प्रति वात्सल्यभावपूर्ण ''रल्हन-दम्पति''
माता श्रीमती शारदा देवी रल्हन एवं श्री रलियाराम रल्हन

''ऋषि दर्शनम्'' प्रकाशन के महत्वपूर्ण सहयोगी, जालन्धर निवासी
श्री ज्ञान भण्डारी एवं श्रीमती नीलम भण्डारी

ANNEXURE - I

Governing body of
BAL BRAHMCHARI MISSION, Nirdhan Niketan, Kharkhari Hardwar (U.P.) India

S. No.	Name	Address	Occupation
1.	Rishi Keshwanand Ji Maharaj Ph 0133-424837	Nirdhan Niketan Kharkhari HARDWAR PIN 249401 (UP)	Ascetic Spiritual Leader Founder President Bal Brahmchari Mission
2.	Shri Ram Parkash Narula S/o Shri K. R. Narula Ph 0124-287268	H.No. 1320 Sector 17, Faridabad PIN 121002	Manager PNB (Retired) Secretary BBM
3.	Shri ShivCharan Das Mittal S/o Shri Des Raj Mittal Ph 0133-427043	Nirdhan Niketan Kharkhari HARDWAR PIN 249401 (UP)	Asstt. Secretary Treasurer Life Member
4.	Shri Mool Raj Bhandari S/o Shri K.R. Bhandari Ph 0181-4247761 239977	H.No. 492 Model Town JULLUNDUR (Pb) PIN 144005 (Pb)	Retired Govt. Servent
5.	Shri Gian Chand Bajaj S/o Bansi Lal Bajaj Ph 01632-47189	H.No. 43/3 Gali-2 Kanshi Nagri Ferozepore City (Pb) PIN 152002	Retired from PSEB as Head Clerk
6.	Shri Kanwar Sain Majithia S/o Shri T.R. Majithia Ph 01636-25870	Gali No. 3 New Town, MOGA PIN 142001	Landlord
7.	Sushri Satya Sachdev D/o Sh. J.N. Sachdev Ph. 0133-427043	Nirdhan Niketan Kharkhari, HARDWAR PIN 249401	Principal Vishesh Kendriya Vidyalaya Ghaziabad (UP) Retd. Life Member
8.	Sushri Dewan d/o Sh. Bhoja Ram Arora	Nirdhan Niketan Kharkhari, HARDWAR PIN 249401	Life Member
9.	Dr. Parkash Chander S/o Sh. Anant Ram Behal Ph 0542-343733	H. No. 21/122 Subhash Nagar VARANASI	Dentist
10.	Shri Panna Lal Aggarwal S/o Sh. K.L. Aggarwal Ph 011-7432666	H.No. 21/23 Shakti Nagar DELHI	Army (Retd. Captain)

11.	Sh. Dev Raj S/o Shri Ranga Ram Garg Ph 0172-701314 708726	H. No. 2364/23 Chandigarh PUNJAB	Retired DRO Punjab
12.	Sh. Janak Raj S/o Sh Lal Chand Monga Ph. 01632-46554	Gali Mukhejian Mohalla Bhudwaran Ferozepore City PIN 152002	Owner, Monga Ready Made Garments Post Office Road Ferozepore City
13.	Smt. Sita Devi W/o Shri Chuni Lal Sachdev Ph. 01765-55415 56193/56185	G.T. Road Gobindgarh PUNJAB	Owner Ispat Udyog G.T. Road Khanna (Punjab)
14.	Sh. Sat Saroop S/o Sh. Bahali Ram Bajaj Ph 0124-296977/ 280380	H. No. 2287 Sector-9 FARIDABAD	Retired Executive Engineer Punjab (PWD) PH
15.	Sushri Savitri d/o Sh. Sewa Ram Matta Ph. : 0161-722422/ 722322	255 A Shahpur Road, LUDHIANA	Retd. Professor HOD (English) Govt. College for Women LDH
16.	Shri AShok Kumar S/o Sh. Sant Ram Ph. 01675=20067	Subhash Nagar Pakki Gali Dhuri (Pb)	Motor Spare Parts Business Dealer Dhuri
17.	Shri Faqur Chand s/o Shri Daulat Ram Gupta Ph. 01675-21350	Jagdamba Cloth House	Business Jagdamba Cloth House, Dhuri
18.	Sh. Rajinder Parshad s/o. Sh. Dharam Parkash Bhola Ph 0542-358169	H.No. 29, Lajpat Nagar Varanasi	Business Clothnerchant Varanasi
19.	Shri Jaswant Rai s/o Sh. Harbans Lal Chatkara Ph 011-7041906	Pocket A/3 Flat No. 3 Sector 7 Rohini	Retired Superintendent GOI
20.	Sh. Sat Paul Sethi S/o Sh. H.R. Sethi Ph 01635-30060 31060	Sethi Auto Store Main Bazar Jaiton (Pb)	Motor Spare Parts Business Main Bazar Jaiton

श्री १०८ बाल ब्रह्मचारी मिशन के सदस्यों और भक्तों में विराजमान
श्रद्धेय ऋषि केशवानन्द जी महाराज

श्री बद्रीनाथधाम की पैदल तीर्थयात्रा
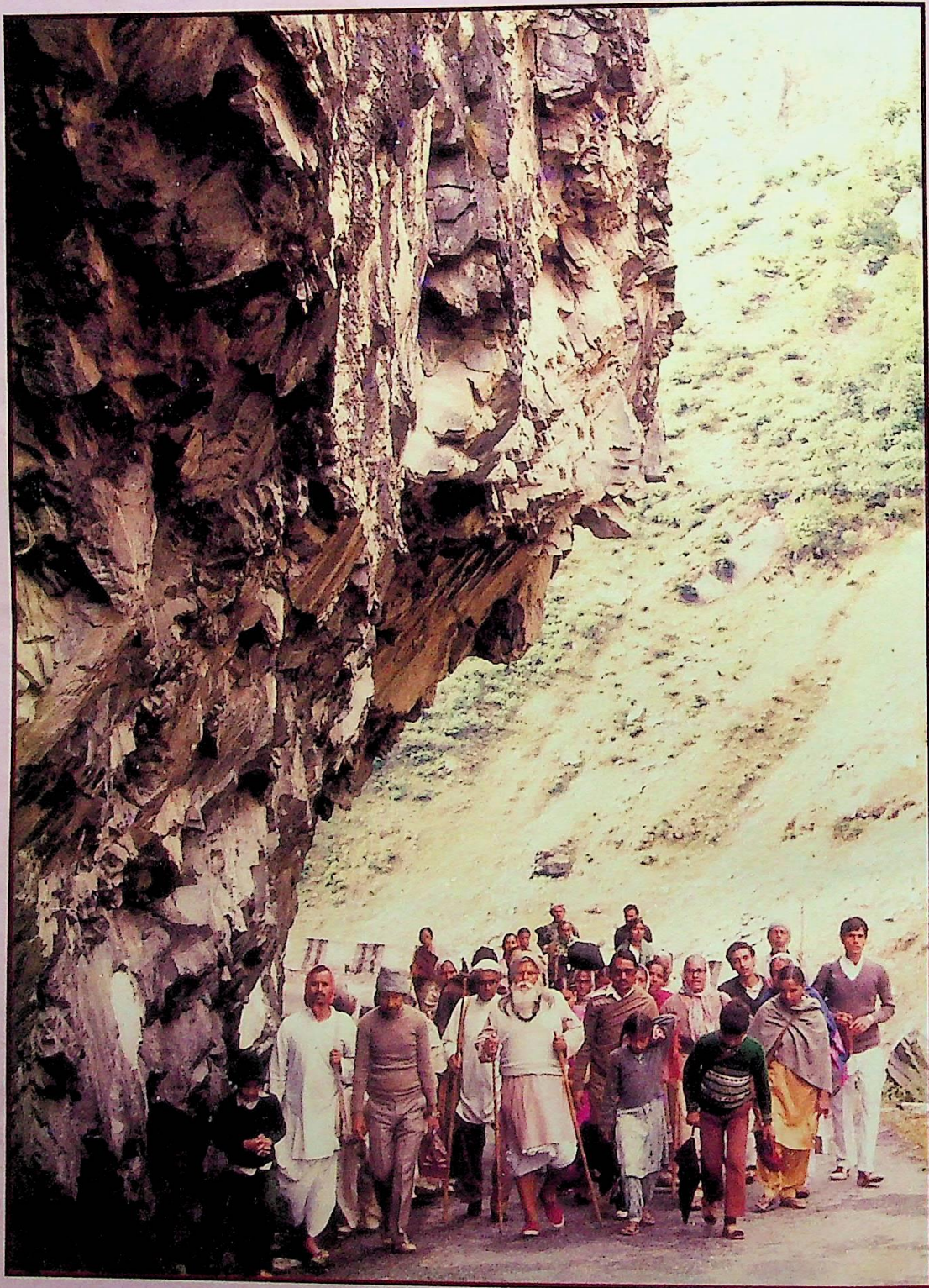
"हनुमान चट्टी" के समीप यात्रियों के मध्य में पूज्य ऋषि जी